शार्ङ्गधराचार्यविरचिता

# शार्ङ्गधरसंहिता

'दीपिका'-हिन्दीव्याख्या-विशेषवक्तव्यसमन्विता,
महर्षि-अग्निवेशकृत-अञ्जननिदानसहिता च

परिष्कर्ता एवं व्याख्याकार

डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

## पुस्तक-परिचय

**शार्ङ्गधरसंहिता** में उपलब्ध विषयवस्तु का अधिकांश संग्रह चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन संहिताओं से और कुछ रसशास्त्र के प्रतिनिधि ग्रन्थों से किया गया है। शार्ङ्गधरसंहिता में चरक, सुश्रुत आदि संहिता ग्रन्थों के अतिरिक्त चक्रदत्त तथा सोढल का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इसमें रसशास्त्र-सम्बन्धी सामग्री पूर्ववर्ती विभिन्न रसशास्त्रीय ग्रन्थों से ली गयी प्रतीत होती है। इस प्रकार आर्षसंहिताओं के सारभूत तथा प्रकरणोचित विषयों का इसमें संग्रह होने के कारण आज भी समाज में प्रस्तुत संहिता का आदर प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं की भाँति ही देखा जाता है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों की टीका करते समय इस बात का विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है कि पद्यों द्वारा जितना विषय कहा गया है क्या वह प्रायोगिक दृष्टि से पर्याप्त है? अथवा उसे और भी स्पष्ट करने की आवश्यकता है? प्रस्तुत दीपिका हिन्दीटीका में इस दृष्टि से पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। आप किसी भी योग का निर्माण इसमें दी गयी टीका तथा वक्तव्यों की सहायता से सरलतापूर्वक कर सकते हैं। योगों के निर्माण में कहाँ किस प्रकार की अड़चनें आती हैं, कैसे उनका निराकरण किया जाता है, किस प्रकार की सावधानियाँ रखनी चाहिए, कौन द्रव्य किसमें अतिरिक्त ग्राह्य है और कौन त्याज्य है, शास्त्रोक्त न होने पर भी किस योग में कौन-सा कार्य विशेष रूप से किया जाता है, परम्परागत योगों में क्या-क्या विशेष कर्तव्य होते हैं, इस प्रकार की सभी बातों पर भी इस टीका में विशेष ध्यान दिया गया है; यही इसका मौलिक स्वरूप है। वक्तव्य तथा विशेष वक्तव्य आदि में जो कुछ जहाँ कहा गया है, वह लेखक के चिरकालीन चिकित्सा एवं औषधनिर्माण-सम्बन्धी अनुभवों का सारसमुच्चय है।

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा आयुर्विज्ञान ग्रन्थमाला
२८
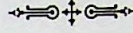
पण्डित-शार्ङ्गधराचार्यविरचिता

# शार्ङ्गधरसंहिता

'दीपिका'-हिन्दीव्याख्या-विशेषवक्तव्यसमन्विता,
महर्षि-अग्निवेशकृत-अञ्जननिदानसहिता च

परिष्कर्ता एवं व्याख्याकार

**डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**

**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**
वाराणसी

**शार्ङ्गधरसंहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**

**ISBN : 978-93-85005-13-8**

प्रकाशक :

**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263

e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in



संस्करण : 2017

₹ [illegible]



वितरक :

**चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस**

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए

अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर

पोस्ट बॉक्स न. 2113

दिल्ली 110007

*

**चौखम्बा विद्याभवन**

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069

वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

THE
CHAUKHAMBA AYURVIJNAN GRANTHAMALA
28
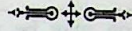
# ŚĀRṄGADHARA-SAṂHITĀ

OF

## PAṆḌITA ŚĀRṄGADHARĀCĀRYA

Containing
AÑJANANIDĀNA OF MAHARṢI AGNIVEŚA

*Annoted with*
**'DIPIKA' Hindi Commentary**

*By*
**Dr. Brahmanand Tripathi**

CHAUKHAMBA SURBHARTI PRAKASHAN
VARANASI

**ŚĀRṄGADHARA-SAṂHITĀ**

*Published by* :
**CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN**
(*Oriental Publishers or Distributors*)
K 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001 (India)
Tel. : +91-542-2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

*Also can be had from* :
**CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE**
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Daryaganj
New Delhi 110002
Tel : +91-11-32996391, +91-11-23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

**CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN**
38 U. A. Bunglow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

*

**CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN**
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

*Printed by* :
A. K. Lithographer
Delhi

# आमुख

भारतीय संस्कृत-वाङ्मय के आदिम स्रोत वेद हैं। परवर्ती सर्वविध साहित्य को उन-उनके रचयिताओं तथा संग्रहकर्ताओं ने किसी न किसी प्रकार अपने साहित्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए उन्हें वेदों से जोड़ा है। प्रस्तुत आयुर्वेदिक साहित्य तो अथर्ववेद का उपांग है ही। इस ग्रन्थ के नाम के साथ जोड़ा गया 'संहिता' शब्द इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता को सूचित करता है। प्राचीन विद्वानों ने आयुर्वेदिक साहित्य को मूलतः बृहत्त्रयी तथा लघुत्रयी भेद से दो भागों में इस प्रकार विभक्त किया है-1. **बृहत्त्रयी**-चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टांगसंग्रह अथवा अष्टांगहृदय। **2. लघुत्रयी**- माधवनिदान, शार्ङ्गधरसंहिता, भावप्रकाश। ध्यान रहे, इस वर्गीकरण से आयुर्वेद का विपुल साहित्य छूट जाता है।

श्रीशार्ङ्गधराचार्य ने इस संहिता में उपलब्ध विषयवस्तु का अधिकांश संग्रह चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन संहिताओं से और कुछ रसशास्त्र के प्रतिनिधि ग्रन्थों से किया है। इस प्रकार आर्षसंहिताओं के सारभूत तथा प्रकरणोचित विषयों का इसमें संग्रह होने के कारण आज भी समाज में प्रस्तुत संहिता का आदर प्राचीन संहिताओं की भाँति ही देखा जाता है।

**नामकरण**-प्राचीन संस्कृत-साहित्य में ग्रन्थों के नामकरण की मूलतः दो परम्पराएँ देखी जाती हैं। **प्रथम**- ग्रन्थकार के नाम के अनुसार और **द्वितीय**-ग्रन्थ के विषय वस्तु के आधार पर। जैसे-चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेड- (भेल)संहिता, काश्यपसंहिता, हारीतसंहिता, माधवनिदान, चक्रदत्त आदि नाम ग्रन्थकारों के नामों के अनुसार ही रखे गये हैं। दूसरी विधि से नामकरण के उदाहरण इस प्रकार हैं, जैसे-माधवकर द्वारा रचित निदान का नाम 'रोगविनिश्चय', वृद्धवाग्भट द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम 'अष्टांगसंग्रह' और वाग्भट द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम 'अष्टांगहृदय' आदि अनेक उदाहरण हैं। यही स्थिति 'शार्ङ्गधरसंहिता' के नाम-निर्धारण की भी है, जिसका सीधा सम्बन्ध ग्रन्थकार के नाम से है। इस ग्रन्थ के साथ जुड़ा हुआ 'संहिता' शब्द मात्र ग्रन्थ की प्रामाणिकता का परिचायक है।

**ग्रन्थकार-परिचय**-संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थकारों की एक प्राचीन परम्परा यह भी रही है, कि वे सर्वथा उदार होते हुए भी आत्म-परिचय देने में प्रायः कृपण देखे जाते हैं। उसी परम्परा के अनुयायी आचार्य शार्ङ्गधर भी प्रतीत होते हैं। इनके प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल दो स्थानों पर इनके नाम का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-1. **'विधीयते शार्ङ्गधरेण'** (शा० सं० प्र० खं० अ० 1.2) तथा 2. **'विलसतु शार्ङ्गधरस्य संहिता'** (शा० सं० उ० खं० अ० 13.128)। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत संहिता के कुछ प्राचीन संस्करणों के अध्यायान्त में दी गयी पुष्पिका में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है-**'इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां.... समाप्तः'**। किन्तु इसे अधिकांश टीकाकारों ने अप्रामाणिक समझकर उद्धृत नहीं किया है।

**अनेक शार्ङ्गधर**-ऑफ्रेक्ट ने 'कैटलाग्स् कैटलागरम्' नामक अपनी ग्रन्थ-सूची में निम्नलिखित अनेक शार्ङ्गधरों का उल्लेख इस प्रकार किया है-1. चण्डमाल के कर्ता शार्ङ्गधर, 2. दार्शनिक शेषशार्ङ्गधर, 3. ज्योतिर्विद् शार्ङ्गधर मिश्र, 4. नाटककार शार्ङ्गधर, 5. त्रिशती या वैद्यवल्लभ के लेखक शार्ङ्गधर, 6. शार्ङ्गधरपद्धति के संग्रहकर्ता शार्ङ्गधर तथा 7. शार्ङ्गधरसंहिताकार शार्ङ्गधर। इसके अतिरिक्त ऑफ्रेक्ट ने अपने उक्त सूचीपत्र में जिन दो शार्ङ्गधरों (पद्धति तथा संहिताकार) को एक स्वीकार किया है, वे अन्तः साक्ष्य के तथा कालक्रम के आधार पर परस्पर भिन्न हैं। शार्ङ्गधर-पद्धति में कवि ने जो

अपना परिचय दिया है, तदनुसार वे दामोदरसूनु तो अवश्य हैं, परन्तु वे आयुर्वेदज्ञ नहीं हैं, अपितु वे '**कविकरीन्द्रकदम्बमृगाधिपः**' हैं। पद्धति के रचयिता शार्ङ्गधर का परिचय इस प्रकार है–शाकम्भरी देश में चौहान-वंशीय हमीर-नरेश के राजगुरु राघवदेव थे। इनके पुत्र दामोदर और उनके पुत्र शार्ङ्गधर थे। हिन्दी में सुप्रसिद्ध एक काव्य 'हमीररासो' है। इसके रचयिता भी 'शार्ङ्गधर' हैं। सम्भवतः ये दोनों एक ही रहे हों। रणथंभौर के राणा 'हमीरदेव' पर अलाउद्दीन खिलजी ने 1299 ई० में आक्रमण किया था और 1301 ई० में उसे जीतकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार हमीरनरेश के गुरु राघवदेव के पौत्र, पद्धतिकार शार्ङ्गधर का समय 14वीं शती सिद्ध होता है।

प्रस्तुत संहिताकार का समय निश्चय ही पद्धतिकार से प्राचीन प्रतीत होता है। क्योंकि शार्ङ्गधरसंहिता पर सर्वप्रथम 13वीं शती के अन्त में तथा 14वीं शती के आरम्भ में स्थित श्रीबोपदेव ने टीका लिखी थी तथा 13-14वीं शती में स्थित हेमाद्रि ने इस प्रसंग को उद्धृत किया है। इस दृष्टि से संहिताकार शार्ङ्गधर को तेरहवीं शती के पूर्वार्ध का स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है। 'शार्ङ्गधरसंहिता' की रचनाशैली प्रायः सोढल (12वीं शती) कृत 'गदनिग्रह' ग्रन्थ से मिलती-जुलती है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत शार्ङ्गधरसंहिता का काल 13वीं शती का पूर्वार्ध ही रहा होगा। तेरहवीं शती में सोढल के पुत्र शार्ङ्गदेव हुए थे। ये उच्चकोटि के कवि, संगीतज्ञ तथा आयुर्वेदविद् थे। इन्होंने संगीतरत्नाकर, अध्यात्मविवेक आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। अध्यात्मविवेक ग्रन्थ में इन्होंने शरीरशास्त्र का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। काल की इस समानता को देखकर शार्ङ्गदेव तथा शार्ङ्गधर को एक मानने का ऐतिहासिकों ने जो प्रयास किया है, उनके उक्त निर्णय में ये बाधक तत्त्व हैं-शार्ङ्गधर का दामोदरसूनु होना और शार्ङ्गदेव का सोढल-पुत्र होना। इतना होने पर भी कृतियों के आधार पर हमने इनका जो काल-निर्णय ऊपर बतलाया है, वह सुतरां विश्वसनीय है।

**शार्ङ्गधरसंहिता का मूलरूप**–प्रस्तुत संहिता 2600 श्लोकों, 32 अध्यायों तथा तीन खण्डों (पूर्वखंड, मध्यमखंड, तथा उत्तरखंड) में विभक्त थी। इस तथ्य की सूचना ग्रन्थकार ने इसके पूर्वखंड में इस प्रकार दी है–

**द्वात्रिंशत् सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता।**
**षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च॥** 1.13

किन्तु खेद है, कि आज उपलब्ध होने वाले शार्ङ्गधरसंहिता के किसी भी संस्करण में 2600 श्लोकों के दर्शन नहीं होते। ये श्लोक कब और कैसे लुप्त हुए, यह एक विचारणीय विषय है। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रस्तुत संहिता पर टीका लिखते समय श्रीआढमल्ल तथा काशीरामजी वैद्य ने इसके केवल 2325 श्लोकों पर ही टीका लिखी थी। इस बात पर न किसी का ध्यान गया अथवा न किसी ने ध्यान ही देना चाहा। यदि किसी का ध्यान गया भी हो, तो उसका इसके पहले तक कोई परिणाम नहीं दिखलायी दिया।

**संस्कृत-टीकाकार**–1. शार्ङ्गधरसंहिता पर विद्वानों ने अनेक टीकाएँ लिखी हैं। उनमें सर्वप्रथम 'दीपिका' नामक संस्कृत टीका श्रीभावसिंह के पुत्र 'आढमल्ल' ने लिखी; इनका काल 12वीं शती है। ये हमीरपुर के निवासी थे। इनके पितामह चक्रपाणि तथा पिता भावसिंह थे। ये दोनों ही वैद्य थे। श्रीआढमल्ल चम्बल (चर्मण्वती) नदी के तीरवर्ती हस्तिकान्तपुरी के राजा श्रीजैत्रसिंह की सभा के मान्य सभासद थे। 2. बोपदेव कृत 'गूढार्थदीपिका' टीका (देखें-वेडर्स कैटलाग ऑफ बर्लिन, 1853 जुलाई), 3. शार्ङ्गधर-शारीर टीका। 4. पं० काशीरामजी कृत शार्ङ्गधरसंहिता की 'गूढार्थ- दीपिका' टीका। ये भारद्वाजगोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण थे। आपने विक्रम संवत् 1605 के आस-पास शाहसलीम के राज्य में रहकर उक्त टीका का निर्माण किया। 5. श्रीरुद्रट भट्ट कृत 'आयुर्वेददीपिका' टीका। इनके पिता का नाम श्रीकोनेरी भट्ट था। ये अब्दुलरहीम खानखाना (1557-1630 ई०) के राजवैद्य थे।

**हिन्दी टीकाकार**–1. श्रीबैजनाथ सारस्वत कृत 'शार्ङ्गधर-सुधाकर' नामक पद्यबद्ध अनुवाद। 2. कविराज प्रियमोहन सेन गुप्त द्वारा कृत टीका का बंगला संस्करण। 3. पं० परशुराम शास्त्री द्वारा सम्पादित प्रथम संस्करण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित। 4. पं० दत्तराम चौबे, मथुरा। 5. पं० रामप्रसाद वैद्यरत्न, पटियाला। 6. बेरी निवासी बस्तीराम जी, रोहतक। 7. पं० हरदयालु जी वाचस्पति, लाहौर। 8. पं० रामेश्वर भट्ट, वाराणसी। 9. आयुर्वेदाचार्य पं० प्रयागदत्त शर्मा कृत 'सुबोधिनी' टीका

(चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस वाराणसी द्वारा प्रकाशित)। 10. पं० दुर्गादत्तजी शास्त्री, प्रधान चिकित्सक-श्रीराम मारवाड़ी हिन्दू अस्पताल, वाराणसी द्वारा कृत हिन्दी टीका तथा 11. अम्बाला निवासी पं० लालचन्द्र जी वैद्य शास्त्री, प्रधानाचार्य-श्रीअर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी। इनमें अनेक टीकाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं।

**शार्ङ्गधरसंहिता का महत्त्व**—मध्यकालीन आयुर्वेदीय प्रवृत्तियों का परिचय प्रदान करने में प्रस्तुत संहिता पूर्णरूप से सक्षम है। मध्यकाल में तान्त्रिकों तथा सिद्धों का सम्प्रदाय उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका था। रसशास्त्र भी विकास की ओर अग्रसर था। उक्त काल में मुसलमानों के साथ अनेक नये औषधोपयोगी द्रव्य तथा चिकित्सा-विधियाँ सामने आयीं, जिन्हें आयुर्वेदविदों ने समयोचित समझकर सादर अपना लिया। उस समय फोड़ा चीरने, तुम्बी, सिंगी तथा पच्छ लगाने तक ही शल्यतन्त्र सीमित हो गया था; इसके विशेषज्ञ जर्राह लोग थे। रसायन तथा वाजीकरण-प्रयोग अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुके थे। उस समय चिकित्सा का सिद्धान्तपक्ष कमजोर होकर योगों तथा कल्पों की प्रमुखता हो गयी थी। अतएव प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताएँ उपेक्षित हो चली थीं। विद्वान् समयोचित चिकित्सा-ग्रन्थों की रचना करने के लिए बाध्य हो गये थे, जिसके फलस्वरूप शार्ङ्गधरसंहिता का निर्माण हुआ। यही कारण था कि उस समय के आयुर्वेदविद् बोपदेव और हेमाद्रि जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान् भी इस ग्रन्थ की टीका लिखने के लिए प्रवृत्त हुए। साथ ही इसका प्रवेश लघुत्रयी में किया गया, जो इस संहिता का मानवर्धन ही था।

**ग्रन्थ की विशेषताएँ**—1. स्फुटरूप में सर्वप्रथम नाड़ीपरीक्षा का ज्ञान इसी ग्रन्थ में प्राप्त होता है। 2. शुक्रस्तम्भक द्रव्यों के प्रयोग, 3. अहिफेन (अफीम), जयपाल (जमालगोटा), जायफल, भाँग आदि द्रव्यों के प्रयोग, 4. विष्णुपदामृत (आक्सीजन) द्वारा समस्त शरीर को तृप्त करने की चर्चा, 5. स्नायुक (नहरुआ) नामक कृमि का वर्णन। इस सम्बन्ध में विद्वानों का मत है, कि यह रोग मुसलमानों द्वारा इस देश में आया। 6. चिकित्सा के लिए विषद्रव्यों के प्रयोगों की अधिकता। जैसे-वत्सनाभ, विषमुष्टि (कुचिला), जयपाल तथा कृष्णसर्पविष के मिश्रण से निर्मित अंजन का विधान। 7. रसौषधों के विशिष्ट तथा अधिकाधिक प्रयोग। 8. चिकित्सा-विधियों में पञ्चकर्म, धारास्वेद, शिरोवस्ति, मूर्धतैल, बिडालक, शोणितस्राव आदि विधियों का विशेष प्रयोग तथा शोणितनिर्हरण (रक्तस्रावण) में 'पद' का प्रयोग उस समय की विशेष देन है। इसी को 'फस्तखोलना' भी कहते हैं। 9. विसूचिका (हैजा) रोग में पार्ष्णिदाह, यकृत्-प्लीहा में स्थानीय दाह का विधान। 10. सूचिकाभरण रस का विलक्षण प्रयोग। 11. विलासिता-प्रधान युग होने के कारण वाजीकरण, वशीकरण, भगसंकोचक, लिंगवृद्धिकर, योनिद्रावक, लोमशातन, केशवर्धन, पलितनाशन, मुखव्यंगनाशक आदि अनेक योगों के विविध प्रयोग।

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक विशेषता और है-'मानपरिभाषा- निरूपण'। यद्यपि इस विषय का संग्रह अनेक आयुर्वेदीय संहिताकारों, परवर्ती ग्रन्थकारों तथा संग्रहकर्ताओं ने अपने- अपने ग्रन्थों में किया है। उस दृष्टि से इसमें जहाँ जो परिवर्तन-परिवर्धन किया गया है, उसे यथास्थान देखें। किसी भी शास्त्र का अध्ययन करने के लिए जिस प्रकार उसके पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक होता है, उसी प्रकार आयुर्वेदीय चिकित्सा-ग्रन्थों में कहे गये योगों का सम्यक् प्रयोग करने के लिए उसकी मान-परिभाषा का ज्ञान परमावश्यक होता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर कविराज गंगाधर राय (1799-1855 ई०) ने आयुर्वेद की अनेक कृतियों के साथ एक '**आयुर्वेदीय परिभाषा**' नामक लघुग्रन्थ की भी रचना की। उस कृति के उपजीव्य आयुर्वेदीय साहित्य, स्मृतिग्रन्थ तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र आदि रहे हैं।

कुछ समय पहले तक यह सरकारी तौल प्रचलित थी-1 रुपया=1 तोला, 5 तोला=1 छटाँक, 16 छटाँक, 1 सेर तथा 40 सेर=1 मन। '**मीयते अनेन इति मानम्**' अर्थात् जिस पैमाने से नापा या तौला जाय, उसे नाप, माप या मान कहते हैं। ये आर्यमान अनेक स्थानों में सामान्य नाम-परिवर्तन के साथ आज भी प्रचलित हैं। जैसे-रीवा रियासत में '**खारी**' को '**खाँडी**' और बुन्देलखण्ड में 'कुडव' को 'कुरवा' कहते हैं। इस प्रकार के परिभाषा-ग्रन्थों में सामान्य परिभाषाओं का उल्लेख रहता ही है; किन्तु जहाँ विशेष विधान किया गया हो, भले ही वह सामान्य परिभाषा का विरोध कर रहा हो, वहाँ **उन द्रव्यों को उसी** परिमाण में लेकर योग का निर्माण करना चाहिए।



**टीका की विशेषताएँ**—हमने अपने द्वारा लिखी हिन्दी टीका का नाम भी 'दीपिका' ही रखा है। **यह पूर्ववर्ती टीकाकारों**

का अनुकरण मात्र नहीं है, अपितु 'दीपिका' शब्द की विपुलार्थ वाचकता एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा क्षेत्र में उसकी सदाशयता ने हमें इसी नाम को रखने के लिए बाध्य किया, क्योंकि यह टीका 'छात्रबुद्धि-दीपिका' तथा अपने सत्प्रयोग से 'जठराग्नि-दीपिका' भी है। यहाँ तक 'दीपिका' नाम की सार्थकता का विवरण दिया गया है। अब हम इसके आगे टीका-सम्बन्धी विशेषताओं की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत करेंगे।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों की टीका करते समय इस बात का विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है, कि पद्यों द्वारा जितना विषय कहा गया है। क्या वह प्रायोगिक दृष्टि से पर्याप्त है? अथवा उसे और भी स्पष्ट करने की आवश्यकता है? इस टीका में इन दृष्टियों से पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। आप किसी भी योग का निर्माण इसमें दी गयी टीका तथा वक्तव्यों की सहायता से सरलतापूर्वक कर सकते हैं। इसके बाद आपको कुछ भी सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

योगों के निर्माण में कहाँ किस प्रकार की अड़चनें आती हैं, कैसे उनका निराकरण किया जाता है, किस प्रकार की सावधानियाँ रखनी चाहिए, कौन द्रव्य किसमें अतिरिक्त ग्राह्य है और कौन त्याज्य है, शास्त्रोक्त न होने पर भी किस योग में कौन-सा कार्य विशेष रूप से किया जाता है, परम्परागत योगों में क्या-क्या विशेष कर्तव्य होते हैं, इस प्रकार की सभी बातों पर इस टीका में विशेष ध्यान दिया गया है; यही इसका मौलिक स्वरूप है। वक्तव्य तथा विशेष वक्तव्य आदि में जो कुछ जहाँ कहा गया है, वह अपने चिरकालीन चिकित्सा एवं औषधनिर्माण-सम्बन्धी अनुभवों का सारसमुच्चय है।

चिकित्सा-क्षेत्र में अति उपयोगी होने के कारण महर्षि अग्निवेश कृत '**अञ्जननिदान**' को भी इस ग्रन्थ के अन्त में स्थान दिया गया है। इसके उक्त नाम की सार्थकता यह है, कि चिकित्साकाल में चिकित्सक की दृष्टि को निदान साहित्य उसी प्रकार निर्मल कर देता है जिस प्रकार रोगग्रस्त नेत्रों को अञ्जन-प्रयोग।

**पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों का प्रभाव**-शार्ङ्गधरसंहिता में चरक, सुश्रुत आदि संहिता ग्रन्थों के अतिरिक्त चक्रदत्त तथा सोढल का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें रसशास्त्र-सम्बन्धी सामग्री समसामयिक एवं पूर्ववर्ती विभिन्न रसशास्त्रीय ग्रन्थों से ली गयी प्रतीत होती है।

**शार्ङ्गधर के संस्करण**-आज उपलब्ध होने वाले शार्ङ्गधरसंहिता के संस्करणों में कोई भी संस्करण ऐसा नहीं है, जिसे हम 2600 श्लोकों से परिपूर्ण देख सकें। विभिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित इसकी पाण्डुलिपियाँ भी खण्डित ही प्राप्त हुई हैं। आज प्राप्त होने वाले प्राय: सभी संस्करणों में 2400 के लगभग श्लोक प्राप्त होते हैं। पं० परशुरामशास्त्री विद्यासागर द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित उक्त संहिता में सर्वाधिक श्लोक 2361 प्राप्त हैं, किन्तु इसे भी सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अत: मेरे हृदय में इसे पूर्ण करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई।

**प्रेरणास्रोत**-किसी क्षेत्र में किसी प्रकार की भी ज्यों की त्यों क्षति-पूर्ति करना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता है, फिर भी प्रयत्नशील एवं साहसी पुरुष इस ओर प्रवृत्त होते ही हैं। जैसे कालक्रम से खण्डित चरकसंहिता की पूर्ति आचार्य दृढबल ने की थी, जो आज सर्वमान्य है। इसी एक प्रकाश-किरण ने मेरे विचार-पथ को भी आलोकित किया, जिसके फलस्वरूप मैं शार्ङ्गधरसंहिता की पूर्ति करने के लिए प्रवृत्त हुआ। इस दुरूह कार्य के सम्पादन में मुझे अध्ययनकाल में अपने परमपूज्य गुरुजी के समय-समय पर प्राप्त अमूल्य उपदेश, शार्ङ्गधरसंहिता का विषयक्रम-उक्त संहिता में संगृहीत पद्यों का पूर्वापर सम्बन्ध, उन-उन मूलसंहिताओं से उद्धृत पद्यों के अवशिष्ट प्रसंगोचित विषयों का अभाव तथा ग्रन्थकार की शैली एवं उसके सिद्धान्त आदि का यथासम्भव विचार कर इसकी पूर्ति की गयी है।

शार्ङ्गधर के परवर्ती भावमिश्र ने इसके अनेक पद्यों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। ऐसे पद्यों का हमने पुन: इसमें नि:संकोच संग्रह कर लिया है। ग्रन्थकार ने कुचिला तथा भिलावे के प्रयोग तो लिखे हैं, परन्तु उनके संशोधन प्रकार छोड़ दिये हैं, उन्हें इसमें पूरा किया गया है। 'अणुतैल' की नस्य लेने का विधान तो इसमें मिलता है, किन्तु उसके निर्माण-विधि का निर्देश न होने पर उसे भी इसमें यथास्थान व्यवस्थित कर दिया है। इस प्रकार के विभिन्न स्थलों को खोज-खोजकर इसकी श्लोक संख्या की पूर्ति की गयी है।

इस प्रकार के कार्य पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी अपनी अन्त:प्रेरणा से प्रेरित होकर समय-समय पर किये हैं और उन्हें आदर प्राप्त हुआ है। उनकी कृतियाँ भी विद्वानों द्वारा सम्मानित होती रही हैं और उससे पाठकों को भी दिशा-निर्देश मिला है। इन्हीं प्रलोभनों से प्रलोभित होकर मैंने भी यह पूर्ति-कार्य किया है। इसमें मुझे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, इसे आयुर्वेद-मर्मज्ञ सहृदय विद्वान् ही बतला सकेंगे। इस ग्रन्थ में ब्रेकेट से घिरे हुए समस्त पद्य परिवर्धित हैं, शेष प्राचीन। इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित तालिका से हो जायेगा।

**शार्ङ्गधरसंहिता के श्लोकों की स्थिति**

| निर्णयसागरीय | श्लोकसंख्या | वर्तमान प्रति | श्लोकसंख्या | परिवर्धित | श्लोकसंख्या |
|---|---|---|---|---|---|
| पूर्वखंड- | 454 | पूर्वखंड- | 598 | पूर्वखंड- | 144 |
| मध्यमखंड- | 1267 | मध्यमखंड- | 1290 | मध्यमखंड- | 23 |
| उत्तरखंड- | 640 | उत्तरखंड- | 712 | उत्तरखंड- | 72 |
| कुलयोग | 2361 | | 2600 | | 239 |

**आभार**-प्रस्तुत शार्ङ्गधरसंहिता की टीका लिखते समय तथा इसके अपूर्ण स्थलों की पूर्ति करते समय मुझे पूर्ववर्ती मूल एवं टीका ग्रन्थों का अवलोकन, परिशीलन तथा मनन करने की आवश्यकता पड़ी। उन-उन ग्रन्थों से जिस अंश में जो सहायता प्राप्त हुई है, उसके लिए मैं उन सभी वैद्यविद्यावदात विद्वानों और उनकी कृतियों का आभारी हूँ। अपने पूज्य गुरुचरणों, सम्प्रति स्वर्गीय पं० लालचन्द्र जी वैद्य का, जिन्होंने मुझे सदैव शिष्य एवं पुत्र निर्विशेष समझकर अपनी चतुरस्र प्रतिभा से प्रभावित किया, अपने अतुल शास्त्रीय ज्ञान से अनुशासित किया और शेष अवसरों पर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखकर मेरा समुपबृंहण किया, उनका मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, क्योंकि मैं अध्ययन-काल में सभी प्रकार से उनका अन्तेवासी रहा। उन्होंने मुझे अध्यापन-काल के अतिरिक्त उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते अपने ज्ञानामृत से सदैव सिंचित किया है। आयुर्वेदीय गुत्थियों को सुलझाने में वे सिद्धहस्त थे और चिकित्सा करने में पीयूषपाणि थे, अत: आपसे प्राप्त ज्ञान का मैं जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी हूँ।

**धन्यवाद**-चौखम्बा सुरभारती परिवार को अनेकानेक धन्यवाद है, जिन्होंने अनेक विषयों पर लिखी हुई मेरी कृतियों को प्रकाशित कर उन्हें मूर्त रूप प्रदान किया है। इसके पूर्व 'चरकचन्द्रिका-टीका' से युक्त चरकसंहिता को आपने प्रकाशित किया। इसके बाद बृहत्त्रयी के शेष भाग को प्रकाशित करने के लिए भी कृतसंकल्प हैं।

वसन्तपञ्चमी<br>2046 वि० संवत्

विद्वद्विधेय<br>**डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**

# विषय-सूची

### द्वितीयोऽध्यायः



### तृतीयोऽध्यायः

**चतुर्थोऽध्यायः**



**पञ्चमोऽध्यायः**

षष्ठोऽध्यायः

**सप्तमोऽध्याय:**

## मध्यमखण्ड

### प्रथमोऽध्यायः



### द्वितीयोऽध्यायः

### तृतीयोऽध्यायः



### चतुर्थोऽध्यायः



### पञ्चमोऽध्यायः

## दशमोऽध्यायः



## एकादशोऽध्यायः

**द्वादशोऽध्यायः**

## उत्तरखण्ड

**प्रथमोऽध्यायः**

### पञ्चमोऽध्यायः



### षष्ठोऽध्यायः

**सप्तमोऽध्याय:**



**अष्टमोऽध्याय:**

**द्वादशोऽध्यायः**



**त्रयोदशोऽध्यायः**

।। श्रीः।।

श्रीशार्ङ्गधरेण प्रणीता

# शार्ङ्गधरसंहिता

'दीपिका' व्याख्यया विशेषवक्तव्यादिभिश्च विराजिता

## पूर्वखण्डे

### प्रथमोऽध्यायः

### परिभाषा

**मङ्गलाचरणम्**

**श्रियं स दद्याद् भवतां पुरारिर्यदङ्गतेजःप्रसरे भवानी।**
**विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ।।1।।**

**टीकाकर्तुः मङ्गलाचरणम्**

**जयति साम्बशिवः सगणेश्वरः सकलरोगहरः सुखशान्तिदः।**
**चरकसुश्रुतसारसदाशया जयति शार्ङ्गधराभिधसंहिता।।**
**आयुर्वेदमहाम्भोधेः पारगं छिन्नसंशयम्।**
**लालचन्द्रं गुरुं नत्वा दीपिकां सन्तनोम्यहम्।।**

पुर नामक असुर के विनाशक वे भगवान् शंकर आप सभी (प्राणियों) को श्री (कल्याण, मंगल, धन-धान्य) प्रदान करें, जिनकी शारीरिक कान्ति के विस्तार में हिमालय पर्वत पर निर्मल चाँदनी में प्रकाशमान दिव्य औषधी के सदृश भगवती भवानी (पार्वती) विशेष रूप से सुशोभित हो रही हैं।

**वक्तव्य**-मंगलाचरण का प्रयोग पाठकों के कल्याण के लिए करने की प्राचीन परम्परा है। आयुर्वेद का उपदेश प्राणिमात्र के कल्याण के लिए होता है। यहाँ शिव (कल्याण-स्वरूप देव) को पुर नामक (अमंगलकारक रोग) का विनाशक कहा गया है। ओषधियों के स्वामी चन्द्रमा के प्रकाश को चन्द्रिका (चाँदनी) कहा जाता है। इसमें रोगशान्ति की अतुलनीय शक्ति है। भवानी को यहाँ महौषधि (दिव्य औषधि) की उपमा दी गयी है। आयुर्वेद में दिव्यौषधियों के अलौकिक प्रभावों की चर्चाएँ सुप्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उक्त मंगलाचरण द्वारा लोक-कल्याण की सर्वतोमुखी कामना की गयी है।

महर्षि आत्रेय ने भी यह संकेत किया है कि हिमालय प्रदेश उत्तम औषधियों का आकर (खजाना) है। देखें-'हिमवान् औषधभूमीनाम्।'-च० सू० अ० 25.40। और भी-'औषधीनां परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः।'-च०चि०अ० 1.38। चन्द्रमा की थोड़ी बहुत चाँदनी सदैव रहती ही है, परन्तु निर्मल चन्द्रिका तभी प्राप्त होती है, जब चन्द्रमा पूर्ण रहता है। तभी औषध द्रव्यों का संग्रह किया जाता है, तभी उनसे पूर्ण गुणों की भी प्राप्ति होती है, क्योंकि चन्द्रमा ही औषधियों का राजा है। उनमें अमृतत्व गुण इसी से प्राप्त होता है। अतएव वेद में कहा है-'ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि'।।-शुक्लयजुर्वेद अ० 12 मं० 96। अर्थात् औषधियाँ अपने राजा चन्द्रमा से कहती हैं-'विद्वान् चिकित्सक हमारा प्रयोग जिस रोगी के लिए करता है, हम उसे रोगों से मुक्त कर देती हैं।

**ग्रन्थ का महत्त्व**

**प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः।**
**विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसङ्ग्रहः सज्जनरञ्जनाय।।2।।**

जो प्रसिद्ध अतएव उत्तम औषधयोग प्राचीन महर्षियों (चरक, सुश्रुत आदि) ने अपनी-अपनी संहिताओं में कहे हैं तथा जिन योगों का चिकित्सकों ने अनेक बार रोगियों पर अनुभव किया है, उन्हीं योगों का भली-भाँति संग्रह सज्जनों (परोपकारी पुरुषों) की प्रसन्नता के लिए श्रीशार्ङ्गधराचार्य ने अपनी इस संहिता में किया है।

**वक्तव्य**–उक्त पद्य द्वारा ग्रन्थकार ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यह ग्रन्थ प्राचीन आयुर्वेदज्ञ महर्षियों के महत्त्वपूर्ण वचनों का संग्रह है। इसमें उन्हीं योगों का संग्रह किया गया है, जिनको चिकित्सकों ने अनेक बार प्रयोग करते हुए उन्हें सदैव सफल पाया और यह ग्रन्थ सज्जनों के मन को प्रसन्न करने के लिए, न कि किसी प्रकार के अभिमान को प्रकट करने के लिए लिखा गया है।

### निदान के बाद चिकित्सा-निर्देश

**हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः**
**समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ।**
**चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं**
**कुर्वीत वैद्यो विधिवत् सुयोगैः ।। 3 ।।**

चिकित्सक का परम कर्तव्य है कि वह निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय तथा सम्प्राप्ति की संख्या, विकल्प आदि भेदों की सहायता से रोगी के सभी रोगों (मूल रोग, सहयोगी रोग तथा उसके उपद्रव-स्वरूप उत्पन्न अन्य रोग इन सभी) को भली-भाँति बुद्धिपूर्वक देख (परीक्षा) कर शास्त्रोक्त विधि से सद्यः फलप्रद उत्तम औषधयोगों द्वारा कर्षण (बढ़े हुए दोष को घटाना) तथा बृंहण (घटे हुये दोष को बढ़ाकर सम स्थिति पर लाना) विधि से चिकित्सा करे।

**वक्तव्य**–निदान आदि से सम्यक् परिचित होने के लिए 'माधवनिदान' का अवलोकन तथा मनन करें। विशेष जानकारी के लिए चरक तथा सुश्रुत के निदानस्थान का परिशीलन करें। यहाँ ग्रन्थकार ने रोग-चिकित्सा की अपेक्षा दोष-चिकित्सा पर अधिक बल दिया है, क्योंकि दोषों की विषमता को ही रोग कहते हैं और दोषों के समान रहने की स्थिति को आरोग्य, नीरोग या स्वस्थ कहा जाता है। यथा–'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता'।-अ०हृ०सू०अ० 1.20। उक्त सम्पूर्ण विषय को महर्षि आत्रेय ने इस प्रकार कहा है–'यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया'।। च० सू०अ० 20.21। निष्कर्ष यह है कि निदान-विधि से दोषों की स्थिति का भली-भाँति ज्ञान कर लेने के बाद ही तदनुसार सिद्ध एवं सफल योगों द्वारा चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

रोग का निदान करते समय यह भी निर्णय कर लेना चाहिये कि यह दोषजनित है या आगन्तुक है, साध्य है या असाध्य है। कर्षण तथा बृंहण चिकित्सा का वर्णन प्राचीन संहिताओं में विस्तारपूर्वक किया गया है। आप उसका इन सन्दर्भों को देखकर अनुशीलन करें-च० सू० अ० 21, 22, 23। सु० सू० अ० 15, सु० चि० अ० 1 श्लोक 11-13, सु० उ० अ० 39 श्लोक 102-105। अ० सं० सू० अ० 24। अ० हृ० सू० अ० 14।

### दिव्यौषधियों के प्रभाव

**दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा**
**वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति।**
**ज्ञात्वेति सन्देहमपास्य धीरैः**
**सम्भावनीया विविधप्रभावाः ।। 4 ।।**

देवताओं की विलक्षण शक्तियों के समान दिव्य (लोकोत्तरशक्ति-सम्पन्न) औषधियों की भी अनन्त शक्तियाँ स्फुरित होती (देखी जाती) हैं। यह जानकर तथा सन्देह को छोड़कर अर्थात् विश्वासपूर्वक धीर (धैर्य-सम्पन्न) चिकित्सकों को चाहिये कि वे उन औषधियों की विलक्षण शक्तियों की सम्भावना किया करें।

**वक्तव्य**–आचार्य शार्ङ्गधर निदान के पश्चात् चिकित्सा की दृष्टि से द्रव्यों के गुण-धर्मों की ओर संकेत कर रहे हैं। सम्भवतः उनका दृष्टिकोण यह रहा है कि योग के बीच में परिगणित द्रव्य प्रधान द्रव्य के गुण-धर्म को बढ़ाने में सहयोगी होता है। यदि उसी द्रव्य का स्वतन्त्र प्रयोग किया जाता है, तो वहाँ उसका विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि सभी औषधियों का राजा चन्द्रमा सबमें समान रूप से समय पर अमृत की वर्षा किया करता है। यह तो संग्रहकर्त्ता तथा प्रयोगकर्त्ता की योग्यता एवं अयोग्यता पर निर्भर है कि उसके द्वारा संगृहीत द्रव्य अपने पूर्ण गुणों को दे या न दे। स्मरणीय है कि आज भी अष्टवैद्यन् परम्परा में नारायण नम्बूदरीपाद की केरलप्रदेशीय **'एकौषधीयचिकित्सापद्धति'** औषधियों के दिव्य प्रभाव का डंका पीट रही है।

उक्त पद्य में दिव्य औषधियों की तुलना देवताओं के साथ केवल उनकी शक्तिमत्ता दिखलाने के लिए ही की गयी है। यही कारण है कि तुलसी आदि पौधे तथा पीपल आदि वृक्ष देवता के रूप में अपने गुणों के कारण आज भी पूजे जाते हैं। सन्देह अज्ञानमूलक होता है, अतः शास्त्राध्ययन द्वारा उसे हटा देना चाहिये। देखें-सु० सू० अ० 40 श्लोक 19-20।

### चिकित्सा-विधि-निर्देश

**स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरा रोगा**
**भवेयुः किल कर्मदोषजाः।**
**तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः**
**श्रेयोमयान् योगवरान्नियोजयेत्।। 5।।**

स्वाभाविक, आगन्तुक, कायिक तथा मानसिक रोग पूर्वजन्म-कृत अशुभ कर्मों के फलस्वरूप अथवा वात आदि दोषों के कारण प्राणिमात्र में निश्चित रूप से होते हैं। उनको नष्ट करने के लिए पापनाशक धर्मशास्त्रोक्त विविध प्रकार के प्रायश्चित्त आदि का अथवा वात आदि दोषों को समभाव में लाने के लिए उत्तमोत्तम (शास्त्रानुमोदित) योगों का प्रयोग करे।

**वक्तव्य**-ऊपर चार प्रकार की व्याधियों का परिगणन किया गया है। उनका परिचय इस प्रकार है-**1. स्वाभाविक**-स्वभाव (प्रकृति) के अनुसार होने वाली व्याधियाँ। जैसे-भूख, प्यास, नींद, बुढ़ापा आदि। ध्यान दें, ये भी रोग हैं, क्योंकि इनसे शरीर में पीड़ा होती है और इनकी चिकित्सा है-भोजन, जलपान, शयन तथा रसायन-सेवन। इन उपचारों से तात्कालिक लाभ होता है। **2. आगन्तुक**-जो रोग बाहरी कारणों-अभिघात, भूतावेश तथा जहरीले प्राणियों के दंश आदि से उत्पन्न हों, उन्हें आगन्तुक कहते हैं। जैसे-चोट लगना, मारण, मोहन, उच्चाटन, भूत-प्रेतबाधा, साँप, बिच्छू, बर्रे आदि द्वारा डँसा जाना। **3. कायिक**-काय=शरीर से सम्बन्धी सभी रोग। जैसे-ज्वर, अतिसार आदि। इनकी उत्पत्ति मिथ्या आहार-विहार के प्रयोग से तथा दूषित वात आदि दोषों से होती है, अतएव इसे 'आन्तरिक' कहा गया है। इन रोगों की परिधि में आने वाले रोग हैं-काम, क्रोध आदि तथा उन्माद, अपस्मार आदि। इनमें पूर्वजन्म में किये गये पापों के फल स्वरूप होने वाले रोग उक्त पापकर्मों के क्षय हो जाने पर अथवा उनको दूर करने वाले उपवासादि प्रायश्चित्तों को करने से उक्त रोगों का शमन हो जाता है। वात आदि दोषों के प्रकुपित (विषम) हो जाने के कारण उत्पन्न होने वाले ज्वर आदि रोग विधिपूर्वक उत्तम योगों द्वारा चिकित्सा करने से शान्त हो जाते हैं। **विशेष**-देखें-सु० सू० अ० 1.23 से 27 तक।

### ग्रन्थ की प्रामाणिकता

**प्रयोगानागमात् सिद्धान् प्रत्यक्षादनुमानतः।**
**सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ।।6।।**

प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम (शास्त्र) प्रमाण से सिद्ध (सदैव सफलता को देने वाले) प्रयोगों का मैं (शार्ङ्गधर) प्राणिमात्र के हित के लिए संक्षेप से वर्णन कर रहा हूँ।

**वक्तव्य**-आत्मा, मन तथा बुद्धि के सहयोग से जो यथार्थज्ञान उत्पन्न होता है, उसे **'प्रत्यक्ष'** कहते हैं। देखें-च० सू० अ० 11.20। व्याप्तिग्रहण के अनन्तर जिस अव्यभिचारी हेतु से हेतुमान् का ज्ञान होता है, उसे **'अनुमान'** कहते हैं। जैसे-धूम के दर्शन से अग्नि का अनुमान तथा गर्भ-दर्शन से स्त्री-पुरुष के सहवास का अनुमान। देखें-च० सू० अ० 11.21-22। आगम शब्द का अर्थ है 'वेद' अथवा आप्त (प्रामाणिक)। ऋषि-महर्षियों द्वारा रचित शास्त्र को भी आगम कहते हैं, क्योंकि आप्त पुरुष रजोगुण तथा तमोगुण से मुक्त होते हैं। अतएव उनका ज्ञान सर्वदा शुद्ध एवं सत्य होता है। वे कभी असत्य भाषण नहीं करते। अतएव उनके रचित शास्त्र आगम कोटि के माने जाते हैं। देखें-च० सू० अ० 11.27।

### पूर्वखण्ड के अध्याय

**प्रथमं परिभाषा स्याद् भैषज्याख्यानकं तथा।**
**नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपन-पाचनम्।।7।।**
**ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा।**
**रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः।।8।।**

इस शार्ङ्गधरसंहिता के पूर्वखण्ड में सात अध्याय हैं। इसके पहले अध्याय में-परिभाषा (शास्त्र द्वारा निश्चित विषयों का विवरण), दूसरे में-औषध योगों के सेवन का समय एवं रस, गुण आदि का वर्णन, तीसरे में-नाड़ी-परीक्षा-विधि आदि विषयों का वर्णन, चौथे में-दीपन, पाचन, लेखन, भेदन आदि द्रव्यशक्तियों का वर्णन, पाँचवें में-कला, आशय आदि शारीरिक विषयों का वर्णन, छठे में-आहार, पाक आदि की गति का वर्णन और सातवें में-रोगों की गणना की गयी है।

### मध्यमखण्ड के अध्याय

**स्वरसः क्वाथफाण्टौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम्।**
**तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः सन्धानमेव च।।9।।**
**धातुशुद्धी रसाश्चैव खण्डोऽयं मध्यमः स्मृतः।**

मध्यमखण्ड में बारह अध्याय हैं। इसके पहले अध्याय में-स्वरस बनाने की विधि, उसके भेद एवं कुछ योग दिये गये हैं। दूसरे में-क्वाथ बनाने की विधि, उसके भेद और कुछ योग, तीसरे में-फाण्ट बनाने की विधि तथा उसके अनुरूप कुछ योग, चौथे में-हिम निर्माण-विधि, तत्सम्बन्धित कुछ योग, पाँचवें में-कल्क (चटनी) बनाने की विधि तथा कुछ

योग, छठे में-चूर्ण बनाने का विधि, कुछ प्रसिद्ध चूर्णयोग, सातवें में-गुटिका (गोलियाँ) तथा कतिपय योग, आठवें में-अवलेह निर्माण-विधि, कुछ प्रसिद्ध च्यवनप्राश आदि अवलेह योग, नवें में-स्नेह (घी-तेल आदि) पाक-विधि तथा कुछ चिकित्सोपयोगी स्नेह योग, दसवें में-सन्धान-विधि, आसव, अरिष्ट, सिरका आदि के निर्माण की विधि तथा कुछ प्रसिद्ध आसव-अरिष्टयोग एवं परस्पर भेद-विवरण, ग्यारहवें में-विविध प्रकार की धातुओं के शोधन तथा मारण की विधि और बारहवें में-रस (पारद), गन्धक का शोधन-मारण तथा सिद्ध रसयोगों का वर्णन किया गया है।

### उत्तरखण्ड के अध्याय

**स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम्।। 10।।**
**ततस्तु स्नेहवस्तिः स्यात् ततश्चापि निरूहणम्।**
**ततश्चाप्युत्तरो वस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः।। 11।।**
**धूमपानविधिश्चैव गण्डूषादिविधिस्तथा।**
**लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः।। 12।।**
**नेत्रकर्मप्रकारश्च खण्डः स्यादुत्तरस्त्वयम्।**

उत्तरखण्ड में तेरह अध्याय हैं। इसके पहले अध्याय में-स्नेहपान-विधि, स्नेहपाक-विधि और कुछ स्नेहयोग; दूसरे में-स्वेदन (शरीर से पसीना निकालने की) विधि, स्वेदन के विविध भेद; तीसरे में-वमन (उलटी कराने की) विधि, वामक (वमनकारक) योगों का वर्णन, वमन के लक्षण; चौथे में-विरेचन (दस्त कराने की) विधि, विरेचक योगों का वर्णन, विरेचन के लक्षण; पाँचवें में-अनुवासनवस्ति, उसकी विधि; अनुवासन योग; छठे में-निरूहणवस्ति, उसकी विधि, निरूहण योग; सातवें में-उत्तरवस्ति (यह वस्ति पुरुषों के मूत्रमार्ग में और स्त्रियों की योनि में दी जाती है), उत्तरवस्ति-विधि, उत्तरवस्ति में प्रयुक्त होने वाले योग; आठवें में-नस्य (नाक द्वारा ली जाने वाली औषिध) विधि, विविध नस्य योग; नवें में-धूमपान-विधि तथा उसके विविध योग; दसवें में-गण्डूष (कुल्ले करने की) विधि, विविध गण्डूष योग, कवल-धारण-विधि, अनेक प्रकार के कवल योग; ग्यारहवें में-लेप का विधि, विविध प्रकार के रोगो में प्रयुक्त होने वाले लेपयोग; बारहवें में-रक्तस्राव-विधि, रक्त-परिचय, रक्तस्रावहर योग तथा तेरहवें में-नेत्ररोगों की चिकित्सा-विधि नेत्ररोग-नाशक विविध योग आदि दिये गये हैं।

### अध्यायों तथा श्लोकों की गणना

**द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता।। 13।।**
**षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च।**

प्रस्तुत शार्ङ्गधरसंहिता में बत्तीस अध्याय हैं (पूर्वखण्ड में 7, मध्यमखण्ड में 12 और उत्तरखण्ड में 13) और श्लोकों की संख्या 2600 (छब्बीस सौ) है।

**वक्तव्य**-इसका स्पष्टीकरण आलेख में देखें।

### मान-परिभाषा

**न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्।। 14।।**
**अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया।**

मान (परिमाण, नाप या तौल) के बिना औषधद्रव्यों की युक्ति (प्रयोग या व्यवहार) कहीं भी नहीं की जा सकती है। इसलिये प्रयोग करने के लिए मेरे द्वारा यहाँ विविध मानों का वर्णन किया जा रहा है।

**वक्तव्य**—आयुर्वेदीय आर्षसंहिताओं में दिये गये मागध तथा कालिङ्ग मानों की तुलना आधुनिक मानों के साथ हो सके, इसके लिए उक्त प्राचीन मानों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है। वैसे आर्षग्रन्थों में दिये गये इन आर्यमानों की सत्ता मुगलशासन काल में ही समाप्त हो चली थी। आज जिन नाप-तौलों का व्यवहार है, उनसे हमें प्राचीन मानों का समन्वयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। आचार्य भावमिश्र ने इस प्रकरण को शार्ङ्गधरसंहिता से प्रायः उद्धृत किया है-आप जरा मिला कर देखें-भा० प्र० निघण्टु मानपरिभाषा-प्रकरण।

### मागधमान-परिभाषा

**त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः।। 15।।**
**त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते।**

विद्वानों ने तीस परमाणुओं का एक त्रसरेणु स्वीकार किया है। 'त्रसरेणु' का ही पर्याय 'वंशी' कहा जाता है।

**वक्तव्य**—यद्यपि यहाँ तीस परमाणु परिमित एक परिमाण का नाम 'त्रसरेणु' है, तथापि इसका पारिभाषिक अर्थ इस प्रकार है-त्रस=चर या चल या चलायमान जो रेणु=धूल का कण। 'त्रसः च असौ रेणुः च=त्रसरेणुः'। इसका अन्यत्र परिचय इस प्रकार है-'जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते'।। -मनुस्मृति 8.132। तथा याज्ञवल्क्यस्मृति 1.361।

### परमाणु-परिचय

**जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रज:।। 16।।**
**तस्य त्रिंशत्तमो भाग: परमाणु: स कथ्यते।**

खिड़की या झरोखे में से भीतर की ओर आयी हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश में जो सूक्ष्म (छोटे से छोटे) धूलिकण (उड़ते हुये-से) दिखलायी पड़ते हैं, उनमें से किसी एक का तीसवाँ भाग परमाणु कहा जाता है।

**वक्तव्य**-पृथिवी, जल आदि के सबसे छोटे भाग को 'परमाणु' कहते हैं। यह अणु से भी परमलघु होता है, अतएव इसे परमाणु कहते हैं। आत्मतत्त्व को भी **'अणोरणीयान्'** कहा गया है।

### वंशी का मान

**जालान्तरगतै: सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते।। 17।।**

जिसे ऊपर त्रसरेणु कहा गया है, उसे ही 'वंशी' भी कहा जाता है। इस परिमाण को झरोखे के भीतर गयी हुई सूर्य-किरणों द्वारा देखा जा सकता है।

**वक्तव्य**-चरक का पौतवमान 'वंशी' या 'ध्वंसी' से प्रारम्भ होता है। खिड़की से भीतर की ओर आयी हुई सूर्य-किरणों में जो उड़ते हुये धूल के कण दिखलायी देते हैं, उन तीस परमाणुओं की एक 'वंशी' (त्रसरेणु) होती है, इसी को 'ध्वंसी' भी कहते हैं। दूसरे आचार्य ध्वंसी का अर्थ धूल करते हैं। देखें-च० क० अ० 12.87।

### मरीचि आदि के मान

**षड्वंशीभिर्मरीचि: स्यात् ताभि: षड्भिस्तु राजिका।**
**तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षप: प्रोच्यते बुधै:।। 18।।**

छ: त्रसरेणुओं की एक 'मरीचि' होती है; छ: मरीचियों की एक राजिका (राई) होती है और तीन राजिकाओं (राइयों) का एक सर्षप (गौरसर्षप या पीली सरसों) होता है।

**वक्तव्य**-तेज धूप में बालू या अभ्रक के जो लघुतम कण दूर से चमकते हुये दिखलायी देते हैं, उनको 'मरीचि' कहते हैं। इसी से सम्बन्धित एक प्रसिद्ध शब्द है- मृग-मरीचिका। इसका अर्थ होता है-मृगतृष्णा। यह मरीचि त्रसरेणु या वंशी से छ: गुना भारी होता है।

### यव आदि के मान

**यवोऽष्टसर्षपै: प्रोक्तो गुञ्जा स्यात् तच्चतुष्टयम्।**
**षड्भिस्तु रक्तिकाभि: स्यान्माषको हेमधान्यकौ।। 19।।**

आठ सर्षप (सरसों) का एक 'जौ' होता है, चार 'जौ' की एक 'गुञ्जा' इसी को रत्ती (रक्तिका) या घुंघची भी कहते हैं और छ: रत्ती का एक 'माशा' होता है। इसके पर्याय हैं-हेम तथा धान्यक।

**वक्तव्य**-गुञ्जा (घुंघची) वर्णभेद से लाल मुख वाली तथा काले मुख वाली होती है। लोक-व्यवहार में दोनों को ही रत्ती कहते हैं। वास्तव में लाल मुख वाली रत्ती (रक्तिका) को ही सुनार तौल के लिए प्रयुक्त करते हैं। इसकी गणना उपविषों में है। इसे बाहर से सुन्दर तथा भीतर से विषमय देखकर कवियों ने इसकी तुलना स्त्रियों के हृदयों से की है। यह मान शार्ङ्गधराचार्य-सम्मत है, दूसरे आचार्य 5 रत्ती, 7 रत्ती अथवा 10 रत्ती का एक माशा मानते हैं।

### शाण आदि के मान

**माषैश्चतुर्भि: शाण: स्याद्धरण: स निगद्यते।**
**टङ्क: स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते।। 20।।**
**क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षण: स निगद्यते।**

चार माशा का एक 'शाण' होता है, उसे 'धरण' तथा 'टंक' भी कहते हैं। दो शाण का एक 'कोल' कहा जाता है। इसी के पर्याय हैं-क्षुद्रक, वटक तथा द्रंक्षण।

### कर्ष का मान तथा पर्याय

**कोलद्वयं च कर्ष: स्यात् स प्रोक्त: पाणिमानिका।। 21।।**
**अक्षं पिचु: पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम्।**
**बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता।। 22।।**
**करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रह:।**
**उदुम्बरं च पर्यायै: कर्ष एव निगद्यते।। 23।।**

दो कोल का एक 'कर्ष' होता है। इसके पर्याय हैं-पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्, पाणि, तिन्दुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुम्बर।

**वक्तव्य**-मानों के परिमाणों में समय-समय पर अन्तर आये हैं, जिसका इतिहास साक्षी है। इसी प्रकार यहाँ दिये गये कर्ष के पर्यायों में एक 'सुवर्ण' शब्द है। इस 'सुवर्ण' का परिमाण विष्णु, मनु, याज्ञवल्क्य, सुश्रुत तथा कौटिल्य 16 **माशा=1 सुवर्ण** मानते हैं। चरक, लीलावती, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश आदि में यह सुवर्ण शब्द 1 कर्ष=1 तोला का पर्याय माना गया है। दीपिका व्याख्या युक्त (संवत् 1966 में कलकत्ता से) प्रकाशित हनुमन्नाटक में **'सुवर्ण'** शब्द का परिचय देते हुये टीकाकार ने लिखा है-**'सुवर्णं दशमाषकम्'**।

इसके अनुसार श्रीराम ने जो अँगूठी सीताजी के लिए भेजी थी, वह दस माशे की थी।

**किञ्चित्पाणिश्च**–कुछ टीकाकार इसे एक पद, शेष दो पद मानते हैं। दो पद मानने वालों का पक्ष युक्तिसंगत तथा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है, क्योंकि **किञ्चित्** और **पाणिः** ये दोनों पद स्वतन्त्र हैं। आचार्य वृन्द ने भी कर्ष के पर्यायों में 'किञ्चित्' तथा 'पाणिः' को अलग-अलग स्वीकार किया है। देखें-'किञ्चिच्च कर्षपर्यायः शुक्तिरर्धपलं तथा। सान्निध्यान्मधुनो मानं व्योषादेर्मिलितस्य च'।। च० चि० अ० 12.50-52। कंसहरीतकी की टिप्पणी में श्रीजयदेव विद्यालंकार ने इसे उद्धृत किया है।

**कर्ष**-मागधमान के अनुसार 96 रत्ती=1 रुपया का एक तोला होता है।

**आधा पल तथा पल का मान**

**स्यात् कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा।**
**शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका।। 24।।**
**प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते।**

दो कर्ष (तोला) का एक 'अर्धपल' होता है। उसी को शुक्ति तथा अष्टमिका भी कहते हैं। दो शुक्ति का एक 'पल' होता है, ऐसा जानना चाहिये। 'पल' के पर्याय ये हैं-मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी तथा बिल्व।

**प्रसृति आदि के मान**

**पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते।। 25।।**
**प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्धशरावकः।**
**अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका।। 26।।**
**शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः।**

दो पल की एक 'प्रसृति' होती है और उसी को 'प्रसृत' अथवा पसर भी कहते हैं। दो प्रसृत की एक 'अंजलि' होती है। उसी को कुडव, अर्धशरावक तथा अष्टमान कहते हैं। दो कुडव की एक 'मानिका' होती है। उसी को मान-विशेषज्ञ 'शराव' एवं 'अष्टपल' भी कहते हैं।

**वक्तव्य**–'अष्टपल' शब्द की सार्थकता यह है कि इस मान में **आठ पल** होते हैं।

**प्रस्थ तथा आढक के मान**

**शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम्।। 27।।**
**भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत्।**

दो 'शराव' का एक 'प्रस्थ' होता है। चार प्रस्थ का एक 'आढक' होता है। यह चौंसठ पल का होता है। आढक के पर्यायवाचक नाम ये हैं-भाजन और कंसपात्र।

**द्रोण तथा शूर्प के मान**

**चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनौ।। 28।।**
**उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायवाचकाः।**
**द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकाः।। 29।।**

चार आढक का एक 'द्रोण' होता है। द्रोण के पर्यायवाचक नाम-कलश, नल्वण, उन्मन, उन्मान, घट तथा राशि हैं। दो द्रोण का एक 'शूर्प' होता है, उसी को 'कुम्भ' भी कहते हैं। 'शूर्प' तथा 'कुम्भ' ये दोनों परिमाण में 64-64 शराव के होते हैं।

**द्रोणी तथा खारी के मान**

**शूर्पाभ्यां च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता।**
**द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।। 30।।**
**चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा।**

दो शूर्प की एक 'द्रोणी' होती है। उसी को 'वाह' तथा 'गोणी' भी कहा जाता है। तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वानों ने चार द्रोणी की एक 'खारी' कही है। इस एक 'खारी' में चार हजार छियानबे (4096) पल होते हैं।

**भार तथा तुला के मान**

**पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः।। 31।।**
**तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः।**

दो हजार पल का एक 'भार' होता है और एक सौ पल की एक 'तुला' होती है। यही निश्चय सभी को स्वीकार है।

**क्रमशः चतुर्गुण के मान**

**माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्।। 32।।**
**राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः।**

माष (माशा), टंक, अक्ष, बिल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी तथा खारी ये परिमाण क्रमशः उत्तरोत्तर चौगुने होते हैं।

**वक्तव्य**–यहाँ तक जिस मान का वर्णन किया गया है, उसे 'मागधमान' कहते हैं। यह मान बिहार प्रान्त में प्रचलित होने के कारण 'मागधमान' कहा जाता है। सभी प्रकार के मान विद्वानों द्वारा निर्धारित एवं आदृत होते हैं। उनमें से किसी एक मान का विधिवत् प्रयोग करना तथा कराना चाहिये।

### द्रव आदि द्रव्यों का मान

**गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः।। 33।।**
**द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम्।**

एक 'रत्ती' की तौल से लेकर 'कुडव' तक के सभी द्रव (तरल, जलीय), आर्द्र (गीले औषधद्रव्य) तथा सूखे द्रव्यों का मान सम (समान) ही होता है। अर्थात् निर्दिष्ट मात्रा के बराबर ही द्रव्य या द्रव्यों का ग्रहण करना चाहिये।

### द्विगुण मान-व्यवहार

**प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः।। 34।।**
**मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम्।**

प्रस्थ आदि (प्रस्थ मान है आदि में जिसके, अर्थात् शराव के मान से प्रारम्भ कर द्रव तथा आर्द्र=गीले, हरे अथवा जो भली-भाँति सूखे न हों) द्रव्यों को परिमाण में दूना लेना चाहिये, किन्तु जिस द्रव्य को तुला-परिमाण में लेने को कहा गया हो, उसे कहीं भी दूने परिमाण में नहीं लिया जाता है।

**वक्तव्य**—उपर्युक्त 33 तथा 34 श्लोकों द्वारा जिस विषय का प्रतिपादन किया गया है, वह कुछ सन्दिग्ध-सा प्रतीत होता है, क्योंकि महर्षि आत्रेय ने रत्ती या प्रस्थ आदि मानों का उल्लेख न करके केवल सूखे द्रव्यों की तुलना में द्रव (जलीय) तथा आर्द्र (गीले) द्रव्यों को ही दूना लेने की आज्ञा दी है। यथा-'शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादिप्रकीर्तितम्। द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्टं तथा सद्योद्धृतेषु च।।–च० क० अ० 12.98। महर्षि सुश्रुत ने भी इसी विषय का समर्थन इस प्रकार किया है-'शुष्काणां त्विदं मानम्, आर्द्रद्रवाणां च द्विगुणम्' इति।–सु० चि० अ० 31.7। यही कारण है कि कविराज गंगाधरराय ने भी **आयुर्वेदीयपरिभाषा** नामक लघुकाय ग्रन्थ में कहा है-'तत्तु न सम्यक्, युक्तिविरोधात् च'। यह विचारणीय विषय है।

### कुडवमान-मापक पात्र

**मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम्।। 35।।**
**विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत्।**

मिट्टी, वृक्ष (लकड़ी), बाँस, लोहा (ताँबा, पीतल, काँच) आदि से बना हुआ वह पात्र, जो चार अंगुल चौड़ा तथा उतना ही ऊँचा हो, उसमें जितना द्रव-द्रव्य समा सके, वह 'कुडव' होता है, अर्थात् इस नाप से निर्मित पात्र को 'कुडवपात्र' कहते हैं।

**वक्तव्य**—इस प्रकार के परिमाणमापक पात्र **'द्रवमान'** के अन्तर्गत आते हैं। आचार्य शार्ङ्गधर ने छोटे मानों के पात्रों का परिमाण नहीं बतलाया है और न आगे इससे बड़े मानों के परिमाणों का ही उल्लेख किया है। इस संकेत से आप अपनी बुद्धि से छोटे तथा बड़े मानों की कल्पना स्वयं कर सकते हैं। इस प्रकार के पात्र द्रव-द्रव्यों को नापने के उपयोग में लाये जाते हैं। दूध, तेल आदि द्रव पदार्थ बेचने वालों के पास इस प्रकार नापने के अनेक पात्र आपको दिखलायी देंगे।

इस प्रकार के पात्रों से सभी द्रव-द्रव्यों का समान रूप से व्यवहार करना सम्भव नहीं होता है, क्योंकि सभी द्रव्यों का गुरुत्व परस्पर भिन्न होता है। ध्यान दें-यदि एक कुडवपात्र में 16 तोला दूध आता है, तो मधु उससे डेढ़ गुना अधिक आयेगा और घी उससे भी कुछ अधिक आयेगा। इन व्यवहारोचित विषयों का ज्ञान आप अपने अध्ययनकाल में गुरुजनों से प्राप्त करें।

### योग-नामकरण-विधि

**यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते।। 36।।**
**तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽत्र विनिश्चयः।**

जिस योग के आरम्भ में सर्वप्रथम जिस औषध द्रव्य का नाम होता है, वह औषधयोग उसी औषधद्रव्य के नाम से कहा जाता है। शार्ङ्गधरसंहिता में प्रायः यही निश्चय किया गया है।

**वक्तव्य**—प्रस्तुत संहिता में अधिकांश योग ऐसे ही हैं, जैसा कि ऊपर कहा गया है; किन्तु कुछ योग ऐसे भी प्राप्त हैं, जो उक्त प्रकार से किये गये निश्चय के विपरीत हैं, जैसे-सुदर्शन चूर्ण, ज्वरघ्नीगुटिका, नारायणतैल, लोकनाथरस, लघुलोकनाथरस आदि। इसका समर्थन हम शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार करते हैं-**'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'**। आचार्य शार्ङ्गधर ने उक्त निश्चय प्राचीन संहिताओं में दिये गये योगनाम-निर्धारण प्रकार को देखकर ही किया होगा, क्योंकि उनमें भी अधिकांश योगों के नाम उक्त सिद्धान्त पर ही रखे गये हैं; कुछ स्वतन्त्र-रूप से भी हैं। यह सामान्य-विशेष का सिद्धान्त सभी क्षेत्रों में देखा जाता है।

### मात्रा-विचार

**स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम्।। 37।।**
**प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत्।**

मात्रा का कोई निश्चित परिमाण नहीं है और न किया ही जा सकता है। इसलिये काल (समय), अग्नि (जठराग्नि,

तथा पाचनशक्ति), वय (बालक, युवा तथा वृद्ध), बल (शारीरिक तथा मानसिक), प्रकृति (स्वभाव), दोष (वात, पित्त तथा कफ) तथा देश (आनूप, जांगल तथा साधारण) को देखकर मात्रा की कल्पना (निर्धारण) करनी चाहिये।

**वक्तव्य**—मात्रा-निर्धारण करने के लिए संहिताकार ने जिन मानकों का विचार करने का संकेत किया है, ये सब विचार औषध मात्रा तथा आहार मात्रा के लिए ही हैं। एक बात इस प्रसंग में और भी विचारणीय है-औषध-निर्माणकाल में जिस द्रव्य का परिगणन एक ही योग में दो बार हो जाता है, उस द्रव्य को दूना ले लिया जाता है किन्तु जब चिकित्सक किसी रोगी के लिए अनेक योगों को मिलाकर एक योग की कल्पना करता है, उस समय भी उसे यह विचार कर लेना चाहिये कि उक्त योगों में कौन-कौन से द्रव्य समान हैं और इन्हें परस्पर मिला देने से वे-वे द्रव्य कहीं आवश्यकता से दूने, तिगुने तो नहीं हो गये हैं? इस ओर भी चिकित्सक को अवश्य ध्यान देना चाहिये, क्योंकि यह भी मात्रा-निर्धारण क्षेत्र का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

### कालिंग-मान

**यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ।।38।।**
**अतस्तु मात्रा तद् योग्या प्रोच्यते सुज्ञसम्मता।**

क्योंकि कलियुग में मनुष्य मन्दाग्नि (पाचन शक्ति की कमी) वाले, ह्रस्व (छोटे कद वाले) और हीनसत्त्व (थोड़ी मानसिक शक्ति) वाले होते हैं। इसलिये औषध तथा आहार द्रव्यों की वही मात्रा उनके सेवन करने योग्य होती है, जिसे विद्वान् चिकित्सक तत्काल बतलाते हैं।

**वक्तव्य**—प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताएँ जिस समय लिखी गयी हैं उसी समय के पुरुषों की क्षमता के अनुसार सामान्य मात्राओं का निर्देश किया गया है। जैसे-शिलाजीत का प्रयोग करने की मात्रा आचार्य पुनर्वसु ने बतलायी है-'पलमर्धपलं कर्षो मात्रा तस्य त्रिधा मता'।- च० चि० अ० 1.3.55। इसका विशेष व्याख्यान 'चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन' से प्रकाशित चरक संहिता में देखें। आज सामान्य मानव के लिए पल=4 तोला, अर्धपल=2 तोला और कर्ष=1 तोला की मात्रा व्यावहारिक नहीं है। शास्त्रज्ञ तथा कर्माभ्यास-निपुण चिकित्सक मात्रा-निर्धारण में स्वयं चतुर होते हैं।

**यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः।।39।।**
**यवद्वयेन गुञ्जा स्याद् त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते।**
**माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत् क्वचित्।।40।।**
**स्याच्चतुर्माषकैः शाणः स निष्कष्टङ्क एव च।**
**गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद् दशमाषकः।।41।।**
**चतुष्कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः।**
**चतुष्पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः।।42।।**

बारह गौरसर्षपों (पीली सरसों) का एक 'जौ' होता है, ऐसा कालिंग देश के विद्वान् कहते हैं। दो 'जौ' की एक 'गुञ्जा' (रत्ती) होती है, तीन गुञ्जा (रत्ती) का एक 'वल्ल' होता है और गुञ्जा का अथवा कहीं-कहीं सात गुञ्जा का एक 'माशा' होता है। चार 'माशा' का एक 'शाण' होता है, उसी को 'निष्क' तथा 'टंक' भी कहते हैं। छः 'माशा' का एक 'गद्याण' होता है और दस माशा का एक 'कर्ष' होता है। चार 'कर्ष' का एक 'पल' होता है, वह दस 'शाण' के बराबर होता है। चार 'पल' का एक 'कुडव' होता है। प्रस्थ, आढक आदि शेष सभी मान मागधमान के समान ही होते हैं।

**वक्तव्य**—यह 'कालिंगमान' है। इसमें दो मानों का नाम 'मागधमान' से अधिक दिया है। वे मान हैं-**वल्ल** और **गद्याण**। इनका परिमाण ऊपर दिया जा चुका है। इस 'कालिंगमान' के अनुसार कर्ष (तोला) 10 माशा का स्वीकार किया गया है और यह 10 माशा 70 या 80 रत्ती का होता है, जब कि मागधमान में 1 कर्ष=12 माशा=96 रत्ती का माना जाता है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से मागधमान ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है, जैसा कि अगले पद्य में कहा गया है। आचार्य शार्ङ्गधर ने अन्यत्र मागधमान को मान्यता दी है, केवल 'चन्द्रप्रभाबटी' के निर्माण में उन्होंने मागधमान को महत्त्व दिया है। देखें-शा० सं० म० खं० अ० 7। तदनुसार 4 शाण का 1 कर्ष होता है। शेष विवेचन 'चन्द्रप्रभाबटी' के वक्तव्य में देखें।

### द्विविध-मान

**कालिङ्गं मागधं चैव द्विविधं मानमुच्यते।**
**कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो विदुः।।43।।**

**इति मान परिभाषा।**

मान दो प्रकार के कहे जाते हैं-1. कालिंग (उड़ीसा प्रदेश के विद्वानों द्वारा स्वीकृत) मान तथा 2. मागध (बिहारप्रान्तीय) मान। मान-विषय-विशेषज्ञ विद्वान् कालिंगमान की तुलना में मागधमान को श्रेष्ठ (मात्रा में बड़ा) मानते हैं।

**वक्तव्य**-श्रेष्ठ शब्द का तात्पर्य यहाँ यह है कि जिस मान

का व्यवहार अधिक लोग करते हैं, उसे श्रेष्ठ कहा गया है। यहाँ श्रेष्ठ का तात्पर्य उत्तम अर्थवाचक कदापि नहीं है।

**प्राचीनकाल में मान-भेद**

वैजयन्ती-कोषकार ने प्रयोग-भेद से तथा द्रव्य-भेद से समस्त प्रकार के मानभेदों को इस प्रकार तीन भागों में विभक्त किया है–'पाय्यं हस्तादिभिर्मानं, द्रुवयं कुडवादिभि:। पौतवं तुलया प्रोक्तम्'। –वै० कोष।

1. **पौतवमान**–तुला (तराजू) द्वारा पदार्थों के भार का जो मान लिया जाता है, उसे पौतवमान (Measures of weight) कहते हैं।
2. **द्रुवयमान**-विभिन्न प्रकार के द्रव पदार्थों के आयतन को जिससे नापा या तौला जाता है उसे द्रुवयमान (Measures of capacity) कहते हैं।
3. **पाय्यमान**-वस्त्र आदि लम्बाई, ऊँचाई, नीचाई, वाले पदार्थों को जो हाथ आदि नापों द्वारा नापा जाता है, उसे पाय्यमान (Measures of length) कहते हैं।

**कतिपय प्राचीन पौतवमान**

**(1) विष्णूक्त पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 8 त्रसरेणु | = | 1 लिक्षा |
| 3 लिक्षा | = | 1 राजिका |
| 3 राजिका | = | 1 श्वेतसर्षप |
| 6 श्वेतसर्षप | = | 1 यव |
| 3 यव | = | 1 गुञ्जा |
| 5 गुञ्जा | = | 1 माषक |
| 12 माषक | = | 1 अक्षार्ध |
| 16 माषक | = | 1 सुवर्ण |
| 2 गुञ्जा | = | 1 रौप्यमाषक |
| 16 रौप्यमाषक | = | 1 धरण |
| 16 माषक | = | 1 ताम्रिक कर्ष |

**(2) मनूक्त पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 8 त्रसरेणु | = | 1 लिक्षा |
| 3 लिक्षा | = | 1 राजसर्षप |
| 3 राजसर्षप | = | 1 श्वेतसर्षप |
| 6 श्वेतसर्षप | = | 1 यवमध्यम |
| 3 मध्यमयव | = | 1 गुञ्जाकृष्णल |
| 5 कृष्णलगुञ्जा | = | 1 माषक |
| 16 माषक | = | 1 सुवर्ण |
| 4 सुवर्ण | = | 1 पल |
| 10 पल | = | 1 धरण |
| 2 कृष्णल | = | 1 रौप्यमाषक |
| 16 रौप्यमाषक | = | 1 रौप्यधरण |
| 16 माषक | = | 1 कार्षापण |
| 10 रौप्यधरण | = | 1 शतमान (राजत) |
| 4 सुवर्ण | = | 1 निष्क (राजत) |

**(3) याज्ञवल्क्योक्त पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 8 त्रसरेणु | = | 1 लिक्षा |
| 3 लिक्षा | = | 1 राजसर्षप |
| 3 राजसर्षप | = | 1 श्वेतसर्षप |
| 6 श्वेतसर्षप | = | 1 यवमध्यम |
| 3 मध्यमयव | = | 1 कृष्णल (रत्ती) |
| 5 कृष्णल | = | 1 माषक |
| 16 माषक | = | 1 सुवर्ण |
| 4-5 सुवर्ण | = | 1 पल |
| 2 कृष्णल | = | 1 रौप्यमाषक |
| 16 रौप्यमाषक | = | 1 धरण |
| 10 धरण | = | 1 शतमान (राजत) |
| 4 सुवर्ण | = | 1 निष्क (पल) |

**(4) सुश्रुतोक्त पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 12 मध्यमधान्य माष | = | 1 सुवर्णमाषक |
| 16 सुवर्णमाषक | = | 1 सुवर्ण |
| 19 निष्पावमध्यम | = | 1 धरण |
| 2½ धरण | = | 1 कर्ष |
| 4 कर्ष | = | 1 पल |
| 4 पल | = | 1 कुडव |
| 4 कुडव | = | 1 प्रस्थ |
| 4 प्रस्थ | = | 1 आढक |
| 4 आढक | = | 1 द्रोण |
| 100 पल | = | 1 तुला |
| 20 तुला | = | 1 भार |

**(5) कौटिल्योक्त पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 10 धान्यमाष | = | 1 सुवर्णमाषक |

अथवा

| | | |
|---|---|---|
| 5 रत्ती | = | 1 सुवर्णमाषक |
| 16 सुवर्णमाषक | = | 1 सुवर्ण या कर्ष |
| 4 कर्ष | = | 1 पल |
| 88 श्वेतसर्षप | = | 1 रौप्यमाषक |
| 16 रौप्यमाषक | = | 1 धरण |
| 20 शैव्य (सेम के बीज) | = | 1 धरण |

(हीरा की तौल में प्रयुक्त मान)

**(6) लीलावती-ग्रन्थोक्त पौतवमान[1]**

| | | |
|---|---|---|
| 2 यव | = | 1 गुञ्जा |
| 3 गुञ्जा | = | 1 वल्ल |
| 8 वल्ल | = | 1 धरण |
| 2 धरण | = | 1 गद्याणक |
| 14 वल्ल | = | 1 घटक |
| 5 गुञ्जा | = | 1 माषक |
| 16 माषक | = | 1 कर्ष |
| 4 कर्ष | = | 1 पल |
| 1 कर्ष | = | 1 सुवर्ण (तोला) |

**(7) यवन-प्रचारित मान[2]**

| | | |
|---|---|---|
| 36 रत्ती | = | 1 टंक |
| 72 टंक | = | 1 सेर |
| 40 सेर | = | 1 मन |

**(8) आलमगीरशाह-प्रचारित मान[3]**

| | | |
|---|---|---|
| 192 घटक | = | 1 सेर |
| 5 सेर | = | 1 घटिका (घड़ी) |
| 8 घटिका | = | 1 मन |

**(9) शार्ङ्गधरोक्त पौतवमान[4]**

| | | |
|---|---|---|
| 30 परमाणु | = | 1 त्रसरेणु या वंशी |
| 6 वंशी | = | 1 मरीचि |
| 6 मरीचि | = | 1 राजिका |
| 3 राजिका | = | 1 सर्षप |
| 8 सर्षप | = | 1 यव |
| 4 यव | = | 1 गुञ्जा=1 रत्ती |
| 6 रत्ती | = | 1 माषक=1 माशा |
| 4 माषक | = | 1 शाण |
| 2 शाण | = | 1 कोल |
| 2 कोल | = | 1 कर्ष=1 तोला |
| 2 कर्ष | = | 1 शुक्ति=2 तोला |
| 2 शुक्ति | = | 1 पल=4 तोला[5] |
| 2 पल | = | 1 प्रसृति=8 तोला |
| 2 प्रसृति | = | 1 अञ्जलि=16 तोला |
| 2 अञ्जलि | = | 1 मानिका=32 तोला |
| 2 शराव | = | 1 प्रस्थ=64 तोला |
| 4 प्रस्थ | = | 1 आढक=256 तोला |
| 4 आढक | = | 1 द्रोण=1024 तोला |
| 2 द्रोण | = | 1 शूर्प=2048 तोला |
| 2 शूर्प | = | 1 द्रोणी=4096 तोला |
| 4 द्रोणी | = | 1 खारी=16384 तोला |
| 200 पल | = | 1 भार=8000 तोला |
| 20 पल | = | 1 तुला=400 तोला |

**शार्ङ्गधरोक्त मानों का चतुर्गुण सूत्र**

| | | |
|---|---|---|
| 4 माशा | = | 1 टंक |
| 4 टंक | = | 1 कर्ष |
| 4 कर्ष | = | 1 पल |
| 4 पल | = | 1 कुडव |
| 4 कुडव | = | 1 प्रस्थ |
| 4 प्रस्थ | = | 1 आढक |
| 4 आढक | = | 1 द्रोण |
| 4 द्रोण | = | 1 द्रोणी |
| 4 द्रोणी | = | 1 खारी |

**(10) कालिङ्गोक्त पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 12 गौरसर्षप | = | 1 यव |
| 2 यव | = | 1 गुञ्जा |
| 3 गुञ्जा | = | 1 वल्ल |
| 7 गुञ्जा | = | 1 माष |

अथवा

| | | |
|---|---|---|
| 8 गुञ्जा | = | 1 माष |

---

1-3. देखें-'लीलावती' परिभाषा-प्रकरण।

4. इनके पर्यायवाचक शब्द मूल ग्रन्थ में देखें।

5. तोला में 5 का भाग देने से लब्धि छटांक और इनमें 16 का भाग देने से सेर प्राप्त होंगे।

| | | |
|---|---|---|
| 4 माष | = | 1 शाण |
| 6 माष | = | 1 गद्याण |
| 10 माष | = | 1 कर्ष |
| 4 कर्ष | = | 1 पल |
| 4 पल | = | 1 कुडव |

**( 11 ) यूनानी पौतवमान**

| | | |
|---|---|---|
| 2 खशखश | = | 1 खर्दल=1 राई |
| 4 खर्दल | = | 1 उरुज्जह=1 चावल |
| 4 उरुज्जह | = | 1 शईरह=1 जौ |
| 2 शईरह | = | 1 सुर्ख=1 रत्ती |
| 4½ माशा | = | 1 मिस्काल |
| 20 किरात | = | 1 दीनार |
| 20 माशा | = | 1 इस्तार |
| 33½ माशा | = | 1 औकिय्यह |
| 2 सुर्ख | = | 1 किरात |
| 6 सुर्ख | = | 1 दांग |
| 8 सुर्ख | = | 1 माशा |
| 3½ माशा | = | 1 दिरहम=1 ड्राम |
| 90 मिस्काल | = | 1 रतल तिब्बी |
| 2 रतल तिब्बी | = | 1 मन तिब्बी |
| 64 तोला | = | 1 सेर आलमगीरी |
| 84 तोला | = | 1 सेर शाही |

**( 12 ) दाशमिक पौतवमान**
(Metric system)

| | | |
|---|---|---|
| 1 ग्राम | = | लगभग 1 माशा |
| 1 डेसीग्राम | = | 1/10 ग्राम |
| 1 सेंटीग्राम | = | 1/100ग्राम |
| 1 मिलीग्राम | = | 1/1000 ग्राम |
| 1 डेकाग्राम | = | 10 ग्राम |
| 1 हेक्टोग्राम | = | 100 ग्राम |
| 1 किलोग्राम | = | 1000 ग्राम |

**( 1 ) आयुर्वेदीय द्रुवयमान**

| | | |
|---|---|---|
| 1 बिन्दु | = | 1 बूँद[1] |
| 8 बिन्दु | = | 1 शाण= ½ तोला |
| 32 बिन्दु | = | 1 शुक्ति=2 तोला |
| 64 बिन्दु | = | 1 पाणिशुक्ति=4 तोला[2] |
| 1 कुडव | = | 16 तोला[3] |

**( 2 ) यूनानी द्रुवयमान**

| | | |
|---|---|---|
| 4½ माशा | = | 1 चम्मच |
| 12½ तोला | = | 1 पियाली |
| 20 तोला | = | 1 पियालह |

**( 3 ) दाशमिक द्रुवयमान**
(Metric system)

| | | |
|---|---|---|
| 1 डेसीलिटर | = | 1/10 लिटर |
| 1 सेण्टीलिटर | = | 1/100 लिटर |
| 1 मिलीलिटर | = | 1/1000 लिटर |
| 1 डेकालिटर | = | 10 लिटर |
| 1 हेक्टोलिटर | = | 100 लिटर |
| 1 किलोलिटर | = | 1000 लिटर |

**( 1 ) आयुर्वेदीय पाय्यमान**

आयुर्वेद में पौतवमान की भाँति अन्य (द्रुवय, पाय्य) मानों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं होता है, तथापि इसमें उक्त कार्य का निर्वाह करने के लिए जिन मानवाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे इस प्रकार हैं–

| | | |
|---|---|---|
| 1 अंगुल | = | 8 जौ ¾ इंच[4] |
| 12 अंगुल | = | 1 वितस्ति=9 इंच[5] |
| 21 अंगुल | = | 1 अरत्नि=16 ½ इंच |
| 2 वितस्ति | = | 1 हस्त=18 इंच[6] |
| 1 व्याम | = | 4 हस्त=6 फीट |
| 4 हाथ | = | 1 दण्ड |
| 2000 दण्ड | = | 1 कोश |

---

1. तर्जनी अंगुली के दो पर्वों को किसी द्रव पदार्थ में डुबाकर उठाने से उससे गिरी हुई 1 बूँद। देखें-अ० ह० सू० 20.9।
2. देखें-सु० चि० अ० 40.28 तथा वृद्धहारीतसंहिता।
3. शार्ङ्गधरसंहिता के अनुसार 4 अंगुल चौड़े, 4 अंगुल ऊँचे मिट्टी, पत्थर, बाँस आदि के पात्र में आने योग्य द्रव पदार्थ।
4. धागे में पिरोये हुये 8 जौ की लम्बाई।
5. इसके अन्तर्गत-प्रादेश, ताल, गोकर्ण मान भी होते हैं। देखें-अमरकोष।
6. कुहनी से कानी उंगली के छोर तक की नाप (अमरकोष)। अथवा कुहनी से बीच की उंगली के छोर तक की नाप (हलायुध कोश)।

**( 2 ) दाशमिक पाय्यमान** (Measures of length)

| | | |
|---|---|---|
| 1 मीटर | = | 39.37 इंच |
| 1 डेसीमीटर | = | 1/10 मीटर |
| 1 सेंटीमीटर | = | 1/100 मीटर |
| 1 मिलीमीटर | = | 1/1000 मीटर |
| 1 डेकामीटर | = | 10 मीटर |
| 1 हेक्टोमीटर | = | 100 मीटर |
| 1 किलोमीटर | = | 1000 मीटर |

### नवीन तथा प्राचीन द्रव्य

**नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु।**
**विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः।। 44।।**

सभी प्रकार के व्यवहारों में नवीन (ताजे) द्रव्यों का ही उपयोग करना चाहिये, किन्तु निम्नलिखित द्रव्यों को ताजा न लें-वायविडंग, पीपल, गुड, धनियाँ, आज्य (घी) और माक्षिक (मधु या शहद)।

**वक्तव्य**-यह सूत्र रूप में दिया गया निर्देश विचारणीय है-यहाँ उपर्युक्त पुराने द्रव्यों का प्रयोग औषधयोगों के लिए ही निर्दिष्ट है, शेष कार्यों में इनको नया लिया ही जाता है। नया गुड़, घी, मधु, तथा धनियाँ ये प्रतिदिन बड़े आदर के साथ प्रयुक्त होते हैं। शास्त्र का भी निर्देश है कि भोजन तथा बृंहण कार्यों के लिए इन्हें नया ही लें। भावमिश्र ने 'धान्य' का अर्थ 'धनियाँ' न करके अन्न किया है। नया मधु पुष्टिकारक तथा सर होता है और वही पुराना हो जाने पर मल-संग्राहक, रूक्ष, मेदानाशक तथा दस्तावर हो जाता है। घी एक वर्ष पुराना, गुड़ तीन साल पुराना लेने की परम्परा है। चिकित्सा की दृष्टि से पुराने से पुराना घी अच्छा माना गया है, परन्तु औषधसिद्ध घी साल भर के बाद प्रभावहीन हो जाता है और औषधसिद्ध तैल पुराने उत्तम होते हैं। **विशेष**-देखें-सुश्रुत सू० अ० 36.7-9।

### गीले द्रव्यों का प्रयोग

**गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी।**
**अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारिणी।। 45।।**
**पटोलं च तथा निम्बो बला नागबला तथा।**
**पथ्या पुनर्नवा चैव विदारी चेन्द्रवारुणी।। 46।।**
**पलङ्कषा तथा छत्रा केतकी चेति विंशतिः।**
**प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत्।। 47।।**
**( शुष्का यदि च गृह्यन्ते क्रियन्ते द्विगुणा न च। )**

गिलोय (गुरुच), कुटज (कुरैया की छाल), अडूसा की पत्तियाँ, कूष्माण्ड (पेठा), शतावरी (शतावर की जड़ें), असगन्ध, सहचरी (कटसरैया), शतपुष्पा (पूर्ववर्ती सभी टीकाकारों ने इसका पर्याय 'सौंफ' लिखा है, वास्तव में यह 'सोया' है। इसके गुण-धर्मों पर ध्यान दें), गन्धप्रसारिणी, परबल की पत्ती, नीम की छाल, बला (बरियारा), नागबला (कंघी), पथ्या (हरड़), पुनर्नवा, विदारीकन्द, इन्द्रायण (इनारू का फल), पलंकषा (गुग्गुलु), छत्रा (छत्ता), केवड़ा का फूल-इन बीस द्रव्यों को सदैव गीले (सरस) या हरे लेकर प्रयोग में लाना चाहिये, किन्तु इनकी मात्रा को दूना नहीं किया जाता। कभी-कभी व्यवहार में ऐसा भी देखा जाता है कि ये द्रव्य सूखे तो ले लिये जाते हैं, किन्तु मात्रा में दूने नहीं लिये जाते।

**वक्तव्य**-यहाँ 'विंशतिः' शब्द प्रायिक वचन है। इस प्रकार के द्रव्यों की संख्या बीस से भी अधिक देखी जा सकती है, आप संहिता ग्रन्थों का परिशीलन करें। वहाँ यद्यपि इस प्रकार का स्वतन्त्र विचार नहीं किया गया है, तथापि प्रसंगानुसार यह निर्देश तो किया ही गया है, इस योग में किस द्रव्य को किस प्रमाण में कैसा (हरा, गीला या सूखा) लेना चाहिये।

### सूखे तथा गीले द्रव्यों का विचार

**शुष्कं नवीनं यद् द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु।। 48।।**
**आर्द्रं च द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः।**

चूर्ण, क्वाथ आदि सभी कार्यों में सूखे, किन्तु नवीन (ताजे-गुणवान्) द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। उनके न मिलने पर ताजे (हरे-गीले) द्रव्यों का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु वे आर्द्र (गीले) द्रव्य परिमाण में दूने लेने होंगे। यह सिद्धान्त सर्वत्र मान्य होता है।

**वक्तव्य**-यहाँ 'नवीन' शब्द 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यः' का पर्याय मात्र नहीं है, अपितु भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में इसकी क्या कालावधि है, इसके लिए देखें-इसी अध्याय के 54वें श्लोक के उत्तरार्ध से 57वें श्लोक के पूर्वार्ध तक के श्लोकों के आशय को। नवीन शब्द का एक आशय यह भी है कि वे द्रव्य सड़े, गले, घुने तथा किसी प्रकार से विकार युक्त न हो गये हों।

### अनुक्त परिभाषा

**कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत्।। 49।।**

**भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात् पात्रेऽनुक्ते च मृन्मयम्।**
**द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम्।।50।।**
**(दुग्धे सर्पिषि मूत्रे च ग्राह्यं गोसम्भवं बुधैः।)**

यदि ग्रन्थकार द्वारा औषध सेवन करने का समय-निर्देश न किया गया हो, तो प्रातःकाल समझ लेना चाहिये। यदि औषधद्रव्य के पत्र, पुष्प, मूल, त्वचा, निर्यास (गोंद) आदि का संकेत न किया गया हो, तो उसकी जड़ का ग्रहण करना चाहिये। यदि किसी औषधयोग के द्रव्यों का अलग-अलग मान=परिमाण न कहा गया हो, तो सभी द्रव्यों को समभाग में लेना चाहिये। यदि क्वाथ, अवलेह आदि का निर्माण करने के लिए किसी पात्र-विशेष का उल्लेख न किया गया हो, तो मिट्टी के पात्र का ग्रहण करना चाहिये। औषध-निर्माण के लिए अथवा औषध सेवन करने के लिए जहाँ किसी द्रव (तरल पदार्थ) का उल्लेख न किया गया हो, वहाँ जल का ग्रहण करना चाहिये। यदि तिल, सरसों, तीसी (अलसी), बादाम आदि का नाम-निर्देश न किया गया हो तो वहाँ तिलों के तेल का प्रयोग करना चाहिये। जहाँ किसी विशेष प्राणी के दूध, घी, मल, मूत्र का निर्देश न किया गया हो, वहाँ ये सभी द्रव्य गाय से ही लेने चाहिये।

**वक्तव्य**–प्रायः ग्रन्थकार इस प्रकार की सामान्य बातों को चर्चा नहीं किया करते, ऐसी परिस्थिति में ऐसे वचनों का बड़ा महत्त्व होता है। निघण्टु-ग्रन्थों में प्रायः यह देखा जाता है कि किसी औषधद्रव्य के कौन-से अंग (अवयव) के क्या गुण हैं, लिखा रहता है, कहीं नहीं भी मिलता। ऐसे अवसरों पर इस परिभाषा का प्रयोग होता है। **मृन्मय**-इसे अनेक सम्पादकों टीकाकारों ने 'मृण्मय' लिखा है जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। **द्रवेऽनुक्ते**-द्रव पदार्थों का प्रयोग किसी न किसी प्रकार से चिकित्सा-क्षेत्र में होता ही है। अनुपान, सहपान आदि में तो विशेष रूप से देखा ही जाता है। ऐसे संदिग्ध अवसरों पर जल का प्रयोग शास्त्र द्वारा अनुमोदित है। **तिलोद्भवम्**-तिलों से उत्पन्न तेल वास्तविक तेल है, शेष तो आकार की साम्यता होने के कारण तेल कहे जाते हैं। जितने 'तिलहन' द्रव्य हैं, उन सबसे तेल निकाला जाता है। ध्यान दें–'तिलहन' नाम में भी तिल शब्द की ही प्रधानता है।

### प्राणिज द्रव्यग्रहण-विधि

**(जङ्गमानां वयःस्थानां रक्तरोमनखादिकम्।।51।।**
**क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारे च संहरेत्।)**

रक्त (खून), रोम (लोम तथा केश), नाखून आदि (अस्थि, माँस, वसा तथा शुक्र) द्रव्य युवा पशुओं के शरीर से ही ग्रहण करने चाहिये। यदि दूध, मूत्र, मल इनका ग्रहण करना हो तो उन पशुओं का जब आहार पच जाये तभी ग्रहण करना चाहिये।

**वक्तव्य**-उक्त पद्य सु० सू० अ० 36.16 से लेकर यहाँ ग्रन्थ की क्षति-पूर्ति की गयी है। आज भी वैज्ञानिक पद्धति वाले रक्त का ग्रहण 18 वर्ष से 40 वर्ष तक की अवस्था वाले स्त्री--पुरुषों से ही करते हैं। दूध आदि का ग्रहण आहार के पच जाने पर करना चाहिये, किन्तु देखा जाता है कि गो-पालनकर्ता चारा सामने रखकर गाय को दुहते हैं, ऐसा दूध उक्त सिद्धान्त के विरुद्ध है। संहरण (संग्रह) भी दो प्रकार का होता है-एक तो द्रव्य को लेकर तत्काल प्रयोग कर लेना और दूसरा लेकर रख देना।

### पुनरुक्त द्रव्य का मान

**एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत् पुनरुच्यते।।52।।**
**मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद् द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः।**

यदि एक द्रव्य किसी योग में दो बार कहा गया हो, तो औषध-निर्माण में कुशल विद्वान् उस द्रव्य को दुगुना कर लेते हैं।

**वक्तव्य**–यहाँ किसी योग के द्रव्यों को समभाग में लेने की आज्ञा ग्रन्थकार ने दी हो, वहाँ तो आप उस पुनरुक्त द्रव्यों को दूना ले लेंगे और जहाँ पहली बार वह द्रव्य दूसरे द्रव्यों के साथ दूसरे परिमाण में परिगणित हो और दूसरी बार दूसरे परिमाण वाले द्रव्यों के बीच में परिगणित हो तो वहाँ उसका वही-वही परिमाण होगा। इसका सावधानीपूर्वक विचार कर लें।

### लाल एवं सफेद चन्दन का विचार

**चूर्णस्नेहासवा लेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः।।53।।**
**कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्।**

चूर्ण, स्नेह (घी, तेल, वसा तथा मज्जा), आसव तथा अवलेह इनके निर्माण में प्रायः सफेद चन्दन का और कषाय (क्वाथ) एवं लेप आदि में लाल चन्दन का प्रयोग करना चाहिये।

**वक्तव्य**–लाल तथा सफेद चन्दन के गुण-धर्मों का विचार कर युक्ति-विशेषज्ञ चिकित्सक इन उपर्युक्त नियमों में परिवर्तन भी कर सकता है। यह अनुमति 'प्रायः' शब्द का प्रयोग करके ग्रन्थकार ने दी है।

**पाठ भेद**–यद्यपि शार्ङ्गधरसंहिता अधिकांश संस्करणों

में '**प्रायशश्चन्दनान्विताः**' पाठ प्राप्त होता है, परन्तु इसका एक पाठभेद है-'**साध्या धवलचन्दनैः**'। इस पाठ से 'सफेदचन्दन' की कामना तो पूर्ण हो जाती है, किन्तु 'प्रायः' शब्द का गौरवपूर्ण भाव समाप्त हो जाता है ऐसा कुछ टीकाकारों का मत है। इसके लिए उन्हें श्लोक के उत्तरार्ध में पठित प्रायः शब्द का प्रयोग कर ही लेना चाहिये।

### चूर्णादि में गुणहीनता का विचार

**गुणहीनं भवेद् वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्।।54।।**
**मासद्वयात् तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात्।**
**हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात् परम्।।55।।**
**हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात् तथा।**
**ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात् परम्।।56।।**
**पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः।**

एक वर्ष के बाद प्रत्येक वानस्पतिक औषधद्रव्य जैसे लाये थे, वैसे ही यदि पड़ा हो, तो वह गुणहीन हो जाता है, अर्थात् वह अपने रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव से रहित हो जाता है। तद्रूप का एक अर्थ यह भी है यदि उन काष्ठ औषध द्रव्यों का वास्तविक रूप बदलकर किसी रासायनिक योग के साथ प्रयोग कर लिया जाता है, तो उनके गुणों में चिरस्थायिता आ जाती है। दो मास के बाद चूर्ण (पीसे हुये काष्ठ द्रव्य) शक्तिहीन हो जाते हैं। एक वर्ष के पश्चात् गोली तथा अवलेह के रूप में बनाकर रखे गये काष्ठ औषधद्रव्य तथा एक वर्ष चार मास (अर्थात् 16 मास) के बाद काष्ठ औषधों के योग से तैयार किये गये घी, तेल, तथा वसा आदि हीनवीर्य हो जाते हैं। लघुपाकी (शीघ्र पक जाने वाले औषधद्रव्य जैसे-बरसाती घास, आदि) औषधियाँ भी एक वर्ष के बाद शक्ति रहित हो जाती हैं, किन्तु आसव, अरिष्ट, तथा लोह आदि धातुओं की भस्में तथा रस (पारद-गन्धक के योग से निर्मित) औषधयोग जितने अधिक पुराने होते हैं, उतने अधिक गुणवान् होते जाते हैं।

**वक्तव्य**-जहाँ जिन द्रव्यों की गुणहीनता की जो अवधि कही गयी है, वह प्रयोगात्मक दृष्टि से क्रमशः अपने गुण, वीर्य आदि से हीन होती देखी जाती है। '**चतुर्मासाधिकात् तथा**'-यद्यपि प्रसंगानुसार इसका अर्थ सोलह मास से अधिक होता है, किन्तु कुछ विद्वान् इसका अर्थ 'वर्षाऋतु के चार मास बीतने पर' ऐसा अर्थ करते हैं। व्याकरण की दृष्टि से यह अर्थ प्राप्त नहीं होता है, परन्तु चूर्ण आदि बनाने के बाद बीच में जब भी वर्षा ऋतु आ जाती है, उसका दुष्प्रभाव तो पड़ता ही है। घी, तेल के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्राप्त होते हैं। तो भी ताजा घी का प्रयोग करने का जहाँ निर्देश है, वहाँ सालभर के भीतर का ही लेना चाहिये। पुराने घी की जहाँ प्रशंसा है, उसका वर्णन हम यथास्थान करेंगे। तेल पुराने अच्छे माने जाते हैं। जौ, गेहूँ, तिल, तथा माष आदि अन्न नये ही लिये जाते हैं। कहीं-कहीं इनको पुराना ग्रहण करने की भी चर्चा है। आसव-अरिष्ट पुराने होने पर उनकी मादकता क्रमशः कम हो जाती है और लाभ की दृष्टि से उनमें कमी नहीं आती है। अतएव उन्हें अच्छा कहा गया है। **विशेष**-देखें-सु० सू० अ० 36 सम्पूर्ण।

### गुणहीनता का निर्णय

**(विगन्धेनापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः।।57।।**
**नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत्।)**

जिस औषधद्रव्य में दुर्गन्ध (द्रव्य की स्वाभाविक गन्ध से विपरीत गन्ध) उत्पन्न न हुई हो, जिसके अपने स्वाभाविक रस, गुण आदि नष्ट न हो गये हों, वह द्रव्य यदि नया हो अथवा पुराना ही हो, तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिये।

**वक्तव्य**-उक्त पद्य (सु० सू० अ० 36.15) में नये तथा पुराने द्रव्यों के ग्रहण के सम्बन्ध में यह तो बतलाया गया है कि वे द्रव्य कैसे होने चाहिये, किन्तु यह नहीं कहा गया है, कि किन द्रव्यों को नया लें और किन द्रव्यों को पुराना। इसका विचार महर्षि सुश्रुत ने इस प्रकार किया है-'चिकित्सा के लिए सभी नये द्रव्यों का ही प्रयोग करना चाहिये। केवल मधु, घी, गुड़, पिप्पली और वायविडंग को एक वर्ष पुराना लेना चाहिये।' इस प्रसंग में कुछ टीकाकारों का मत है, कि 'धनियाँ' भी पुराना ही लेना चाहिये, किन्तु लोकव्यवहार में ये सभी द्रव्य नये ही लिये जाते हैं। देखें-सु० सू० अ० 36.8-9।

### भेषज-भण्डार

**(प्लोतमृद्भाण्डफलकशङ्कुविन्यस्तभेषजम् ।।58।।**
**प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते।)**

प्लोत (साफ-सुथरे वस्त्रों के टुकड़े), मिट्टी के पात्र, फलक (लकड़ी की पट्टियाँ), तथा शंकु (नुकीली कील) आदि में औषध द्रव्यों को जहाँ सुरक्षित रखते हैं, उसे औषध-भंडारगृह कहते हैं। इस भंडारगृह को पूर्व दिशा की ओर पवित्र स्थान पर बनवाना चाहिये।

**वक्तव्य–प्लोत** शब्द से थैला, बोरा या कपड़े की गठरी का, **मृद्भाण्ड** शब्द से चीनी मिट्टी के मर्तबान, बोयाम, काँच या शीशा के जार, बरनी, शीशी, बोतल आदि का, **फलक** शब्द से लकड़ी की टाँड, आलमारी, बक्सा आदि का तथा **न्यङ्कु** शब्द से खूँटी, छत पर लटका हुआ कुंडा आदि का ग्रहण करना चाहिये। इन्हीं में औषधद्रव्यों को भरकर, सँभालकर लटकाकर यथायोग्य रखें, क्योंकि यह भेषजागार है। इसमें सभी आवश्यक औषधद्रव्यों आदि का संग्रह करके रखा जाता है। देखें–सु० सू० अ० 38.81।

**भेषज-भण्डार-स्वरूप**

**( धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्तुष्वनभिद्रुते।। 59।।**
**ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद् विधिनौषधसङ्ग्रहम्।)**

जिस घर में धुआँ, वर्षा, अनिल (दूषित वायु) तथा क्लेद (गीलापन) का अहितकर प्रभाव औषधद्रव्यों पर न पड़ सके, उस घर में विधिपूर्वक संग्रह किये गये उन औषधद्रव्यों को रखना चाहिये।

**वक्तव्य**–संग्रह करके रखी हुई प्रत्येक वस्तु की समय-समय पर देख-रेख भी करते रहना चाहिये, नहीं तो वे काम में लाने योग्य नहीं रह जातीं। इनमें उपयुक्त धुआँ आदि को प्रधान कारण माना गया है। **वर्षानिल**–इस पद का टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न अर्थ किया है–वर्षा के कारण औषधद्रव्य सड़ जाते हैं, वर्षानिल = बरसाती हवा के कारण उनमें बुकनी या फफूंदी लग जाती है, अथवा अनिल = दूषित वायु के कारण उनका प्रभाव कम हो जाता है। इस प्रकार ये सभी अर्थ प्रकरणोचित हैं।

**विशेष**–यह पाठ सुश्रुतसंहिता से लिया गया है। देखें–सु० सू० अ० 38.81।

**उचित-अनुचित द्रव्य**

**व्याधेरयुक्तं यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत्।। 60।।**
**अनुक्तमपि यद् युक्तं योजयेत् तत्र तद् बुधः।**

बुद्धिमान् चिकित्सक का प्रमुख कर्तव्य है कि वह गण में कहे गये भी उस द्रव्य का ग्रहण न करे, जो द्रव्य रोगी के रोग का शमन करने में उपयुक्त न हो और जो द्रव्य उस गण में नहीं कहा गया हो, किन्तु रोग-शमन में उपयोगी हो तो भी उस द्रव्य का ग्रहण कर लेना चाहिये।

**वक्तव्य**–आयुर्वेदीय संहिताओं में अनेक प्रकार के औषधद्रव्यों के गणों का उल्लेख मिलता है, जिनका संग्रह सामान्य दृष्टि से किया गया था, किन्तु यहाँ उक्त निर्देश विशेष परिस्थिति के लिए किया गया है। अतः शास्त्रोक्त क्वाथ, चूर्ण, आसव, अरिष्ट, तथा अवलेह आदि के योगों में कहे गये उस-उस अनुपयोगी द्रव्य या द्रव्यों को निकालकर उपयोगी द्रव्यों को मिला लेने की अनुमति ग्रन्थकार चिकित्सक को दे रहा है।

**स्थानभेद से औषधद्रव्यों का विचार**

**आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः।। 61।।**
**अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः।**
**अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च।। 62।।**
**गृह्णीयात् तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे।**
**आदित्यसम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि।। 63।।**

विन्ध्याचल, सह्याद्रि आदि पर्वत श्रेणियाँ आग्नेय (अग्निगुण-प्रधान) अर्थात् उष्ण प्रभाव वाली होती हैं और हिमगिरि (हिमालय) सौम्य (सोमगुण युक्त) होता है, अर्थात् शीत प्रभाव वाला होता है। इसलिये उक्त प्रकार की पर्वत श्रेणियों में पैदा होने वाली औषधियाँ अपने-अपने स्थान में उत्पन्न होने के कारण से तदनुरूप गुणों वाली होती हैं। अर्थात् विन्ध्य आदि पर्वत श्रेणियों में पैदा होने वाली उष्णगुण-प्रधान तथा हिमालय परिसर में पैदा होने वाली शीतगुण-प्रधान औषधियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानों (समतल प्रदेशों) में, वनों तथा उपवनों (बगीचों) में भी औषधियाँ उगती या उगायी जाती हैं। उक्त सभी प्रकार की औषधियों को चिकित्सक प्रसन्नचित्त होकर, मनसा, वाचा पवित्र होकर, प्रातःकाल, शुभवार (दिन) में, सूर्य की ओर मुख करके मौन धारण कर तथा हृदय में शिव जी को प्रणाम कर ग्रहण करे।

**वक्तव्य**–विन्ध्याचल आदि पर्वत आग्नेय और हिमालय सौम्यगुण-प्रधान है। उक्त स्थानों पर होने वाली औषधियाँ तदनुरूप होती हैं, ऐसा जो कहा गया है, वह सामान्य वचन है। उदाहरणस्वरूप आप 'वत्सनाभ' विष का परिचय देखें। यह हिमालयप्रदेश में 10 से 14 हजार फुट की ऊँचाई पर पैदा होता है। यह हिमालय के अनुरूप न होकर उष्णवीर्य होता है। ऐसी विशेषताएँ सामान्य वचनों के बीच में सर्वत्र मिलती ही हैं।

**वनेषूपवनेषु च–'वनेषु'** प्राकृतिक वनों में, जहाँ वृक्ष, लता, गुल्म आदि स्वयं पैदा हो जाते हैं। उपवनेषु–ये वे बगीचे हैं, जिन्हें 'भैषज्योद्यान' कहा जाता है। इस प्रकार के

उपवन आयुर्वेदीय शिक्षा देने की दृष्टि से महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की भूमि पर लगाये जाते हैं। औषध-ग्रहण या संग्रहण की विधि तन्त्रशास्त्र में भी देखी जाती है। यहाँ 'प्रातः' शब्द का अर्थ सूर्योदय के पूर्व भी लिया जा सकता है और **'आदित्यसम्मुखः'** का अर्थ पूर्वाभिमुख भी देखा जाता है। **सुवासरे** का अर्थ है-शुभ दिन में। ज्योतिःशास्त्र के अनुसार तिथि, वार, चन्द्र तथा नक्षत्र जिस दिन अनुकूल हों, उसे 'सुवासर' कहा जाता है। इसके लिए मुहूर्तचिन्तामणि का नक्षत्र-प्रकरण देखें। **मौनी** शब्द से औषधिग्रहण के मन्त्र का मन ही मन जप करने का यह संकेत मिलता है। **नमस्कृत्य शिवं हृदि**–शिव संसार का कल्याण करने वाले देव हैं और इन्हीं का एक नाम 'मृत्युञ्जय' है। चिकित्सा का मूल लक्ष्य मृत्यु को जीतना ही है। अतएव औषधिग्रहण काल में इन्हें प्रणाम करने का निर्देश किया है।

### त्रिविध देश-लक्षण

**(बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान्।**
**जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखी च पित्तासृङ्मारुतोत्तरः।।64।।**
**संसृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः।)**

जिस देश में जल अधिक बरसता हो; झील, नदी, नाले, तथा कुएँ, आदि अधिक हों तथा नग अर्थात् पेड़, पहाड़ अधिक हों और कफ एवं वात दोष के कारण होने वाले रोग जहाँ अधिक होते हों, वह **'आनूप देश'** है। जिस देश में जल तथा वृक्ष (अनूप देश की अपेक्षा) कम हों और पित्त, रक्त तथा वात दोष सम्बन्धी रोग अधिक मात्रा में होते हों, वह **'जांगल देश'** है। उक्त दोनों (आनूप तथा जांगल) देशों के लक्षणों से युक्त लक्षण जिसमें दिखलायी दें, वह **'साधारण देश'** माना जाता है।

**वक्तव्य**–औषध-संग्रह, रोग-निर्णय, तथा साध्यासाध्य-विचार आदि के अवसर पर इन देशों का भी सहारा लिया जाता है। इस दृष्टि से समस्त भूमण्डल का विचार किया जा सकता है। इनका विशेष विवरण देखें–च० वि० अ० 3.. 47-48। च० क० अ० 1.8। अत्रिसंहिता। सु० सू० अ० 36 तथा राजनिघण्टु में।

### द्रव्यग्रहण-निर्देश

**साधारणधराद्द्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम्।।65।।**
**(द्रव्याणि तत्र जायन्ते तद्गुणानि विशेषतः।)**

साधारण भूमि (देश) में उत्पन्न उस औषधद्रव्य को ग्रहण करना चाहिये, जो उत्तर दिशा की ओर उत्पन्न हुआ हो, क्योंकि वहाँ (उस ओर) जो द्रव्य उत्पन्न होते हैं, वे विशेष रूप से अपने-अपने गुणों से युक्त होते हैं।

**वक्तव्य**–'उत्तराश्रितम्' इसका महत्त्व ऊपर 61वें पद्य में इस प्रकार वर्णित है–'सौम्यो हिमगिरिर्मतः' अर्थात् उत्तर दिशा सौम्यगुण से समृद्ध होती है। महर्षि सुश्रुत ने अपनी संहिता में इस पद्य को दिया है, जिसका पूर्वार्ध भिन्न है। देखें–सु० सू० अ० 36.14।

### निन्दित भेषज द्रव्य

**वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः ।।66।।**
**जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसिद्धिदाः।**

वल्मीक (वामी या दीमकों से बनाया गया मिट्टी का टीला) पर उत्पन्न या उससे घिरी हुई, कुत्सित (निन्दित, गन्दे) स्थान में पैदा हुई, अनूपदेशज, श्मशान भूमि (जहाँ मरे हुये पुरुषों को जलाया अथवा गाड़ दिया जाता है, उस स्थान) पर, ऊषर (बंजर भूमि अथवा नमक या रेह के कणों से व्याप्त) भूमि पर तथा मार्ग के बीच में या उसके अगल-बगल में उत्पन्न हुई अर्थात् जो पथिकों के पैरों से कुचल दी गयी हो और जो कीड़ों से खायी गयी हो, जो आग से जल गयी हो एवं हिम (बर्फ या पाला या ओला) से व्याप्त हो, ऐसी ओषधियाँ कार्य में सिद्धि नहीं देती हैं। अतः ऐसी औषधियों का संग्रह नहीं करना चाहिये।

**वक्तव्य**–आप ध्यान दें कि ग्रन्थकार ने इस प्रकार की औषधियों के संग्रह का निषेध क्यों किया है? वल्मीक के भीतर जहरीले सर्प रहते हैं। उनके स्पर्श या दंश से वे दूषित हो सकती हैं। कुत्सित शब्द स्वयं ही औषधि की अयोग्यता का संकेत कर रहा है। अनूपदेशज औषधियाँ कफवर्धक तथा वातकारक होती हैं। श्मशान-प्रदेश में उत्पन्न औषधियाँ भूत-प्रेत तथा चिता-धूम से दूषित होती हैं। मार्गज औषधियाँ अपने स्वरूप में प्राप्त नहीं हो पाती हैं। शेष स्पष्ट है। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण गुणसम्पन्न औषधद्रव ही कार्य (चिकित्सा) में सिद्धि प्रदान कर सकते हैं।

### ऋतुभेद से औषधद्रव्य-संग्रह

**शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम्।।67।।**
**विरेक-वमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत्।**

सभी कार्यों (चूर्ण, गुटिका, लेप, अवलेह, आसव, तथा अरिष्ट आदि) के लिए शरद् ऋतु आश्विन-कार्तिक मासों) में

सरस (जो सूखी न हो अर्थात् ताजी, हरी, तथा गीली) ओषधियों का ग्रहण (संग्रह) करना चाहिये और विरेचन तथा वमन कराने के लिए जिनका उपयोग करना हो, उन्हें वसन्त ऋतु (फाल्गुन-चैत्र) के अन्त में ग्रहण करना चाहिये।

**वक्तव्य**—वसन्त तथा शरद् ऋतुओं में औषधद्रव्य अपने रस, वीर्य, विपाक आदि से परिपूर्ण पाये जाते हैं, क्योंकि इन दोनों ही ऋतुओं का काल समशीतोष्ण होता है। अतएव इन अवसरों पर औषध-ग्रहण का शास्त्रकार ने निर्देश किया है। तन्त्रान्तर में ऋतु के अनुसार औषधियों में रसस्थिति का वर्णन इस प्रकार मिलता है—ग्रीष्म ऋतु में मञ्जरियों के अग्रभाग में, वर्षा ऋतु में पत्तों तथा त्वचा (छाल) में, वसन्त ऋतु में वृक्षों को जड़ों में रस की स्थिति होती है। इस प्रसंग में शेष ऋतुओं का उल्लेख नहीं किया गया है।

### द्रव्यों के अवयवों का ग्रहण

**अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः।। 68।।**
**गृह्णीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान्।**
**न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद् बीजकादितः।। 69।।**
**तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः।**
**धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत्।। 70।।**
**(विदार्यादेश्च कन्दानि गुन्द्रं सर्जरसादितः।**
**मज्जा अक्षोटकादेश्च शेषं वृद्धोपदेशतः।। 71।।)**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां**
**शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे परिभाषा नाम**
**प्रथमोऽध्यायः।। 1।।**

जो औषधियाँ अधिक मोटी जड़ों वाली होती हैं, विद्वान् वैद्यों को उनकी जड़ों की छालें ग्रहण करनी चाहिये और जिनकी जड़ें छोटी हैं, उन्हें सम्पूर्ण लेना चाहिये। अर्थात् उनके पंचांग (जड़, शाखा, पत्र, पुष्प तथा फल) का ग्रहण करना चाहिये। बरगद आदि बड़े वृक्षों की भीतरी त्वचा (छाल) लेनी चाहिये (क्योंकि बाहरी छाल निःसार होती है)। बीजक (विजयसार) आदि वृक्षों का सार (बीच की लकड़ी) लेना चाहिये (यहाँ आदि शब्द से खैर, चीड़, देवदारु, तथा चन्दन जैसे वृक्षों का ग्रहण करना चाहिये)। तालीस आदि (तुलसी, पान, तेजपत्ता, तथा सनाय जैसे द्रव्यों) के पत्र; त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, तथा आँवला) आदि (कालीमिरिच, पीपल, वायविडंग, सौंफ, सोया, मैनफल, प्रियंगु तथा जैसे द्रव्यों) के फल तथा धातकी (धाय) आदि वृक्षों के फूल तथा स्नुही (थूहर) आदि क्षीरी वृक्षों का दूध ग्रहण करना चाहिये। विदारीकन्द आदि (कन्दवर्ग में कहे गये द्रव्यों) के कन्दों का, सर्जरस (राल) आदि के गोंद का तथा अखरोट आदि (काजू, बादाम, तथा पिस्ता जैसे द्रव्यों) की मज्जा का ग्रहण करें। जिन द्रव्यों के ग्राह्य अवयवों का उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, उनका आयुर्वेदवेत्ता वृद्धों के कथनानुसार ग्रहण करें।

**वक्तव्य**—ऊपर ग्रन्थकार न औषधद्रव्यों के किन-किन अवयवों का ग्रहण करना चाहिये, इस प्रकार का जो निर्देश किया है, वह सामान्य स्वरूप है। ज्ञातव्य है कि प्रायः सभी औषधद्रव्यों के एकाधिक अवयवों का ग्रहण शास्त्र-निर्देश द्वारा अथवा लोकव्यवहार द्वारा देखा जाता है। जैसे न्यग्रोध (बरगद) की त्वचा भी ली जाती है और क्षीरीवृक्ष होने के कारण उसके दूध का भी ग्रहण किया जाता है, इसी तरह परबल की पत्ती तथा उसके फल दोनों का ग्रहण होता है। इस प्रकार की विसंगतियों अथवा विशेषताओं के सम्यक् ज्ञान के लिए औषध-निर्माण कुशल गुरुजनों की चिरकाल तक उपासना तथा उनका सहवास करना चाहिये। औषध-विक्रेता भी इन विषयों के ज्ञाता होते हैं। उनसे हरड़ माँगेंगे तो वे उसका फल ही देंगे, न कि जड़ या उसकी छाल। इसके विशद विवेचन के लिए देखें—सु० सू० अ० 39 गद्य 3-6।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित
दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता
पूर्वखण्ड का पहला अध्याय समाप्त।। 1।।

## द्वितीयोऽध्यायः

# भैषज्याख्यान

### औषध-सेवन-काल

**भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशो बुधः।**
**कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः।। 1।।**

बुद्धिमान् रोगी का कर्तव्य है कि वह प्रायः (अधिकांश, विशेष निर्देश के अभाव में) औषध का सेवन प्रातःकाल ही करे। विशेष करके कषायों (स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, तथा फाण्ट) का सेवन तो अवश्य ही प्रातःकाल करे। औषध-सेवन के सम्बन्ध में जो भेद (मतभेद) है, वह आगे दिखलाया गया है।

**वक्तव्य**—इस पद्य में कषाय शब्द को बहुवचनान्त प्रयुक्त किया गया है। इसका तात्पर्य है कि कषाय शब्द से पंचकषायों का ग्रहण किया जाता है। देखें-शा० सं० म० खं० अ० 1.1।

### औषध-सेवन के पाँच काल

**ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्।**
**किञ्चित् सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने।। 2।।**
**सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि।**

मनुष्यों के लिए औषध-सेवन के पाँच कालों का निर्देश किया गया है-1. कुछ सूर्य के उदय होने पर (यह अरुणोदय से सूर्योदय होने तक की मध्य अवधि है), 2. दिन के भोजन के समय में, 3. सायंकाल के भोजन के समय में, 4. बार-बार और 5. रात्रि में (सोने के समय)।

**वक्तव्य**—उक्त औषध-सेवन के पाँचों कालों का विशद विवेचन आगे किया जा रहा है।

### औषध-सेवन का प्रथम काल

**प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः।। 3।।**
**लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभाते तत् समाहरेत्।**
**एवं स्यात् प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्।। 4।।**



पित्त अथवा कफ दोष की वृद्धि होने पर विरेचन या वमन कराने के लिए और दोषों को विशेष करके कफदोष को अपने स्थान से खुरच कर बाहर निकालने के लिए प्रायः (अधिकांश) प्रातःकाल औषधयोग का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार यह मनुष्यों के लिए औषध-सेवन का प्रथम काल कहा गया है।

**वक्तव्य**—साहित्यिक लेखन-कार्य से आयुर्वेदिक लेखन-कार्य सर्वथा भिन्न है। यद्यपि दोनों स्थानों के लेखन शब्द की मूल प्रवृत्ति समान है। आज जिसे साहित्यिक भाषा में लेखन कहा जाता है, वह वास्तव में लेपन (लीपना) है। लेखन शब्द का सही प्रयोग शिलालेख के रूप में होता है। आप देखें कि जिस प्रकार शिला पर लिखने के लिए उसे खुरचना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार कफ अपने आशय के उन-उन अवयवों में सटा रहता है, अतः उसका लेखन किया जाता है। **उद्रेक**—वमन तथा विरेचन कराने के पूर्व कफ तथा पित्त को अपने स्थान से विचलित करा दिया जाता है, जिससे उसका उचित प्रकार से निर्हरण किया जा सके।

### औषध-सेवन का द्वितीय काल

**भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते।**
**अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत्।। 5।।**
**समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम्।**
**दद्याद् भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक्।। 6।।**
**व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत्।**
**हिक्काऽऽक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात्।। 7।।**
**एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि।**

अपानवायु की विकृति से होने वाले (मलाशय, वस्ति तथा गर्भाशय सम्बन्धी) रोगों में भोजन करने के पहले औषध-सेवन करना उत्तम होता है। भोजन के प्रति अरुचि हो जाने

पर विविध प्रकार के रुचिकर, किन्तु पथ्य भोजनों में मिलाकर औषध-सेवन करना चाहिये। समान वायु की विकृति से होने वाले (पक्वाशय सम्बन्धी) रोगों में, मन्दाग्नि (जठराग्नि के मन्द पड़ जाने) में, अग्नि की शक्ति को बढ़ाने वाले औषधयोग को भोजन के बीच में कुशल चिकित्सक दे। व्यानवायु के प्रकोप से होने वाले (अर्दित = मुखप्रदेश का लकवा तथा पक्षाघात आदि) रोगों में भोजन के अन्त में औषध-सेवन करना चाहिये। हिचकी, आक्षेपक (वातव्याधि-विशेष देखें- मा० नि०) तथा कम्पवात आदि रोगों में भोजन के तथा भोजन करने के बाद औषध-सेवन करना चाहिये। इस प्रकार यह औषध-सेवन करने के दूसरे काल का वर्णन कर दिया गया है।

### औषध-सेवन का तृतीय काल

**उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि।। 8।।**
**ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने।**
**प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते च दीयते।। 9।।**
**औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः।**

स्वरभंग (स्वरभेद) आदि (कास, श्वास, तथा हिक्का जैसे) रोगों को उत्पन्न करने वाले उदान नामक वायु (जो कंठ, श्वासमार्ग में निवास करता है, उस) के प्रकुपित हो जाने पर सायंकालीन भोजन के समय प्रत्येक ग्रास के साथ औषध देना चाहिये और हृदयगति का संचालन करने वाली प्राणवायु के कुपित होने पर सायंकालीन भोजन के अन्त में विद्वान् चिकित्सक को औषध प्रयोग कराना चाहिये। इस प्रकार यह औषध-सेवन करने का तीसरा काल है।

### औषध-सेवन का चतुर्थ काल

**मुहुर्मुहुश्च तृट्च्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च।। 10।।**
**सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः।**

तृट् (प्यास), छर्दि (वमन, उलटी या कै), हिचकी, श्वास (दमा) तथा विविध गरों (दूषीविषों के प्रयोग के कारण उत्पन्न रोगों) में बार-बार (अनेक बार) भोजन में मिलाकर औषध का सेवन कराना चाहिये। यह औषध-सेवन का चौथा काल कहा गया है।

### औषध-सेवन का पञ्चम काल

**ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा।। 11।।**
**पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि।**
**इति पञ्चमकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि।। 12।।**

जत्रु (Collar bone = ग्रीवा के सामने उभरी हुई अस्थि) के ऊपरी भाग में होने वाले अवयवों (गला, मुख, नाक, कान, आँख तथा सिर) के रोगों में लेखन (कर्षण = खुरचकर निकालने या कृश करने) में, बृंहण (स्थूल करने) में पाचन तथा शमन औषधयोगों का प्रयोग रात में भोजन के पहले ही कराना चाहिये। यह औषध सेवन का पाँचवाँ काल कह दिया गया है।

**वक्तव्य**–प्रायः देखा जाता है कि रोगी चिकित्सक से पूछा करते हैं–यह औषध कब-कब खानी है, इसके उत्तर के लिए इन श्लोकों में कहे गये विषयों का अभ्यास करें। विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए चरक चि० अ० 30, श्लोक 296 से 312 का भी अवलोकन कर लेना चाहिये। उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'निशि' शब्द का अर्थ सामान्य स्थिति में 'रात्रि का प्रथम प्रहर' है।

### द्रव्य की पाँच अवस्थाएँ

**द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।**
**संवेदनक्रमादेताः पञ्चावस्थाः प्रकीर्तिताः।। 13।।**

द्रव्य का सेवन करने पर उसमें अनुभवी-क्रम से रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा शक्ति (प्रभाव) ये पाँच अवस्थाएँ कही गयी हैं।

**वक्तव्य**–रस आदि का परिचय–जीभ द्वारा जिसका परिचय प्राप्त होता है उसे **'रस'** कहते हैं। इसकी उत्पत्ति मूल रूप से जल द्वारा मानी गयी है। रसों की संख्या छः है। यथा–मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, तथा कषाय। **गुण**–इनकी संख्या बीस है–गुरु, मन्द, हिम, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म, विशद (इन गुणों के विपरीत क्रमशः ये दस गुण हैं) लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, खर, द्रव, कठिन, सर, स्थूल, तथा पिच्छिल। **वीर्य**–यह दो प्रकार का होता है–उष्ण और शीतल। **विपाक**–इसकी परिभाषा इसी अध्याय के 33वें श्लोक में देखें। यह रसभेद से तीन प्रकार का होता है–मधुर, अम्ल, तथा कटु। **शक्ति**–द्रव्यों की शक्ति अचिन्त्य होती है। **द्रव्य**–यह स्थावर, जंगम तथा पार्थिव भेद से तीन प्रकार का होता है। **स्थावर द्रव्य**–जड़, छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पत्र, पुष्प, फल, दूध, क्षार, भस्म, तथा तेल आदि। **जङ्गम द्रव्य**–दूध, मधु, पित्त, स्नेह (वसा), मज्जा, रक्त, मांस, हड्डी, चर्म, मल, मूत्र, स्नायु, नख, लोम, खुर, तथा सींग आदि। **पार्थिव द्रव्य**–सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा,

राँगा, लोहा, अभ्रक तथा इनके यौगिक अन्य खनिज द्रव्य। इस दृष्टि से संसार की सम्पूर्ण वस्तुएँ 'द्रव्य' हैं।

### द्रव्य का लक्षण

**(द्रव्यमेव रसादीनां श्रेष्ठं ते हि तदाश्रयाः।**
**पञ्चभूतात्मकं तत्तु क्ष्मामधिष्ठाय जायते।। 14।।**
**अम्बुयोन्यग्निपवननभसां समवायतः।**
**तन्निर्वृत्तिविशेषश्च व्यपदेशस्तु भूयसा।। 15।।)**

रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव की अपेक्षा द्रव्य को ही श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि उपर्युक्त रस आदि गुण द्रव्य के ही आश्रित होते हैं। द्रव्य के बिना उक्त रस आदि की सत्ता कहीं नहीं देखी जाती। इस प्रकार का वह द्रव्य पञ्चभूतात्मक होता है। वह द्रव्य पृथ्वी तत्त्व का आश्रय (सहारा) लेकर व्यक्त (प्रकट) होता है, उसकी जल योनि (उत्पन्न करने वाली) है। अग्नि, वायु तथा आकाशतत्त्व के योग से उसकी उत्पत्ति और विशेष (स्वरूप-भेद) होता है। इन द्रव्यों में उक्त पंचभूतों की तर-तम भाव से अधिकता होने से ये द्रव्य पार्थिव, आप्य, तथा तैजस आदि संज्ञा वाले हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–प्राचीन तन्त्रकारों ने भी एकमत से द्रव्य को पाञ्चभौतिक स्वीकारा है। इसके विशेष विवेचन के लिए देखें–अ० हृ० सू० अ० 9.1-2।

### रसों के छः भेद

**मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः।**
**इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः।। 16।।**

1. मधुर (मीठा-गुड़ आदि), 2. अम्ल (खट्टा-नींबू आदि), 3. पटु (नमकीन-लवण आदि), 4. कटु (कड़ुआ-सोंठ, मरिच, पीपल, तथा (लालमिर्च आदि), 5. तिक्त (तीता-नीम, चिरायता, तथा कुटज आदि) और 6. कषाय (कसैला-आँवला आदि)। इस प्रकार ये छः रस कहे गये हैं, जो भिन्न-भिन्न द्रव्यों में पाये जाते हैं।

**वक्तव्य**–जीभ द्वारा स्पर्श होने पर उक्त रसों का ठीक- ठीक निर्णय हो जाता है, अतएव जीभ का एक नाम 'रसना' भी है। रसना के अकर्मण्य हो जाने पर रसों का ज्ञान नहीं हो पाता है। इसी प्रकरण में आगे इन रसों के परिचायक पद्य दिये गये हैं। आप देखेंगे कि कटु और तिक्त रसों के सम्बन्ध में भ्रान्त-धारणाएँ किस प्रकार समाज में फैली हैं।

### मधुररस के लक्षण

**(स्नेहन-प्रीणनाह्लाद मार्दवैरुपलभ्यते।**
**मुखस्थो मधुरश्चास्यं व्याप्नुवंल्लिम्पतीव च।। 17।।)**

जिस रस से स्नेहन, प्रीणन (तृप्ति), आह्लाद (आनन्द) तथा मृदुता की प्राप्ति हो और जो मुख में रखा हुआ मुख के चारों ओर फैलकर लिपट जाये, उसे मधुर रस कहते हैं।

**वक्तव्य**–मधुर आदि छः रसों के वर्णन का विशद विवेचन चरकसंहिता सू० अ० 26 श्लोक 74 से 79 तक में देखें।

### अम्लरस के लक्षण

**(दन्तहर्षान्मुखस्रावात् स्वेदनान्मुखबोधनात्।**
**विदाहाच्चास्य कण्ठस्य प्राश्यैवाम्लरसं वदेत्।। 18।।)**

जिसको चखने मात्र से दाँत खट्टे हों, मुख से पानी का स्राव होने लगे, पसीना होने लगे, मुख का बोधन हो, अर्थात् मुख का फीकापन दूर हो जाये, जिसका अधिक सेवन कर लेने से मुख तथा गले में विदाह (जलन) होने लगे, उसे 'अम्लरस' कहना चाहिये।

**वक्तव्य**–अंग्रेजी में अम्ल तथा क्षार का एक पर्याय Acid भी है। इसमें विदाहक गुण होता है। अतएव गीता में ऐसे पदार्थों के अधिक सेवन का निषेध किया गया है। देखें–'कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः'। गीता अ० 17.9।

### लवणरस के लक्षण

**(प्रलीयन् क्लेदविष्यन्दमार्दवं कुरुते मुखे।**
**यः शीघ्रं लवणो ज्ञेयः स विदाहान्मुखस्य च।। 19।।)**

जो मुख में रखा हुआ शीघ्र ही घुल जाये, सूखे हुये मुख के भीतरी भाग को गीला कर दे, लालास्राव को पैदा करे और अधिक सेवन करने पर मुख के भीतर जलन पैदा करे, उसे लवणरस समझें।

**वक्तव्य**–'प्रलीयन्' के स्थान पर श्रीगणनाथसेन 'प्रीणयन्' पाठभेद को स्वीकार करते हैं। 'स विदाहान्मुखस्य च' यह स्थिति मात्रा से अधिक लवणरस के सेवन से उत्पन्न होती है।

### कटुरस के लक्षण

**(संवेजयेद् यो रसनां निपाते तुदतीव च।**
**विदहन् मुखनासाक्षि संस्रावी स कटुः स्मृतः।। 20।।)**

जो जीभ पर रखने मात्र से घबराहट उत्पन्न करे, जीभ में चुभे या कष्ट पहुँचाये, दाह उत्पन्न करता हुआ मुख, नासिका तथा आँखों से स्राव कराने वाला हो, वह कटुरस कहा जाता है।

**वक्तव्य**—कटुत्रय में सोंठ, मरिच एवं पिप्पली का ग्रहण होता है। इन्हीं गुणों से भरपूर लालमिर्च भी होता है। इनमें से किसी एक को खाकर उक्त लक्षणों से मिलान करें। तिक्त (तीता) रस इससे सर्वथा भिन्न होता है।

**तिक्तरस के लक्षण**

**(प्रतिहन्ति निपाते यो रसनां स्वदते न च।**
**स तिक्तो मुखवैशद्यशोषप्रह्लादकारकः।। 21।।)**

जो जीभ पर पड़ने से उसे कष्ट दे, अर्थात् अप्रिय लगे और जो अन्य रसों का स्वाद प्रतीत न होने दे, उसे 'तिक्तरस' कहते हैं। यह मुख की तिक्तता को दूर करके, लार को सुखाकर मन को प्रसन्न कर देता है।

**वक्तव्य**—तिक्तरस-प्रधान द्रव्यों में 'नीम' का ग्रहण किया जाता है। इसकी दातून करने से उक्त सभी गुणों की प्राप्ति होती है। कुटकी भी अत्यन्त तिक्त रस वाली होती है। इसका सेवन करने से मुख का तीतापन दूर हो जाता है। देखें–'मम द्रव्यं विस्मयमातनोति, तिक्ताकषायो मुखतिक्तताघ्नः।'–वैद्यजीवनम्।

**कषायरस के लक्षण**

**(वैशद्यस्तम्भजाड्यैर्यो रसनां योजयेद् रसः।**
**बध्नातीव च यः कण्ठं कषायः स विकास्यपि।। 22।।)**

जिसके खाने पर जीभ की चिपचिपाहट तो दूर हो जाये, किन्तु जीभ स्तब्ध तथा जड़ अर्थात् दूसरे रसों का अनुभव करने में असमर्थ हो जाये, कण्ठ (गला) बँधता या रुकता हुआ-सा प्रतीत हो तथा जो विकासी (पिच्छिल) गुण का नाशक हो, वह कषाय (कसैला) रस कहा जाता है।

**रसों का उत्पत्ति-क्रम**

**धराम्बुक्ष्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः।**
**वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात्।। 23।।**

प्रस्तुत क्रम से दो-दो महाभूतों के परस्पर मिलने से निम्न प्रकार रसों की उत्पत्ति होती है–धरा (भूमि) तत्त्व, जलतत्त्व से मधुररस; क्ष्मा (भूमि) तत्त्व, अनल (अग्नि) तत्त्व से अम्ल (खट्टा) रस; जलतत्त्व, ज्वलन (अग्नि) तत्त्व से लवणरस; आकाशतत्त्व, मारुत (वायु) तत्त्व से कटुरस; वायुतत्त्व, अग्नितत्त्व से तिक्तरस तथा क्ष्मा (भूमि) तत्त्व, अनिल (वायु) तत्त्व से कषाय रस की।

**वक्तव्य**—सामान्य दृष्टि से रसों का क्रम यह है–1. मधुर, 2. अम्ल, 3. लवण, 4. कटु, 5. तिक्त, तथा 6. कषाय। इस दृष्टि से जब हम ऊपर के श्लोकोक्त क्रम को देखते हैं, तो उसका अनुवाद जैसा ऊपर दिया गया है, उसी प्रकार का होगा, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। अतः हम ग्रन्थकार की उक्ति का सम्मान करने के लिए उक्त रसादि क्रम में 'तिक्तरस' को प्रथम स्थान देकर उसके बाद 'कटुरस' का स्थान स्वीकार कर लेंगे, क्योंकि आप देखें कि चरक तथा सुश्रुत दोनों ही संहिताकारों ने वायु तथा अग्निगुण की अधिकता से 'कटुरस' और वायु एवं आकाशगुण की अधिकता से 'तिक्तरस' की उत्पत्ति को स्वीकार किया है। विशेष विवेचन के लिए देखें–च० सू० अ० 36 तथा सु० सू० अ० 42।

**पञ्चमहाभूतों के गुण**

**गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात्।**
**धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः।। 24।।**
**एष्वेवान्तर्भवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसञ्चयाः।**

गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रूक्ष, तथा लघु ये पाँच गुण क्रमशः (पृथिवी), अम्बु (जल), वह्नि (अग्नि), पवन (वायु) तथा व्योमन् (आकाश) नामक महाभूतों के माने गये हैं। अन्य सभी प्राचीन संहिताकारों द्वारा अपनी-अपनी संहिताओं में वर्णित गुण-समूह का अन्तर्भाव इन्हीं पाँच गुणों में हो जाता है।

**वक्तव्य**—चरक आदि संहिताओं में गुणों की संख्या बीस है। ये गुण परस्पर विरोधी अथवा विपरीत स्वभाव वाले होते हैं। आप इन्हें ध्यान से देखें–'गुरु, लघु, मन्द, तीक्ष्ण, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, श्लक्ष्ण, खर, सान्द्र, द्रव, मृदु, कठिन, स्थिर, तथा चल। शीत तथा उष्ण गुणों के द्रव्य-विवेचन प्रसंग में 'वीर्य' की संज्ञा दी गयी है। इन उपर्युक्त गुणों से युक्त द्रव्यों का अधिक सेवन करने से उस-उस द्रव्य का प्रभाव शरीर पर स्पष्ट दिखलायी देता है। जैसे–घी-तेल स्निग्ध गुण वाले होते हैं। इनका सेवन करने से शरीर में स्निग्धता आ जाती है और रूक्ष द्रव्यों के सेवन से रूक्षता आ जाती है। शार्ङ्गधराचार्य ने जिन पाँच गुणों का चयन किया है, उनमें उक्त सभी गुणों का समावेश किया जा सकता है।

### गुरु गुण के लक्षण

**( गुरु वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च।। 25।। )**

गुरु नामक गुण वात दोष का नाश करता है, शरीर को पुष्ट करता है, कफ को बढ़ाता है और चिरपाकी ( देर में पचने वाला) होता है।

### स्निग्ध गुण के लक्षण

**( स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम्। )**

स्निग्ध नामक गुण वातदोष का नाश करता है, कफदोष को बढ़ाता है, वृष्य ( वीर्य को बढ़ाने वाला) है तथा बल की वृद्धि करने वाला होता है।

### तीक्ष्ण गुण के लक्षण

**( तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत्।। 26।। )**

तीक्ष्ण नामक गुण पित्तकारक ( पित्त के बढ़ाने वाला), प्राय: लेखन ( आँतों में सटे हुये कफदोष को खुरचकर निकालने वाला), कफ एवं वात दोष का विनाशक होता है।

### रूक्ष गुण के लक्षण

**( रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम्। )**

रूक्ष नामक गुण वातदोष को बढ़ाने वाला और कफदोष को दूर करने वाले द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

### लघु गुण के लक्षण

**( लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च।। 27।। )**

लघु नामक गुण अत्यन्त पथ्य (हित करने वाला), कफदोष का विनाशक तथा शीघ्र पच जाने वाला होता है।

**वक्तव्य**–उक्त गुरु, स्निग्ध आदि पाँच गुण जिन–जिन द्रव्यों में रहते हैं, ये सभी वर्णन उन–उन द्रव्यों के हैं। पृथिवी, जल आदि भूतों के रूप में इन गुणों का प्रयोग नहीं देखा जाता। आप इस प्रसंग का प्रयोग आहार–विहार तथा पथ्यापथ्य के क्षेत्र में करके स्वयं अनुभव करें।

### वीर्य का वर्णन

**वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम्।**
**तत्सर्वमग्नीषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये।। 28।।**
**अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि।**

उष्ण तथा शीत भेद से प्राय: वीर्य दो प्रकार का होता है। ये दो भिन्न–भिन्न प्रकार के द्रव्यों में रहते हैं। इसीलिए संसार के सभी द्रव्य अग्नि ( आग्नेय = उष्ण) तथा सोम (सौम्य = शीत) वीर्य प्रधान तीनों लोकों में देखे जाते हैं। अन्य वीर्यों (स्निग्ध, रूक्ष आदि) का भी अन्तर्भाव इन्हीं के अन्तर्गत कर लिया जाता है या कर लिया जाना चाहिये।

**वक्तव्य**–आचार्य शार्ङ्गधर के सामने प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताएँ रहीं, अतएव उन्होंने अपना 'द्विविध वीर्य सम्बन्धी' मत पहले देकर मतभेद युक्त दूसरों के मतों को 'अन्यानि यानि अपि' कहकर किसी को छोड़ा नहीं। इस प्रसंग में हम अन्य आचार्यों द्वारा स्वीकृत अष्टविध वीर्यों को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। चरक के अनुसार वीर्य के भेद–'मृदु, तीक्ष्ण, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, तथा शीतल'। सुश्रुत के अनुसार वीर्य के भेद–शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल, तथा विशद। इन प्रसंगों को आप क्रमश: च० सू० अ० 26. 64–65 में तथा सु० सू० अ० 42.5 एवं 11 में देखें। वास्तव में द्रव्य में रहने वाली 'वीर्य' वह शक्ति है, जिसके बल पर वह समस्त कार्य करता है। देखें–'एतानि वीर्याणि स्वबल-गुणोत्कर्षाद् रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति'। सु०सू०अ० 40.5।

### उष्ण, शीत वीर्य के लक्षण

**( शीतं तु ह्लादनं स्तम्भि मूर्च्छातृट्स्वेददाहनुत्।। 29।।**
**उष्णं भवति शीतस्य विपरीतं च पाचनम्। )**

शीत नामक वीर्य आह्लाद ( प्रसन्नता)कारक, रक्त, मल, तथा मूत्र आदि की अतिप्रवृत्ति ( अधिक निकलने) को रोकने वाला, मूर्च्छा, तृट् ( प्यास), स्वेद ( पसीना) तथा दाह ( जलन) को दूर करने वाला होता है। उष्ण नामक वीर्य शीतवीर्य से विपरीत गुणों वाला तथा पाचनकारक होता है।

**वक्तव्य**–जिस प्रकार संहिताकार आचार्यों ने द्रव्य-प्रकरण में द्रव्य की प्रधानता का वर्णन किया था, उसी प्रकार प्रस्तुत वीर्य के प्रकरण में इसकी प्रधानता स्वीकार की गयी है, क्योंकि वीर्य के क्षेत्र में द्रव्य में रहने वाले अन्य गुणों को महत्त्व देना क्रम प्राप्त नहीं है। यहाँ उष्ण तथा शीत दो प्रकार के वीर्यों का उल्लेख किया गया है। अत: उक्त दो वीर्यों का सोदाहरण परिचय प्रस्तुत है–

**1. कुलथी**–यह कषाय तथा कटु रस होने पर भी वातदोष की वृद्धि नहीं करती है, क्योंकि यह 'उष्णवीर्य' है। उष्णवीर्य होने के कारण यह वातनाशक है।

**2. ईख का रस**–यह रस में मधुर होता है, फिर भी वातदोष का शमन नहीं करता है, क्योंकि यह 'शीतवीर्य' होता है। शीतवीर्य होने के कारण ही यह वातदोष को बढ़ाता है। यहाँ उदाहरण के लिए ऐसे दो द्रव्यों का उल्लेख किया है,

जो अन्य गुणों के कारण नहीं, अपितु अपने 'वीर्य' के कारण कार्य करते हैं। ऐसा विचार अन्यत्र भी कर लेना चाहिये।

**विपाक-परिचय**

**त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः।। 30।।**
**मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः।**
**कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः।। 31।।**
**मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते।**
**कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः।। 32।।**

भिन्न-भिन्न रस वाले द्रव्य का विपाक तीन प्रकार का होता है-1. मधुर, 2. अम्ल एवं 3. कटु। मधुर तथा लवण रस का विपाक 'मधुर' होता है; अम्ल (खट्टा) रस का विपाक अम्ल ही होता है; कषाय, कटु (सोंठ, मरिच, एवं पिप्पली आदि) तथा तिक्त (नीम, चिरायता जैसे द्रव्यों के रसों) का विपाक प्रायः 'कटु' होता है। मधुर विपाक से कफदोष की, अम्ल विपाक से पित्तदोष की और कटु विपाक से वातदोष की उत्पत्ति होती है। ये विपाकों के कार्य कहे गये हैं।

**वक्तव्य**-अपने-अपने स्थान पर सब का महत्त्व होता है। यही स्थिति द्रव्य एवं उसमें रहने वाले रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव की भी होती है। अर्थात् जिस प्रकार ऊपर द्रव्य, रस, गुण, वीर्य के महत्त्व का वर्णन किया जा चुका है, ठीक उसी प्रकार यहाँ '**विपाक**' की प्रधानता स्वीकार की गयी है, क्योंकि इस दृष्टि से द्रव्य में स्थित उसका मूल रस तथा विपाक के बाद उत्पन्न होने वाला रस अपने-अपने समय में प्रभावोत्पादक होता ही है। इस विषय के विशेष विवेचन के लिए आप सुश्रुतसंहिता सू० अ० 40 का अध्ययन करें।

**विपाक-परिचय**

**(जाठरेणाग्निना योगाद् यदुदेति रसान्तरम्।**
**रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः।। 33।।)**

मधुर आदि रसों का शरीर पर तात्कालिक प्रभाव पड़ जाने के बाद, जठराग्नि के साथ संयोग होने के अनन्तर जो दूसरे रस की उत्पत्ति होती है वह 'विपाक' कहा जाता है।

**वक्तव्य**-प्रारम्भिक स्थिति में द्रव्य में स्थित रस रसना (जीभ) द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। ये प्रारम्भ में पुरुष की प्रकृति के अनुसार अपने सद्गुणों का प्रभाव दिखलाते ही हैं, किन्तु भोजन के रूप में उन-उन द्रव्यों का सेवन कर लेने के बाद जब उनका जठराग्नि से संयोग होता है, तब जिस एक नये रस की उत्पत्ति होती है, उसका रस स्वरूप विपाक के परिणाम से विदित होता है। इस दृष्टि से 'विपाक' की प्रधानता स्वीकार की गयी है।

**प्रभाव का वर्णन**

**प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः।**
**समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम्।। 34।।**
**क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात् प्रभावतः।**
**ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा।। 35।।**

जिंस प्रकार रस, गुण, वीर्य, विपाक में बड़हल नामक फल 'आँवला' जैसा ही होता है, किन्तु आँवला त्रिदोषनाशक होता है और उसी के समान कहा गया बड़हल वैसा नहीं होता। यह आँवले का अपना 'प्रभाव' है। कहीं यह भी देखा जाता है, कि केवल द्रव्य अपने प्रभाव से ही कार्य कर डालता है। जैसे 'सहदेवी' की जड़ को सिर पर बाँध देने मात्र से ही वह ज्वर का नाश कर देती है। यह केवल प्रभाव का वर्णन है।

**वक्तव्य**-यह 'प्रभाव' जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है, केवल औषधद्रव्यों में ही नहीं पाया जाता, अपितु मणि, मन्त्र आदि को धारण करने से देव, गुरु, माता, पिता के आशीर्वचनों में भी आस्तिक बुद्धि से देखा तथा पाया जाता है। यह 'प्रभाव' प्रयोगशाला में परीक्षा का विषय नहीं है। इसकी विशेष जानकारी के लिए च० सू० अ० 26 श्लोक 67 से 72 तक तथा सु० सू० अ० 40 श्लोक 19 से 21 तक देखें।

**प्रभाव का लक्षण**

**(रस-वीर्य विपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते।**
**विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः।। 36।।**
**मणीनां धारणीयानां कर्म यद् विविधात्मकम्।**
**तत् प्रभावकृतं तेषां प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते।। 37।।)**

जहाँ दो या उससे अधिक द्रव्यों में रस (गुण), वीर्य, विपाक की समानता देखी जाये, (जैसा ऊपर श्लोक 34 में कहा गया है) किन्तु उनके कर्मों में विशेषता (भिन्नता) हो, वह उस-उस द्रव्य का 'प्रभाव' ही माना जाता है। धारण करने योग्य (हीरा, नीलम, तथा पुखराज आदि) मणियों को धारण करने पर जो विविध प्रकार का शुभ-अशुभ कर्म (फल) देखा जाता है, वह उन मणियों का प्रभाव ही है। अतः प्रभाव को अचिन्त्य (अविज्ञेय) कहा जाता है।

**वक्तव्य**-वीर्य, विपाक एवं प्रभाव का ऊपर जो वर्णन किया गया है, वह शास्त्र की दृष्टि से प्रामाणिक है और

प्रयोगावस्था में शास्त्रोक्त फल को देता है। यह अन्धविश्वास का क्षेत्र नहीं है। उक्त 36 तथा 37 दोनों पद्य च० सू० अ० 26 के श्लोक संख्या 67 तथा 70 से लिये गये हैं।

### रस आदि के कर्म

**क्वचिद् रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।**
**कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वन्ति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः।। 38।।**

द्रव्य का आश्रय लेकर रहने वाले ऊपर कहे गये रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव स्वतन्त्र रूप से कहीं-कहीं अपना-अपना कार्य करते हैं। अर्थात् द्रव्याश्रित रस आदि सामूहिक रूप से कार्य नहीं करते, अपितु वे स्वतन्त्र रूप से ही कार्य करते हैं।

**वक्तव्य**–इसी आशय का एक पद्य च० सू० अ० 26.71 में है, किन्तु उसकी भाषा स्वतन्त्र है। आप निघण्टु ग्रन्थों का अध्ययन करते समय इस विषय पर विशेष ध्यान दें, कि जो-जो द्रव्य रस तथा गुण में समान होते हैं, उन-उन में परस्पर समान वीर्य, विपाक तथा शक्ति (प्रभाव) नहीं देखे जाते। यही स्थिति मणियों के प्रभाव की भी है।

### ऋतु-भेद से दोषों का चय, कोप, शम

**चयकोपशमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि।**
**ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु सङ्क्रमात्।। 39।।**

जिसमें प्राकृतिक रूप से वात, पित्त, कफ दोषों का चय (संचय), कोप (प्रकोप) तथा शम (शमन या उपशम) होता है, उसे 'ऋतुषट्क' अर्थात् छः ऋतुओं का समूह कहते हैं। यह एक वर्ष में सूर्य के मेष, वृष आदि बारह राशियों में संक्रमण (गति) करने के कारण होता है।

### राशियों के क्रम से छः ऋतुएँ

**ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तो प्रावृड्मिथुनकर्कयोः।**
**सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत्।। 40।।**
**धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः।**

मेष तथा वृष राशि में जब सूर्य रहता है, तब ग्रीष्म ऋतु होती है। मिथुन तथा कर्क राशि में जब सूर्य रहता है, तब प्रावृट् ऋतु होती है। सिंह एवं कन्या राशि में जब सूर्य रहता है, तब वर्षा ऋतु होती है। तुला और वृश्चिक राशि में जब सूर्य रहता है, तब शरद् ऋतु होती है। धनुः तथा ग्राह (मकर) राशि में जब सूर्य रहता है, तब हेमन्त ऋतु होती है और कुम्भ तथा मीन राशि में जब सूर्य रहता है, तब वसन्त ऋतु होती है।

**वक्तव्य**–ऊपर जिस ऋतु-क्रम का वर्णन किया गया है, वह आयुर्वेदीय दृष्टि से दोष-संशोधन के लिए कहा गया है। इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए आप देखें–च० सू० अ० 6.4-8 तथा सु० सू० अ० 6.6 एवं 10। लोक-व्यवहार की दृष्टि से ऋतुओं का क्रम इस प्रकार है–

**संशोधनार्थ ऋतुक्रम**

| क्रम | मास | राशि | ऋतु |
|---|---|---|---|
| 1. | वैशाख, ज्येष्ठ | मेष, वृष | ग्रीष्म |
| 2. | आषाढ़, श्रावण | मिथुन, कर्क | प्रावृट् |
| 3. | भाद्रपद, आश्विन | सिंह, कन्या | वर्षा |
| 4. | कार्तिक, मार्गशीर्ष | तुला, वृश्चिक | शरत् |
| 5. | पौष, माघ | धनुः, मकर | हेमन्त |
| 6. | फाल्गुन, चैत्र | कुम्भ, मीन | वसन्त |

**व्यवहारार्थ ऋतुक्रम**

| क्रम | मास | राशि | ऋतु |
|---|---|---|---|
| 1. | चैत्र, वैशाख | मीन, मेष | वसन्त |
| 2. | ज्येष्ठ, आषाढ़ | वृष, मिथुन | ग्रीष्म |
| 3. | श्रावण, भाद्रपद | कर्क, सिंह | वर्षा |
| 4. | आश्विन, कार्तिक | कन्या, तुला | शरत् |
| 5. | मार्गशीर्ष, पौष | वृश्चिक, धनु | हेमन्त |
| 6. | माघ, फाल्गुन | मकर, कुम्भ | शिशिर |

### दोषों का चय, कोप, शम काल

**ग्रीष्मे सञ्चीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति।। 41।।**
**वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति।**
**हेमन्ते चीयते श्लेष्मा वसन्ते च प्रकुप्यति।। 42।।**
**प्रायेण प्रशमं याति प्वयमेव समीरणः।**
**शरत्काले वसन्ते च पित्तं प्रावृड् ऋतौ कफः।। 43।।**

ग्रीष्म ऋतु (वैशाख, ज्येष्ठ) में वायु (वातदोष) का संचय होता है और प्रावृट् ऋतु (आषाढ़, सावन) में उस (वातदोष) का प्रकोप होता है, अर्थात् वह रोगकारक होता है। वर्षा ऋतु (भाद्रपद, आश्विन) में पित्तदोष का संचय होता है और शरद् ऋतु (कार्तिक, मार्गशीर्ष) में उस पित्तदोष का प्रकोप होता है। हेमन्त ऋतु (पौष, माघ) में कफदोष का संचय होता है और वह कफदोष वसन्त ऋतु (फाल्गुन, चैत्र) में प्रकुपित होता है। प्रायः शरद् ऋतु में किसी प्रकार की चिकित्सा किये बिना ही वातदोष की शान्ति हो जाती है। इसी प्रकार वसन्त ऋतु में पित्तदोष और प्रावृड् ऋतु में कफदोष भी शान्त हो जाते हैं।

**वातादि दोषों की चय, प्रकोप, प्रशम तालिका**

| दोष | वात | पित्त | कफ |
|---|---|---|---|
| संचय | ग्रीष्म ऋतु<br>मेष, वृष<br>(वैशाख, ज्येष्ठ)<br>मध्याह्न काल | वर्षा ऋतु<br>सिंह, कन्या<br>(भाद्रपद, आश्विन)<br>दिन का चौथा प्रहर | हेमन्त ऋतु<br>धनु, मकर<br>(पौष, माघ)<br>उष:काल |
| प्रकोप | प्रावृड् ऋतु<br>मिथुन, कर्क<br>(आषाढ़, श्रावण)<br>अपराह्न काल | शरद् ऋतु<br>तुला, वृश्चिक<br>(कार्तिक, मार्गशीर्ष)<br>अर्धरात्रि काल | वसन्त ऋतु<br>कुम्भ, मीन<br>(फाल्गुन, चैत्र)<br>पूर्वाह्न काल |
| प्रशम | शरद् ऋतु<br>तुला, वृश्चिक<br>(कार्तिक, मार्गशीर्ष)<br>अर्धरात्रि काल | वसन्त ऋतु<br>कुम्भ, मीन<br>(फाल्गुन, चैत्र)<br>पूर्वाह्न काल | प्रावृड् ऋतु<br>मिथुन, कर्क<br>(आषाढ़, श्रावण)<br>अपराह्न काल |

**वक्तव्य**–यह भारतवर्ष का ही सौभाग्य है कि यहाँ बारह महीने, छः ऋतुएँ और दो अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन) होते हैं। यह व्यवस्था अन्यत्र नहीं है। इन परिवर्तनशील ऋतुओं तथा काल का प्रभाव प्राणिमात्र पर पड़ता है। कालप्रभाव के लिए देखें–सु० सू० अ० 6.14। इन्हीं ऋतुओं में वातादि दोषों का संचय, प्रकोप तथा प्रशम होता है, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है। चिकित्सा की दृष्टि से इस प्रकार होने वाले दोषों के संचय, प्रकोप आदि का ज्ञान परम आवश्यक होता है। इसे जानने वाला व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा भी कर सकता है। विशेष विवेचन के लिए देखें–सु० सू० अ० 6।

### यमदंष्ट्रा काल-परिचय

**कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावाग्रयणस्य च।**
**यमदंष्ट्रा समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति।।44।।**

कार्तिक मास के अन्तिम आठ दिन तथा अगहन (मार्गशीर्ष) मास में प्रारम्भ के आठ दिन, (कुल मिलाकर ये सोलह दिन), यमदंष्ट्रा (यमराज की दाढ़) कहे जाते हैं। इन दिनों कम खाने वाला ही जीवित (सुखपूर्वक) रह सकता है।

### चय आदि पर आहार-विहार का प्रभाव

**चयकोपशमा दोषा विहाराऽऽहारसेवनैः।**
**समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम्।।45।।**

ऊपर वात आदि दोषों के संचय, कोप, प्रशम के स्वाभाविक कालों (ऋतुओं) का वर्णन किया गया है, किन्तु उपर्युक्त कालों के विपरीत काल में भी समान गुण वाले (वात, पित्त, एवं कफकारक) आहारों तथा विहारों (रहन-सहन) का सेवन करने से भी उक्त दोषों का संचय तथा प्रकोप हो जाता है और इन दोषों के विपरीत गुण वाले आहार-विहारों का सेवन करने से उन दोषों का शमन हो जाता है।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोक प्राय: सभी संस्करणों में इसी प्रकार का देखा जाता है। हमारे विचार से इसका प्रथम पाद इस प्रकार होना चाहिये–'**चयकोपौ समा दोषाः**'। ऐसा पाठ स्वीकार कर लेने पर इसका अन्वय इस प्रकार होगा–'समा: दोषा: समानै: विहाराहारसेवनै: अकाले अपि चयकोपौ यान्ति'। क्या इतना सुस्पष्ट भाव उक्त पाठ से प्राप्त हो सकता है? कभी नहीं। '**विपरीतैर्विपर्ययम्**' इस पद्यांश में पठित 'विपर्यय' शब्द 'चय-कोप' के विपरीत 'शम' शब्द की अभिव्यक्ति कराने में स्वयं समर्थ है। इस प्रसंग को विस्तृत रूप से समझने के लिए आप च० सू० अ० 1.43, च० वि० अ० 1.7 तथा च० शा० अ० 6.10 का अवलोकन करें। आपको स्वयं प्रसंगोचित तथ्यों की प्रतीति होने लगेगी।

यदि हम समान गुण वाले आहार-विहार का सेवन करने से यह चाहें कि उस दोष का शम (शमन या शन्ति) हो जाये तो क्या यह कभी सम्भव हो सकता है? जैसे–रूक्षताकारक आहार-विहारों से वायु की वृद्धि तो होती है, क्या कोई विचारशील पुरुष यह भी स्वीकार कर सकता है कि ऐसे आहार-विहारों से वातदोष का शमन भी हो सकता है? फिर 'शम' शब्द का यहाँ क्या तात्पर्य है? आप ध्यान दें! वातदोष का संचय-काल ग्रीष्म ऋतु तथा इसका प्रकोप-काल प्रावृड् ऋतु है। इन दिनों यदि आप रोगी को वातनाशक आहार-विहारों का सेवन करायेंगे, तो वातदोष का संचय तथा प्रकोप नहीं हो पायेगा। इसी प्रकार अन्य दोषों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये।

### वातदोष का प्रकोप तथा प्रशम

**लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात् तथा।**
**प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिन्तारात्रिजागरैः।।46।।**
**अभिघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसङ्क्षयात्।**
**वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति।।47।।**

लघु (भार में हलके या शीघ्र पचने वाले) तथा रूक्ष (स्नेहरहित) आहार द्रव्यों का सेवन करने से, मिताहार (थोड़ा अर्थात् मात्रा से कम भोजन) करने से, अत्यन्त शीतल पदार्थों का सेवन करने से, शक्ति से अधिक परिश्रम करने से, कामवासना की पूर्ति न होने से, शोक से, भय से, चिन्ता से,

रात्रि में जागते रहने (समुचित नींद के न आने) से, चोट लगने से, शीतल जल में देर तक डुबकी लगाये रहने या स्नान करने से, रस आदि धातुओं का क्षय हो जाने से, भोजन के पच जाने पर, इन कारणों से प्रदोष (सायंकाल) में वातदोष का प्रकोप होता है और इनके विपरीत आहार-विहारों का सेवन करने से वातदोष का शमन हो जाता है।

### पित्तदोष का प्रकोप तथा प्रशम

**विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् ।**
**मध्याह्ने क्षुत्तृषो रोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रके।। 48।।**
**पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति।**

दाहकारक, कटु (चरपरे, मिर्च आदि), खट्टे तथा उष्ण भोज्य पदार्थों का सेवन करने से अत्यन्त उष्ण (गर्मी, धूप, तथा पञ्चाग्नि आदि) का सेवन करने से, भूख तथा प्यास को रोकने से मध्याह्न काल (दोपहर) में, भोजन के पचते समय एवं आधी रात में, इन कारणों से तथा उक्त कालों में पित्तदोष प्रकुपित होता है और इनके विपरीत आहार-विहारों का सेवन करने से शान्त हो जाता है।

### कफदोष का प्रकोप तथा प्रशम

**मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया ।। 49।।**
**मन्देऽग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथाऽश्रमात्।**
**श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति।। 50।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे भैषज्याख्यानकं नाम द्वितीयोऽध्यायः।। 2।।**

मीठे, चिकने, तथा शीतल, आदि (गुरु, पिच्छिल, गुण वाले) आहार द्रव्यों का सेवन करने से, दिन में सोने से, जठराग्नि के मन्द पड़ जाने से, प्रातःकाल, भोजन कर लेने के तत्काल बाद तथा परिश्रम न करने से कफदोष प्रकुपित हो जाता है और इनके विपरीत आहार-विहारों का सेवन करने से उसकी शान्ति हो जाती है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्यादि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त।। 2।।

## तृतीयोऽध्यायः
# नाडीपरीक्षादिविधिः

**नाड़ी-परीक्षा का स्थान**

**करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी।**
**तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः।।1।।**

हाथ के अँगूठे के मूल में जो धमनी (स्पर्श द्वारा देखी जाती) है, वह जीव (जीवात्मा) की साक्षिणी (गवाही देने वाली) है, अर्थात् इसके माध्यम से जीव की सत्ता का ज्ञान किया जा सकता है। इसकी चेष्टा (गति-विशेष) से नाड़ी-विशेषज्ञ शरीर के सुख तथा दुःख का ज्ञान कर सकता है।

**वक्तव्य**–आयुर्वेदीय चिकित्सा में नाड़ी-परीक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व है, जिसे चिरकाल से विद्वत्समाज स्वीकार करता चला आ रहा है। चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन संहिताओं में नाड़ी-परीक्षा का कोई स्वतन्त्र प्रकरण उपलब्ध नहीं होता है। किन्तु दूतनाड़ी-विशेषज्ञ 108 श्री सत्यदेव वासिष्ठ (भिवानी-निवासी) उक्त संहिताओं में नाड़ीज्ञान समर्थक सूत्रों की सत्ता को स्वीकार करते हैं।

**करस्याङ्गुष्ठमूले**–हाथ दो होते हैं। आचार्य ने किस हाथ के अँगूठे के मूल वाली धमनी की ओर संकेत किया है, इसका यहाँ कोई स्पष्ट निर्देश नहीं किया है। अतः इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया जा रहा है–पुरुषों के दाहिने हाथ की और स्त्रियों के बाँयें हाथ की धमनी देखनी चाहिये। इस प्रकार के उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। नाड़ी सम्बन्धी विशेष परिचय के लिए देखें–1. नाड़ीविज्ञान-महर्षिकणाद प्रणीत, 2. नाड़ीपरीक्षा-रावणकृत, 3. नाड़ी-परीक्षा-अग्निवेश लिखित तथा 4. नाड़ीतत्त्वदर्शन- श्रीसत्यदेव वासिष्ठ रचित।

**नाड़ी की उपयोगिता**–नाड़ीज्ञान गुरु-परम्परा के उपदेशों तथा अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। इसके प्राप्त हो जाने पर वह चिकित्सक अत्यन्त यशस्वी कहा एवं माना जाता है, क्योंकि नाड़ी द्वारा वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व, सन्निपात, रस, रक्त आदि का तथा साध्य-असाध्य का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। निदान का यही एक आयुर्वेदीय अनुपम साधन है, जिससे मूक तथा बेहोश आदमी की वास्तविक शारीरिक स्थिति को भी समझा जा सकता है।

**धमनी द्वारा दोषों का ज्ञान**–हृदय धमनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में रक्त को सदैव प्रवाहित करता रहता है। इन धमनियों का फैलाव सम्पूर्ण शरीरावयवों में रहता है; केवल मांसपेशियों से ढँकी हुई धमनियों का स्पर्शज्ञान स्पष्ट रूप से नहीं होता। नाड़ी के अतिरिक्त ग्रीवा के दोनों ओर तथा गुल्फ के समीप भी नाड़ी का स्पर्श करके वही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, जो अँगूठे के मूल में रहने वाली धमनी के स्पर्श से करने के लिए कहा गया है। जीवित पुरुष में ही इस नाड़ी की धमन-क्रिया को देखा जा सकता है, क्योंकि इसका एक विशेषण है-'जीवसाक्षिणी' और यही सुख (स्वस्थता) तथा दुःख (रुग्णता) की सूचना अपनी विशेष गति द्वारा 'नाड़ी-विशेषज्ञ' को प्रदान करती है।

**वातदोष में नाड़ी की गतियाँ**

**नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौका-सर्पयोर्गतिम्।**

वातदोष के प्रकुपित होने पर नाड़ी जलौका (जोंक) तथा साँप की भाँति चलती है, अर्थात् इन मति-विशेषों पर चिकित्सक को निरन्तर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इन प्राणियों की गतियाँ अनेक प्रकार की देखी जाती हैं।

**पित्तदोष में नाड़ी की गतियाँ**

**कुलिङ्ग-काक-मण्डूकगतिं पित्तस्य कोपतः।।2।।**

पित्तदोष का प्रकोप होने पर नाड़ी की गति कलिंग (गृहचटक, गौरैया), कौआ तथा मण्डूक (मेंढक) के समान होती है। ये सभी प्राणी फुदक-फुदक कर चलते हैं।

### कफदोष में नाड़ी की गतियाँ

**हंस-पारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः।**

कफदोष का प्रकोप होने पर नाड़ी की गति हंस तथा पारावत (परेवा, कबूतर) के समान होती है। ये पक्षी स्वभावतः मन्दगामी होते हैं।

### सन्निपात में नाड़ी की गतियाँ

**लाव-तित्तिर-वर्तीनां गमनं सन्निपाततः॥ 3॥**

सन्निपात (तीनों दोषों का मिश्रण) होने पर नाड़ी कभी लाव (लवा नामक) पक्षी की भाँति तिरछी गति वाली, कभी तित्तिर (तीतर) की भाँति शीघ्र गति वाली और कभी वर्ती (बत्तख) के समान धीर गति वाली देखी जाती है।

**वक्तव्य**–आप इनकी गतियों पर ध्यान देंगे, तो आपको वात, पित्त तथा कफ दोषों के लक्षण स्वतन्त्र क्रम से देखने को मिलेंगे।

### द्विदोषज तथा असाध्य नाड़ी की गतियाँ

**कदाचिन्मन्दगमना कदाचिद् वेगवाहिनी।**
**द्विदोषकोपतो ज्ञेया, हन्ति च स्थानविच्युता॥ 4॥**

द्विदोष (दो-दो दोषों) के प्रकोप से प्रभावित नाड़ी कभी धीरे और कभी वेग से चलने (फड़कने) लगती है। जब कभी वह अपने स्थान से विच्युत हो जाती है, अर्थात् उसका स्पन्दन प्रतीत नहीं होता है, तो वह रोगी को मार डालती है। इसका तात्पर्य है कि वह रोगी के असाध्य होने की सूचना दे रही है।

**वक्तव्य**–'स्थानविच्युता' अर्थात् अपने स्थान से हट जाना। यह लक्षण दस्तों के अधिक हो जाने पर या विसूचिका (हैजा) आदि रोगों में भी देखा जाता है। ऐसे रोगियों की यदि तत्काल चिकित्सा कर ली जाती है तो नाड़ी पुनः अपने स्थान पर आ जाती है, नहीं तो असाध्य तो वह हो ही गया है।

### प्राणनाशिनी नाड़ी

**स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी।**
**अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हन्त्यसंशयम्॥ 5॥**

जो धमनी रुक-रुककर अर्थात् दो-दो, तीन-तीन, सेकेण्ड तक रुक कर चलती है, वह मारने वाली होती है और अत्यन्त क्षीण (जो स्पर्श करने पर बहुत ही धीमी ज्ञात होती है) तथा शीत स्पर्श वाली धमनी भी जीवन को अवश्य नष्ट कर देती है। (इन सभी अवस्थाओं में उचित चिकित्सा करने पर कभी-कभी रोगी बच भी जाया करते हैं।)

**वक्तव्य**–अर्श या बवासीर, आमवात तथा वातज प्रमेह आदि रोगों के लक्षणों में 'हृद्ग्रह' नामक लक्षण कहा है। इसलिये उक्त रोगों के रोगियों की नाड़ी ठहर-ठहर कर चला करती है, परन्तु यह प्राणनाशिनी नहीं होती। जिन रोगों में 'हृदयस्तम्भ' नामक लक्षण कहा है, उन रोगों में हृदय-स्तम्भ या हार्टफेल से मृत्यु हो जाती है और जिनमें 'हृद्द्रव' नामक लक्षण कहा है, उन रोगों में नाड़ी की गति-संख्या बढ़ जाती है।

### ज्वर आदि में नाड़ी की गति

**ज्वरकोपे तु धमनी सोष्णा वेगवती भवेत्।**
**कामक्रोधाद् वेगवहा क्षीणा चिन्ताभयप्लुता॥ 6॥**

ज्वर का प्रकोप होने पर धमनी कुछ उष्ण तथा शीघ्रगामिनी हो जाती है। काम (मैथुन की इच्छा) से तथा क्रोध से वह जल्दी-जल्दी चलती है और चिन्ता तथा भय से क्षीण (पतली या हीनवेग) हो जाती है।

### मन्दाग्नि आदि में नाड़ी की गति

**मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत्।**
**असृक्पूर्णा भवेत् कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी॥ 7॥**

मन्दाग्नि (जिसकी पाचनशक्ति घट गयी है) तथा क्षीणधातु (जिसके धातु घट गये हैं) मनुष्य की धमनी अत्यन्त मन्द (वेगहीन) हो जाती है, रक्तविकार से कुछ उष्ण एवं भारी होती है और आमदोष (गठिया, आमवात, ऊरुस्तम्भ आदि रोगों) से धमनी अत्यन्त भारी प्रतीत होती है।

**वक्तव्य**–'आहारस्य रसः शेषो यो न पक्वोऽग्निलाघवात्। स मूलं सर्वरोगाणाम् 'आम' इत्यभिधीयते'॥ अर्थात् जो आहार रस अग्नि की दुर्बलता के कारण नहीं पका या पच सका वही सब रोगों का कारण होता है और उसे 'आम' कहते हैं।

### स्वस्थ आदि पुरुषों की नाड़ी

**लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता।**
**सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती स्मृता॥ 8॥**
**चपला क्षुधितस्य स्यात् तृप्तस्य वहति स्थिरा।**

दीप्ताग्नि (जिसकी पाचनशक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है) जैसे भस्मक रोग में मनुष्य की धमनी हल्की एवं शीघ्र-शीघ्र चलती है। सुखी या नीरोग मनुष्य की धमनी स्थिर या उचित गतियुक्त एवं बलवान् होती है तथा भूखे मनुष्य की चञ्चल और तृप्त (भोजन किये हुये) मनुष्य की धमनी धीरतायुक्त होती है।

**वक्तव्य**–मनुष्य की विभिन्न अवस्थाओं में धमनी की

गति या धमन भी भिन्न-भिन्न होता है, जैसा कि उपर्युक्त श्लोकों द्वारा कहा गया है। वस्तुत: धमनी का धड़कना हृदय की धड़कन का सूचक है अर्थात् जितनी बार हृदय रक्त को शरीर की ओर प्रेरित करता है, उतनी ही बार धमनी उभरती हुई मालूम होती है। स्वस्थ एवं आराम से बैठे हुये मनुष्य की धमनी प्रति मिनट (एक मिनट में) निम्न प्रकार फड़कती है। जन्म से 5 मास तक प्रति मिनट 115 से 140 बार फड़कती है।

| आयु | एक मिनट में |
|---|---|
| 6 मास से 1 वर्ष | 115 से 105 बार |
| 2 वर्ष से 6 वर्ष | 105 से 90 बार |
| 7 वर्ष से 10 वर्ष | 90 से 80 बार |
| 11 वर्ष से 14 वर्ष | 80 से 75 बार |
| 15 वर्ष से 60-70 वर्ष | प्राय: 75 से 70 बार |
| 70 वर्ष के पश्चात् | 85 से 80 बार |

आप किसी की धमनी के मन्द, स्थिर अथवा वेगवती होने का निर्धारण इन आँकड़ों को मन में रखकर ही कर सकेंगे। अत: इन्हें स्मरण रखना चाहिये और घड़ी देखते हुये सावधान होकर धमनी की गतियों को गिन लेना चाहिये। अधिकांश चिकित्सक नाड़ी देखकर रोग को पूर्णरूप से जान लेने का प्रयत्न करते हैं और रोगी भी चाहते हैं, कि वैद्य केवल नाड़ी देखकर सर्वथा रोग को जान लें और उनका खाया-पिया भी बतला दें; यह कहाँ तक सम्भव है? इस बात को बुद्धिमान् चिकित्सक तथा रोगी स्वयं समझ सकते हैं। महर्षियों ने रोग-विनिश्चय के लिए अपनी सम्मति इस प्रकार दी है-'विदितवेदितव्यास्तु, भिषज: सर्वं सर्वथा यथासम्भवं परीक्ष्यं परीक्ष्य अध्यवस्यन्तो, न क्वचिदपि विप्रतिपद्यन्ते यथेष्टमर्थमभिनिर्वर्त्तयन्ति चेति'। अर्थात् विद्वान् वैद्य सम्पूर्ण रोग को यथाशक्ति भली-भाँति निश्चित करते हुये कहीं भी धोखा नहीं खाते और सफलता प्राप्त कर लेते हैं (च० चि० अ० 7)। 'प्रत्यक्षतस्तु खलु रोगतत्त्वं बुभुत्सु: सर्वैरिन्द्रियै: सर्वान् इन्द्रियार्थान् आतुरशरीरगतान् परीक्षेताऽन्यत्र रसज्ञानात्'। (च० चि० अ० 4)। 'तस्योपलब्धिर्निदानपूर्वरूपलिङ्गोपशयसम्प्रातित:।' (च० नि० अ० 1) अर्थात् रोग को निदान, पूर्वरूप, लक्षण, उपशय एवं सम्प्राप्ति से जानना चाहिये। यही बात सु० सू० अ० 10 में तथा वाग्भट सू० अ० 1 में भी कही गयी है। वस्तुत: कुशल चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा विविध प्रकार के तत्सम्बन्धित प्रश्नों द्वारा रोग का निश्चय करे।

### नेत्र-परीक्षा

(नेत्रं स्यात् पवनादूक्षं धूम्रवर्णं तथाऽरुणम्।। 9।।
कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्धविलोकनम्।
हरिद्राखण्डवर्णं वा रक्तं वा हरितं तथा।। 10।।
दीपद्वेषि सदाहं च नेत्रं स्यात् पित्तकोपत:।
चक्षुर्वलासबाहुल्यात् स्निग्धं स्यात् सलिलप्लुतम्।। 11।।
तथा धवलवर्णं च ज्योतिर्हीनं मलान्वितम्।
नेत्रं द्विदोषबाहुल्यात् स्याद् दोषद्वयलक्षणम्।। 12।।
त्रिदोषदूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत्।
त्रिलिङ्गं सलिलस्त्रावि प्रान्तेनोन्मीलयत्यपि।। 13।।
इति नेत्रं परीक्षेत शेषं रोगानुरूपत:।)

नाड़ी के समान नेत्र की भी परीक्षा करे। वायु की वृद्धि से नेत्र रूक्ष, धूमिल तथा अरुण (कालापन लिये लाल) होता है, कोने में गया हुआ तथा धँसा हुआ और स्तब्ध प्रतीत होता है। पित्त के कोप से नेत्र हल्दी के वर्ण वाला, लाल अथवा हरा दीप तथा प्रकाश का द्वेषी और दाहयुक्त होता है। कफ की अधिकता से नेत्र चिकना, जल से भीगा हुआ श्वेत, ज्योति से हीन तथा मैला होता है। दो दोषों की अधिकता से दो दोषों के लक्षणों से युक्त होता है और तीनों दोषों से दूषित नेत्र अत्यन्त धँसा हुआ एवं तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त होता है और नेत्रों से पानी जाता है तथा नेत्र खुले ही रहते हैं। यह दोषानुसार नेत्र-परीक्षा कही गयी है। शेष भिन्न-भिन्न रोगों के लक्षणों पर ध्यान देना उचित है।

### जिह्वा-परीक्षा

(शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटिता रसनाऽनिलात्।। 14।।
रक्ता श्यावा भवेत् पित्ताल्लिप्ताऽर्द्रा धवला कफात्।
सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितय लक्षणा।। 15।।
परिदग्धा खरस्पर्शा कृष्णा दोषत्रयाधिकै:।)

वायु के कोप से जीभ सागवान के पत्ते के समान खुरदरी या सूखी एवं फटी हुई होती है। पित्त के कोप से लाल एवं कुछ काली और कफ के कोप से चिपचिपाहट से युक्त, गीली एवं सफेद होती है। दो-दो दोषों के कोप से दो-दो दोषों के उपर्युक्त लक्षणों से युक्त और तीनों दोषों के कोप से चारों ओर से जली हुई-सी, खुरदरी तथा काली होती है।

### मूत्र-परीक्षा

(वातेन पाण्डुरं मूत्रं पीतं नीलं च पित्तत:।। 16।।
रक्तमेव भवेद् रक्ताद् धवलं फेनिलं कफाद्।)

वायु की अधिकता से मूत्र कुछ पीला, पित्त की अधिकता से अत्यन्त पीला एवं नीला रक्त की अधिकता से लाल एवं कफ की अधिकता से श्वेत और झाग से युक्त होता है।

**वक्तव्य**—रोगी के शरीर पर वायु आदि दोषों का प्रभाव पड़ने से भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं। अतः चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह उन परिवर्तनों पर विशेष रूप से ध्यान दे। रोग का निदान करते समय वह रोगी के आँख, जीभ, तथा मल-मूत्र आदि को ध्यानपूर्वक देखकर दोषों के बलाबल का निश्चय करे।

### दूत-परीक्षा

**दूताः स्वजातयोऽव्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः।। 17।।**
**सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः।**
**सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संश्रिताः।। 18।।**
**भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे।**
**(यस्यां प्राणमरुद्वाति सा नाडी जीवसंयुता।। 19।।)**

जो दूत (रोगी का समाचार लेकर अथवा वैद्य को बुलाने के लिए जो मनुष्य वैद्य के पास जाता है वह 'दूत' कहा जाता है) रोगी के स्वजाति के हों, अंगहीन (काने, लंगड़े आदि) न हों, चतुर हों, निर्मल वस्त्र धारण किये हों, घोड़े अथवा बैल (भारतवर्ष में बैल पर सवारी नहीं की जाती, किन्तु भूटान और तिब्बत आदि देशों में की जाती है) पर चढ़कर आये हों स्वयं सुखी या स्वस्थ हों, वैद्यजी को अर्पण करने के लिए श्वेत पुष्प अथवा फल साथ लिये हों, अच्छी जाति (रोगी की अपेक्षा) के हों, अच्छी चेष्टा (व्यवहार) वाले हों, सजीव दिशा में (सजीव दिशा वह होती है, जिस दिशा या ओर का नासा-स्वर चल रहा हो) आकर बैठे हों और उचित समय (जब वैद्य जी दूसरे कार्य में न लगे हों) पर वैद्य जी के पास आये हों, वे रोगी के लिए सुखदायक होते हैं।

**वक्तव्य**—नासिका द्वारा जो श्वास वायु आता-जाता है वह एक नासापुट से खुलासा और दूसरे से रुककर आता-जाता है, एक समय दाएँ से खुलासा और बाएँ से रुककर, दूसरे समय बाएँ से खुलासा और दाएँ से रुककर आता है; इसे ध्यानपूर्वक देखें। दूत से सम्बन्धित अन्य बातें सु० सू० अ० 29 में तथा च० इ० अ० 12 में देखें।

### दूत के शकुन

**वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते।**
**न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम्।।20।।**

वैद्य जी को बुलाने के लिए जाते हुये दूत को मार्ग में यदि अच्छे सगुन दिखलायी दें तो वे रोगी के लिए अशुभ होते हैं और बुरे सगुन हों तो रोगी के लिए अच्छे होते हैं।

### वैद्य के शकुन

**चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम्।**
**यात्रेयं सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम्।। 21।।**

रोगी को चिकित्सा करने के लिए जाते हुये वैद्य को मार्ग में यदि शुभ शकुन प्रतीत हों तो (रोगी के लिए और वैद्य जी के लिए भी) अच्छे होते हैं और अशुभ हों तो बुरे होते हैं।

### चिकित्सा-योग्य रोगी के लक्षण

**निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः।**
**चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः।। 22।।**

जो रोगी अपने स्वभाव एवं वर्ण से युक्त हो, सत्त्व (शारीरिक एवं मानसिक बल) से युक्त हो, वैद्य जी का भक्त (आज्ञाकारी और श्रद्धालु) और जितेन्द्रिय (पथ्य रखने वाला) हो, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

**वक्तव्य**—उक्त श्लोक द्वारा रोगी की साध्यता का वर्णन किया गया है। इसके विपरीत रोगी को असाध्य समझना चाहिये। विशेष जानकारी के लिए—सु० सू० अ० 24, 30, 31, 32 और चरक-इन्द्रियस्थान देखें।

### वैद्य का लक्षण

**(तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती।**
**लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः।। 23।।**
**प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियंवदः।**
**सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते।। 24।।)**

जो शास्त्र के अर्थ एवं तात्पर्य को समझता हो, जिसने औषध निर्माण आदि देखा हो, जो स्वयं कार्य करता हो, शीघ्रकारी, पवित्र एवं उत्साही हो, जिसके पास औषधियाँ तैयार हों, जिसको समय पर कार्यप्रणाली सूझ जाये, बुद्धिमान्, लगन वाला, प्रियवादी, सत्यवादी तथा जो धर्मात्मा हो वह वैद्य प्रशंसा के योग्य होता है।

### परिचारक का लक्षण

**(स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान् युक्तो व्याधितरक्षणे।**
**वैद्यवाक्यकृदश्रान्तो युज्यते परिचारकः।। 25।।)**

जो रोगी का स्नेही या प्रेमी हो, निन्दक न हो, बलवान् हो, रोगी की सेवा में तत्पर हो, वैद्य के कथनानुसार कार्य करे और थके नहीं, ऐसा 'परिचारक' योग्य होता है।

### भेषज का लक्षण

**(प्रशस्तदेशे सञ्जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम्।**
**अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम्।। 26।।**
**दोषघ्नमग्लानिकरमधिकं न विकारि यत्।**
**समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं स्याद् गुणावहम्।। 27।।)**

उत्तम स्थान में उत्पन्न हुआ हो, उत्तम दिन नें उखाड़ा गया हो, मात्रा थोड़ी और गुण बहुत हों, उचित गन्ध, वर्ण तथा रस से युक्त हो, दोषनाशक हो, ग्लानि न करे, अधिक खा लेने पर भी विकारकारी न हो और उचित समय पर दिया गया हो–ऐसी औषधि (दवा) गुणदायक होती है।

### चिकित्सा के चार पाद

**(भिषग् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।**
**गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये।। 28।।)**

भिषक् अर्थात् चिकित्सक, द्रव्य अर्थात् भेषज या औषधियाँ, उपस्थाता अर्थात् परिचारक तथा रोगी–ये चारों चिकित्सा के पाद कहे जाते हैं। यदि ये अपने-अपने उचित गुणों से युक्त हों तो विकार की शान्ति में कारण होते हैं।

### विविध प्रकार के दु:स्वप्न

**स्वप्नेषु नग्नान् मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान्।**
**व्यङ्गांश्च विकृतान् कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि।। 29।।**
**बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान्।**
**महिषोष्ट्रखरारूढान् स्त्रीपुंसो यस्तु पश्यति।। 30।।**
**स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम्।**
**अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते।। 31।।**
**श्वापदैर्हन्यते योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत्।**
**यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत्।। 32।।**
**तैलं सुरां पिबेद् वापि लोहं वा लभते तिलान्।**
**पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशेत् कूपं रसातलम्।। 33।।**
**स स्वस्थो लभते रोगं रोगी यात्येव पञ्चताम्।**

जो मनुष्य स्वप्न में नंगे, मूँड़े हुये, लाल तथा काले कपड़ों वाले, अंगहीन, विकृत (कोढ़ी आदि), काले, हथकड़ी या जाल लिये हुये, शस्त्रधारी, किसी को बाँधते हुये या मारते हुये दक्षिण दिशा की ओर खड़े हुये भैंसे, ऊँट एवं गधे पर चढ़े हुये स्त्री-पुरुषों को देखता है, वह स्वस्थ हो तो रोग को प्राप्त होता है और यदि रोगी है तो मृत्यु को प्राप्त होता है। जो मनुष्य स्वप्न में ऊँचे स्थान से गिरता है, जल अथवा आग में विलीन हो जाता है, श्वापद (कुत्ते के समान पाँव वाले सिंह, चीता आदि) जन्तुओं द्वारा मारा या घायल किया जाता है, मत्स्य (मगर, घड़ियाल) एवं अजगर आदि द्वारा निगला जाता है, जिसकी आँखें नष्ट हो जाती हैं, जलाया हुआ दीपक बुझ जाता है, तैल अथवा शराब पीता है, लोहा अथवा तिलों को प्राप्त करता है, पक्वान्न (पूरी, कचौड़ी आदि) खाता है और कुएँ अथवा पृथ्वी के भीतर (दरार आदि में) प्रवेश करता है; वह यदि स्वस्थ है तो रोग को प्राप्त हो जाता है और रोगी है तो मर जाता है।

### दु:स्वप्नों के प्रायश्चित्त

**दु:स्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित्।। 34।।**
**स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानथ।**
**पठेत् स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत्।। 35।।**
**कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दु:स्वप्नात् परिमुच्यते।**

उपर्युक्त बुरे स्वप्नों को देखकर किसी से न कहे (किन्तु वैद्य जी तथा आचार्य के पास तो कहना ही पड़ेगा और कहना भी चाहिये) और प्रात:काल स्नान (यदि किसी ज्वर आदि रोग से पीड़ित न हो तो उस दशा में मानसिक स्नान कर लेना चाहिये) तथा सोना अथवा तिलों का दान करे। देवताओं के स्तोत्र (विष्णुसहस्रनाम आदि) पढ़े (अनपढ़ मनुष्य केवल ईश्वर का स्मरण ही करे) और रात्रि को देव-मन्दिर में निवास करे। इस प्रकार तीन दिन पर्यन्त करने से दु:स्वप्नों के दोषों से मुक्त हो जाता है।

### शुभ स्वप्न

**स्वप्नेषु यः सुरान् भूपाञ्जीवतः सुहृदो द्विजान्।। 36।।**
**गोसमिद्धाग्नितीर्थानि पश्येत् सुखमवाप्नुयात्।**

जो मनुष्य स्वप्न में देवताओं को, राजाओं को, जीवित मित्रों को, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को, गौओं को, हवनकुण्ड में जलती हुई आग को तथा तीर्थ (काशी आदि अथवा नदियों के घाटों) स्थानों को देखता है, वह सुख को प्राप्त होता है।

**तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि।। 37।।**
**आरुह्य सौधगोशैलकरिवाहान् सुखी भवेत्।**

जो मनुष्य स्वप्न में मैले जलों (नालों या गन्दी नालियों) को तैरकर पार कर जाता है, शत्रुओं के झुण्डों या जत्थों को जीत लेता है और सौध (चूने से पुते हुये घर या हवेली) पर, गाय या बैल, पहाड़, हाथी और घोड़े पर चढ़ता है वह सुखी होता है।

**शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसमत्स्यफलानि च।। 38।।**
**प्राप्यातुरः सुखी भूयात् स्वस्थो धनमवाप्नुयात्।**

सपने में सफेद फूलों, सफेद कपड़ों, मांस, मछली तथा फलों को प्राप्त कर रोगी नीरोग हो जाता है और स्वस्थ मनुष्य धन को प्राप्त करता है।

**अगम्यागमनं लेपो विष्ठया रुदितं मृतिः।। 39।।**
**आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्याप्तये विदुः।**

स्वप्न में जो अगम्या (माता, बहिन और पुत्री आदि) से गमन (मैथुन), पुरीष (मल) का लेप, रोना, मृत्यु तथा कच्चे मांस का भक्षण करता है तो वह धन और आरोग्य की प्राप्ति के लिए होता है।

**जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वापि यं दशेत्।। 40।।**
**रोगी स भूयादुल्लाघः स्वस्थो धनमवाप्नुयात्।। 41।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः।। 3।।**

स्वप्न में जिस मनुष्य को जोंक, भौंरा, साँप और मक्खियाँ काटती हैं, वह यदि रोगी है तो स्वस्थ हो जाता है और यदि स्वस्थ है तो उसे धन की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र डॉ० **ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त।। 3।।
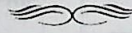
## चतुर्थोऽध्यायः
# दीपनपाचनादिकथनम्

### दीपन-पाचन द्रव्यों के लक्षण

**पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशिः।**
**पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद् यत्तद्धि पाचनम्।। 1।।**
**नागकेशरवद् विद्याच्चित्रो दीपन-पाचनः।**

जो द्रव्य (पदार्थ) आम को नहीं पकाता है, किन्तु अग्नि (पाचनशक्ति या पाचक रसों को) बढ़ाता है, वह 'दीपन' कहा जाता है, जैसे-सौंफ। और जो द्रव्य आम को पकाता है, किन्तु अग्नि को नहीं बढ़ाता है वह 'पाचन' कहा जाता है, जैसे-नागकेसर। जो द्रव्य दोनों कार्य करता है वह 'दीपन-पाचन' कहा जाता है, जैसे-चित्रक।

**वक्तव्य**-जरा विचार कीजिये-जो द्रव्य दीपन अर्थात् अग्निवर्द्धक है, वह आम को अवश्य पकायेगा फिर उसे 'पाचन' क्यों न माना जाये और इसी प्रकार जो द्रव्य 'पाचन' कहा जाता है, वह अग्नि को बढ़ाए बिना कैसे आम को पका सकेगा? ध्यान दें-जो द्रव्य केवल अग्नि को बढ़ाता है, वह भले ही अग्नि को बढ़ाकर उसके द्वारा पाचन करता हुआ 'पाचन' कहा जा सकता है, किन्तु वह 'दीपन' ही कहा जायेगा 'पाचन' नहीं, क्योंकि यदि कोई किसी से किसी काम को करवाता है, तो वह सीधा 'कर्ता' नहीं कहा जा सकता। वह 'कर्ता' तभी कहा जा सकेगा, जब वह स्वयं उस काम को करेगा। अथवा इसे इस प्रकार समझें-चूल्हे में जो लकड़ी डाली जाती है, वह 'दीपन' या 'अग्निवर्धक' कही जा सकती है, वह पाचन नहीं, क्योंकि वह बादाम या सुपाड़ी आदि द्रव्यों को तब तक नहीं पका सकती, जब तक उनमें कोई क्षार न डाला जाये। इसी प्रकार लकड़ी 'दीपन' और क्षार 'पाचन' कहा जायेगा।

### शमन द्रव्य का लक्षण

**न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।। 2।।**
**समीकरोति विषमाञ्शमनं तद्यथाऽमृता।**

जो द्रव्य सम (प्रकृतिस्थ) दोषों को न तो शरीर से बाहर ही निकालता और न कुपित ही करता है, किन्तु बढ़े हुये अथवा घटे हुये दोषों को जो सम या प्रकृतिस्थ कर देता है, उसे 'शमन' कहते हैं, जैसे-'गुरुच'।

**वक्तव्य**-दोष का शमन सात प्रकार से होता है-1. पाचन, 2. दीपन, 3. लंघन, 4. प्यासा रहने, 5. व्यायाम करने, 5. आतप (धूप) सेवन एवं 7. वायु सेवन से।

### अनुलोमन द्रव्य का लक्षण

**कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बन्धमधो नयेत्।। 3।।**
**तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी।**

जो द्रव्य मलों को पकाकर और उनके बन्ध (गाँठों) को तोड़कर नीचे (गुदमार्ग से अथवा अपने मार्ग से) बाहर निकाल देता है, उसे 'अनुलोमन' कहते हैं, जैसे-हरड़।

**वक्तव्य**-उलटे मार्ग में जाते हुये वातादि दोषों को स्वमार्गगामी बनाने वाला द्रव्य भी 'अनुलोमन' कहा जाता है।

### स्रंसन द्रव्य का लक्षण

**पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।। 4।।**
**नयत्यधः स्रंसनं तद् यथा स्यात् कृतमालकम्।**

जो द्रव्य उदर में चिपके हुये पकाने योग्य (आम) मलादि तो पकाये बिना (अपक्व को) ही गुदमार्ग से निकाल देता है, उसे 'स्रंसन' (सरकाने वाला) द्रव्य कहा जाता है, जैसे-अमलतास की गुद्दी।

### भेदन द्रव्य का लक्षण

**मलादिकमबद्धं यद् बद्धं वा पिण्डितं मलैः।। 5।।**
**भित्त्वाधः पातयति तद् भेदनं कटुकी यथा।**

जो द्रव्य ढीले अथवा बँधे हुये अथवा वात आदि दोषों द्वारा पिण्डित (गाँठ बने हुये) मल को तोड़-फोड़कर नीचे

गिरा देता है, उसे 'भेदन' या फोड़ने वाला कहा जाता है, जैसे–कुटकी।

### रेचन द्रव्य का लक्षण

**विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्॥6॥**
**रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा।**

जो द्रव्य पके हुये अथवा न पके हुये, मलादि को पतला कर देता है और उसे निकाल भी देता है, उस द्रव्य को 'रेचन' कहते हैं, जैसे–निसोत।

**वक्तव्य**–अनुलोमक, स्त्रंसक, भेदक और रेचक ये चारों द्रव्य विरेचन (दस्त) कराते हैं। अत: इस प्रकार के सभी द्रव्य 'दस्तावर' कहे जाते हैं।

### वमन द्रव्य का लक्षण

**अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत् तु यत्॥7॥**
**वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा।**

जो द्रव्य अपक्व (आमाशय स्थित आम आहार को भी) या न पके हुये पित्त एवं कफ को बलपूर्वक ऊपर (मुखमार्ग) से बाहर निकाल देता है। वह वमन कहा जाता है, जैसे–मैनफल।

**वक्तव्य**–वमन द्रव्य उलटी या कै कराते हैं।

### शोधन द्रव्य का लक्षण

**स्थानाद् बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसञ्चयम्॥8॥**
**देहसंशोधनं तत् स्याद् देवदाली फलं यथा।**

जो द्रव्य मलों को उनके स्थान से मुखमार्ग अथवा गुदमार्ग द्वारा बाहर निकाल देता है, वह देहसंशोधन या 'शोधन' कहा जाता है, जैसे–देवदाली फल।

**वक्तव्य**–यह द्रव्य उलटी और दस्त दोनों कराता है। शोधन पाँच प्रकार से होता है–1. निरूहण वस्ति से, 2. वमन से, 3. विरेचन से, 4. शिरोविरेचन से तथा 5. सिरावेध आदि विधियों द्वारा रक्त निकालने से।

### छेदन द्रव्य का लक्षण

**श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद् बलात्॥9॥**
**छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु।**

जो द्रव्य सटे या चिपके हुये कफ आदि दोषों को बलपूर्वक उखाड़ देता है, वह 'छेदन' या काटने वाला कहा जाता है, जैसे–जौखार आदि क्षार, काली मरिच और शिलाजीत।

### लेखन द्रव्य का लक्षण

**धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्॥10॥**
**लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवा:।**

जो द्रव्य सम्पूर्ण शरीर की धातुओं और मलों को सुखाकर उखाड़ या छील कर निकाल देता है, वह 'लेखन' कहा जाता है, जैसे–शहद, गरम जल, वच और जौ।

**वक्तव्य**–छेदन तथा लेखन ये दोनों द्रव्य शरीर के भीतर जमे हुये दोषों को निकाल कर बाहर कर देते हैं।

### ग्राही द्रव्य का लक्षण

**दीपनं पाचनं यत् स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्॥11॥**
**ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली।**

जो द्रव्य दीपन (अग्निवर्द्धक) हो, पाचक हो तथा उष्ण होने से द्रव (मल के पतलेपन) को सुखाने वाला हो, उसे 'ग्राही' कहते हैं जैसे–सोंठ, जीरा और गजपीपल।

### स्तम्भन द्रव्य का लक्षण

**रौक्ष्याच्छैत्यात् कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत्॥12॥**
**वातकृत् स्तम्भनं तत् स्याद् यथा वत्सकटुण्टुकौ।**

जो द्रव्य रूक्ष, शीत, कसैला और शीघ्रपाकी होने के कारण वातवर्द्धक होता है, उसे 'स्तम्भन' कहते हैं, जैसे–कुरैया की छाल और सोनापाठा।

**वक्तव्य**–ग्राही तथा स्तम्भन ये दोनों द्रव्य शरीर से बाहर निकलने वाली वस्तुओं को भीतर ही रोक देते हैं।

### रसायन द्रव्य का लक्षण

**रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्॥13॥**
**यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी।**

जो द्रव्य जरा (बुढ़ापा) और रोगों को नष्ट करता है, वह 'रसायन' कहा जाता है, जैसे–गिलोय, रुद्रवन्ती, गूगल और हरड़।

**वक्तव्य**–कुछ लोगों में युवावस्था में ही बाल सफेद होना, मुख या शरीर पर झुर्रियाँ पड़ना और इन्द्रियों का दुर्बल होना आदि बुढ़ापे के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रसायन औषधियों के सेवन से इसी प्रकार का जरा (बुढ़ापा) भी नष्ट होता है और स्वाभाविक जरा तो स्वाभाविक ही होता है और आकर ही रहता है तथा जाता भी नहीं। 'लाभोपायो हि शस्तानां रसादीना रसायनम्'। च० चि० अ० 1.8।

**वाजीकरण द्रव्य का लक्षण**

**यस्माद् द्रव्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत्।। 14।।**
**यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुजम्।**

जिस द्रव्य (के सेवन) से स्त्रियों के सहवास (मैथुन-क्रिया) में अधिक हर्ष की प्राप्ति या उत्साह होता है, उसे 'वाजीकर' कहते हैं; जैसे-नागबला (खिरैंटी) तथा किवाँच आदि के बीज।

**वक्तव्य**-ये द्रव्य नपुंसकता को दूर कर वीर्य की वृद्धि भी कर सकते हैं।

**शुक्रल द्रव्य का लक्षण**

**यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते।। 15।।**
**यथाऽश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी।**

जिस द्रव्य से वीर्य (शुक्रधातु) की वृद्धि होती है, वह 'शुक्रल' कहा जाता है; जैसे-नागौरी असगन्ध, सफेद एवं काली मुसली, खाँड़ या चीनी और शतावर।

**शुक्र के प्रवर्तक तथा जनक द्रव्यों के लक्षण**

**दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च।। 16।।**
**प्रवर्तकानि कथ्यन्ते जनकानि च रेतसः।**

दूध, उड़द, भिलावा (शुद्ध), फलों (बादाम, अखरोट आदि) की मज्जा या गिरी तथा आँवले, ये द्रव्य वीर्य के प्रवर्तक (प्रवृत्त करने वाले) और उत्पन्न करने वाले होते हैं।

**वक्तव्य**-उक्त द्रव्यों के सेवन से मैथुन में शीघ्र तथा अधिक वीर्य निकलता है।

**प्रवर्तक आदि द्रव्यों के लक्षण**

**प्रवर्तनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम्।। 17।।**
**जातीफलं स्तम्भकं च शोषणी च हरीतकी।**

स्त्री (अभीष्ट स्त्री के दर्शन, स्पर्शन आदि) शुक्र को प्रवृत्त या चलित करती है। वनभंटा का फल शुक्र को रिक्त या च्युत करता (गिरा देता) है, जायफल उसे रोकता (स्तम्भन-शक्ति बढ़ाता) है और हरड़ शुक्र को सुखाती है।

**वक्तव्य**-उक्त द्रव्यों के सेवन से शुक्र पर पड़ने वाले ये भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव कहे गये हैं। इन्हें भली-भाँति समझ लेना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर उन-उन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। कुछ ऐसे मनुष्य देखे गये हैं, जो अपने आपको नपुंसक समझते थे, किन्तु जब उन्हें अभीष्ट स्त्री मिली तो पूर्ण पुरुष सिद्ध हुये। एक ऐसा मनुष्य भी देखा जो परस्त्री में सफल नहीं होता था, किन्तु वह घर में पूर्ण पुरुष था। बहुत से तो प्रथम प्रसंग में असफल, किन्तु स्नेह बढ़ने पर सफल होते हैं, इत्यादि अनेक प्रकार की बातें देखी जाती हैं। बहुतों को प्रयत्न करने पर भी वीर्यपात नहीं होता, बहुत से शीघ्रपतन के कारण स्तम्भन की खोज में लगे रहते हैं और बहुतों का वीर्य पतला होता है। इन तीनों को क्रमशः रेचन, स्तम्भन और शोषण द्रव्यों की आवश्यकता होती है।

**सूक्ष्म द्रव्य का लक्षण**

**देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद् यत्सूक्ष्ममुच्यते।। 18।।**
**तद्यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बस्तैलं रुबूद्भवम्।**

जो द्रव्य शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्त्रोतों में प्रवेश करता है, उसे 'सूक्ष्म' कहते हैं। जैसे-सेंधानमक, मधु, नीम और एरण्ड का तैल।

**वक्तव्य**-यों तो सभी द्रव्य पचने पर शरीर में व्याप्त होते ही हैं, परन्तु जो द्रव्य शीघ्र अपना प्रभाव दिखलाता है, वह 'सूक्ष्म' कहा जाता है। नमक खाते ही व्रण आदि में खुजली होने लगती है। एरण्ड के तैल को पेट पर लगाने मात्र से दस्त हो जाता है, इत्यादि।

**व्यवायी द्रव्य का लक्षण**

**पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति।। 19।।**
**व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम्।**

जो द्रव्य पहले सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर (अपना प्रभाव दिखलाकर) फिर पाक को प्राप्त होता (पचता) है, उसे 'व्यवायी' कहते हैं; जैसे-भाँग तथा अफीम।

**वक्तव्य**-भाँग आदि के सेवन करने पर पहले ही नशा हो जाता है और पचने पर उतर जाता है। बस यही इनका 'व्यवायी' नामक प्रभाव है।

**विकासी द्रव्य का लक्षण**

**सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकासि तत्।। 20।।**
**विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः।**

जो द्रव्य धातुओं से ओज (क्रियाशक्ति) को पृथक् करके सन्धियों के बन्धनों को शिथिल (दुर्बल या ढीले) कर देता है, वह 'विकाशी' कहा जाता है; जैसे-सुपारी एवं कोदों के चावल।

**वक्तव्य**-उक्त द्रव्यों के सेवन से शरीर में शिथिलता और मूढ़ता आती है।

### मदकारी द्रव्य का लक्षण

**बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।।21।।**
**तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम्।**

जो द्रव्य तमोगुण की अधिकता के कारण बुद्धि (कर्तव्य-अकर्तव्य के ज्ञान) का लोप कर देता है, वह 'मदकारी' कहा जाता है; जैसे-सुरा, वारुणी आदि अनेक प्रकार के मद्य।

**वक्तव्य**-मद्य के बुद्धिवर्द्धन आदि जो गुण लिखे गये हैं और देखे जाते हैं, वे उचित मात्रा में बहुत दिनों तक मद्यपान का अभ्यास करने पर ही पाये जाते हैं। प्रारम्भ में सब की बुद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता ही है। इसलिये मद्य कभी भी बुद्धिवर्द्धक नहीं कहा जा सकता।

### विष का लक्षण

**व्यवायि च विकाशि स्यात् सूक्ष्मं छेदि मदावहम्।।22।।**
**आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम्।**

जो द्रव्य व्यवायी (कामोद्दीपक), विकाशी, सूक्ष्म (ऊपर 20वाँ श्लोक देखें), छेदी, मदकारी, आग्नेय (अग्निगुणयुक्त या उष्ण), प्राणनाशक और योगवाही (संयोगी द्रव्यों के समान गुण करने वाला) हो, वह 'विष' या 'जहर' कहा जाता है; जैसे-वत्सनाभ और संखिया आदि।

**वक्तव्य**-जिस एक द्रव्य में उक्त सभी गुण हों, वह 'विष' होता है।

### प्रमाथी द्रव्य का लक्षण

**निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसञ्चयम्।।23।।**
**निरस्यति प्रमाथि स्यात् तद्यथा मरिचं वचा।**

जो द्रव्य अपनी शक्ति से शरीर में से दोषों के सञ्चय को निकाल देता है, वह 'प्रमाथी' कहा जाता है; जैसे-मरिच और वच।

### अभिष्यन्दी द्रव्य का लक्षण

**पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः।।24।।**
**धत्ते यद् गौरवं तत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि।**

जो द्रव्य अपनी पिच्छिलता (चिप-चिपाहट) से तथा गुरुता (भारीपन) से रसवाहिनी शिराओं को रोककर शरीर में भारीपन उत्पन्न करता है, वह 'अभिष्यन्दी' कहा जाता है; जैसे-दही।

### विदाही द्रव्य का लक्षण

**(विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात् तथा तृषाम्।।25।।**
**हृदि दाहञ्च जनयेत् पाकं गच्छति तच्चिरात्।)**

जो उद्गार (डकार) को खट्टा करे, प्यास एवं हृदय में दाह को उत्पन्न करे और देर से पचे, वह 'विदाही' द्रव्य होता है।

### लंघन द्रव्य का लक्षण

**(लघूष्णतीक्ष्णविशदं रूक्षं सूक्ष्मं खरं द्रवम्।।26।।**
**कठिनं चैव यद् द्रव्यं प्रायस्तल्लङ्घनं स्मृतम्।)**

जो लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, विशद, रूक्ष, सूक्ष्म, खर, द्रव एवं कठिन हो, वह द्रव्य लंघन अर्थात् शरीर में लघुता या हल्कापन उत्पन्न करने वाला होता है। देखें-च० सू० अ० 22.12-15।

### बृंहण द्रव्य का लक्षण

**(गुरु शीतं मृदु स्निग्धं बहलस्थूलपिच्छिलम्।।27।।**
**प्रायो मन्दस्थिरं श्लक्ष्णं द्रव्यं बृंहणमुच्यते।)**

जो गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल अर्थात् घन, स्थूल, पिच्छिल, मन्द (चिरकारी), स्थिर एवं श्लक्ष्ण होता है, वह द्रव्य 'बृंहण' (शरीर को बड़ा बनाने वाला) होता है।

### रूक्षण द्रव्य का लक्षण

**(रूक्षं लघु खरं तीक्ष्णमुष्णं स्थिरमपिच्छिलम्।।28।।**
**प्रायशः कठिनं चैव यद् द्रव्यं तद्धि रूक्षणम्।)**

रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थिर, अपिच्छिल तथा जो द्रव्य प्रायः कठोर होता है, वह द्रव्य रूक्षण (रूखापन उत्पन्न करने वाला) होता है।

### स्नेहन द्रव्य का लक्षण

**(द्रवं सूक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु शीतलम्।।29।।**
**मन्दं मृदु च यत् प्रायस्तद् द्रव्यं स्नेहनं मतम्।)**

द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीतल, मन्द तथा जो द्रव्य प्रायः मृदु होता है, वह स्नेहन कहा जाता है।

### स्वेदन द्रव्य का लक्षण

**(उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं रूक्षं सूक्ष्मं द्रवं स्थिरम्।।30।।**
**द्रव्यं गुरु च यत् प्रायः तद्धि स्वेदनमुच्यते।)**

उष्ण, तीक्ष्ण, सर, स्निग्ध, रूक्ष, सूक्ष्म, द्रव, स्थिर तथा जो द्रव्य प्रायः गुरु गुणों से युक्त होता है, वह द्रव्य 'स्वेदन' या पसीना लाने वाला होता है।

### श्लक्ष्ण द्रव्य का लक्षण

**(श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात् कठिनोऽपि हि चिक्कणः।।31।।)**

जो स्निग्धता से रहित तथा कठोर होते हुये भी चिकना होता है, वह 'श्लक्ष्ण' होता है।

### स्थिर, सर, पिच्छिल द्रव्य का लक्षण

**(स्थिरो वातमलस्तम्भी सरस्तेषां प्रवर्त्तकः।**
**पिच्छिलस्तन्तुलो बल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः।। 32।।)**

'स्थिर' वायु एवं मल का निरोधक तथा 'सर' उनका प्रवर्त्तक होता है और 'पिच्छिल' चिपचिपा, बलकारक, जोड़ने वाला, कफकारक और गुरु होता है।

### विशद द्रव्य का लक्षण

**(क्लेदच्छेदकरः ख्यातो विशदो व्रणरोपणः।)**

जो क्लेद या आर्द्रता का विनाश करे और व्रण या घाव को भरे वह 'विशद' होता है।

### स्थूल द्रव्य का लक्षण

**(स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्त्रोतसामवरोधकृत्।। 33।।)**

जो देह में स्थूलता या मोटापन पैदा करे और स्त्रोतों में रुकावट पैदा करे, वह 'स्थूल' कहा जाता है।

### द्रव एवं सान्द्र द्रव्य का लक्षण

**(द्रवः क्लेदकरो व्यापी सान्द्रस्तद् विपरीतकः।)**

जो क्लेदकारक एवं व्याप्तिशील हो, वह 'द्रव' कहा जाता है और जो इसके विपरीत गुणों वाला हो, वह 'सान्द्र' होता है।

### तीक्ष्ण एवं मन्द द्रव्य का लक्षण

**(तीक्ष्णश्चाशुकरो देहे धावत्यम्भसि तैलवत्।। 34।।**
**मन्दः सकलकार्याणि शैथिल्येन करोति हि।)**

जो शीघ्रकारी हो और जल पर तैल के समान शरीर में फैल जाता हो, वह 'तीक्ष्ण' होता है। जो सब कामों को विलम्ब से करता है, वह 'मन्द' होता है।

### मृदु एवं कर्कश द्रव्य का लक्षण

**(मृदु मार्दवकृद्देहे कर्कशः कर्कशत्वकृत्।। 35।।)**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां**
**शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे दीपनपाचनादिकथनं नाम**
**चतुर्थोऽध्यायः।। 4।।**

जो देह में मृदुता या कोमलता उत्पन्न करे, वह 'मृदु' कहा जाता है और जो कर्कशता (खुरदरापन) पैदा करे, वह 'कर्कश' होता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड का चौथा अध्याय समाप्त।। 4।।

# पञ्चमोऽध्यायः

# कलादिकाख्यानम्

### शरीर-परिचय

**कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः।**
**सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्तिताः॥ 1॥**
**त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां सन्धयस्तथा।**
**दशाऽधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा॥ 2॥**
**सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा।**
**चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः॥ 3॥**
**मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पञ्चशतं बुधैः।**
**स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः कण्डराश्चैव षोडश॥ 4॥**
**नृदेहे दश रन्ध्राणि नारीदेहे त्रयोदश।**
**(असङ्ख्येयानि स्त्रोतांसि जालानि चैव षोडश॥ 5॥**
**षट् च कूर्चा समाख्याताश्चतस्त्रो रज्जवः स्मृताः।**
**सेवन्यः सप्त सङ्ख्याताः सङ्घाताश्च चतुर्दश॥ 6॥**
**चतुर्दशैव सीमन्ता एका जिह्वा प्रकीर्तिता।)**
**एतत् समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते॥ 7॥**

मानव-शरीर में कलाएँ सात, आशय सात, धातुएँ सात, धातुओं के मल सात, उप-धातुएँ सात और त्वचाएँ भी सात कही गयी हैं। दोष तीन, स्नायु नौ सौ (900), सन्धियाँ दो सौ दश (210), हड्डियाँ तीन सौ (300), मर्म एक सौ सात (107), सिराएँ सात सौ (700) और रसवाहिनी धमनियाँ चौबीस (24) कही गयी हैं। मांसपेशियाँ पुरुष के शरीर में पाँच सौ (500) तथा स्त्री के शरीर में पाँच सौ बीस (520) कही जाती हैं और कण्डराएँ सोलह (16) (स्त्री-पुरुष दोनों)। रन्ध्र या छिद्र (बहिर्मुखी स्त्रोत) पुरुष के शरीर में दस (10) और स्त्री के शरीर में तेरह (13) होते हैं। शरीर के भीतरी स्त्रोतस् असंख्य या अगणित हैं। जाल सोलह हैं, कूर्च छः हैं, रज्जु चार हैं, सेवनी सात हैं, संघात चौदह हैं, सीमन्त भी चौदह हैं और जीभ एक है। यह संक्षेप में (अर्थात् अवयवों की संख्या मात्र) कहा गया है और विस्तार में आगे कहा जायेगा। देखें-सु० शा० अ० 5 सम्पूर्ण।

### कला का वर्णन

**मांसासृङ्मेदसां तिस्त्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका।**
**पञ्चमी च तथाऽन्त्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता॥ 8॥**
**रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः।**

मांस, रक्त और मेदा की तीन, यकृत् और प्लीहा को चौथी, अँतड़ियों की पाँचवीं, अग्नि, धरा या पित्त को धारण करने वाली छठी और शुक्र को धारण करने वाली सातवीं, इस प्रकार कलाएँ सात कही गयी हैं।

**वक्तव्य**—माड़ी लगाकर पालिश किये हुये रेशमी कपड़े के जैसी जो झिल्लियाँ शरीर के भीतर पायी जाती हैं, उन्हें 'कला' कहते हैं। मांसधरा कला वह है, जो प्रत्येक मांसपेशी के ऊपर चढ़ी रहती है। उसी प्रकार रक्तवाही स्त्रोतों की भीतरी दीवार पर रहने वाली कला रक्तधरा कही जाती है। मेदा को धारण करने वाली 'मेदोधरा', यकृत् और प्लीहा की आवरणभूत 'यकृत्प्लीहाधरा', आमाशय से मलाशय तक के स्त्रोत के भीतर अन्त्रधरा, अग्निरस या पित्तरस की थैली में 'अग्निधरा' तथा शुक्र स्त्रोतों में 'शुक्रधरा' कला है। देखें-सु० शा० अ० 4।

### कला-परिचय

**(धात्वाशयान्तरस्थस्तु यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति॥ 9॥**
**देहोष्मणा विपक्वश्च सा कलेत्यभिधीयते।**
**स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुणा॥ 10॥**
**श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः।)**

धातु एवं आशयों के भीतर जो क्लेद (गीलापन, शरीरोपयोगी होकर) रहता है और शरीरव्यापी ऊष्मा (उष्णता)

से जो पक जाती है, वह 'कला' कही जाती है। कला का स्वरूप–स्नायु सूत्रों से बुने हुये, जरायु से भली–भाँति व्याप्त और श्लेष्मा से लिपटे हुये भागों को 'कला' जानना चाहिये।

**वक्तव्य**–माड़ी लगाकर पालिश किये हुये रेशमी कपड़े की-सी अथवा मोमी कागज की-सी झिल्लियाँ 'कला' कही जाती हैं।

### आशय-परिचय

**श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः।। 11।।**
**ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्वामभागे व्यवस्थितः।**
**तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः।। 12।।**
**मलाशयस्त्वधस्तस्माद् वस्तिर्मूत्राशयस्त्वधः।**
**जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी।। 13।।**
**पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः।**
**धरा गर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ।। 14।।**

मध्यकाय के भीतर सात आशय हैं। यथा–1. उरःस्थल के भीतर श्लेष्माशय (फुप्फुस)। 2. उसके नीचे आमाशय। 3. आमाशय के ऊपर नाभि के बायीं ओर अग्न्याशय, अग्न्याशय के ऊपर तिल अर्थात् क्लोम है। 4. आमाशय के नीचे पवनाशय है। 5. पवनाशय के नीचे मलाशय है। 6. उसके नीचे मूत्राशय है, जिसका नाम 'वस्ति' है। और 7. जीव तथा रक्त का या जीवरक्त का आशय उर अर्थात् हृदय है। इस प्रकार ये सात 'आशय' हैं, जो पुरुष, स्त्री, नपुंसक सभी में होते हैं और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के मध्यकाय में तीन आशय अधिक होते हैं–1. गर्भाशय जिसे धरा कहते हैं और 2. स्तन्याशय जो स्तन कहे जाते हैं। स्तन दो होते हैं, अतः ये तीन आशय कहे जाते हैं।

**वक्तव्य**–आशय का अर्थ है–'आ = आश्रित्य शेते द्रव्यं अस्मिन्, इति आशयः'। अर्थात् जिसमें द्रव्य शयन करे वह 'आशय' कहलाता है। देखें–सु० सू० 21 तथा सु० शा० 5।

### धातुओं का उत्पत्ति-क्रम

**रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।**
**जायन्तेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा।। 15।।**

शरीर में रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), मज्जा और शुक्र ये सात धातुएँ होती हैं और ये पित्त के तेज (उष्णता) से पके हुये एक-दूसरे से उत्पन्न होते हैं।

**वक्तव्य**–आहार में उक्त सातों ही धातुओं के मूल कारण या उत्पादक तत्त्व विद्यमान होते हैं। आहार की परिपाक होने पर सारभूत जो पदार्थ आहार से पृथक् होता है, वह रस 'धातु' कहा जाता है। यह रसवाहिनियों द्वारा सम्पूर्ण धातुओं का पोषण करता है। 'धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः गुणसमान-भूयिष्ठैर्वाप्याहारविहारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति' तथा 'तस्मान्मांसं मांसेन, लोहितं लोहितेन, मेदो मेदसा, वसा वसया, अस्थि तरुणास्थ्ना, मज्जा मज्ज्ञा, शुक्रं शुक्रेण'। च० शा० अ० 6। रस धातु का जितना भाग रञ्जक, पित्त द्वारा रंग दिया जाता है, वह 'रक्तधातु' कहलाता है। वह भी धमनियों द्वारा सम्पूर्ण धातुओं का पोषण करता है। इसी प्रकार सभी धातु पुष्ट होते रहते हैं। मांस मांसपेशियों के रूप में रहता है, मेदा जमे हुये घी जैसा पदार्थ है, जो त्वचा के नीचे पाया जाता है, अस्थि या हड्डी प्रसिद्ध ही है, मज्जा हड्डियों के भीतर पाया वाला स्नेह है और शुक्र या वीर्य 'रेतस्' नाम से प्रसिद्ध है।

### धातुओं के नाम

**(रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान् मेदः प्रजायते।**
**मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः।। 16।।)**

रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है।

**वक्तव्य**–आयुर्वेदिक ग्रन्थों में धातुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रकार के वचन मिलते हैं–1. वे जो उपर्युक्त श्लोक के वक्तव्य में दिखलाये गये हैं और 2. 'पूर्वः पूर्वोऽतिवृद्धत्वात् वर्धयेद्धि परं परम्'। तथा 'रसाद्रक्तं ततो मांसम्' इत्यादि (सु० सू० अ० 15.18) विचार करने पर दोनों ही क्रम युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि सभी धातुओं में सभी धातुओं के मूल कारण विद्यमान रहते हैं। अतएव आचार्य महोदय ने दोनों ही क्रमों को सूत्र रूप से व्यक्त कर दिया है। तथा–'तत्रैतेषां धातूनाम् अन्नपानरसः प्रीणयिता एवं तेषां (धातूनां) क्षयवृद्धी शोणितनिमित्ते'। (सु०सू० अ० 14)।

### धातुओं के मुख्य कार्य

**प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे।**
**गर्भोत्पादश्च कर्माणि धातूनां कथितानि च।। 17।।**

रस का कर्म–सन्तोष या तृप्ति तथा दूसरी सभी धातुओं का पोषण करना है। रक्त का कर्म–जीवन, प्राणी को जीवित रखना है। मांस का कर्म–सिरा, स्नायु तथा अस्थियों का संवरण या आच्छादन करना है। मेदा का कर्म–सम्पूर्ण शरीर को स्निग्ध रखना है। अस्थि का कर्म–शरीर को धारण करना है, मज्जा का कर्म–अस्थियों को पूर्ण रखना और शुक्र का

कर्म–गर्भ की उत्पत्ति करना है। इस प्रकार सातों धातुओं के सात मुख्य कर्म कह दिये हैं।

### रस-स्वरूप

**( सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः।**
**स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत्।। 18।। )**

भली-भाँति पचे हुये आहार का सारभूत भाग 'रस' कहलाता है और वह द्रव ( पतला ), श्वेत, शीत, मधुर, स्निग्ध और चल अर्थात् सदा चलनशील होता है।

### रक्त का स्वरूप

**( यदा रसो यकृद् याति तत्र रञ्जकपित्ततः।**
**रागं पाकं च सम्प्राप्य स भवेद् रक्तसंज्ञकः।। 19।। )**

जब रस यकृत् एवं प्लीहा में पहुँचता है, तो वहाँ रंजक पित्त द्वारा राग ( लालिमा ) तथा पाक को प्राप्त होकर वह रस 'रक्त' बन जाता है।

### मांस का स्वरूप

**( शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम्।**
**तदेव मांसं जानीयात् पेशीरूपेण संस्थितम्।। 20।। )**

रक्त अपनी अग्नि द्वारा परिपक्व ( होकर ) तथा वायु द्वारा घनीभूत हो जाता है, उसी को 'मांस' जानना चाहिये और वह शरीर में पेशी के रूप में रहता है।

### मेदस् का स्वरूप

**( यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते।**
**तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्यतिबृंहणम्।। 21।। )**

जो मांस अपनी अग्नि द्वारा परिपक्व हो जाता है, वह 'मेदस्' कहलाता है। वह अत्यन्त गुरु, स्निग्ध, बलकारक एवं शरीर का अत्यन्त वर्द्धक होता है।

### अस्थि का स्वरूप

**( मेदो यत्स्वाग्निना पक्वं वायुना चातिशोषितम्।**
**तदस्थि सञ्ज्ञां लभते स सारः सर्वविग्रहे।। 22।। )**

जो मेदस् अपनी अग्नि द्वारा परिपक्व हो जाता है और वायु द्वारा अत्यन्त सुखा दिया जाता है। वह 'अस्थि' संज्ञा को प्राप्त करता है। ये अस्थियाँ सम्पूर्ण शरीर में सार-स्वरूप हैं।

### मज्जा का स्वरूप

**( अस्थि यत्स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद् घनः।**
**यः स्वेदवत् पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते।। 23।। )**

जो अस्थि अपनी अग्नि द्वारा परिपक्व हो जाता है और उसका सार स्वेद के समान पृथक् होकर गाढ़ा हो जाता है, वह 'मज्जा' कहा जाता है।

### शुक्र का स्वरूप

**( मज्जातो जायते शुक्रं तस्य व्यक्तिस्तु यौवने।**
**स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च।। 24।।**
**शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा। )**

मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है और उसकी व्यक्ति ( दर्शन ) युवावस्था में होती है तथा वह स्फटिक ( बिल्लौर ) के समान उज्ज्वल श्वेत, द्रव ( तरल ), चिकना, मीठा, मधु की-सी गन्ध वाला होता है। कुछ आचार्यों का कथन है कि तैल तथा मधु जैसा शुक्र भी उत्तम होता है।

### सप्त धातुओं के मल

**जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्।। 25।।**
**कर्णविड्रसनादन्तकक्षामेढ्रादिजं मलम्।**
**नखनेत्रमलं वक्त्रे स्निग्धत्वं पिटिकास्तथा।। 26।।**
**जायन्ते सप्तधातूनां मलान्येवमनुक्रमात्।**

जीभ, नेत्र और कपोल ( गाल का भीतरी भाग ) का जल रस धातु का मल है; रञ्जक पित्त ( रस को रंगकर रक्त रूप में परिणत करने वाला ) रक्त धातु का मल है; कान का मैल मांस धातु का मल है; जीभ, दाँत, काँख एवं लिंग आदि में उत्पन्न होने वाला मैल मेदो धातु का मल है; नाखून अस्थि धातु का मल है; नेत्र का मैल मज्जा धातु का मल है और मुख पर की चिकनाई तथा युवान् पिडिका ( जो प्रायः जवानी में मुख निकला करती हैं, जिन्हें कील या मुँहासे कहा जाता है ) शुक्र धातु का मल है। इसी प्रकार सातों धातुओं के ये सात मल उत्पन्न होते हैं।

### धातुमलों का परिगणन

**कफः पित्तं मलं खेषु प्रस्वेदो नखरोम च।। 27।।**
**नेत्रविट् त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः।**

कफ, पित्त, स्रोतों का मल, पसीना, नख, रोम, नेत्रों की मैल और त्वचा का स्नेह–ये क्रमशः सातों धातुओं के मल हैं।

**वक्तव्य**–आचार्य शार्ङ्गधर ने मल-सम्बन्धी दोनों मत प्रदर्शित किये हैं। देखें–च० चि० 15.18-19।

### उपधातु

**स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति।। 28।।**
**शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता।**

**स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवोजश्च सप्तमम्।। 29।।**
**इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः।**

'स्तन्य' (दुग्ध) रसधातु का तथा 'रस' (मासिक स्राव) रक्तधातु का उपधातु है। ये दोनों स्त्रियों को ही होते हैं और समय-समय पर निकलते हैं। 'वसा' मांस में रहने वाला स्नेह है, जो कि मांस का उपधातु कहा जाता है। 'स्वेद' (पसीना) मेदा का उपधातु है। 'दाँत' अस्थि के उपधातु हैं। 'केश' मज्जा का और 'ओज:' शुक्र का उपधातु है। इस प्रकार धातुओं से उत्पन्न होने वाले ये सात पदार्थ 'उपधातु' कहे जाते हैं।

**वक्तव्य**–स्तन्य (दूध) एवं रजस् पुरुषों में भी होते हैं, ध्यान दें–जब कोई पुरुष से स्त्री बन जाता है अथवा ऑपरेशन करके बना दिया जाता है, तब उक्त दोनों उपधातु पुष्ट होकर समय पर प्रवृत्त होते हैं। आजकल अमेरिका आदि देशों में पुरुष को स्त्री तथा स्त्री को पुरुष बना दिया जाता है। और कभी-कभी स्वयं भी धीरे-धीरे उक्त परिवर्तन होते देखा जाता है। कलकत्ता के अस्पताल में 100 वर्ष के भीतर तीन-चार ऐसी घटनाएँ हो चुकी हैं।

### स्तन्य का स्वरूप

**(रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः।। 30।।**
**कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते।)**

आहार परिपक्व होने पर जो स्वच्छ एवं मधुर रस उत्पन्न होता है, वह सम्पूर्ण शरीर का पोषण करने के लिए पूरे शरीर में भ्रमण करता है। जब माता प्रेमपूर्वक शिशु को दूध पिलाने के लिए उत्सुक होती है, तब सम्पूर्ण शरीर से आकर स्तनों में जो रस प्राप्त होता है, वही 'स्तन्य' या दूध कहा जाता है।

### रजस् का स्वरूप

**(शशासृक्प्रतिमं यत्तु यद् वा लाक्षारसोपमम्।। 31।।**
**तदार्तवं प्रशंसन्ति यद् वासो न विरञ्जयेत्।)**

जो खरगोश के रक्त जैसा हो अथवा लाही के रस जैसा (गहरा लाल) हो और जो सफेद कपड़े को विरूप न करे अर्थात् रजस् से लिपे हुये वस्त्र को धोने पर उसका दाग या धब्बा न पड़े, वह 'आर्तव' (मासिक स्राव) शुद्ध होता है।

### वसा का स्वरूप

**(गोसर्पिर्निभा पीता त्वचोऽधः संस्थिता च या।। 32।।**
**शीतातपसहा स्निग्धा सा वसा परिकीर्तिता।)**

गाय के घी जैसी पीली, त्वचा के नीचे पूरे शरीर को आच्छादित किये हुये स्थित ('वस् आच्छादने' धातु का रूप वसा शब्द है) अतएव शीत और धूप को सहनेवाली तथा स्निग्ध द्रव्य को 'वसा' कहा जाता है।

### स्वेद का स्वरूप

**(त्वचातो लवणः स्रावो व्यक्तोऽव्यक्तोऽनिशं स्रवेत्।। 33।।**
**स स्वेदश्च समाख्यातः क्लेदत्वङ्मृदुताकरः।)**

त्वचा से जो नमकीन-सा स्राव प्रत्यक्ष (गर्मियों में) अथवा अप्रत्यक्ष (शीतकाल में) निरन्तर निकलता है वह 'स्वेद' (पसीना) कहलाता है। वह रोमकूपों को आर्द्र एवं त्वचा को मृदु बनाये रखता है।

### दाँत का स्वरूप

**(दन्ताः श्वेता दृढाः श्लक्ष्णा द्वात्रिंशत्सङ्ख्यका मताः।। 34।।**
**बालानान्तु चतुर्विंशत् चर्वणच्छेदनार्थकाः।)**

दाँत सफेद, दृढ़ या कठोर तथा चिकने होते हैं। ये संख्या में 32 या 28 होते हैं, किन्तु बालकों के दूध के दाँत केवल 24 ही होते हैं। दाँतों का कार्य चबाना और काटना है।

### केश का स्वरूप

**(केशाः शीर्षे मुखे श्मश्रु नेत्रे पक्ष्मभ्रुवौ मतौ।। 35।।**
**तनौ रोमाणि जायन्ते करपादतले विना।)**

हाथ, पाँव, तलुओं के अतिरिक्त मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर पर बाल होते हैं। जैसे–सिर पर केश, मुख पर श्मश्रु या दाढ़ी-मोछ, नेत्र पर पक्ष्म तथा भौंहें और शेष शरीर पर रोम होते हैं।

### ओजस् का स्वरूप

**ओजः सर्वशरीरस्थं शीतं स्निग्धं स्थिरं सरम्।। 36।।**
**सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम्।**

ओजस् सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। यह शीत एवं स्निग्ध है और जीवन भर शरीर में रहता है। सर एवं सौम्य है और शरीर को बलवान् और पुष्ट करता है।

### त्वचाओं का स्वरूप तथा नाम

**ज्ञेयावभासिनी पूर्वं सिध्मस्थानं च सा मता।। 37।।**
**द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः।**
**श्वेता तृतीया सङ्ख्याता स्थानं चर्मदलस्य सा।। 38।।**
**ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका।**
**पञ्चमी वेदनी ख्याता सर्वकुष्ठोद्भवस्ततः।। 39।।**
**विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः।**
**स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा।। 40।।**
**इति सप्त त्वचः प्रोक्ता स्थूला व्रीहिद्विमात्रया।**

पहली या बाहर की त्वचा का नाम 'अवभासिनी' (कृष्ण, गौर, पीत और रक्त वर्ण को अवभासित करने वाली) है, सिध्म या सेहुँआ इसी में होता है। दूसरी का नाम 'लोहिता' यहाँ तक रक्त-कोशिकाएँ आयी रहती हैं) यह तिल और झांई का स्थान है। तीसरी का नाम 'श्वेता' (सफेद होने के कारण) है, यह चर्मदल या चम्मल का स्थान है। चौथी 'ताम्रा' (अत्यन्त लाल) है, यह किलास (लाल वर्ण का श्वेतकुष्ठ) एवं श्वेतकुष्ठ या फुलबहरी का स्थान है। पाँचवीं 'वेदनी' (स्पर्शज्ञान का विशिष्ट स्थान) है, यहीं पर सब प्रकार के कुष्ठ होते हैं। छठी 'रोहिणी' (प्ररोहों या अंकुरों वाली होने के कारण) कही जाती है, यह ग्रन्थियों (बिना मुख के फोड़े), गलगण्ड (घेंघा) और अपची (गण्डमाला) का स्थान है और सातवीं 'स्थूला' (मोटी) नामक त्वचा है, जो विद्रधि आदि का स्थान है। इस प्रकार ये सात त्वचाएँ कही गयी हैं। ये सब दो मांसल स्थानों पर जौ के बराबर मोटी होती हैं।

**वक्तव्य**–त्वचा शब्द 'त्वच् संवरणे' धातु से बना है, जिसका अर्थ है–शरीर का संवरण करना या उसे ढँकना। विशेष जानने के लिए देखें–शु० शा० अ० 4.4 और च० शा० अ० 7.4। 'षट् त्वचः'–च० चि० 15.17।

### दोषों का वर्णन

**वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा।। 41।।**
**तत्रापि पञ्चधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात्।**

वायु, पित्त और कफ ये दोष, धातु और मल माने जाते हैं। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में रहकर शरीर को धारण करने के कारण ये एक-एक तथा पाँच-पाँच प्रकार के कहे जाते हैं।

### दोष आदि संज्ञाओं का हेतु

**(शरीरदूषणाद् दोषा धातवो देहधारणात्।। 42।।**
**वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः।)**

ये वात, पित्त तथा कफ शरीर को दूषित (दुःखित) करने के कारण 'दोष' कहे जाते हैं, शरीर को धारण (स्वस्थावस्था में सुखी) करने के कारण 'धातु' और शरीर को मलिन या मैला (रुग्ण) करने के कारण 'मल' कहे जाते हैं।

### दोषों में वायु की प्रधानता

**पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।। 43।।**
**वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्।**

पित्त पंगु (परतन्त्र) है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु हैं। इनको वायु जहाँ ले जाती है, वहीं ये मेघ (बादल) के समान चले जाते हैं।

**वक्तव्य**–इस पाठ से वायु की वह महत्ता बतलायी है, जिसका विस्तृत वर्णन चरकसंहिता सू० अ० 12 तथा सु० नि० अ० 1 में किया गया है।

### वात के गुण, स्थान तथा नाम

**पवनस्तेषु बलवान् विभागकरणान्मतः।। 44।।**
**रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः।**
**मलाशये चरेत् कोष्ठे वह्निस्थाने तथा हृदि।। 45।।**
**कण्ठे सर्वाङ्गदेशेषु वायुः पञ्च प्रकारतः।**
**अपानः स्यात् समानश्च प्राणोदानौ तथैव च।। 46।।**
**व्यानश्चेति समीरस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात्।**

तीनों दोषों में वायु ही बलवान् है, क्योंकि वह शरीर के प्रत्येक अवयवों का विभाग करता है। वह रजोगुणयुक्त है, सूक्ष्म है, शीत है, रूक्ष है, लघु (हल्का) है और चल (गीतशील) है। वह मलाशय में, अग्न्याशय में, हृदय में, कण्ठ (सामीप्यात् फुप्फुस तक में) तथा समस्त शरीर में विचरता रहता है। अतएव इसके पाँच भेद माने जाते हैं और इन स्थानों में विचरने वाले वायु के क्रमशः पाँच नाम ये हैं–1. अपान, 2. समान, 3. प्राण, 4. उदान और 5. व्यान।

**वक्तव्य**–यद्यपि वायु एक ही है, तथापि स्थान और कर्म के भेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। तदनुसार ही इसके पाँच नाम भी रखे गये हैं–वायु शब्द 'वा गतिगन्धनयोः' धातु से बना है, जिसका अर्थ है–'वाति गच्छति इति वायुः' अर्थात् यह सर्वदा चलता रहता है, इसी प्रकार इसके पाँच नाम अत्यन्त विचारपूर्वक रखे गये हैं। यथा–'अप अधस्तात् अनिति प्राणिति गच्छति (अन् प्राणने–अ० प० से०) इति अपानः' अर्थात् जो नीचे की ओर को चलता है। यही मल-मूत्रादि का त्याग कराता है और अधोवायु के रूप में निकलता है। समान–'सम्यक् अनिति इति समानः' जो पाचन क्रिया का सम्पादन करता है। प्राण–'प्रकर्षेण अनिति इति प्राणः' अर्थात् जो हृदय का सञ्चालन करता है। उदानः–'उत् ऊर्ध्वम् अनिति इति उदानः' अर्थात् जो ऊपर को प्रश्वास के रूप में आता-जाता है और व्यानः–'विशेषेण आसमन्तात् सर्वतः अनिति इति व्यानः', अर्थात् जो विशेष रूप से सम्पूर्ण शरीर में गति करता है, वह व्यान कहा जाता है। इस प्रकार वायु ही जीवन का प्रधान कारण माना जाता है।

### पित्त के गुण, स्थान तथा नाम

**पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम्।। 47।।**
**कटुतिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत्।**
**अग्न्याशये भवेत् पित्तमग्निरूपं तिलोन्मितम्।। 48।।**
**त्वचि कान्तिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यङ्गादिपाचकम्।**
**दृश्यं यकृति यत् पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत्।। 49।।**
**यत् पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत्।**
**यत् पित्तं हृदये तिष्ठेन्मेधाप्रज्ञाकरं च तत्।। 50।।**
**पाचकं भ्राजकं चैव रञ्जकालोचके तथा।**
**साधकं चेति पञ्चैव पित्तनामान्यनुक्रमात्।। 51।।**

पित्त उष्ण (गर्म) है, द्रव (पतला या तरल) है, पीला है, नीला है, सत्त्वगुण-प्रधान है, चरपरा और कड़वा है। जब वह विकृत हो जाता है तो खट्टा हो जाता है। अग्न्याशय में जो पित्त है, वह अग्निरूप है और तिलपरिमित है। त्वचा में जो पित्त है, वह शरीर की कान्ति (चमक) का उत्पादक तथा लेप और अभ्यंग (मालिश का स्नेह) का पाचक या शोषक है, यकृत् में जो पित्त है, वह वमन (खट्टी और कड़वी कै के रूप) में दिखलायी पड़ता है एवं रस को रक्त बनाता है। जो पित्त दोनों आँखों में है, वह रूप का दर्शन कराता है और जो पित्त हृदय में रहता है, वह मेधा (बुद्धि) तथा प्रज्ञा (सोचने-विचारने को शक्ति) का हेतु है। इसी प्रकार स्थानों के अनुक्रम से पित्त के ये पाँच नाम हैं। यथा–1. पाचक, 2. भ्राजक, 3. रञ्जक, 4. आलोचक और 5. साधक।

**वक्तव्य**–ताप या सन्तापजनक पदार्थ का नाम पित्त है। देखें अमरकोष–अपि+दो+क्त, वायु के समान एक ही पित्त के कार्यभेद तथा स्थानभेद से पाँच नाम रखे गये हैं जो कि सार्थक हैं। यथा–'पचति आहारम् इति पाचकम्'=आहार को पकाता है। 'भ्राजयति प्रकाशयति वर्णम् इति भ्राजकम्' = वर्ण को प्रकाशित करता है। 'रञ्जयति रक्तीकरोति रसम् इति रञ्जकम्' = रस को रक्त बनाता है। 'आलोचयति दर्शयति रूपम् इति आलोचकम्' = रूप को दिखाता है और 'साधयति कार्याणि इति साधकम्' = कार्यों को सिद्ध करता है।

### कफ के गुण, स्थान तथा नाम

**कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा।**
**तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत्।। 52।।**
**कफश्चामाशये मूर्ध्नि कण्ठे हृदि च सन्धिषु।**
**तिष्ठन् करोति देहस्य स्थैर्यं सर्वाङ्गपाटवम्।। 53।।**
**क्लेदनः स्नेहनश्चैव रसनश्चावलम्बनः।**
**श्लेष्मकश्चेति नामानि कफस्योक्तान्यनुक्रमात्।। 54।।**

कफ या श्लेष्मा स्निग्ध है, गुरु है, श्वेत है, पिच्छिल (चिपचिपा) है, शीतल है, तमोगुणयुक्त है और मीठा है। वह जब विदग्ध या दूषित हो जाता है, तो नमकीन हो जाता है (खखार या बलगम में यही निकलता है)। कफ आमाशय में शिर के भीतर, कण्ठ (और फुक्फुसों) में, हृदय में तथा शरीर की सम्पूर्ण सन्धियों में रहता हुआ शरीर में स्थिरता या सामर्थ्य (जिसके कारण शरीर के सभी अवयव यथास्थान स्थित रहते हैं) और सम्पूर्ण अंगों की पटुता (क्रियाशील या गति) को करता है। वायु और पित्त के समान कफ के भी उक्त स्थानों में क्रम से ये पाँच नाम हैं–1. क्लेदन, 2. स्नेहन, 3. रसन, 4. अवलम्बन और 5. श्लेष्मक।

**वक्तव्य**–वात और पित्त के समान कफ के भी स्थानभेद से पाँच नाम हैं और वे भी सार्थक हैं। यथा–'क्लेदयति क्लिद्यते वा अनेन अन्नम् इति क्लेदनः' = आहार को क्लिन्न या आर्द्र या गीला करता है। 'स्नेहयति स्निह्यते अनेन वा शिरः, इति स्नेहनः' = यह शिर या मस्तिष्क को स्निग्ध या तर करता है। 'रसयति रसं ज्ञापयति अथवा रस्यते रसो मधुरादिः अनेन इति रसनः' =रस का अनुभव कराता है; इसकी विकृति से ही रसशान का लोप हो जाता है। 'अवलम्बयति धारयति हृदयम् अथवा अवलम्ब्यते धार्यते वा हृदयम् अनेन इति अवलम्बनः' = यह हृदय-यन्त्र को धारण करता है; इसके घट जाने से हृदय धड़कने लगता है और 'श्लेषयति योजयति सन्धीन् इति श्लेष्मकः' = सन्धियों को सटाता या जोड़ता है। तीनों दोषों का पूर्व विवेचन सु० सू० अ० 21 में देखें।

**(स्नायवो बन्धनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम्।**
**सन्धीनामपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः।। 55।।)**

'स्नायु' शरीर में मांसपेशियों, हड्डियों, मेदस् तथा सन्धियों के बन्धन (अर्थात् उन्हें बाँधने वाले) कहे जाते हैं और वे शिराओं की अपेक्षा अधिक दृढ़ होते हैं।

**वक्तव्य**–'स्नायु' डोरी या बटे हुये धागे जैसी अत्यन्त दृढ़ होती हैं, इनसे धनुष की डोरी और शिकार के जाल बनाये जाते हैं।

### सन्धि-परिचय

**सन्धयश्चाङ्गसन्धानाद् देहे प्रोक्ताः कफान्विताः।**
**(अस्थ्नां ते द्विविधाः सन्ति चेष्टावन्तः स्थिरास्तथा।। 56।।**

**शाखाहनुषु कट्यां च चेष्टावन्तो भवन्ति हि।**
**शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्ज्ञैरुदाहृताः।।57।।)**

शरीर में जिस स्थान पर अंगों का सन्धान या जोड़ होता है, उस स्थान को 'सन्धि' कहते हैं। ये स्थान 'श्लेष्मक' नामक कफ से युक्त होते हैं। प्रायः हड्डियों के जोड़ों को ही सन्धि कहते हैं और वे दो प्रकार की होती हैं–1. चेष्टावान् अर्थात् चल और 2. स्थित अर्थात् अचल। शाखाओं (टांगों और बाहों) में, हनु तथा कमर में 'चेष्टावान्' सन्धियाँ होती हैं और शेष सभी सन्धियाँ 'स्थिर' मानी जाती हैं।

**वक्तव्य**–ये सन्धियाँ केवल हड्डियों की ही हैं। मांसपेशी, स्नायु एवं सिराओं की सन्धियाँ की संख्या अनन्त होने के कारण वे असंख्येय हैं।

### अस्थि-परिचय

**आधारश्च तथा सारः कायेऽस्थीनि बुधा जगुः।**
**(आभ्यन्तरगतः सार आधारो भूरुहां यथा।।58।।)**

आयुर्वेद के ज्ञाता विद्वान् अस्थियों या हड्डियों को शरीर का वैसा आधार एवं सार (शरीर भर में सबसे ठोस) कहते हैं। जैसे वृक्षों का भीतरी सार उनका आधार होता है।

**वक्तव्य**–अस्थियों की संख्या के सम्बन्ध में शास्त्रकारों का मतभेद है। यथा–वेद, धर्मशास्त्र एवं चरक आदि कायचिकित्सा की संहिताएँ 360, सुश्रुत या शल्यतन्त्र 300, यूनानी चिकित्साशास्त्र 242 तथा आधुनिक प्रत्यक्षाभिमानी 200 (प्रत्यक्षशारीर अ० 3) एवं (हमारे शरीर की रचना वाले) 206 मानते हैं। इसका कारण अपना-अपना दृष्टिकोण ही है।

### मर्म-परिचय

**(सन्निपातान् सिरास्नायुसन्धिमांसास्थिसम्भवान्।)**
**मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः।।59।।**

सिरा, स्नायु, सन्धि, मांस एवं अस्थियों में होने वाले 'सन्निपातों' या संयोगों को कर्म कहते हैं। माननीय मुनियों का कथन है कि वे जीव के विशिष्ट स्थान हैं।

**वक्तव्य**–विशेष जानने के लिए देखें–सु०शा०अ० 6।

### सिरा-परिचय

**सन्धिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः सिराः।**
**(नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः।। 60।।)**

ये 'सिरा' सन्धियों को बाँधने का कार्य भी करती हैं और दोष तथा धातुओं का वहन या प्रापण (शरीर में पहुँचाना रूपी कार्य) भी करती हैं। वे सब नाभि में उत्पन्न होकर समस्त शरीर में फैली हुई रहती हैं।

**वक्तव्य**–यह 'नाभि' ढूँड़ी या धुन्नी नामक उदर के बहिर्भाग का दृश्यमान गड्ढा नहीं है, अपितु आमाशय एवं पक्वाशय का मध्यभाग अन्त्र या अँतड़ी नामक अवयव है, जिसमें भुक्त अन्न का पाक (पाक होकर उससे 'रस' पृथक्) हो जाता है। इस 'रस' को उक्त सिराएँ शरीर में पहुँचाती रहती हैं। इस 'रस' में दोष (वातादि) तथा धातुओं (रक्तादि) के उपादान विद्यमान रहते हैं। जिनसे उनकी पुष्टि होती रहती है। अवशिष्ट सारहीन या रसहीन मलद्रव्य पक्वाशय अर्थात् मलाशय में चला जाता है। इसका वर्णन पूर्वखंड अध्याय 6 में देखें। 'आमपक्वाशययोर्मध्यं नाभिर्नाम मर्म' (सु० शा० अ० 6)।

### धमनी-परिचय

**धमन्यो रसवाहिन्यो धमन्ति पवनं तनौ।**
**(तदधीनाः क्रियाः सर्वा देहेन्द्रियमनोभवाः।।61।।)**

धमनियों के ध्मान के कारण ही रस का 'वहन' होता है, अर्थात् स्थानान्तर में पहुँचता है। वे ही पवन अर्थात् (प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान नामक) पञ्चविध वायु को शरीर में सञ्चालित करती हैं। अतएव शारीरिक, ऐन्द्रियक एवं मानसिक सभी क्रियाएँ उन्हीं के अधीन हैं।

**वक्तव्य**–'धमनी' नामक पदार्थ प्रत्यक्षगोचर नहीं है। वह 'शव' में नहीं देखी जा सकतीं। अतएव महर्षि सुश्रुत ने (सु० शा० अ० 9 में) 'पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले' कहा है। महर्षि सुश्रुत एवं आचार्य शार्ङ्गधर धमनियों के उत्पत्ति-स्थान नाभि की संख्या 24 एवं उनके कार्य के विषय में एकमत हैं और चरक उनकी संख्या 10 बतलाते हैं तथा उत्पत्ति-स्थान 'हृदय' मानते हैं। इसका कारण भी मात्र दृष्टिकोण का भेद ही है। प्राण के सञ्चार का आदि स्थान 'नाभि' है, अतः महर्षि सुश्रुत तथा तदनुयायी आचार्य शार्ङ्गधर ने 'नाभि' को धमनियों का मूल माना है और महर्षि चरक ने धमनियों के ध्मान को ध्यान में रखकर 'हृदय' को मूल मान लिया है, जो अत्यन्त उपयुक्त एवं युक्तिसंगत है; और आधुनिक प्रत्यक्षवादी 'हृदय' से निकलने वाली रक्तवाहिनी को तथा उसकी शाखा-प्रशाखाओं को 'धमनी' कहते हैं। उनकी इस धारणा का क्या कारण है, इसके लिए देखें–सु० शा० अ० 9, च० सु० अ० 12 तथा 30 और प्रत्यक्षशारीर एवं 'हमारे शरीर की रचना' और सम्पूर्ण आयुर्वेदीय वाङ्मय।

### पेशी-परिचय

**मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टम्भाय देहिनाम्।**
**(पिशितमनुप्रविश्य पेशीर्विभजतेऽनिलः।।62।।)**

मांँसपेशियाँ शरीर-धारियों के बल (शक्ति) एवं अवष्टम्भ (स्थिति या सहारा) के लिए आवश्यक हैं। मांस में ही प्रविष्ट होकर वायु पेशियों का विभाजन करता हैं।

**वक्तव्य**—मांसधातु ही मांसपेशियों के रूप में शरीर को आच्छादित किये रहता है।

### कण्डरा-परिचय

**प्रसारणाऽऽकुञ्चनयोरङ्गानां कण्डरा मताः।**
**(ग्रीवायां पृष्ठदेशे च करयोः पादयोः स्थिताः।।63।।)**

बाहु आदि अंगों के फैलाने तथा सिकोड़ने में 'कण्डराएँ' कारण मानी जाती हैं और वे ग्रीवा, पीठ, बाहु एवं टाँगों में स्थित हैं।

### रन्ध्र-परिचय

**नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते।**
**मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रन्ध्रमुच्यते।।64।।**
**दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति नृणां विदुः।**
**स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः।।65।।**
**सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मिनाम्।**

नासिका, नयन एवं कान के दो-दो रन्ध्र होते हैं; मेहन (मूत्रमार्ग), अपान (गुद) तथा मुख के एक-एक रन्ध्र होते हैं और दसवाँ रन्ध्र शिर में होता है। ये दस रन्ध्र होते हैं। स्त्रियों के शरीर में तीन रन्ध्र अधिक हैं-2 स्तनों में और 1 गर्भ मार्ग में।

**वक्तव्य**—'नव स्रोतांसि'-सु० शा० अ० 5 तथा 'नव महान्ति च्छिद्राणि, सप्त शिरसि द्वे चाधः'।-च० शा० अ० 7। इस प्रकार सुश्रुत एवं चरक में 9 ही छिद्र माने गये हैं तथा गर्भमार्ग और स्तनमार्ग पुरुषों के अव्यक्त एवं स्त्रियों के व्यक्त होते हैं। गर्भमार्ग का नाम 'भग' और वह दोनों को होता है, अतएव पुरुष को भगवान् और स्त्री को भगवती कहते हैं। यह वह अवयव है, जिसकी उत्तेजना से पुरुष स्त्री का तथा स्त्री पुरुष का भजन या सेवन करती है। 'भज सेवायाम्' धातु से भग शब्द का निर्माण होता है।

### मल तथा स्रोतस्-परिचय

**(मनः प्राणान्नपानीयदोषधातूपधातवः।।66।।**
**धातूनां च मला मूत्रं मलमित्यादयस्तनौ।**
**सञ्चरन्ति च यैर्मार्गैस्तानि स्रोतांसि सञ्जगुः।।67।।**
**यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत्।)**

शरीर के भीतर मन, प्राण, अन्न, जल, दोष, धातु, उपधातु, धातुओं के मल और मूत्र आदि जिन मार्गों में से होकर सञ्चार करते हैं उनको 'स्रोतस्' कहते हैं। यथायोग्य ऊष्मा से युक्त होकर वायु स्रोतों को बना देता है।

**वक्तव्य**—देखें-च० वि० अ० 5। धन्वन्तरि ने सु० शा० अ० 5 में बहिर्मुख स्रोतस् 9 तथा योगवाही स्रोतस् 10 कहा है। देखें-सु० शा० 9 में।

### जाल-परिचय

**(जालानि तु सिरास्नायुमांसास्थ्नामुद्भवन्ति हि।।68।।**
**तानि चत्वारि चत्वारि सर्वाण्येव च षोडश।**
**परस्परं निबद्धानि मणिबन्धादिगुल्फयोः।।69।।**
**गवाक्षितानि जालानि शरीरस्थानि तत्त्वतः।)**

सिरा, स्नायु, मांस एवं अस्थियों के चार-चार जाल होते हैं और वे सब मिलकर सोलह हैं। ये परस्पर बँधे हुये परस्पर सटे हुये, परस्पर छिद्रयुक्त और शरीर के केवल गुल्फ तथा मणिबन्ध नामक प्रदेशों में आश्रित होते हैं।

### कूर्च्च-परिचय

**(कूर्चाः स्युर्हस्तयोर्द्वौ तु तावन्तौ पादयोरपि।।70।।**
**ग्रीवायामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः।)**

हाथों में दो, पाँवों में दो, ग्रीवा में एक तथा मेहन में एक-इस प्रकार छः 'कूर्च' होते हैं।

### रज्जु-परिचय

**(पार्श्वतः पृष्ठवंशस्य महत्यो मांसरज्जवः।।71।।**
**चतस्रो मांसपेशीनां बन्धनं तत्प्रयोजनम्।)**

पृष्ठवंश (रीढ़ या मेरुदण्ड) के दोनों ओर मोटी-मोटी चार रज्जुएँ होती हैं। उनका कार्य मांसपेशियों को बाँधे रखना है।

### सेवनी-परिचय

**(सेवन्यः सप्त तासां तु भवेयुः पञ्च मस्तके।।72।।**
**एका शेफसि जिह्वायामेका विध्येन्न ताः क्वचित्।)**

सेवनियाँ सात होती हैं। उनमें पाँच मस्तक में, एक शेफस् (मेहन या लिंग) में तथा एक जीभ में होती है। इनका कभी भी वेध न करे।

### सङ्घात-परिचय

**(चतुर्दशास्थ्नां सङ्घाता गुल्फे जानुनि वङ्क्षणे।। 73।।**
**द्वितीये सक्थ्नि बाह्वोश्चाप्येकैकं शिरसि त्रिके।)**

अस्थियों के संघात चौदह हैं। एक गुल्फ (एड़ी के ऊपर की गाँठ, टखना का घुट्टी) में, एक जानु में और एक वंक्षण (पेडू और जाँघ के बीच का भाग, ऊरुसंधि) में, इसी प्रकार दूसरी सक्थि (टाँग) में तथा दोनों बाहुओं में और एक-एक शिर तथा त्रिकास्थि में होते हैं।

### सीमन्त-परिचय

**( सङ्घाताः सीविता यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकीर्तिताः।। 74।।**
**चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः।)**

सीमन्त भी चौदह होते हैं और उनकी गणना अस्थि-संघात के ही समान होती है, क्योंकि जिनके संघात सीवित (सिये गये) हैं, वे सीमन्त कहे जाते हैं।

### जिह्वा-परिचय

**( उदरे पच्यमानानामाध्मानाद् रुक्मसारवत्।। 75।।**
**कफशोणितमांसानां सारो जिह्वा प्रजायते।)**

जिस प्रकार सुवर्ण को तपाने से स्वर्ण का सार भाग ही बच जाता है, इसी प्रकार शरीर की उष्णता से उदर में पकते हुये कफ, रक्त एवं मांस का सारभूत पदार्थ 'जीभ' बनती है।

### हृदय-परिचय

**( उरसि स्तनयोर्मध्ये रक्तश्लेष्मप्रसादजम्।। 76।।**
**मुकुलं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम्।)**
**हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयो मतम्।। 77।।**
**( जाग्रतस्तद् विकसति स्वपतश्च निमीलति।**
**यतो व्यानप्रणुन्नेन शुद्धरक्तेन जन्तवः।। 78।।**
**प्रीणिता वर्त्तयन्तीह यावज्जीवनसंस्थितिः।)**

'हृदय' नामक अवयव उरस् या वक्षस् के भीतर स्तनों (फुप्फुसों) के बीच में स्थित है, जो शरीर-निर्माण के समय रक्त तथा श्लेष्मा के प्रसाद या सारभाग से उत्पन्न होता है, मुकुल (अविकसित या न खिले) कमल के समान उसकी आकृति होती है, उसका मुख नीचे की ओर होता है, वह 'चेतना' का प्रधान स्थान है और 'ओजस्' का आश्रय है। जब प्राणी जागता रहता है, तब वह खिला रहता है और जब प्राणी सोया रहता है, तब वह संकुचित रहता है तथा वहीं से व्यान वायु द्वारा प्रेरित किये हुये शुद्ध रक्त से प्रीणित या तृप्त किये हुये जन्तु जीवन-पर्यन्त जीवित रहते हैं।

**वक्तव्य**—यह रक्त रस-मिश्रित होता है, अतः रक्त से अथवा रस से इन दोनों से शरीर का तर्पण या प्रीणन होता रहता है।

### फुप्फुसादि का स्थान

**तद्वामे फुप्फुसप्लीहौ दक्षिणाङ्गे यकृत् तिलम्।। 79।।**

हृदय के बाईं ओर फुप्फुस तथा प्लीहा और दाहिनी ओर यकृत् एवं तिल की स्थिति है।

### फुप्फुस-परिचय

**( उरो मध्यगतश्चापि श्वासोच्छ्वासप्रसाधनः।**
**रक्तफेनभवो ज्ञेयः फेनवद् बहुकोष्ठकः।। 80।।)**
**उदानवायोराधारः फुप्फुसः प्रोच्यते बुधैः।**

'फुप्फुस' या फेफड़ा वक्षस् के भीतर रहता है यह श्वास-उच्छ्वास क्रिया का साधक है। गर्भाशय में शरीर-निर्माण के समय यह रक्त की झाग से उत्पन्न होता है। इसलिये उसमें फेन के समान ही अनन्त कोष्ठ होते हैं और विद्वान् लोग उसे उदानवायु का आधार मानते हैं।

**वक्तव्य**—सुश्रुत ने दो भागों में विभक्त होने पर भी 'फुप्फुस' को एक ही माना है, किन्तु महर्षि चरक ने 'द्वौ श्लेष्मभुवौ' (च० शा० अ० 7) दो फुप्फुस माने हैं। इसका कारण मात्र दृष्टिकोण का भेद है।

### प्लीहा-परिचय

**( शोणिताच्च समुत्पन्ना रसरञ्जनतत्परा।। 81।।)**
**रक्तवाहिसिरामूलं प्लीहाख्याता महर्षिभिः।**

शरीरोत्पत्ति के समय प्लीहा रक्त से उत्पन्न होता है और सदैव रस को रक्त बनाने में तत्पर रहती है। इसलिये महर्षियों ने उसे रक्तवाही सिराओं का मूल माना है।

### यकृत्-परिचय

**( शोणिताच्च समुत्पन्नं रसरञ्जनतत्परम्।। 82।।)**
**यकृद् रञ्जकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयः।**

यकृत् गर्भोत्पत्ति के समय रक्त से उत्पन्न होता है और रस को रंगकर रक्त बनाने में तत्पर रहता है, क्योंकि वह रंजकपित्त का स्थान है और इसलिये वह रक्त का आश्रय माना जाता है।

**वक्तव्य**—'शोणितवहानां स्रोतसां यकृन्मूलं प्लीहा च'। देखें-च० वि० अ० 5। तथा 'स खलु आप्यो रसो यकृत्-प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति'। देखें-सु० सू० अ० 14।

### क्लोम-परिचय

**( रक्तानिलात्समुत्पन्नं कालीयकमिति स्मृतम्।। 83।।)**
**जलवाहिसिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम्।**

तिल या क्लोम गर्भोत्पत्ति के समय रक्त तथा वायु से उत्पन्न होता है। उसका एक नाम 'कालीयक' भी है। वह जलवाही सिराओं का मूल है, इसलिये तृष्णा या पिपासा को आच्छादित करता है, अर्थात् उसको व्यवस्थित रखता है।

**वक्तव्य**–'उदकवहानां स्त्रोतसां तालुमूलं क्लोम च'। देखें–च० वि० अ० 5।

### वृक्क-परिचय

**(उत्पद्येते प्रसादाच्च मेदसः शोणितस्य च।।84।।)**
**वृक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः।**

मेदस् तथा रक्त के प्रसाद या सार से वृक्क उत्पन्न होते हैं और वे उदर की मेदस् को पुष्ट करते हैं।

**वक्तव्य**–वृक्क दो होते हैं। 'मूत्रवहे द्वे' (सु० शा० अ० 9) तथा 'मूत्रवहानां स्त्रोतसी वस्तिमूलं वङ्क्षणौ च' (च० वि० अ० 5) और इन वाक्यों से यह भी ज्ञात होता है कि वृक्क मूत्र का भी वहन करते हैं। मूत्र के साथ पित्त के निकलते रहने से रक्त शुद्ध होता रहता है और लवण के निकलते रहने से मेदस् की पुष्टि होती रहती है। मूत्र मल है, अत: जो जल पिया जाता है, वह शरीर के उन पदार्थों को, जो शरीर को मलिन करते हैं या कर सकते हैं, लेकर मूत्र रूप से बाहर निकल जाता है।

### वृषण-परिचय

**(उत्पद्येते प्रसादाच्च मांसासृक् कफमेदसाम्।।85।।)**
**वीर्यवाहिसिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ।**

'वृषण' मांस, रक्त, कफ तथा मेदस् के प्रसाद या सारभाग से उत्पन्न होते हैं। वे वीर्यवाहिनी सिराओं के मूल हैं तथा पौरुष या पुरुषत्व या मैथुन-सामर्थ्य का वहन करते हैं।

### लिंग-परिचय

**(ग्रीवाहृदयबद्धाभ्यः कण्डराभ्यः प्रजायते।।86।।)**
**गर्भाधानकरं लिङ्गमयनं वीर्यमूत्रयोः।**

ग्रीवा तथा हृदय से सम्बन्ध रखने वाली कण्डराओं से 'लिंग' का उत्पत्ति होती है। उसी से गर्भाधान होता है और वह वीर्य या शुक्र तथा मूत्र के निकलने का मार्ग है।

### गभार्शय-परिचय

**(शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता।।87।।**
**तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता।)**

योनि या भग की आकृति शंख की नाभि के समान होती है। उसमें तीन आवर्त्त होते हैं। उसके तीसरे आवर्त्त में 'गर्भशय्या' या गर्भाशय प्रतिष्ठित रहता है।

**वक्तव्य**–लिंग एवं वृषण पुमान् या नर में व्यक्त और स्त्री या नारी में अव्यक्त होते हैं और योनि (भग) तथा गर्भाशय स्त्री में व्यक्त और पुरुष में अव्यक्त होते हैं और नपुंसक में ये चारों अंग अव्यक्त होते हैं। यह सिद्ध है कि यह चारों अंग नर, नारी एवं नपुंसक तीनों में है। अतएव सुश्रुत ने कहा है–'पुंसां पेश्य: पुरस्ताद् या: प्रोक्ता लक्षणमुष्कजा:। स्त्रीणामवृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गतं हि ता:'।। (सु० शा० अ० 5)। अर्थात् जो मांसपेशियाँ नर के लक्षण अर्थात् लिंग तथा मुष्क (वृषण) को बनाती हैं, वे ही नारी के फल अर्थात् गर्भाशय का निर्माण करती हैं। यही कारण है कि नर से नारी और नारी से नर तथा नर से नपुंसक बन जाते हैं। इन अंगों में विशेष प्रकार की उत्तेजना होने पर नर, नारी एवं नपुंसक में एक ही प्रकार की वासना उत्पन्न होती है; एक-सी ही रति तथा एक-सी ही तृप्ति होती है।

### शरीर-पोषण के प्रकार

**शिरा धमन्यो नाभिस्था: सर्वा व्याप्य स्थितास्तनुम्।।88।।**
**पुष्णन्ति चानिशं वायोः संयोगात् सर्वधातुभिः।**

शिरा तथा धमनियाँ नाभि (अर्थात् आमाशय एवं पक्वाशय का मध्य (अन्त्र नामक) स्थान से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई रहती हैं और वे वायु के संयोग से सभी धातुओं द्वारा सम्पूर्ण शरीर का निरन्तर पोषण करती रहती हैं।

**वक्तव्य**–प्राणी जो आहार ग्रहण करता है, उसका पाक अन्त्र में होता है। पाक होने पर जो रस बनता है, उसमें सब धातुओं के पोषक पदार्थ विद्यमान रहते हैं और उस रस को सिराएँ सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाती रहती हैं, जिससे प्राणी का पोषण होता रहता है। यह क्रिया निरन्तर होती रहती है। स्मरण रहे कि नाभिस्थ प्राणवायु धमनियों के ध्मान से ढकेला हुआ रससिराओं द्वारा सम्पूर्ण शरीर में घूमता है और उसे पुष्ट करता रहता है। 'अन्नं वै प्राणा:' (उपनिषद्) तथा 'पुष्यन्ति हि आहाररसात् रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रौजांसि' इति। देखें–च० सू० अ० 28।3 तथा सु० सू० अ० 14।

### प्राणवायु द्वारा शरीर-पोषण

**नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत् कमलान्तरम्।।89।।**
**कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्।**

**पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः।।90।।**
**प्रीणयन् देहमखिलं जीवयञ्जठरानलम्।**

नाभि (पक्वाशय तथा आमाशय के बीच) में रहने वाली प्राणवायु हृदय के भीतरी भाग को स्पर्श करती हुई कण्ठ या श्वास मार्ग से बाहर विष्णुपद (आकाश) के अमृत का पान करने के लिए निकलती है और आकाश के अमृत (प्राणवायु) को पीकर शीघ्र ही फिर शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। इस प्रकार जीवन भर सम्पूर्ण शरीर को तृप्त तथा प्रसन्न कर जठराग्नि को प्रदीप्त करती रहती है।

**वक्तव्य**–प्राणवायु नाभि से चलकर हृदय, फुप्फुस और कण्ठ से होता हुआ श्वास के रूप में बाहर निकलता है और आकाश में सदैव व्याप्त रहने वाले अमृत को पीकर फिर प्रश्वास के रूप में शरीर में चला जाता है। यह क्रिया जीवनभर निरन्तर होती रहती है। इस श्वास-प्रश्वास क्रिया से प्राणी प्रसन्न रहता है और अग्नि दीप्त होती है, क्योंकि 'एषः ह वा अग्नेर्योनिः यः प्राणः' (जाबालोपनिषद्) अर्थात् यह प्राण ही अग्नि या जठराग्नि की योनि (कारण) है।

### जीवन-मरण परिभाषा

**शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते।।91।।**
**कालेन तद्वियोगाच्च पञ्चत्वं कथ्यते बुधैः।**

उपर्युक्त प्रकार से शरीर तथा प्राणवायु के संयोग को आयुः या जीवन कहा जाता है। काल या समय से उन (शरीर और प्राण) का वियोग होने से विद्वान् लोग उसे 'पञ्चत्व' ('मृत्यु') कहते हैं।

**वक्तव्य**–तात्पर्य यह है कि जितने समय तक शरीर और प्राण का संयोग या मेल रहता है, उतने समय का नाम 'आयु' है। जब शरीर से सदा के लिए प्राणवायु निकल जाता है, तो 'मृत्यु' हो जाती है।

### रोग-निवृत्ति का महत्त्व

**न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित्।।92।।**
**अतो मृत्युरवार्यः स्यात् किन्तु रोगान्निवारयेत्।**

इस संसार में कहीं भी कोई प्राणी अमर (न मरने वाला) नहीं उत्पन्न होता। मृत्यु तो अवश्यंभावी है। इसलिये रोगों का निवारण अवश्य करना चाहिये।

**वक्तव्य**–'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' (गीता)। रोगों की चिकित्सा करके अकाल मृत्यु रोकी जाती है, क्योंकि रोगों के कारण प्राणी अकाल में ही मर जाते हैं (च० चि० अ० 3 तथा च० शा० अ० 6)। तात्पर्य यह है कि सौ वर्ष के भीतर यदि कोई मरता है, तो अकाल में मरता है, क्योंकि 'शतायुर्वै पुरुषः, इति श्रुतिः'।

### चिकित्सा का महत्त्व

**याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्यो गच्छत्यसाध्यताम्।।93।।**
**जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याऽप्रतिकारिणः।**

जो मनुष्य उचित समय पर अपने रोग की चिकित्सा नहीं करवाता है, उसका साध्य (चिकित्सा से दूर हो जाने योग्य) रोग याप्य (जो रोग चिकित्सा करते समय दवा रहता है) हो जाता है और याप्य रोग असाध्य हो जाता है तथा असाध्य रोग जीवन को नष्ट कर देता है।

**वक्तव्य**–जहाँ तक हो सके शीघ्र ही रोग की चिकित्सा करा लेनी चाहिये।

### रोगनिवारण-निर्देश

**धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।।94।।**
**अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित्।**

क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन (प्राप्ति का उपाय) शरीर ही है। इसलिये कर्म के परिणाम को जानने वाला मनुष्य रोगों से अपने शरीर की रक्षा करे।

**वक्तव्य**–जब तक मनुष्य स्वस्थ या नीरोग है, तभी तक वह उक्त चारों पदार्थों की प्राप्ति कर सकता है। अन्यथा कर्मण्य भी अकर्मण्य होकर पड़ा रहता है और कष्ट भोगता रहता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सर्वतोभावेन शरीर को स्वस्थ एवं नीरोग बनाये रखें।

### समदोष का महत्त्व

**धातवस्तन्मला दोषा नाशयन्त्यसमास्तनुम्।।95।।**
**समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च।**

रस, रक्त आदि धातुओं उनके मल और वात आदि दोष जब विषम (विकृत) हो जाते हैं, तो शरीर को रुग्ण या नष्ट कर देते हैं। जब वे सम (प्रकृतिस्थ या अविकृत) रहते हैं, तो सुख, बल और पुष्टि के कारण होते हैं।

**वक्तव्य**–'दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्'। (सु० सू० अ० 15) अर्थात् दोष (वातादि), धातु (रसादि), एवं मल ये शरीर के कारण हैं। जब ये सभी प्रकृतिस्थ रहते हैं, तो शरीर सुखी रहता है, अन्यथा रोगी हो जाता है अथवा मृत्यु हो जाती है।

### स्वस्थ की परिभाषा

(समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।। 96।।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।
एषां समत्वं यच्चापि भिषग्भिरवधार्यते।। 97।।
न तत्स्वास्थ्यादृते शक्यं वक्तुमन्येन हेतुना।
दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत्।। 98।।
अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य पुरुषं कुशलो भिषक्।)

जिस प्राणी के दोष (अर्थात् पाँच प्रकार का वात, पाँच प्रकार का पित्त तथा पाँच प्रकार का कफ) सम हों, अग्नि (जठराग्नि या पाचनशक्ति) सम हो तथा धातु (रसादि सातों धातुएँ), मल (मल, मूत्र तथा स्वेद आदि) तथा क्रिया (सोना, जागना आदि) सम हों, आत्मा, सभी इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न हों, वह स्वस्थ कहा जाता है। चिकित्सक वर्ग इन दोष, धातु एवं मला की जिस 'समता' का निश्चय करता है, वह (समता) प्राणी की 'स्वस्थता' या नीरोगता के बिना और किसी भी कारण से नहीं कही जा सकती, अर्थात् प्राणी को स्वस्थ या प्रसन्न देखकर उसके दोष, धातु एवं मल 'सम' समझ लिये जाते हैं। कुशल चिकित्सक किसी भी पुरुष (प्राणी) को अप्रसन्नेन्द्रिय या दुःखी या रोगी देख कर के दोषादियों की असमता या विषमता का अनुमान कर ले, अर्थात् समझ ले कि अब इसके दोषादि 'सम' नहीं रह गये हैं।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोकों में 'सम' शब्द का अर्थ तुल्य या बराबर नहीं है। इसका अर्थ है, प्रकृतिस्थ या जितना होना चाहिये उतना। समता को जानने की विधि उक्त 97वें पद्य में दी गयी है।

### सृष्टि-क्रम

(जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानन्दैकरूपिणः।। 99।।
पुंसोऽस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः।)

संसार की उत्पत्ति का क्रम–संसार के मूल कारण, वासना रहित, ज्ञान-स्वरूप एवं आनन्द स्वरूप पुरुष (परम पुरुष या ईश्वर) की प्रकृति वैसी नित्य (अनादि एवं अविनाशी) है, जैसे तेजःस्वरूप भगवान् सूर्य का प्रतिबिम्ब होता है।

**वक्तव्य**–ईश्वर नित्य है और प्रकृति भी नित्य है, ईश्वर चित्स्वरूप या चेतन शक्ति है, किन्तु प्रकृति जड़ या अचेतन है और प्रकृति के संयोग से ही ईश्वर जगद्योनि या जगत्-कारण होता है। प्रकृति-रहित या शुद्ध परमात्मा इच्छा-रहित या वासना-रहित है। ज्ञान और आनन्द ही एकमात्र उसका लक्षण है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश और सूर्य के मण्डल का नित्य सम्बन्ध है, उसी प्रकार प्रकृति तथा पुरुष का भी नित्य सम्बन्ध है।

### सृष्टि में प्रकृति का योगदान

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः।। 100।।
अकरोद् विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति।

प्रकृति यद्यपि अचेतन या जड़ है, तथापि उसने परमात्मा की चेतन शक्ति के संयोग से इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की है, जो कि नाटक के समान अनित्य अर्थात् एक ही रूप में रहने वाली नहीं है।

**वक्तव्य**–जैसे नाटक के पात्र अनेक रूप बदलते रहते हैं–एक ही मनुष्य कभी स्त्री का रूप धारण करता है तो कभी पुरुष का, कभी मालिक का, तो कभी नौकर का, कभी धनी का तो कभी निर्धन का; ठीक इसी प्रकार एक ही जीव अनेक रूप धारण करता है–कभी मनुष्य का तो कभी स्त्री का, कभी कीट का तो कभी पतंग का, कभी वृक्ष का तो कभी लता का। प्रकृति और पुरुष से निर्मित संसार के सभी पदार्थ परिवर्तनशील हैं। एक पदार्थ जिस रूप में आज दिखलायी दे रहा है, कल वह दूसरे ही रूप में परिवर्तित हो जाता है। अतएव संसार नाटकों के दृश्यों की भाँति अनित्य कहा गया है।

### बुद्धि आदि तत्त्वों की उत्पत्ति

प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत्।। 101।।
इच्छामयीं महद्रूपामहङ्कारस्ततोऽभवत्।
त्रिविधः सोऽपि सञ्जातो रजःसत्त्वतमोगुणैः।। 102।।

सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाली प्रकृति ने इच्छायुक्त या वासनायुक्त एवं 'महत् तत्त्वरूप' 'बुद्धि' को सर्वप्रथम उत्पन्न किया। उस बुद्धितत्त्व से 'अहङ्कार' की उत्पत्ति हुई। वह अहंकार भी रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण के कारण तीन प्रकार का हो गया।

**वक्तव्य**–प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न होने वाले प्राणी में पहले अनुभवशक्ति उत्पन्न होती है, जिसमें इच्छा या वासना रहती है। इस वासनायुक्त बुद्धितन्त्र से अहंकार या अहंभाव उत्पन्न हो जाता है और वह अहंकार तीन प्रकार का होता है–1. रजोगुण युक्त या रागात्मक प्रेम या भक्ति करने वाला; 2. सत्त्वगुण युक्त रागरहित सुख-दुःख के द्वन्द्वों में समानभाव से रहने वाला; और 3. तमोगुणयुक्त द्वेष, शत्रुता आदि दुर्भावनाओं से युक्त।

### दस इन्द्रियाँ

**तस्मात् सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणि दशाभवन्।**
**मनश्च जातं तान्याहुः श्रोत्रत्वङ्नयनं तथा।। 103।।**
**जिह्वाघ्राणवचोहस्तपादोपस्थगुदानि च।**
**पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च।। 104।।**
**कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथ्यन्ते सूक्ष्मबुद्धिभिः।**

सत्त्वगुण और रजोगुण से युक्त अहंकार द्वारा दस 'इद्रियाँ' और 'मन' उत्पन्न हुआ। वे दस इन्द्रियाँ ये हैं-1. श्रोत्र, 2. त्वचा, 3. नयन, 4. जिह्वा (रसना), 5. घ्राण, 6. वाक्, 7. हस्त, 8. पाद, 9. उपस्थ (लिंग) तथा 10. गुद। इनमें पहली पाँच तो बुद्धि इन्द्रियाँ या ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और दूसरी पाँच कर्मेन्द्रियाँ कही जाती हैं।

**वक्तव्य**-बुद्धितत्त्व की इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए अहंभाव तो उत्पन्न हो गया, किन्तु उनकी प्राप्ति के साधनों का अभाव था, वह भी दस इन्द्रियाँ और मन की उत्पत्ति हो जाने से पूर्ण हो गया। ये 11 पदार्थ सत्त्व और रजोगुण से युक्त होते हैं, क्योंकि 'कारणानुरूपं कार्यम्' (सु० शा० अ० 1) जिससे ऐश्वर्य की सामर्थ्य प्राप्त की जाये, उसे 'इन्द्रिय' कहते हैं। मन मनन और संकल्प आदि का साधन है, इसके संयोग से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच प्रकार के ज्ञानों की साधन हैं और पाँच कर्मेन्द्रियाँ पाँच प्रकार के कर्मों के साधन हैं। यहाँ तक के बतलाये हुये सभी तत्त्वों का समन्वित नाम सूक्ष्मशरीर है।

### पञ्च तन्मात्राएँ

**तमः सत्त्वगुणोत्कृष्टादहङ्कारादथाभवत्।। 105।।**
**तन्मात्रपञ्चकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः।**
**शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम्।। 106।।**
**रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रं चेति तद्विदुः।**
**तन्मात्रपञ्चकात्तस्मात् सञ्जातं भूतपञ्चकम्।। 107।।**
**व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपं च तन्मतम्।**

तमोगुण तथा सत्त्वगुण से युक्त अहंकार तत्त्व से पाँच 'तन्मात्राएँ' उत्पन्न हुईं। उनके नाम विद्वानों ने ये बतलाये हैं-1. शब्दतन्मात्र, 2. स्पर्शतन्मात्र, 3. रूपतन्मात्र, 4. रसतन्मात्र और 5. गन्धतन्मात्र। इन पाँच तन्मात्राओं से पाँच 'महाभूत' उत्पन्न हुये और वे ये हैं-1. आकाश, 2. वायु, 3. अग्नि, 4. जल और 5. पृथिवी।

**वक्तव्य**-भोग के साधनों के रहने पर भी भोक्ता (भोगने वाला) भोगायतन (भोगस्थान) के अभाव में भोग नहीं कर सकता। अतः भोगायतन (भोगायतनं शरीरम्) अर्थात् स्थूल शरीर भी उत्पन्न हो गया। आकाश आदि पाँच महाभूतों से शरीर की उत्पत्ति होती है, जिसमें पुरुष (पुरि शेते इति पुरुषः) शयन करता या व्याप्त रहता है। देखें-'पञ्चमहाभूत-शरीरिसमवायः पुरुषः'। (सु० सू० अ० 1)। जिस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर व्याप्त है। महाभूत का सूक्ष्म रूप ही 'तन्मात्र' है। इसी को नैयायिक लोग 'परमाणु' कहते हैं।

### तन्मात्राओं के स्थूल रूप

**शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगन्धावनुक्रमात्।। 108।।**
**तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः।**

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँचों ही शब्दतन्मात्र आदि पाँच तन्मात्राओं के क्रमशः स्थूलरूप को प्राप्त हुये विशेष हैं।

**वक्तव्य**-पञ्चमहाभूतों के परमाणु शब्द आदि विशेषों द्वारा जाने जाते हैं। 'विशेष्यन्ते श्रोत्रादिभिः इन्द्रियैः ज्ञायन्ते इति विशेषाः'। अर्थात् शब्दादि शब्दतन्मात्रादि के सूचक या बोधक हैं।

### इन्द्रियों के विषय

**बुद्धीन्द्रियाणां पञ्चैव शब्दाद्या विषया मताः।। 109।।**
**कर्मेन्द्रियाणां विषया भाषादानविहारिताः।**
**आनन्दोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः।। 110।।**

साङ्ख्यशास्त्र के विद्वानों का कथन है कि उक्त शब्द आदि विशेष श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के विषय या ज्ञेय भाव हैं। कर्मेन्द्रियों के विषय (कर्म) ये हैं, यथा-1. भाषण (बोलना), 2. आदान (ग्रहण करना), 3. विहरण (विचरना या चलना), 4. आनन्द (रतिसुख की प्राप्ति करना) एवं 5. उत्सर्ग (त्यागना)।

**वक्तव्य**-आचार्य शार्ङ्गधर ने सुश्रुत का अनुसरण करते हुये उपस्थेन्द्रिय (लिंग और योनि) का विषय आनन्द माना है-'आनन्द्यते अनेन इति आनन्दः'। किन्तु महर्षि चरक ने इसका विषय विसर्ग (शुक्र मोक्षण) ही माना है। आनन्द तो अनुभव है, कर्म नहीं। उक्त कर्म में स्त्री और पुरुष के रजस् तथा शुक्र का विसर्ग अर्थात् त्याग होता है।

### प्रकृति-परिचय

**प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा।**
**एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता।। 111।।**

प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या एवं अविकृति ये उस प्रकृति के नाम हैं, जो शिव (ईश्वर) के आश्रित होकर रहती है।

**वक्तव्य**–प्रकृति के उक्त नाम सार्थक हैं। यथा–प्रधान सब तत्त्वों में प्रधान है अथवा इसी से वे धारण किये जाते हैं। प्रकृति–यह स्वभाव-सिद्ध है। शक्ति–इसी से ईश्वर जगद्योनि होने में समर्थ होता है। नित्या–ईश्वर के समान यह नित्य अर्थात् शाश्वत है। अविकृति–वह किसी की विकृति अर्थात् विकार या कार्य नहीं है, अर्थात् उसको किसी ने उत्पन्न नहीं किया। 'अकारणम्'। देखें–सु० शा० अ० 1।

### प्रकृति-विकृति

**महानहङ्कृतिः पञ्च तन्मात्राणि पृथक् पृथक्।**
**प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः।। 112।।**

विद्वानों का कथन है, कि महान् (बुद्धितत्त्व) अहंकार और पृथक्-पृथक् पाँच तन्मात्रा ये सात प्रकृति (कारण) भी हैं। और विकृति (कार्य) भी।

**वक्तव्य**–उक्त सातों तत्त्व प्रधान से उत्पन्न हुये हैं, इसलिये उन्हें विकृति अर्थात् कार्य कहा जाता है और इनसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुये हैं। इसलिये उन्हें प्रकृति अर्थात् कारण भी कहा जाता है।

### सोलह-विकार

**दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च।**
**विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत्स्थिताः।। 113।।**

दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच महाभूत ये सोलह 'विकार' कहे जाते हैं और ये सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होकर रहते हैं।

**वक्तव्य**–ये सोलह तत्त्व 'विकार' या कार्य ही कहे जाते हैं, क्योंकि ये उक्त तन्मात्राओं से उत्पन्न होते हैं। प्रश्न–इनको केवल विकार ही क्यों कहते हैं? प्रकृति भी क्यों नहीं कहते? कारण यह है कि इनसे कोई नवीन तत्त्व उत्पन्न नहीं होता। अतः इन्हें केवल विकार ही कहते हैं प्रकृति नहीं।

### जीवात्मा का निवास-स्थान

**एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे।**
**जीवात्मा नियतो नित्यो वसति स्वान्तदूतवान्।। 114।।**

उक्त चौबीस तत्त्वों द्वारा बने हुये शरीर रूपी घर में अविनाशी जीवात्मा मन को अपना दूत बनाकर कर्म-बन्धन से बँधा हुआ निवास करता है।

### जीवात्मा का स्वरूप

**स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः।**
**व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः।। 115।।**

पाप, पुण्य, सुख और दुःख द्वन्द्वों से युक्त तथा मन द्वारा किये गये कर्मों के बन्धनों से बँधा हुआ वह जीवात्मा देही (देह वाला) या शरीर (शरीर वाला) कहा जाता है।

**वक्तव्य**–वासनाओं से रहित जीवात्मा मन के फेर में पड़कर अनेक प्रकार के सुख दुःखों में पड़ जाता है। जैसे एक भला आदमी अपने नौकर या मित्र के फेर में पड़कर अनेक झंझटों में फँस जाता है, ठीक वही दशा शुद्ध सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म जीवात्मा की भी होती है।

### जीवात्मा के प्रतिबन्धक

**कामक्रोधौ लोभमोहावहङ्कारश्च पञ्चमः।**
**दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बन्धाय देहिनः।। 116।।**

काम, क्रोध, लोभ, मोह और पाँचवाँ अहङ्कार, दस इद्रियाँ तथा बुद्धि–ये सभी उस जीवात्मा को बन्धन में डालने वाले हैं।

**वक्तव्य**–बुद्धि इच्छामयी है और इच्छाएँ ही सबको फँसाती हैं। काम (सुखभोग की वासना), क्रोध (गुस्सा), लोभ (धनादि के सञ्चय की अभिलाषा), मोह (मिथ्याज्ञान) और अहङ्कार (अभिमान)–ये सब मानसिक दोष हैं। इनके आवेश से सद्-असद् विवेक का नाश या ह्रास हो जाता है और अनेक प्रकार के संकट उठाने पड़ते हैं।

### मोह का लक्षण

**(अश्रेयः श्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत्।**
**मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम्।। 117।।)**

शुभ एवं अशुभ में जो भ्रान्ति एवं सन्देह होता है और जो अहित (दुःखदायी) में हित (सुखदायी) दिखलायी पड़ता है, उसे मिथ्याज्ञान या 'मोह' कहते हैं।

### अहङ्कार का लक्षण

**(अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्त्तते।**
**कार्यकारणयुक्तस्तु तदहङ्कारलक्षणम्।। 118।।)**

कार्य एवं कारण से युक्त जो पुरुष 'अहम्' (मैं भी कुछ हूँ) इस प्रकार के अभिमान के साथ कार्यों में प्रवृत्त होता है, उसका नाम 'अहंकार' है।

### काम का लक्षण

**(स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा।**
**परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते।। 119।।)**

स्त्रियों में पुरुषों का एवं पुरुषों में स्त्रियों का जो परस्पर स्नेह होता है, उसे 'काम' कहते हैं।

**क्रोध का लक्षण**

**( यदूष्मा हृदयाज्जन्तोः समुत्तिष्ठति वै सकृत्।**
**परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोध इत्यभिधीयते।। 120।। )**

दूसरे को आघात पहुँचाने के लिए एकाएक प्राणी के हृदय से जो ऊष्मा (गर्मी) उठती है, जिससे क्लेश होता है, उसे 'क्रोध' कहते हैं।

**लोभ का लक्षण**

**( परार्थं परभोगांश्च परसामर्थ्यमेव च।**
**दृष्ट्वा श्रुत्वा च या तृष्णा जायते लोभ एव सः।। 121।। )**

परायी सम्पत्ति, उपभोग सामग्री एवं शक्ति को देखकर अथवा सुनकर जो लालसा उत्पन्न होती है, उसे 'लोभ' कहते हैं।

**रोग-आरोग्य के लक्षण**

**आप्नोति बन्धमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते।**
**तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत् सुखावहम्।। 122।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे कलादिकाख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः।। 5।।**

उक्त देहधारी प्राणी अज्ञान के कारण बन्धन को प्राप्त होता है और आत्मज्ञान (तत्त्वज्ञान या सद्विवेक) होने से मुक्त (दुःखों और संकटों से पार) हो जाता है। उस देहधारी को जो दुःख या कष्ट देने वाले भाव हैं, उनको व्याधि या रोग कहते हैं तथा उसको सुख देने वाला आरोग्य है।

**वक्तव्य**–यहाँ विश्व की उत्पत्ति का जो क्रम बतलाया गया है, ठीक यही क्रम मनुष्य की उत्पत्ति का भी है। जिस प्रकार इस विशाल विश्व में ईश्वर व्याप्त है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा व्याप्त है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर एक छोटा-सा विश्व है और उसमें आत्मा छोटा ईश्वर है। 'पुरुषोऽयं लोकसम्मित इत्युवाच भगवानात्रेयः। यावन्तो हि लोके भावविशेषाः तावन्तः पुरुषे यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके'।। (च० शा० अ० 5)। अर्थात् जितने तत्त्व संसार में हैं, उतने ही पुरुष में भी हैं। इसी प्रकार पञ्चमहाभूत तथा अव्यक्त ब्रह्म का मिश्रण यह संसार है और उक्त छः तत्त्वों का ही मिश्रण यह प्राणी भी है। 'षड् धातवः समुदिताः 'पुरुष' इति सञ्ज्ञां लभन्ते' (च० शा० अ० 5)। 'पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः' (सु० सू० अ० 1)। इस विषय को पूर्णरूप से समझने के लिए आप च० शा० अ० 5 की चन्द्रिका टीका देखें।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड का पांचवा अध्याय समाप्त।। 5।।
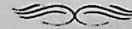
## षष्ठोऽध्यायः

# आहारादिगतिकथनम्

### आहार-परिचय

**(आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद् देहधारकः।**
**आयुस्तेजः समुत्साहः स्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः।।1।।)**

आहार या भोजन तृप्तिकारक, तत्काल बलकारक, शरीर का धारक एवं पोषक है। यह आयुः, तेजस्, उत्साह, स्मरणशक्ति, ओजस् एवं अग्नि को बढ़ाता है।

### आहार के भेद

**(आहारः षड्विधो भोज्यो भक्ष्यश्चर्व्यस्तथैव च।**
**लेह्यश्चोष्यस्तथा पेयस्तदुदाहरणानि च।।2।।**
**भोज्य ओदनसूपादिर्भक्ष्यो मोदकमण्डकः।**
**चर्व्यश्चिपिटधान्यादी रसालादिस्तु लेह्यते।।3।।**
**चोष्य आम्रफलेक्ष्वादिः पेयस्तु पानकं पयः।)**

आहार छः प्रकार का होता है–1. भोज्य, 2. भक्ष्य, 3. चर्व्य, 4. लेह्य, 5. चोष्य तथा 6. पेय। इनके उदाहरण हैं–भात तथा दाल आदि 'भोज्य' कहलाते हैं। लड्डू तथा रोटी आदि 'भक्ष्य' कहे जाते हैं। चिउड़ा एवं भुने चने आदि 'चर्व्य' (चबाने योग्य) कहे जाते हैं। सिखरन, चटनी, च्यवनप्राश आदि 'लेह्य' (चाटने योग्य) कहे जाते हैं। आम के फल एवं ईख आदि 'चोष्य' (चूसने योग्य) तथा पानक (शर्बत) एवं दूध आदि 'पेय' (पीने योग्य) कहे जाते हैं। इन सबका एक नाम 'आहार' भी है।

### पाचन-प्रकार

**यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः।।4।।**
**माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः।**
**अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चाम्लतां व्रजेत्।।5।।**
**ततः समानमरुता ग्रहणीमभिनीयते।**

आहार प्राणवायु से प्रेरित होकर पहले मुख एवं आहार-मार्ग द्वारा 'आमाशय' में जाता है और वहाँ छहों रसों युक्त आहार मधुरता (मीठेपन) और फेन-भाव (झाग जैसी अवस्था) को प्राप्त होता है। इसके पश्चात् वह मधुर एवं फेनरूप आहार पाचक पित्त द्वारा पकने लगता है और खट्टा हो जाता है। फिर समान वायु के प्रभाव से वह ग्रहणी में पहुँच जाता है।

**वक्तव्य**–प्राणवायु के प्रकृतिस्थ रहने पर प्राणी आहार का आहरण या ग्रहण कर सकता है अन्यथा नहीं। आमाशय में क्लेदक नामक कफ रहता है। उसके प्रभाव से आहार मधुर हो जाता है और आमाशय में आहार पहुँचने पर आलोड़न-विलोड़न होने से यह झाग-सा बन जाता है। पाचक पित्त स्वयं विदग्ध होकर खट्टा हो जाता है, अतः उसके मिश्रण से आहार भी खट्टा हो जाता है। पाचक पित्त (जठराग्नि) के साथ ही समान वायु रहता है और वह आहार को 'ग्रहणी' में पहुँचा देता है।

### ग्रहणी-परिचय

**(षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता।।6।।**
**पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीत्यभिधीयते।)**

पाचक पित्त का धारण और पोषण करने वाली जो छठी कला कही जाती है और जो पक्वाशय तथा आमाशय के मध्यभाग में अवस्थित है, वह 'ग्रहणी' कही जाती है।

**वक्तव्य**–आमाशय से प्रारम्भ होकर पक्वाशय-पर्यन्त जो साढ़े तीन 'व्याम' पुरुषों तथा तीन व्याम (एक व्याम = 4 हाथ) स्त्रियों के उदर में जो अवयव है, उसका नाम 'अन्त्र' है। इसी में से होकर आहार आमाशय से मलाशय तक पहुँचता है और इसी में आहार का पाक होता है। अतएव इसे सुश्रुत में 'पित्तधरा', शार्ङ्गधर में 'अग्निधरा' और चरक में 'अग्न्याधिष्ठान' तथा अन्न के पाक के लिए ग्रहण करने के कारण इसे 'ग्रहणी' कहा है।

### जठराग्नि के कार्य

**ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटुः।।7।।**
**रसो भवति सम्यक्क्वादपक्वादामसम्भवः।**

उक्त ग्रहणी में आहार जठराग्नि से पचता है, तदनन्तर उसका स्वाद कटु या चरपरा हो जाता है। भली-भाँति पाक होने से रस आहार में से पृथक् हो जाता है, अन्यथा आम (कच्चा) रह जाता है।

**वक्तव्य**-जठराग्नि अर्थात् पाचक पित्त स्वयं कटु है, अतः उसके प्रभाव से आहार भी कटु हो जाता है। रस आहार में पृथक् हो गया तो वह रसवाहिनियों द्वारा शरीर-पोषणार्थ हृदय की ओर चला जाता है, अन्यथा आम के रूप में गुदमार्ग से निकल जाता है।

### रस-परिपाक

**वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः।।8।।**
**पुष्णाति धातूनखिलान् सम्यक् पक्वोऽमृतोपमः।**

आहार का वह रस जठराग्नि की शक्ति से भली-भाँति परिपक्व होकर मधुरता और स्निग्धता को प्राप्त हो जाता है और शरीर की सब धातुओं को पुष्ट करता है, अतएव वह अमृत के समान होता है।

**वक्तव्य**-इस आहार रस में सब धातुओं के पोषकतत्त्व रहते हैं और यही जीवन की रक्षा भी करता है।

### अपक्वरस से हानि

**मन्दवह्निविदग्धश्च कटुश्चाम्लो भवेद् रसः।।9।।**
**विषभावं व्रजेद् वापि कुर्याद् वा रोगसङ्करम्।**

वह रस जठराग्नि की मन्दता के कारण यदि भली-भाँति परिपक्व नहीं होता तो कड़ुवा एवं खट्टा हो जाता है और विषभाव को प्राप्त हो जाता है, अथवा अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर देता है।

**वक्तव्य**-मन्दाग्नि के कारण रस का सम्यक् परिपाक न होने से 'दण्डालसक' नामक रोग हो जाता है। इसके लक्षण विष के लक्षणों के समान होते हैं। यह आशुकारी या शीघ्रमारक होता है। यदि सौभाग्य से उक्त रोग न हुआ तो विसूचीं, अलसक एवं आमवातादि रोग हो जाते हैं। देखें-च० वि० अ० 2 तथा वाग्भट सू० अ० 8।

### रस, मल, मूत्र तथा वली परिचय

**आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः।।10।।**
**शिराभिस्तज्जलं नीतं बस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात्।**
**तत् किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठेत् पक्वाशये च तत्।।11।।**
**वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम्।**
**प्रवाहिणी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम्।।12।।**

आहार का सारभाग 'रस' बन जाता है और साररहित भाग 'मलद्रव' (पतला मल) होता है। और उस 'मलद्रव' का जलभाग सिराओं द्वार वस्ति (मूत्राशय) में पहुँचाया हुआ 'मूत्र' बन जाता है। उस मलद्रव का किट्ट भाग अर्थात् गाढ़ा हिस्सा मल (पुरीष) बन जाता है। वह मलाशय में अवस्थित रहता है। वह समय-समय पर अपानवायु द्वारा प्रेरित किया हुआ तीन वलियों से निर्मित मार्ग (गुद) में से होकर बाहर निकल जाता है। इन वलियों के ये नाम हैं-1. प्रवाहिणी (मल को प्रवाहित करने वाली), 2. सर्जनी (मल को त्यागने वाली) और 3. ग्राहिका या ग्राहिणी (निकलते हुये मल को यथावश्यक रोकने वाली)।

### रक्तनिर्माण-प्रक्रिया

**रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः।**
**रञ्जितः पाचितो यः स पित्तेनायाति रक्तताम्।।13।।**

वह रस समान वायु द्वारा प्रेरित होकर हृदय में चला जाता है और जो रंजक पित्त द्वारा रंजित तथा पाचित होता है, वही 'रक्त' बन जाता है।

**वक्तव्य**-'रस गतौ' धातु से 'रस' शब्द का निर्माण होता है। इसका अर्थ है कि वह सदा चलता रहता है-'रसति अहरहः गच्छति इत्यतो रसः'। इस रस का स्थान हृदय है और यह वहाँ से चलकर प्रतिदिन सम्पूर्ण शरीर का तर्पण, पोषण एवं सञ्चालन करता है और यह पोषक रस यकृत एवं प्लीहा में जाकर राग को प्राप्त कर रक्त बन जाता है। देखें-सु० सू० अ० 14।

### रक्त का महत्त्व

**रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम्।**
**स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद् भवेत्।।14।।**

वह रक्त (रंगा हुआ रस) सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और वह जीवात्मा का सर्वश्रेष्ठ आधार है। वह स्नेहयुक्त है, जल की अपेक्षा गुरु है, सदा चलता रहता है और स्वादु (कुछ नमकीन स्वाद वाला) है। जब कभी वह विकृत हो जाता है, तो पित्त के समान अर्थात् खट्टा हो जाता है।

**वक्तव्य**-जो रस रक्तरूप में शरीर के सम्पूर्ण अवयवों, दोषों, धातुओं एवं मलों में अनुसरण करता रहता है, वह

द्रवरूप है तथा स्नेहन, जीवन, तर्पण एवं धारण आदि सद्गुणों के कारण सौम्य अर्थात् सोम के आह्लादक आदि गुणों से युक्त समझा जाता है। यही शुद्ध पोषक रस जब शुद्ध रंजक पित्त द्वारा रंग दिया जाता है, तो वह 'रक्त' कहा जाता है। यहाँ उसी रक्त का ग्रहण किया गया है। देखें–सु० सू० अ० 14।

### रसादि धातुओं का परिणाम-क्रम

**पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात्।**
**शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत्।। 15।।**

सम्पूर्ण शरीरव्यापी पित्त के ताप से पकायी हुई रस आदि धातुएँ क्रमशः एक मास में शुक्र भाव को प्राप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार स्त्रियों का 'रजस्' बन जाता है।

**वक्तव्य**–शरीर के रस, रक्त आदि धातु तथा उपधातु आदि पदार्थों का निर्माण तीन प्रकार से होता है–1. रस से रक्त, रक्त से मांस एवं मांस से मेदस् आदि। 2. 'तत्रैषां (धातूनां) अन्नपानरसः प्रीणयिता' तथा 3. 'तेषां (धातूनाम्) क्षयवृद्धी शोणितनिमित्ते' अर्थात् अन्नपान का रस ही सभी धातुओं का पोषण करता है और धातुओं का क्षय एवं वृद्धि रस से ही होती है।

### गर्भावतरण-क्रम

**कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणित-शुक्रजः।**
**गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल उच्यते।। 16।।**

सन्तानोत्पत्ति अथवा आनन्द या रतिसुख की कामना से नारी एवं नर का उपस्थेन्द्रिय-विषयक संयोग होने पर शुद्ध शोणित एवं शुक्र के सम्मिलन से उत्पन्न होने वाला गर्भ नारी के गर्भाशय में प्रादुर्भूत होता है। वह जब जन्म लेता है तो 'बाल' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–नर और नारी के जोड़े का नाम 'मिथुन' है। इसकी उपस्थ = लिंग एवं योनि सम्बन्धी एक विशिष्ट क्रिया का नाम 'मैथुन' है। इस क्रिया से कभी-कभी अर्थात् जब कभी शुक्र और शोणित शुद्ध होते हैं, तो गर्भाधान हो जाता है। यह जब तक गर्भाशय में रहता है तब तक भ्रूण या गर्भ और जन्म होने पर 'शिशु' कहलाता है।

### पुत्र-कन्या की उत्पत्ति में कारण

**आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत्।**
**नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी।। 17।।**

गर्भाधान के समय प्रायः रजस् अर्थात् शोणित की अधिकता से कन्या शुक्र की अधिकता से पुत्र और रजस् एवं शुक्र की समता से नपुंसक की उत्पत्ति होती है, अथवा जैसी परमेश्वर की इच्छा हो।

**वक्तव्य**–'यथेच्छा पारमेश्वरी' कहने का तात्पर्य यह है कि कभी-कभी उक्त प्रकार के विपरीत साँप, बिच्छू आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं। देखें–सु० शा० अ० 2।

कुछ जिज्ञासु आधुनिक पाश्चात्य पद्धति के ग्रन्थों में शुक्रगत कीटाणुओं की चर्चा एवं चित्रों को देखकर पूछा करते हैं कि भारतीय अथवा आयुर्वेद साहित्य में शुक्र के कीटाणुओं की चर्चा है कि नहीं? इसका संक्षिप्त समाधान इस प्रकार है–पुराणों में लोक की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार कहा गया है–विष्णु भगवान् क्षीरसागर में सहस्रों फणों वाले शेषनाग पर शयन करते हैं और उनके पास लक्ष्मी एवं गरुड़ आदि भी विराजमान रहते हैं, उनकी नाभि से नाल निकलती है, उस पर कमल और कमल पर ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, उस समय सब ओर जल ही जल होता है इत्यादि और आयुर्वेद में 'एवमयं लोकसम्मितः पुरुषः' (च० शा० अ० 2.4)। अर्थात् इस प्रकार लोक के समान ही पुरुष भी है। तो अब विचार कीजिये, कि यह समानता किस प्रकार है–सातवीं धातु शुक्र क्षीरसागर है, उसमें सर्पाकार कीटाणु शेषनाग है, उसमें चेतनाधातु रूप (जीवात्मा) विष्णु हैं, बुद्धितत्त्व लक्ष्मी एवं मन गरुड़ है, अहंकार नारद है, जो वीणा बजाता हुआ उसकी स्तुति किया करता है। ये सभी सदैव भगवान् विष्णु के साथ ही रहते हैं–'अतीन्द्रियैस्तैरतिसूक्ष्मरूपैः आत्मा कदाचित् न वियुक्तरूपः। न कर्मणा नैव मनो मतिभ्यां न चाप्यहङ्कारविकारदोषैः।।' (च० शा० अ० 2)। कर्मानुसार आत्मा अर्थात् भगवान् विष्णु गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् गर्भाशय के किसी भाग में चिपक जाता है। उसकी नाभि से नाल अर्थात् गर्भनाल निकलती है, उस पर भ्रूण का शरीर बन जाता है, यह ब्रह्मा है। उस समय सब ओर गर्भोदक अर्थात् गर्भाशय में समुद्र-जल के समान खारा जल ही जल होता है। 'यथा लोकस्य सर्गादिस्तथा पुरुषस्य गर्भाधानम्' (च० शा० अ० 5)। अर्थात् जैसे लोक की सृष्टि होती है, वैसे ही पुरुष का गर्भाधान होता है। आशा है इस चर्चा से आपके प्रश्न का कुछ समाधान हो जायेगा।

### जातकर्म-संस्कार

**(जातमात्रस्य ताल्वोष्ठकण्ठनासाप्रमार्जनम्।**
**कुर्यात् सतूलयाऽङ्गुल्या सर्पिःसैन्धवलिप्तया।। 18।।)**

जन्म के पश्चात् तत्काल धात्री (दाई) अपनी तर्जनी अंगुली पर रुई लपेट और उस पर बारीक पिसा हुआ सेंधा नमक तथा गोघृत पोतकर बालक के तालु, होंठ, कण्ठ तथा नाक के छिद्रों को भली-भाँति धीरे-धीरे साफ कर दें।

**(अश्मनो वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत्।
शीतलेनाथवोष्णेन जलेन परिषेचयेत्।। 19।।)**

बालक के कानों के पास पत्थरों अथवा काँसे के पात्रों को बजाये और शीतल अथवा उष्ण जल के छींटें दे।

**(संक्लेशविहतानेवं प्राणान् संल्लभते शिशुः।
तथापि यद्यचेष्टः स्यात् शूर्पेण बीजयेच्च तम्।। 20।।)**

इस प्रकार बालक जन्मकाल के क्लेश से नष्टप्राय प्राणों को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् श्वास लेने लगता है तथा हिलने-डुलने लग जाता है। इतने पर भी यदि बालक चेष्टाहीन ही पड़ा रहे तो सूप (छाज) से उसके मुख पर हवा करे।

**(ततः प्रत्यागतप्राणं प्रकृतिस्थं समीक्ष्य च।
पिताऽस्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम्।। 21।।)**

इसके पश्चात् जब बालक में पूर्णरूप से प्राणों का संचार होना प्रारम्भ हो जाये और वह प्रकृतिस्थ (स्वस्थ) दिखलायी पड़े, तब उसका पिता उसके दाहिने कान में नीचे दिये मन्त्र का उच्चारण करे।

**मन्त्र**

**(अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदां शतम्।। 22।।
शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि।
नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु।। 23।।)**

हे पुत्र! तू मेरे अंग-अंग से उत्पन्न हुआ है और तू पुत्र नामधारी मेरी आत्मा है, तू सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रह, तू सौ वर्ष तक सुख तथा हित आयु वाला हो, तू शतायु हो, बहुत लम्बी आयु को प्राप्त कर, नक्षत्र, दिशाएँ, रात्रि तथा दिन तुम्हारी रक्षा करें।

**नाल-छेदन**

**मूर्ध्नि स्नेहपिचुं दत्त्वा नाड्याः कल्पनमाचरेत्।
अष्टाङ्गुलमभिज्ञाय बध्नीयाद् बन्धनद्वयम्।। 24।।
तन्मध्ये लोहकर्त्तर्या छेदयेल्लेपयेत् तथा।
मधुमिश्रेण चाऽऽज्येन सूत्रं कण्ठेऽवसज्जयेत्।। 25।।**

इसके पश्चात् बालक के शिर पर नवनीत अथवा तिलतैल से भिगोया हुआ रूई का टुकड़ा (फोहा) रख दे तथा नाल-छेदन का प्रबन्ध करे। उसकी विधि यह है-बालक की नाभिनाल को आठ अङ्गुल (नापकर) पर फिर एक अंगुल के अन्तर पर सूत के डोरे से दो बन्धनों से कस कर बाँध दे। फिर इन दोनों बन्धनों के बीच में से लोहे की कैंची से काट दे और घृत-मधु से लेप कर सूत के डोरे को बालक के गले में लटका दें।

**वक्तव्य**—स्मरण रहे कि यदि माता के गर्भाशय से नाल निकल आयी हो तो उक्त प्रकार का एक ही बन्धन पर्याप्त होता है, अन्यथा दो बन्धन करने चाहिये।

**(ततस्तैलैस्तमभ्यज्य स्नापयेत् कोष्णवारिणा।
रूप्यहेमप्रतप्तेन सर्वगन्धशृतेन वा।। 26।।)**

इसके पश्चात् यथोचित तैल से मालिश करके चाँदी अथवा सुवर्ण को तपाकर और उसे जल में बुझाकर अथवा 'सर्वगन्ध' नामक गण के क्वथित जल से अथवा केवल गुनगुने जल से बालक को स्नान कराये।

**(मन्त्रपूतेऽथ सस्वर्णे प्राशयेन्मधुसर्पिणी।
ततः कुलोचिताऽऽचारैर्जातकर्म समाचरेत्।। 27।।)**

इसके पश्चात् सुवर्ण भस्म मिलाकर अथवा सुवर्ण को घिसकर मधु तथा गोघृत मिलाकर बालक को चटाये। इसके पश्चात् अपने कुलाचारों के अनुसार 'जातकर्म' करे।

**वक्तव्य**—देशाचार अथवा कुलाचार के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से जातकर्म एवं नामकरण आदि संस्कार किये जाते हैं। औषध-पान के पूर्व भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्रों से औषधादि को अभिमन्त्रित किया जाता है। अपठित लोग केवल इष्टदेवता या ईश्वर का नाम-स्मरण कर लेते हैं, उनके वे ही मन्त्र होते हैं।

**अभिमन्त्रण-मन्त्र**

**(ॐ ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्र भूचन्द्रार्कानिलानलाः।
ऋषयः सौषधिग्रामा चूतसङ्घाश्च पान्तु ते।। 28।।
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते।। 29।।)**

तुम्हारा कल्याण हो, ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, शंकर, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषिगण, औषधियाँ एवं भूतगण तुम्हारी रक्षा करें। जैसे-ऋषियों को रसायन, देवताओं को अमृत और नागों को सुधा, वैसे ही यह औषध तुमको सुखदायक हो।

**वक्तव्य**—इसकी विस्तृत व्याख्या के लिए 'चन्द्रिका टीका युक्त चरकसंहिता' का सम्बन्धित प्रकरण देखें।

**स्त्री की देख-रेख**

**(रजोवतीं गर्भवतीं च नारीं**
**प्रसूयमाणामथ सम्प्रसूताम्।**
**उपाचरेयुर्बहुशः प्रसूताः स्त्रियः**
**सुशीलाः परिचारदक्षाः।।30।।)**

रजस्वला, गर्भवती, प्रसवकाल में एवं प्रसूता स्त्री का उपचार, आहार-विहार एवं औषधादि की व्यवस्था वे स्त्रियाँ करें, जो वृद्धा हों, जिनको बहुत बार प्रसव हुआ हो, जो सुशील हों और जो परिचार क्रिया में कुशल हों।

**प्रसूतासंज्ञा**

**(प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे।**
**सूतिका नाम हीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम्।।31।।)**

प्रसूता स्त्री डेढ़ मास के पश्चात् अथवा फिर आर्त्तव के दिखलायी पड़ने पर 'सूतिका या प्रसूता' संज्ञा से रहित हो जाती है।

**प्रसूता का आहार-विहार**

**(प्रसूता हितमाहारं विहारं च समाचरेत्।**
**व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत्।।32।।)**

प्रसूता स्त्री उचित आहार तथा उचित विहार करे और व्यायाम, मैथुन, क्रोध एवं शीतल आहार आदि का परित्याग करे।

**बालक की स्तन्यपान विधि**

**(तत्र माता प्रशस्ताङ्गी चारुवस्त्रा पुरोमुखी।**
**उपविश्यासने सम्यक् दक्षिणं स्तनमम्बुना।।33।।**
**प्रक्षाल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम्।**
**उदङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैः सन्धार्य पाययेत्।।34।।)**

माता या धाई स्नानादि से स्वच्छ होकर सुन्दर वस्त्र पहन कर, पूर्व की ओर मुख करके आसन पर बैठकर, दाहिने स्तन को जल से भली-भाँति धोकर, थोड़ा दूध चुआकर निम्नलिखित मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उत्तर की ओर मुख वाले बालक को धीरे से गोद में लेकर दूध पिलाये।

**अभिमन्त्रण मन्त्र**

**(क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तु स्तनयोः क्षीरपूरकः।**
**सदैव सुभगे बालो भवत्वेष महाबलः।।35।।**
**पयोऽमृतसमं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने।**
**दीर्घमायुरवाप्नोतु देवा प्राप्यामृतं यथा।।36।।)**

हे भाग्यवती! तुम्हारे स्तनों में क्षीरसागर सदैव दूध भरता रहे, जिसे पीकर यह बालक बलशाली हो। हे सुमुखी! तुम्हारे अमृत जैसे दूध को पीकर यह कुमार दीर्घायु को प्राप्त करे, जैसे अमृत को पाकर देनतागण दीर्घायु प्राप्त करते हैं।

**स्तन्य-प्रवृत्ति**

**(नार्याः स्तन्यं त्रिरात्राद् वा चतूरात्रादनन्तरम्।**
**प्रवर्त्तयन्ति विवृता धमन्यो हृदये स्थिताः।।37।।)**

प्रसव के तीसरे या चौथे दिन नारी को (पशु जाति को प्रसव के ही दिन) दूध उतरने लगता है और उस दूध को माता के हृदय से सम्बद्ध धमनियाँ सञ्चालित करती हैं।

**वक्तव्य**—ये धमनियाँ वे हैं, जिनका 'द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः स्तनयोः श्रिते'। (सु० शा० अ० 9 में) इस प्रकार वर्णन मिलता है। प्रसव के बाद तीन दिन के भीतर प्रसूता के स्तनों से पीला-सा लसीला द्रव निकलता है। माताओं का विश्वास है कि उसके पीने से बालक मर जाता है। अतः उसे धाय निकालकर स्तनों को धोकर शुद्ध दूध ही बालक को पिलाये।

**नवजात के लिए पेय**

**(गुडं यवानिकां चैव पक्त्वा नीरे द्वितोलके।**
**पादशेषं परिस्राव्य पिचुना पाययेत् शिशुम्।।38।।)**

जब तक दूध न उतरे तब तक गुड़ तथा अजवायन को दो तोला जल में पकायें; चौथायी शेष रहने पर छानकर पिचु (रुई का फाहा) अथवा बत्ती द्वारा बालक को उक्त पेय पिलाये।

**दूध की कमी का कारण**

**(अवात्सल्याद्भयाच्छोकात् क्रोधादत्यपतर्पणात्।**
**स्त्रीणां स्तन्यं भवेत् स्वल्पं गर्भान्तरविधारणात्।।39।।)**

कभी-कभी स्नेह के अभाव से, भय से, शोक से, क्रोध से, अत्यन्त भूखी रहने से अथवा दूसरा गर्भाधान हो जाने से स्त्रियों का दूध स्वल्प (थोड़ा) होने लगता है, जिससे बच्चे की तृप्ति नहीं होती।

**माता के दूध का विकल्प**

**(क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा।**
**दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया।।40।।)**

बालक को दूध ही 'सात्म्य' या अनुकूल होता है, इसलिये जिससे बालक की तृप्ति होती रहे, उतनी मात्रा में बकरी अथवा गाय का दूध देते रहना चाहिये।

### शुद्ध दुग्ध के लक्षण

**( नीरे क्षिप्तं यदेकि स्यादविवर्णमतन्तुमत्।
पाण्डुरं तनु शीतं च तद् दुग्धं शुद्धमादिशेत्।। 41।।)**

जो दूध धीरे से जल में डालने पर घुल जाये, जिसका वर्ण बिगड़ा न हो, जो चिपचिपा न हो, श्वेत हो पतला हो तथा शीत हो, वह दूध 'शुद्ध' होता है।

### बालक की परिचर्या विधि

**( बालमङ्के सुखं दध्यान्न चैनं तर्जयेत् क्वचित्।
सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत्।। 42।।
नाकृष्य स्थापयेत् क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत्।
रोदयेन्न क्वचित् कार्ये विधिमावश्यकं विना।। 43।।
तच्चित्तमनुवर्त्तेत तं सदैवानुमोदयेत्।
निम्नोच्चस्थानतः रक्षेदपि बालं प्रयत्नतः।। 44।।)**

बालक को गोद में सुखपूर्वक रखे, इसे कभी झिड़की न दे, सोये को झटपट न जगाये, जब तक बैठने के योग्य न हो तब तक नहीं बैठाये, दूसरे से खींचकर गोद में न ले, बिस्तरे पर नहीं पटके, आवश्यक विधि (स्नान-अञ्जन-औषध-पानादि) के बिना कभी भी उसे नहीं रुलाये, उसके मन के अनुकूल वर्त्ताव करे, उसे सदैव प्रसन्न रखे और ऊँचे-नीचे स्थानों से प्रयत्नपूर्वक उसकी रक्षा करे।

**वक्तव्य**–काश्यपसंहिता-जातकर्मोत्तराध्याय 12 तथा च० शा० अ० 8 में बालक के लिए बड़े ही सुन्दर खिलौनों का उल्लेख है। उसे देखिये और सम्भव हो तो उन्हें लाने की व्यवस्था करें।

### बालक का अन्नप्राशन

**( यथोक्तविधिना बालं मासे षष्ठेऽष्टमेऽपि वा।
अन्नं सम्प्राशयेत् किञ्चित् ततस्तद्वर्द्धयेत् क्रमात्।। 45।।)**

शास्त्रोक्त-विधि अथवा कुलाचार के अनुसार बालक का छठे अथवा आठवें मास में 'अन्नप्राशन' संस्कार करे, अर्थात् उसे अन्न खिलाना प्रारम्भ करे। प्रारम्भ में बहुत थोड़ा अन्न खिलाये, तत्पश्चात् क्रमशः बढ़ाते जायें।

### तीन प्रकार की अवस्था

**( वयस्तु त्रिविधं बाल्यं मध्यमं वार्द्धकं तथा।
ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते।। 46।।
मध्ये षोडशसप्तत्योर्मध्यमः कथितो बुधैः।
ततस्तु सप्ततेरूर्द्ध्वं वृद्धो भवति मानवः।। 47।।)**

'वयस्' (अवस्था) तीन प्रकार का होता है, यथा–1. बाल्य, 2. मध्यम और 3 वार्द्धक। जन्म से 16 वर्ष तक 'बाल' कहलाता है, अर्थात् 'बाल्य-अवस्था' होती है। 16 और 70 के भीतर 'मध्यम' अवस्था होती है और 70 से ऊपर मनुष्य 'वृद्ध' हो जाता है।

**वक्तव्य**–'शतायुर्वै पुरुषः' के अनुसार पुरुषों की आयु 100 वर्ष का मानी गयी है। उसी के अनुसार उक्त तीन भेद होते हैं। देखें–च० वि० अ० 8।

### अवस्था-क्रम से दोष-विचार

**( बाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा पित्त स्यान्मध्यमेऽधिकम्।
वार्द्धके वर्द्धते वायुर्विचार्यैतदुपक्रमेत्।। 48।।)**

बाल्य अवस्था में कफ बढ़ता है, मध्यम अवस्था में पित्त अधिक हो जाता है और वृद्धावस्था में वायु बढ़ता है। इसको विचार कर चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिये।

### औषधमात्रा-विचार

**बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका।। 49।।
अवलेहीकृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः।
वर्धयेत् तावदेकैकां यावद् भवति वत्सरः।। 50।।
माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद् यावत् षोडशवत्सरः।
ततः स्थिरा भवेत् तावद् यावद्वर्षाणि सप्ततिः।। 51।।
ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः।
मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा।। 52।।**

बालक को प्रथम मास में काष्ठ औषधि की एक रत्तीभर मात्रा दूध, शहद, चीनी एवं घी के साथ मिला चाटने योग्य बनाकर देनी चाहिये। इसके पश्चात् एक-एक रत्ती मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये जब तक एक वर्ष पूर्ण न हो जाये। इसके पश्चात् एक-एक माशा मात्रा बढ़ाना चाहिये, जब तक बालक सोलह वर्ष का न हो जाये। इसके पश्चात् सत्तर वर्ष तक इस मात्रा को स्थिर रखना चाहिये। इसके पश्चात् बालक की मात्रा के समान धीरे-धीरे मात्रा को घटाना चाहिये। यह मात्रा कल्क एवं चूर्ण औषधों की है। कषायों अर्थात् स्वरस, क्वाथ, फाण्ट एवं हिम की मात्रा उक्त मात्रा से चौगुनी होनी चाहिये।

**वक्तव्य**–यह संकेत मात्र है। वस्तुतः रोग, रोगी एवं औषध केवल को देखकर देश-कालादि के अनुसार मात्रा की व्यवस्था करना उचित है। बालक को यथासम्भव मधुर, मृदुवीर्य, लघु, सुगन्धित, शीत एवं कल्याणकारी औषधियों का प्रयोग कराना चाहिये।

**बालकोचित-उपचार**

**अञ्जनं च तथा लेपः स्नानमभ्यङ्गकर्म च।**
**वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते।। 53।।**

अञ्जन अर्थात् सुरमा एवं काजल, लेप (उबटन), स्नान, अभ्यङ्ग (मालिश), वमन, प्रतिमर्श नामक नस्य (देखें-उ० खं० अ० 8) का प्रयोग जन्मकाल से ही किया जा सकता है।

**प्रमुख उपचारों में काल की अवधि**

**कवलः पञ्चमाद् वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च।**
**विरेकः षोडशाद् वर्षाद विंशतेश्चैव मैथुनम्।। 54।।**

कवल एवं गण्डूष का प्रयोग पाँचवें वर्ष के पश्चात्, नस्यकर्म का प्रयोग आठवें वर्ष के पश्चात्, विरेचन का प्रयोग सोलहवें वर्ष के पश्चात् और मैथुन का सेवन बीसवें वर्ष के पश्चात् करना उचित होता है।

**अञ्जन-प्रयोग**

**(सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्।**
**पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थे रसाञ्जनम्।। 55।।)**

काला तथा सफेद सुरमा आँखों के लिए लाभदायक होता है। अतः प्रतिदिन उसका सेवन करना चाहिये, क्योंकि आँख को श्लेष्मा से उत्पन्न होने वाले (मोतिया) रोग से भय रहता है। अतः श्लेष्मा के स्रावण के लिए पाँचवें तथा आठवें दिन रात के समय रसवत का सेवन अवश्य करना चाहिये।

**उबटन**

**(उर्द्वत्तनं कफहरं मेदसः प्रविलापनम्।**
**स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक् प्रसादकरं परम्।। 56।।)**

उबटन कफ को हरता है, मेदा को घटाता है, अङ्गों को स्थिर (सबल) करता है और त्वचा को अत्यन्त प्रसन्न अर्थात् कान्तियुक्त बनाता है।

**स्नान**

**(पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।**
**शरीरबलसन्धानं स्नानमोजस्करं परम्।। 57।।)**

स्नान अन्तरात्मा को पवित्र करता है, वीर्य तथा आयु को बढ़ाता है, थकावट, पसीना एवं मल को नष्ट करता है। शरीर में बल देता है और ओजस् को बढ़ाने में सर्वोत्तम है।

**अभ्यङ्ग**

**(अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जरा-श्रमवातहा।**
**दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्।। 58।।)**

अभ्यङ्ग (तैल की मालिश) प्रतिदिन करनी चाहिये, वह जरा (बुढ़ापा), थकावट और वायु को नष्ट करता है, दृष्टि की प्रसन्नता, पुष्टि, आयु, निद्रा, त्वचा की सुन्दरता एवं शरीर की दृढ़ता को बनाये रखता है।

**व्यायाम**

**(लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।**
**विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते।। 59।।)**

उचित व्यायाम करने से शरीर में हल्कापन, काम करने की शक्ति, जठराग्नि की वृद्धि, मेदा का क्षय तथा प्रत्येक अंग सुडौल एवं सुगठित हो जाता है।

**मैथुन**

**(वयोरूपगुणोपेतां तुल्यशीलां गुणान्विताम्।**
**अभिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामलङ्कृताम्।। 60।।**
**सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरणबृंहितः।**
**अतिस्त्रीसम्प्रयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान्।। 61।।)**

मैथुनाभिलाषी पुरुष प्रसन्नचित्त तथा वाजीकरण (शक्तिवर्द्धक) द्रव्यों का सेवन करके युक्तिपूर्वक स्त्री-सहवास करे। स्त्री कैसी हो? वयस् तथा रूप आदि गुणों से युक्त समान स्वभाव वाली, सद्गुणों से युक्त, मैथुनाभिलाषिणी, प्रसन्नचित्त, भूषणों से भूषित तथा प्रमदा हो। किन्तु आत्मवान् (आत्मबल से युक्त संयमी) पुरुष अपने को अधिक स्त्री-सहवास से बचाता रहे।

**ह्रास-क्रम**

**बाल्यं वृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ।**
**बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत्।। 62।।**

जन्म से प्रति दस वर्ष के अनन्तर निम्नलिखित भावों का ह्रास होता जाता है। यथा-बाल्य (बालकपन), वृद्धि (शरीर का बढ़ना), वपुः (आकृति का सौन्दर्य), मेधा (धारणाशक्ति), त्वचा की सद्गुणता, दृष्टि (दर्शनशक्ति), शुक्र अर्थात् मैथुन-सामर्थ्य या गर्भाधान-सामर्थ्य, विक्रम, पराक्रम, बुद्धि, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियाँ, चेतस् या 'मनस्' और जीवित (जीवन) का।

**वक्तव्य**-भावमिश्र ने अपने ग्रन्थ में उक्त 'दशतः' के स्थान पर 'क्रमतः' पद उद्धृत किया है। उक्त विधि से मानव की आयु 120 वर्ष की हो जाती है, किन्तु 'शतायुर्वै पुरुषः' 'जीवेम शरदः शतम्'-इस प्रकार वेदों में तथा 'वर्षशतं खलु आयुषः प्रमाणम्' (च० शा० अ० 6)। चरकसंहिता में मानव की आयु 100 वर्ष ही कही गयी है। आप भी विचार करें।

### प्रकृति का कारण

**(शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः।**
**प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु॥63॥)**

गर्भाधान के समय शुक्र एवं शोणित के संयोग में जो दोष (वात, पित्त एवं कफ) उत्कट अर्थात् बढ़ा हुआ होता है, उसके प्रभाव से 'प्रकृति' उत्पन्न होती है। उसका लक्षण मुझसे सुनो।

### वात-प्रकृति का लक्षण

**अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः।**
**आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः॥64॥**

जिसके केश छोटे-छोटे हों, शरीर कृश तथा रूक्ष हो, जो वाचाल या बकवादी हो, जिसका मन चञ्चल हो और स्वप्नों में आकाश में उड़ा करे, वह पुरुष 'वातप्रकृति' होता है।

### पित्त-प्रकृति का लक्षण

**अकालपलितैर्व्याप्तो धीमान् स्वेदी च रोषणः।**
**स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः॥65॥**

जिसके बाल (केश एवं दाढ़ी-मूँछ) अकाल या युवावस्था में ही श्वेत हो जायें, जो बुद्धिमान् हो, जिसे पसीना अधिक हो, जो क्रोधी हो तथा स्वप्नों में ज्योति या चमकने वाले तारे, बिजली आदि को देखा करे, वह मनुष्य 'पित्तप्रकृति' होता है।

### कफ-प्रकृति का लक्षण

**गम्भीरबुद्धिः स्थूलाङ्गः स्निग्धकेशो महाबलः।**
**स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः॥66॥**

जिसकी बुद्धि गम्भीर हो, शरीर मोटा हो, केश चिकने हों, जो बलवान् हो और स्वप्नों में जलाशयों (झील, तालाब आदि) को देखा करे, वह पुरुष 'कफप्रकृति' होता है।

### मिश्रित प्रकृति का लक्षण

**ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोल्बणा नराः।**

उपरिलिखित चिह्नों के मिश्रण से द्विदोष-प्रकृति तथा त्रिदोष-प्रकृति जानी जाती है।

### निद्रा, मूर्च्छा, भ्रम एवं तन्द्रा का कारण

**तमः कफाभ्यां निद्रा स्यान्मूर्च्छा पित्ततमोभवा॥67॥**
**रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्रा श्लेष्मतमोनिलैः।**

तमोगुण एवं कफ की अधिकता से 'निद्रा' या 'नींद' पित्त तथा तमोगुण की अधिकता से 'मूर्च्छा' या बेहोशी; रजोगुण, पित्त एवं वायु की अधिकता से 'भ्रान्ति' या भ्रम और कफ, तमोगुण तथा वायु की अधिकता से 'तन्द्रा' या 'उँघायी' उत्पन्न होती है।

### ग्लानि और आलस्य का लक्षण

**ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत्॥68॥**
**यः सामर्थ्येऽप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते।**

ओजस् के क्षय से, दुःख से, अनपच से एवं थकावट से ग्लानि या सुस्ती होती है। सामर्थ्य (शक्ति) होने पर भी जो किसी काम को करने का उत्साह (हौसला) नहीं होता, उसे 'आलस्य' कहते हैं।

**वक्तव्य**–'ग्लानि' हर्ष (उल्लास) के क्षय का नाम है।

### जृम्भा का लक्षण

**चैतन्यशिथिलत्वाद् यः पीत्वैकं श्वासमुद्वमेत्॥69॥**
**विदीर्णवदनः श्वासं जृम्भा सा कथ्यते बुधैः।**

चेतनाशक्ति के शिथिल होने से मुँह खोलकर जो एक लम्बा साँस लेकर फिर छोड़ा जाता है, उसे 'जृम्भा' या 'जँभाई' कहते हैं।

### छींक का कारण और लक्षण

**उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्त्रवात् ॥70॥**
**शब्दः सञ्जायते नस्तः क्षुतं तत् कथ्यते बुधैः।**

उदानवायु तथा प्राणवायु का ऊर्ध्वभाग (शृंगाटक मर्म) में संयोग होने के कारण शिर में स्थित कफ का स्राव होने से नाक द्वारा जो छीं-छीं ऐसा शब्द होता है, उसे 'क्षुत' या छींक कहते हैं।

### उद्गार का कारण तथा लक्षण

**उदानकोपादाहारसुस्थिरत्वाच्च यद् भवेत्॥71॥**
**पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते।**

उदानवायु के कोप के कारण अथवा आमाशय में भोजन के स्थित होने से वायु को जो ऊर्ध्वगमन (ऊपर को उठना और मुखमार्ग से निकलना) होता है, उसे 'उद्गार' या डकार कहते हैं।

### निद्रा का कारण और लक्षण

**(यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः॥72॥**
**विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।)**

मन के क्रियाहीन हो जाने पर जब चक्षुः आदि इन्द्रियाँ अपने-अपने रूप आदि विषयों को ग्रहण करने से निवृत्त हो जाती हैं, तब मानव सोता है, यही 'निद्रा' कही जाती है।

**वक्तव्य**—इससे भिन्न मूर्च्छा होती है। देखें—माधवनिदान तथा च० सू० अ० 24।

**भ्रम का कारण और लक्षण**

**(चक्रवद् भ्रमतो लोकान् स्वात्मानं मन्यते तथा।। 73।।
उत्थाने चाऽसमर्थः स्यात् यस्मात्स वै भ्रमः स्मृतः।)**

जिससे संसार के सभी पदार्थ चक्र के समान घूमते से दिखलायी पड़ें और मनुष्य अपने को भी वैसा ही माने तथा जिससे मनुष्य खड़ा रहने में भी असमर्थ हो जाये, उसका नाम 'भ्रम' या चक्कर आना है।

**तन्द्रा का कारण और लक्षण**

**(इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः।। 74।।
निद्रार्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत्।)**

जिसको रूपादि विषयों का सम्यक् ज्ञान न हो, शरीर में भारीपन हो, जम्भाइयाँ आ रही हों, सुस्ती हो तथा उँघाई आती हो, उसकी इस व्याधि को 'तन्द्रा' कहते हैं।

**क्लम का कारण और लक्षण**

**(योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः।। 75।।
क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः।)**

जिससे बलपूर्वक कार्य किये बिना शरीर में 'श्रम' (थकावट) बढ़ जाता है, किन्तु श्वास में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, इन्द्रियों द्वारा विषयों के ग्रहण में बाधा पड़ती है, उसे 'क्लम' जानना चाहिये।

**उत्क्लेश का कारण और लक्षण**

**(उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत् प्रसेकष्ठीवनेरितम्।। 76।।
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत्।)**

जिससे उदर में से अन्न निकलना चाहता है, किन्तु निकलता नहीं, मुख में पानी जाता है, बार-बार थूक आता है एवं हृदय में पीड़ा होती है, उसे 'उत्क्लेश' (जी मिचलाना या मिचली आना) कहते हैं।

**ग्लानि का कारण और लक्षण**

**(वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः।। 77।।
न चान्नभिकाङ्क्षेत ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत्।)**

जिससे मुख में मीठापन, तन्द्रा, हृदय में ऐंठन, भ्रम एवं अन्न में अरुचि हो, उसे 'ग्लानि' कहते हैं।

**गौरव का कारण और लक्षण**

**(आर्द्रचर्मावनद्धं हि यो गात्रमभिमन्यते।
तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद् विनिर्दिशेत्।। 78।।)**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे आहारादिगतिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः।। 6।।**

जिससे रोगी शरीर को आर्द्र चर्म (गीला चमड़ा) से बँधा हुआ-सा और शिर को अत्यन्त भारी-सा अनुभव करता हो, उसे 'गौरव' कहते हैं।

इस प्रकार **वैद्यरत्न पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड का छठा अध्याय समाप्त।। 6।।

## सप्तमोऽध्यायः

# रोगगणना

### रोगभेद-परिचय

**रोगाणां गणना पूर्वं मुनिभिर्या प्रकीर्तिता।**
**मयात्र प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः।।1।।**

महर्षियों ने पूर्वकाल में (ग्रन्थों में) रोगों की जो गणना (संख्या) कही है, मैं इस ग्रन्थ में उसी (गणना) को कहता हूँ, किन्तु उसके बहुत से भेद माने गये हैं।

**वक्तव्य**–ग्रन्थकर्त्ता ने इस अध्याय में केवल रोगों की संख्या मात्र का उल्लेख किया है कि अमुक रोग इतने प्रकार का होता है; और रोग का अपना लक्षण तो उसके नाममात्र से जान लिया जा सकता है। अत: किसी रोग का लक्षण लिखना अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया है। इसीलिए हमने भी रोगों के विशिष्ट लक्षण लिखने का विचार छोड़ दिया। रोगों का निश्चय करने के लिए प्रत्येक वैद्य के पास माधव-निदान आदि पुस्तकें रहती ही हैं। यहाँ एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि आर्षग्रन्थों में रोगों की संख्या का निर्देश भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया गया है। यही कारण है कि किसी ग्रन्थ में ज्वर आठ प्रकार का और किसी में पच्चीस प्रकार का, इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में अतिसार 6 है, तो किसी में सात इत्यादि। इस प्रकार के भेदों को तात्त्विक भेद नहीं समझना चाहिये। उदाहरण के लिए देखें–'एकम् एव रोगानीकं दु:खसामान्यात्।' अर्थात् दु:खदायी होने के कारण सभी रोग एक से ही हैं, इनका भेद भी नहीं है। 'द्वे रोगानीके भवत: प्रभावभेदेन साध्यं चासाध्यं च'। अर्थात् साध्य और असाध्य भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं (च० वि० अ० 3)। दस प्रकार के भेदों का कारण केवल यही है कि किसी ने किसी प्रकार से गणना की और किसी ने किसी प्रकार से। इसी विषय को आचार्य शार्ङ्गधर ने **'तद्भेदा बहवो मताः'** कहकर व्यक्त किया हैं।

### ज्वर-संख्या

**पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते।**
**पृथग्दोषैस्तथा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः।।2।।**
**एकश्च सन्निपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः।**
**प्रायशः सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषमज्वराः।।3।।**
**सन्ततः सततश्चैव अन्येद्युष्कस्तृतीयकः।**
**चातुर्थकश्च पञ्चैते कीर्तिता विषमज्वराः।।4।।**
**तथागन्तुज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः।**
**अभिचारग्रहावेशशापैरागन्तुकस्त्रिधा।।5।।**
**श्रमाच्छेदात् क्षताद्दाहाच्चतुर्धाऽघातजो ज्वरः।**
**कामाद्भीतेः शुचो रोषाद् विषादौषधगन्धतः।।6।।**
**अभिषङ्गज्वराः षट् स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः।**

ज्वर पच्चीस होते हैं। उनका भेद कहा जाता है–पृथक्-पृथक् दोषों से तीन, दो-दो दोषों से तीन और सन्निपात से एक; और सन्निपात के अनेक भेद होते हैं। तीनों दोषों के सन्निपात से पाँच तो विषम ज्वर होते हैं। यथा–1. सन्तत, 2. सतत, 3. अन्येद्यु, 4. तृतीयक (तिजारी) और 5. चातुर्थक (चौथैइया)। ये पाँचों 'विषमज्वर' भी कहे जाते हैं। इसी प्रकार 'आगन्तु' ज्वर भी एक ही होता है, किन्तु उसके तेरह भेद होते हैं। यथा–1. अभिचार (मारण, मोहन आदि क्रियाओं से), 2. ग्रहावेश (ग्रहपीड़ा) से तथा 3. शाप से। अभिघात (चोट आदि) से चार ज्वर होते हैं–1. श्रम (थकावट) से, 2. छेद (अंग कटने) से, 3. क्षत (घाव) से और 4. दाह (जलने) से। 1. काम (मैथुनाभिलाष) से, 2. भीति (भय या डर) से, 3. शोक से, 4. क्रोध से, 5. विष से और औषधियों (जहरीली) के गन्ध से–ये 6 ज्वर 'अभिषंग' से होते हैं। इस प्रकार ज्वरों की संख्या का निश्चय किया गया है।

**वक्तव्य**–शरीर में साधारण से अधिक गर्मी या ताप का बढ़ जाना 'ज्वर' कहलाता है। रोगी के अनुभव से, स्पर्श एवं 'थर्मामीटर' (धर्ममितर) नामक प्रसिद्ध यन्त्र (पारद-पूर्ण काँच-नलिका) से ज्वर रोग की सत्ता जान ली जाती है। प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक साधारण गर्मी 97 से 98½ डिग्री होती है। विशेष देखें–च० निं० अ० 1 'चन्द्रिका-टीका'।

### अतिसार-ग्रहणी-प्रवाहिका-गणना

**पृथक् त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद् भयादपि।। 7।।**
**अतीसारः सप्तधा स्याद् ग्रहणी पञ्चधा मता।**
**पृथग्दोषैः सन्निपातात् तथा चामेन पञ्चमी।। 8।।**
**प्रवाहिका चतुर्धा स्यात् पृथग्दोषैस्तथास्रतः।**

पृथक्-पृथक् तीन दोषों से तीन, सन्निपात से एक, शोक से एक, और भय से एक इस प्रकार 'अतिसार' (दस्त) सात प्रकार का होता है। 'ग्रहणी' पाँच प्रकार की होती है–तीनों दोषों से तीन, सन्निपात से चौथी और आम से पाँचवीं। 'प्रवाहिका' चार प्रकार की होती है–तीन दोषों से तीन और रक्त से चौथी।

**वक्तव्य**–शरीर के तरल पदार्थों का गुदमार्ग से निकलना या पतला पाखाना होना ही 'अतिसार' कहा जाता है। कभी सूखे और कभी पतले पीड़ा युक्त अतिसार की परम्परा का नाम 'ग्रहणी' या 'संग्रहणी' है और ऐंठन या मरोड़ के साथ आँव का निकलना 'प्रवाहिका' या 'पेचिस' कहा जाता है। इसी कारण मूत्र के अधिक होने को 'मूत्रातिसार' भी कहते हैं।

### अजीर्ण-अलसक-विसूची-दण्डालसक-विलम्बिका-गणना

**अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतम्।। 9।।**
**पित्ताद् विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते।**
**विषाजीर्णं रसादेकं दोषैः स्यादलसस्त्रिधा।। 10।।**
**विसूची त्रिविधा प्रोक्ता दोषैः सा स्यात् पृथक्पृथक्।**
**दण्डकालसकश्चैव एकैव स्याद् विलम्बिका।। 11।।**

अजीर्ण (अनपच) तीन प्रकार का होता है–1. वायु से विष्टब्ध, 2. पित्त से विदग्ध और 3. कफ से आम नामक अजीर्ण होता है। रस से एक अजीर्ण होता है–विषाजार्ण। तीनों दोषों से 'अलसक' तीन प्रकार का होता है। विसूची (हैजा या कालरा) पृथक्-पृथक् दोषों से तीन प्रकार की होता है। 'दण्डालसक' एवं विलम्बिका एक-एक प्रकार के होते हैं।

**वक्तव्य**–उक्त सभी रोग अनपच के ही रूपान्तर हैं। रस का पूर्णतया परिपाक न होने से शरीर में विष के से लक्षण उत्पन्न होने के कारण एक 'विषाजीर्ण' संज्ञा भी दी गयी है। अलसक को 'गुम हैजा' भी कहते हैं। 'दण्डालसक' में रोगी का शरीर दण्ड के समान अकड़ जाता है।

### अर्श-गणना

**अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्रतः।**
**सन्निपाताच्च संसर्गात् तेषां भेदो द्विधा स्मृताः।। 12।।**
**सहजोत्तरजन्मभ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः।**
**त्रिधैव चर्मकीलानि वातात् पित्तात् कफादपि।। 13।।**

बवासीर छः प्रकार के होते हैं–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. रक्त से, 5. सन्निपात से और 6. दो-दो दोषों के संसर्ग से, ये दो प्रकार के होते हैं–1. सहज (शरीर के साथ ही उत्पन्न होने वाले) और 2. जन्म के पश्चात् उत्पन्न होने वाले। 'शुष्कार्श' (सूखी या वादी) तथा 'आर्द्र (स्राव युक्त या खूनी) के भेद से दो प्रकार के होते हैं। चर्मकील (मस्से) तीन प्रकार के होते हैं–1. वायु से, 2. पित्त से और 3. कफ से।

**वक्तव्य**–गुद-प्रदेश में जो मांस के 'अंकुर' उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें 'अर्श' या बवासीर कहते हैं और त्वचा पर जो मस्से निकल आते हैं, उन्हें 'चर्मकील' कहते हैं।

### कृमि-गणना

**एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधा च ते।**
**बाह्यास्तथाभ्यन्तराः स्युस्तेषु यूका बहिश्चराः।। 14।।**
**लिक्षाश्चान्येऽन्तरचराः कफात्ते हृदयादकाः।**
**अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चुरवश्च महागुहाः।। 15।।**
**सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताच्च मातरः।**
**सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः।। 16।।**
**केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः।**
**लेलिहाश्च सलूनाश्च सौसुरादाः ककेरुकाः।। 17।।**
**तथान्यः कफरक्ताभ्यां सञ्जातः स्नायुकः स्मृतः।**
**व्रणस्य क्रिमयश्चान्ये विषमा बाह्ययोनयः।। 18।।**

कृमि बीस प्रकार के होते हैं और वे सब 'बाह्य' (बाहर होने वाले) तथा 'आभ्यन्तर' (भीतर होने वाले) के भेद से दो प्रकार के होते हैं। उनमें 'यूका' (जूएँ) तथा 'लिक्षा'

(लीख) बाह्य या 'बहिश्चर' (बाहरी त्वचा पर घूमने वाले) कहे जाते हैं। शेष सब अन्तश्चर (भीतर घूमने वाले) होते हैं। यथा–1. हृदयादक (हृदय को खाने वाले 'कृमिज हृद्रोग' के उत्पादक), 2. अन्त्राद (अँतड़ियों को खाने वाले 'आन्त्रिक ज्वर' के उत्पादक), 3. उदरावेष्ट (आमाशय में लिपटने वाले) 4. चुरु 5. महागुहा (महास्रोतस् या अँतड़ियों में होने वाले) 6. सुगन्धा (नाक तथा शिर में उत्पन्न होने वाले) और 7. दर्भकुसुम (फुप्फुसों में उत्पन्न होने वाले या यक्ष्मा रोग के उत्पादक), ये सब कफ से होते हैं। तथा–1. मातृ (जन्तु माता) 2. सौरस (तरुणास्थियों को खाने वाले), लोमविध्वंस (रोमनाशक), 4. रोमद्वीप (रोमों की जड़ में रहने वाले), 5. उदुम्बर (गूलर के फल जैसा शोथ उत्पन्न करने वाले, उसमें अनन्त कृमि होते हैं) और 6. केशाद (शिर के वालों की जड़ को खा जाने वाले)। ये छः रक्त से होते हैं, जो कुष्ठरोगियों के रक्त में पाये जाते (कुष्ठैककर्माण:) हैं। और दूसरे पुरीष (मल) में उत्पन्न होते हैं। यथा–1. मकेरुक, 2. लेलिह, 3. सलूना (सशूला:, च० वि० अ० 7), 4. सौसुराद तथा 5. ककेरुक। तथा एक और कृमि जो कफ एवं रक्त से उत्पन्न होता है, उसे 'स्नायुक' या 'नहरुआ' कहते हैं। व्रणों या घावों में छोटे-बड़े कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, वे बाहरी कारणों से (किरौनी नामक मक्खी के बैठने से) उत्पन्न होते हैं।

**वक्तव्य**–उक्त कृमियों में से कुछ तो आँखों से देखे जाते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं, जो 'अणुवीक्षण' यन्त्र द्वारा देखे जा सकते हैं। मेरे विचार से आजकल जो पाश्चात्य चिकित्सकों में कृमियों की चर्चा चल रही है, उसको इन बीस प्रकार के कृमियों से मिलान करने का कष्ट करें तो इस विषय को समझने में आपको बड़ी सहायता मिलेगी। 'स्नायुक' प्राय: शरीर की शाखाओं (टाँगों और बाँहों) में होता है और सफेद डोरे जैसा निकलता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने व्रण के कृमियों को अलग गिना है, किन्तु चरक में वे 'जन्तुमातर:' (जन्तु: माता येषां ते=जन्तुमातर:) के नाम से कहे गये हैं। कृमियों के विवेचन के लिए सु० उ० अ० 54 को पूर्ण जानकारी के लिए अवश्य देखें।

### पाण्डुकामला-कुम्भकामला-हलीमक-गणना

**पाण्डुरोगाश्च पञ्च स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।**
**त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च तथैका कामला स्मृता॥ 19॥**
**स्यात् कुम्भकामला चैका तथैकं च हलीमकम्।**

पाण्डुरोग पाँच प्रकार का होता है–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से, और 5. मिट्टी खाने से। कामला एक ही होता है, कुम्भकामला एक होता है और 'हलीमक' भी एक होता है।

**वक्तव्य**–रक्त में रक्तकणों की कमी हो जाने से शरीर पीलापन लिये सफेद हो जाता है। इस रोग को 'पाण्डुरोग' कहते हैं। यदि रक्त में पित्त का अधिक मिश्रण हो जाता है, तो शरीर का रंग हल्दी का-सा हो जाता है, आँखें और मूत्र अधिक पीले हो जाते हैं। इसे 'कामला' या 'पीलिया' कहते हैं। उक्त रोगों का यदि कुम्भ (उदर) में (यकृत्-प्लीहा पर) अधिक प्रभाव पड़ता है, तो उसे 'कुम्भकामला' कहा जाता है और जब रोगी का वर्ण काला या हरापन लिये पीला होता है, तो उसे 'हलीमक' कहते हैं। हलीमक को ही 'कालाजार' कहते हैं। इन सबमें यकृत् और प्लीहा की विकृति ही कारण होता है।

### रक्तपित्त-गणना

**रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसम्भवम्॥ 20॥**
**अधोगं मारुतं ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम्।**

रक्तपित्त तीन प्रकार का होता है–1. ऊर्ध्वगामी नाक, मुख आदि ऊपर के स्रोतों से निकलने वाला, जो कफ से होता है, 2. अधोगामी लिंग एवं योनिमार्ग से निकलने वाला, जो वायु से होता है और 3. द्विमार्गगामी, ऊपर एवं नीचे के स्रोतों से, जो कि वायु एवं कफ के प्रकोप से होता है।

**वक्तव्य**–पित्त की वृद्धि से रक्त इतना पतला हो जाता है कि वह केशिकाओं से रिसकर (चूकर) निकलने लगता है। यह रक्तपित्त का असाध्य स्थिति कही जाती है।

### कास-गणना

**कासा: पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रय: स्युस्त्रिभिर्मलै:॥ 29॥**
**उर: क्षताच्चतुर्थ: स्यात् क्षयाद्धातोश्च पञ्चम:।**

कास पाँच प्रकार का होता है–वातादि दोषों से तीन, उर: (फुप्फुस एवं श्वासमार्ग) में क्षत या घाव होने से चौथा और धातुक्षय से पाँचवाँ।

### क्षय-गणना

**क्षया: पञ्चैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते॥ 22॥**

**चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यादुरःक्षतात्।**

क्षय पाँच ही माने जाते हैं। यथा–तीनों दोषों से तीन, सन्निपात से चौथा और उरःक्षत से पाँचवाँ।

**वक्तव्य**–क्षय का दूसरा नाम 'राजयक्ष्मा' या तपेदिक है। एक तो इस रोग में रसधातु कफ के रूप में और उरःक्षत होने पर रक्त के रूप में निकल जाता है। अतः इसे 'कफक्षयी' भी कहा जाता है और शुक्र के अधिक क्षय से (सब धातु शुक्र रूप में परिणित होकर निकल जाते हैं) उक्त दोनों ही प्रकार से धातुओं का क्षय या ह्रास होता जाता है, अतएव इसे 'क्षय' कहते हैं।

### शोष की कारण-भेद से गणना

**शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसङ्गाच्छुचो व्रणात्।। 23।।**
**अध्वश्रमाच्च व्यायामाद् वार्धक्यादपि जायते।**

शोष छः प्रकार का होता है–1. अधिक मैथुन करने से, 2. शोक से, 3. व्रण से, 4. मार्ग की थकावट से, 5. अधिक व्यायाम (कसरत) से और 6. बुढ़ापा से।

**वक्तव्य**–स्वस्थान स्थित धातुओं का सूख जाना ही 'शोष' होता है। हमारे विचार में मैथुन एवं व्रण से होने वाले शोष को क्षय कहना उचित होगा, क्योंकि इनमें शुक्र और पूय (मवाद) के रूप में धातुओं का क्षय होता है, न कि शोष।

### श्वास-गणना

**श्वासाश्च पञ्च विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा।। 24।।**
**ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पञ्चमः।**

'श्वास' रोग पाँच होते हैं। यथा–1. क्षुद्र, 2. तमक, 3. ऊर्ध्वश्वास, 4. महाश्वास और 5. छिन्नश्वास।

**वक्तव्य**–'श्वासरोग' को 'दमा' कहते हैं। श्वास लेने में कष्ट होना ही 'श्वासरोग' है।

### हिक्का-गणना

**कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तास्तु क्षुद्राऽन्नजा तथा।। 25।।**
**गम्भीरा यमला चैव महती पञ्चमी तथा।**

हिक्का पाँच प्रकार की होती है। यथा–1. क्षुद्रा, 2. अन्नजा, 3. गम्भीरा, 4. यमला और 5. महती।

**वक्तव्य**–हिक्का को ही 'हिचकी' कहते हैं।

### जठराग्नि विकार गणना

**चत्वारोऽग्नेर्विकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः।। 26।।**
**तीक्ष्णः पित्तात् कफान्मन्दो भस्मको वातपित्तयोः।**

अग्नि-विकार चार होते हैं। यथा–1. वायु से विषम, 2. पित्त से तीक्ष्ण, 3. कफ से मन्द एवं 4. वात-पित्त से 'भस्मक'।

### अरोचक-गणना

**पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 27।।**
**सन्निपातान्मनस्तापात् -**

अरोचक पाँच होते हैं। यथा–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से और 5. मानसिक कष्ट से।

**वक्तव्य**–जब रोगी यह कहता है कि खाने को जी नहीं चाहता या खाना अच्छा नहीं लगता, तो इसे 'अरोचक या अरुचि' समझना चाहिये।

### छर्दि-गणना

**–छर्दयः सप्तधा मताः।**
**त्रिभिर्दोषैः पृथक् तिस्त्रः कृमिभिः सन्निपाततः।। 28।।**
**घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते।**

छर्दि सात प्रकार की होती है। यथा–तीनों दोषों से पृथक्-पृथक् तीन, कृमियों से चौथी, सन्निपात से पाँचवीं, घृणा से छठी और स्त्रियों को गर्भाधान हो जाने से सातवीं।

**वक्तव्य**–छर्दि को ही उलटी, कै, वमि या वमन कहते हैं।

### स्वरभेद-गणना

**स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः।। 29।।**
**मेदसा सन्निपातेन क्षयात् षष्ठः प्रकीर्तितः।**

स्वरभेद छः प्रकार का होता है–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. मेदा के बढ़ने से, 5. सन्निपात से और 6. धातुक्षय से।

**वक्तव्य**–गला बैठना या बोला न जाना ही 'स्वर भेद' कहा जाता है।

### तृष्णा-गणना

**तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात् पित्तात् कफादपि।। 30।।**
**त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद् धातोश्च षष्ठिका।**

तृष्णा छः प्रकार की कही गयी है। यथा–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से, 5. उपसर्ग से और 6. धातुक्षय से।

**वक्तव्य**–आवश्यकता से अधिक प्यास लगना 'तृष्णा रोग' होता है **उपसर्ग**–घाव आदि होने पर जब शरीर से रक्त धातु अधिक निकल जाता है, तो प्यास बहुत लगती है। इसी को 'उपसर्गजा तृष्णा' कहते हैं।

### मूर्च्छादि-गणना

**मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक्॥ 31॥**
**चतुर्थी सन्निपातेन तथैकश्च भ्रमः स्मृतः।**
**निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकशः स्मृताः॥ 32॥**

मूर्च्छा चार प्रकार की होती है–वात, पित्त तथा कफ से तीन और सन्निपात से चौथी। भ्रम रोग एक ही प्रकार का होता है। निद्रा (नींद), तन्द्रा, संन्यास एवं ग्लानि ये रोग एक-एक प्रकार के ही होते हैं।

**वक्तव्य**–बेहोशी को ही मूर्च्छा कहा जाता है। संन्यास उस मूर्च्छा को कहते हैं, जिससे रोगी चिकित्सा के बिना होश में नहीं आता और मर भी जाता है। मूर्च्छा का रोगी तो कुछ समय के बाद स्वयं होश में आ जाता है।

### मद-मदात्ययादि-गणना

**मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः।**
**त्रिदोषैरसृजा मद्याद्विषादपि च सप्तमः॥ 33॥**
**मदात्ययश्चतुर्धा स्याद् वातपित्तकफादपि।**
**त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा॥ 34॥**
**पानाजीर्णं तथा चैकं तथैकः पानविभ्रमः।**
**पानात्ययस्तथा चैको-**

मद सात कहे गये हैं–वात, पित्त तथा कफ से तीन, सन्निपात से एक, रक्त से एक, मद से एक एवं विष से सातवाँ। 'मदात्यय' चार प्रकार का होता है–वात से, पित्त से, कफ से तथा सन्निपात से। 'परमद' एक ही प्रकार का होता है, 'पानाजीर्ण' एक प्रकार का होता है, 'पानविभ्रम' एक होता है और 'पानात्यय' भी एक होता है।

**वक्तव्य**–'मद' उस अवस्था का नाम है, जो शराब, भाँग आदि मादक द्रव्यों के सेवन करने पर हो जाता है। 'मदात्यय' मद से होने वाली हानि को कहते हैं। 'परमद' मद की अधिकता का नाम है। सेवन किये हुये मादक द्रव्यों का न पचना 'पानाजीर्ण' है और उन्हीं मादक द्रव्यों के विकार से होने वाली हानि को 'पानविभ्रम' तथा मादक द्रव्यों का अधिक सेवन करने पर होने वाली हानि को 'पानात्यय' कहा जाता है।

### दाह-गणना

**-दाहाः सप्त मतास्तथा॥ 35॥**
**रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णायाः पित्ततस्तथा।**
**धातुक्षयान्मर्मघाताद् रक्तपूर्णोदरादपि॥ 36॥**

'दाह' सात माने जाते हैं–1. रक्तपित्त से, 2. रक्त से, 3. प्यास रोकने से, 4. पित्त से, 5. धातुक्षय से, 6. मर्मस्थानों पर चोट आने से और 7. रक्त से उदर भर जाने से।

**वक्तव्य**–दाह उस जलन को कहते हैं, जिसका अनुभव केवल रोगी ही करता है।

### उन्माद-गणना

**उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते।**
**सन्निपाताद् विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः॥ 37॥**

उन्माद छः कहे जाते हैं–तीनों दोषों से तीन, सन्निपात से चौथा, विष से पाँचवाँ और मानसिक दुःख से छठा।

**वक्तव्य**–'उन्माद' पागलपन का नाम है। बुद्धि का बिगड़ जाना ही पागलपन है।

### भूतोन्माद-गणना

**भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि।**
**गन्धर्वात् किन्नराद्यक्षात् पितृभ्यो गुरुशापतः॥ 38॥**
**प्रेताच्च गुह्यकाद् वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः।**
**जलाधिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात्॥ 39॥**
**राक्षसादपि कूष्माण्डात् कृत्यावेतालयोरपि।**

भूतोन्माद बीस होते हैं–1. देवता से, 2. दानव से, 3. गन्धर्व से, 4. किन्नर से, 5. यक्ष से, 6, पितर से, 7. गुरुजन के शाप से, 8. प्रेत से, 9. गुह्यक से, 10. वृद्ध को कष्ट देने से, 11. सिद्धों से, 12. भूत से, 13. पिशाच से, 14. वरुण से, 15. नाग से, 16. ब्रह्मराक्षस से, 17. राक्षस से, 18. कूष्माण्ड से, 19. कृत्या (तान्त्रिकक्रिया-विशेष) से और 20. वेताल से।

**वक्तव्य**–गुरु तथा वृद्ध को छोड़कर शेष सभी अलौकिक आत्माएँ हैं। इन आत्माओं का किन्हीं कारणों से मानव-शरीर में आवेश होता है और मनुष्य पागल हो जाता है। कृत्या के साहित्य तथा उसके उपचारों को तान्त्रिक लोगों से समझें।

### अपस्मार-गणना

**अपस्मारश्चतुर्धा स्यात् समीरात् पित्ततस्तथा।। 40।।**
**श्लेष्मणोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः सन्निपाततः।**

अपस्मार चार प्रकार का होता है-1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से और 4. सन्निपात से।

**वक्तव्य**-अपस्मार को मृगी या मिरगी भी कहते हैं।

### आमवात-गणना

**चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 41।।**
**चतुर्थः सन्निपातेन -**

आमवात चार होते हैं-वात, पित्त और कफ से तीन और चौथा सन्निपात से।

**वक्तव्य**-आमवात को प्रचलित भाषा में 'गठिया' कहा जाता है।

### शूल-गणना

**- शूलान्यष्टौ बुधा जगुः।**
**पृथग्दोषैस्त्रिधा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधान्यपि।। 42।।**
**आमेन सप्तमं प्रोक्तं सन्निपातेन चाष्टमम्।**

विद्वान् लोग 'शूल' को आठ प्रकार का कहते हैं-पृथक्-पृथक् वात आदि दोषों से तीन, दो-दो दोषों से तीन, आम से सातवाँ और सन्निपात से आठवाँ।

**वक्तव्य**-शूल मध्यकाय में कहीं भी हो सकता है। इसके विशेष ज्ञान के लिए देखें-सु० उ० तं० अ० 42।

### परिणामशूल-गणना

**परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम्।। 43।।**
**मलैर्यैः शूलसङ्ख्या स्यात् तैरेव परिणामजम्।**
**अन्नद्रवभवं शूलं ज्वरपित्तभवं तथा।। 44।।**
**एकैकं गणितं सुज्ञैः-**

परिणामशूल आठ प्रकार का कहा गया है-जिन मलों (वातादि दोषों और आम) से शूल की गणना की गयी है, उन्हीं से परिणामशूल भी हो जाता है। अन्नद्रवशूल एवं जरत्पित्त से होनेवाला शूल ये एक एक प्रकार के होते हैं।

**वक्तव्य**-ऊपर कहे गये शूलों का स्पष्टीकरण-**परिणामशूल**-यह केवल आहार की पच्यमानावस्था (पचते समय) में होता है। **अन्नद्रवशूल**-यह केवल द्रव आहार पीने से अथवा आहार में मिलने वाले द्रव रसों (पित्त आदि) के विकार से होता है। **जरत्पित्तशूल**- यह पित्त के पचते समय होता है जो कै या उलटी होने पर शान्त हो जाता है।

### उदावर्त्त-गणना

**- उदावर्तास्त्रयोदश।**
**एकः क्षुन्निग्रहात्प्रोक्तस्तृष्णारोधाद् द्वितीयकः।। 45।।**
**निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वासनिग्रहात्।**
**छर्दिरोधात् पञ्चमः स्यात् षष्ठः क्षवथुनिग्रहात्।। 46।।**
**जृम्भारोधात् सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः।**
**नवमः स्यादश्रुरोधाद् दशमः शुक्रधारणात्।। 47।।**
**मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद् वातविनिग्रहात्।**
**उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः।। 48।।**

उदावर्त्त तेरह होते हैं-1. भूख को रोकने से, 2. प्यास को रोकने से, 3 निद्रा (नींद) को रोकने से, 4. श्वास (चढ़े हुये श्वास) को रोकने से, 5. कै (दूषित कै) को रोकने से, 6. छींक को रोकने से, 7. जँभाई को रोकने से, 8. उद्गार (डकार) को रोकने से, 9. आँसुओं को रोकने (जब रोने का वेग उत्पन्न हो, तो उसे रोकने) से, 10. शुक्र को अनुचित ढंग से (ब्रह्मचर्य रखना बहुत आवश्यक है) रोकने से, 11. मूत्र को रोकने से, 12. मल (विष्ठा) को रोकने से और 13. वायु (अपानवायु) को रोकने से, इनमें अन्तिम तीन उदावर्त्त बड़े भयंकर होते हैं।

**वक्तव्य**-प्रकृति जिन पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देना चाहती है, उनको हठात् न निकलने देना अर्थात् उक्त पदार्थों का उत् (उलटा) आवर्त्त (पीछे को घूमना या लौट जाना) 'उदावर्त्त' कहलाता है। इससे बहुत हानि होती है, अतः 'न वेगान् धारयेत् धीमान्' अर्थात् उक्त वेगों को नहीं रोकना चाहिये, ऐसा कहा गया है। जैसे रोगयुक्त श्वास के वेग को रोकना तो हानिकारक होता है, किन्तु प्राणायाम के समय उसे रोकना लाभदायक होता है।

### आनाह-गणना

**आनाहो द्विविधो ज्ञेय एकः पक्वाशयोद्भवः।**
**आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते।। 49।।**

आनाह दो प्रकार का होता है-1. पक्वाशय का और 2. आमाशय का, इसे 'प्रत्यानाह' भी कहा जाता है।

**वक्तव्य**-पक्वाशय एवं आमाशय में स्वभाव से ही आकुञ्चनवत् गति हुआ करती है (जिसके कारण आहार आगे-आगे सरकता रहता है), इसकी गति का रुक जाना ही 'आनाह' (आङ् उपसर्ग पूर्वक णह् बन्धने' धातु का घञ् प्रत्ययान्त रूप) है।

### उरोग्रह-गणना

**उरोग्रहस्तथा चैको-**

'उरोग्रह' एक प्रकार का होता है।

**वक्तव्य**-'उरोग्रह' नामक रोग सम्भवत: 'उर:=उर:स्थल का ग्रह=जकड़ना' का अथवा हृदय की गति के निरोध (हार्ट-फेल) का अथवा फुप्फुस की गति के निरोध का नाम है।

### हृद्रोग-गणना

**-हृद्रोगाः पञ्च कीर्तिताः।**
**वातादिभिस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः सन्निपाततः।। 50।।**
**पञ्चमः कृमिसञ्जातः-**

हृद्रोग पाँच कहे गये हैं-वायु आदि तीनों दोषों से तीन, चौथा सन्निपात से और पाँचवाँ कृमियों से।

**वक्तव्य**-दोनों फुप्फुसों के मध्य में रक्त का सञ्चालक हृदय नामक जो यन्त्र है, उसी में रोग होते हैं। 'पञ्चमः कृमिसञ्जातः' जो रोग है, उसमें उक्त 'हृदयाद' नामक कृमि उत्पन्न हो जाते हैं।

### उदररोग-गणना

**-तथाष्टावुदराणि च।**
**वातात्पित्तात्कफात्त्रीणि त्रिदोषेभ्यो जलादपि।। 51।।**
**प्लीहः क्षताद् बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम्।**

'उदर रोग' आठ होते हैं-1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से, 5. जल (जलोदर) से, 6. प्लीहा (यकृत्-विकार) से, 7. क्षत (अँतड़ियों में घाव या छिद्र होने) से तथा 8. बद्धगुद (मलाशय या गुद में मल की रुकावट होने) से।

**वक्तव्य**-उदर में अनेक रोग होते हैं, किन्तु वे उदर के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में होते हैं। सम्पूर्ण उदर में विकृति होने के कारण ही ये 'उदर-रोग' कहे जाते हैं।

### गुल्मरोग-गणना

**गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः।। 52।।**
**द्वन्द्वभेदास्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः।**
**रक्तादष्टमकः ख्यातो-**

गुल्म आठ कहे गये हैं-वात, पित्त तथा कफ से तीन, दो-दो दोषों से तीन; सातवाँ सन्निपात से और आठवाँ रक्त से (यह स्त्रियों के गर्भाशय में ही होता है)।

**वक्तव्य**-'गुल्म' वायुगोला के नाम से प्रसिद्ध रोग है।

### मूत्राघात-गणना

**- मूत्राघातास्त्रयोदश।। 53।।**
**वातकुण्डलिका पूर्वा वाताष्ठीला ततः परा।**
**वातवस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः।। 54।।**
**पञ्चमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः।**
**मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः।। 55।।**
**मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः।**
**मूत्रासादश्चोष्णवातो वस्तिकुण्डलिका तथा।। 56।।**
**मूत्राघातास्त्रयोऽप्येते पृथग्घोराः प्रकीर्तिताः।**

मूत्राघात तेरह होते हैं-1. वातकुण्डलिका, 2. वाताष्ठीला, 3. वातवस्ति, 4. मूत्रातीत, 5. मूत्रजठर, 6. मूत्रक्षय, 7. मूत्रोत्सर्ग, 8. मूत्रग्रन्थि, 9. मूत्रशुक्र, 10. विड्घात, 11. मूत्रसाद, 12. उष्णवात तथा 13. वस्तिकुण्डलिका। इनमें अन्तिम तीन मूत्राघात बहुत कष्टदायक होते हैं।

**वक्तव्य**-उक्त रोगों में मूत्र में रुकावट होती है, अथवा मूत्राशय में मूत्र बनता ही नहीं, अत: इन्हें मूत्राघात कहते हैं। उष्णवात और मूत्रसाद दोनों का सम्मिलित नाम 'सुजाक' हो सकता है। दोनों के लक्षणों पर आप ध्यान दें।

### मूत्रकृच्छ्र-गणना

**मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 57।।**
**सन्निपाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं च पञ्चमम्।**
**विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम्।। 58।।**
**अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं-**

मूत्रकृच्छ्र आठ होते हैं-वात, पित्त तथा कफ से तीन, सन्निपात से चौथा, शुक्रकृच्छ्र पाँचवाँ, विट्कृच्छ्र छठा, घातकृच्छ्र सातवाँ और अश्मरीकृच्छ्र आठवाँ।

**वक्तव्य**-उक्त रोगों में पेशाब करने में अधिक कष्ट होता है। अत: इन्हें 'मूत्रकृच्छ्र' कहते हैं।

### अश्मरी-गणना

**–चतुर्धा चाश्मरी मता।**

**वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात् –**

अश्मरी (पथरी) चार प्रकार की होती है–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से तथा 4. शुक्र से।

**वक्तव्य**–अश्मरी या पथरी वस्ति या मूत्राशय में तथा वृक्कों में होती है और शुक्राश्मरी (शुक्र की पथरी) शुक्राशय में होती है।

### प्रमेह-गणना

**–तथा मेहाश्च विंशतिः ।। 59 ।।**

**इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः।**
**शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च शीतकः ।। 60 ।।**
**सिकताख्यः शनैर्मेहो दशैते कफसम्भवाः।**
**मञ्जिष्ठाख्यो हरिद्राख्यो नीलमेहश्च रक्तकः ।। 61 ।।**
**कृष्णमेहः क्षारमेहः षडेते पित्तसम्भवाः।**
**हस्तिमेहो वसामेहो मज्जामेहो मधुप्रभः ।। 62 ।।**
**चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः।**

प्रमेह बीस होते हैं–1. इक्षुमेह, 2. सुरामेह, 3. पिष्टमेह, 4. सान्द्रमेह, 5. शुक्रमेह, 6. उदकमेह, 7. लालामेह, 8. शीतमेह, 9. सिकतामेह तथा 10. शनैर्मेह, ये दस प्रमेह कफ से होते हैं; 11. मञ्जिष्ठामेह, 12. हरिद्रामेह, 13. नीलमेह, 14. रक्तमेह, 15. कृष्णमेह (मसीमेह) तथा 16. क्षारमेह, ये छः प्रमेह पित्त से होते हैं; 17. हस्तिमेह, 18. वसामेह, 19. मज्जामेह और 20. मधुमेह, ये चार प्रमेह वातदोष से होते हैं।

**वक्तव्य**–धातुओं के उपादान (धातुपोषक पदार्थ, जो कि आहार रस के रूप में रक्त में पहुँचते हैं) वृक्कों द्वारा छन जाते हैं और मूत्र में मिलकर निकलते हैं (अतएव मूत्र अधिक एवं गाढ़ा आने लगता है), बस इसी को 'प्रमेह' कहते हैं। प्रमेहों के नामों पर ध्यान देने से ज्ञात हो सकता है कि उन-उन में मूत्र कैसा होता है और उसमें क्या-क्या घुला रहता है।

### सोमरोग-गणना

**सोमरोगस्तथा चैकः–**

सोम रोग एक होता है।

**वक्तव्य**–इस रोग में निर्मल या केवल जल जैसा मूत्र होता है और मात्रा में बहुत अधिक। उक्त रोग स्त्रियों को अधिक होता है।

### प्रमेहपिड़का-गणना

**–प्रमेहपिडका दश ।। 63 ।।**

**शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनताऽलजी।**
**मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका ।। 64 ।।**
**विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिडका मेहसम्भवाः।**

प्रमेहपिड़काएँ दस होती हैं–1. शराविका, 2. कच्छपिका, 3. पुत्रिणी 4. विनता, 5. अलजी, 6. मसूरिका, 7. सर्षपिका, 8. जालिनी, 9. विदारिका और 10. विद्रधि–ये दस पिड़काएँ (फुन्सियाँ या फोड़े) प्रमेह के कारण होती हैं।

**वक्तव्य**–उक्त पिड़काएँ प्रायः प्रमेह रोगियों को होती हैं और बहुत कष्टप्रद होती हैं। 'विनता' नाम का वह प्रसिद्ध फोड़ा है, जिसे 'अदीठ' या 'कार्बकल' कहते हैं।

### मेदोरोग-गणना

**मेदोदोषस्तथा चैकः–**

मेदोरोग एक होता है।

**वक्तव्य**–अनावश्यक रूप से मोटा होना 'मेदो-दोष' या 'मोटापा' कहलाता है।

### शोथ-गणना

**–शोथरोगा नव स्मृताः ।। 65 ।।**

**दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद् विषादपि।**

शोथ (सूजन) नौ प्रकार का होता है–पृथक्-पृथक् दोषों से तीन, दो-दो दोषों से तीन, सब दोषों (सन्निपात) से एक, अभिघात (चोट लगने) से एक तथा विष-सेवन से एक।

### वृद्धिरोग-गणना

**वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ।। 66 ।।**
**रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमी।**

वृद्धिरोग सात प्रकार का कहा गया है–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. रक्त से, 5. मेदा से, 6. मूत्र से और 7. अन्त्रवृद्धि से।

**वक्तव्य**–यह अण्डकोष (पोतों) का रोग है। इसमें उक्त अंग बढ़ जाता है और 'अन्त्रवृद्धि' अँतड़ी या आँत के उतरने से हो जाती है।

अण्डवृद्धि-गणना

**अण्डवृद्धिस्तथा चैका-**

अण्डवृद्धि एक होती है।

**वक्तव्य**-केवल अण्ड या वृषण के बढ़ने का नाम 'अण्डवृद्धि' है।

गण्डमाला-गणना

**-तथैका गण्डमालिका।। 67।।**

गण्डमाला एक होती है।

**वक्तव्य**-इस रोग में लसीका-ग्रन्थियाँ विकृत हो जाती हैं।

गण्डालजी-गणना

**गण्डालजी तु चैका स्यात्-**

'गण्डालजी' एक होती है। इसे घेंघा भी कहा जाता है।

ग्रन्थि-गणना

**-ग्रन्थयो नवधा मताः।**

**त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मेदसो व्रणात्।। 68।।**

**अस्थ्ना मांसेन नवमः-**

ग्रन्थियाँ नौ मानी जाती हैं-1-3. वात आदि दोषों से तीन, 4. रक्त की विकृति से, 5. शिराओं की विकृति से, 6. मेदा की विकृति से, 7. व्रण की विकृति से, 8. अस्थि की विकृति से तथा 9. मांस की विकृति से।

**वक्तव्य**-ये बिना मुँह के फोड़े होते हैं।

अर्बुद-गणना

**-षड्विधं स्यात् तथार्बुदम्।**

**वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मेदसः।। 69।।**

'अर्बुद' छः प्रकार का होता है-1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. रक्त से, 5. मांस से तथा 6. मेदा से।

**वक्तव्य**-अर्बुद को ही 'रसौली' भी कहते हैं।

श्लीपद-गणना

**श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि।**

श्लीपद तीन प्रकार का होता है-वात, पित्त और कफ से। इसी को 'फीलपाँव' कहते हैं।

विद्रधि-गणना

**विद्रधिः षड्विधः ख्यातो वातपित्तकफैस्त्रयः।। 70।।**

**रक्तात् क्षतात् त्रिदोषैश्च-**

विद्रधि छः प्रकार का कहा गया है-वात, पित्त तथा कफ से तीन, रक्त से एक, क्षत (घाव) से एक और त्रिदोष से एक।

**वक्तव्य**-यह अत्यन्त भयंकर फोड़ा है। इसमें प्रायः लेपादि क्रियाएँ सफल नहीं होतीं। इसमें अन्ततोगत्वा चीरा देना ही पड़ता है। यह दो प्रकार का होता है-1. बाह्यविद्रधि और 2. अन्तर्विद्रधि। इनमें से पहला बाहरी शरीर पर और दूसरा शरीर के भीतरी अवयवों (वृक्क, यकृत्, एवं प्लीहा आदि) में होता है, जो और भी भयंकर होता है।

व्रण-गणना

**-व्रणाः पञ्चदशोदिताः।**

**तेषां चतुर्धा भेदाः स्युरागन्तुर्देहजस्तथा।। 71।।**

**शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्सङ्ख्या कथ्यते पृथक्।**

**वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रणः।। 72।।**

**वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा।**

**तथा पित्तकफाभ्याञ्च सन्निपातेन चाष्टमः।। 73।।**

**नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः।**

**श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः।। 74।।**

**वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसम्भवः।**

**सन्निपातासृगुद्भूत इति पञ्चदश व्रणाः।। 75।।**

व्रण (घाव) पन्द्रह प्रकार के होते हैं और उनके चार भेद होते हैं। यथा-1. आगन्तु (सद्योव्रण जो कि तलवार आदि शस्त्रों के लगने से होता है), 2. देहज या शारीरज, जो कि फोड़ा निकलकर घाव हो जाता है, 3. शुद्ध (अविकृत) तथा 4. दुष्ट (विकृत)। अब उनकी गिनती पृथक्-पृथक् कही जाती है-1. वातज, 2. पित्तज, 3. कफज, 4. रक्तज, 5. वातपित्तज, 6. वातकफज, 7. पित्तकफज, 8. सन्निपातज, 9. वातरक्तज, 10. पित्तरक्तज, 11. कफरक्तज, 12. वात-पित्तरक्तज, 13. वातकफरक्तज, 14. पित्तकफरक्तज और 15. त्रिदोषरक्तज।

सद्योव्रण-गणना

**सद्योव्रणस्त्वष्टधा स्यादविक्लृप्तविलम्बिनौ।**

**छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः।। 76।।**

सद्योव्रण (आगन्तु व्रण) आठ प्रकार का होता है-1.

अविक्लृप्त (चाकू आदि का घाव), 2. बिलम्बित (अंग का कटकर लटकने लगना), 3. छिन्न (अंग का सर्वथा अलग हो जाना), 4. भिन्न (आमाशय तथा वस्ति आदि आशय का फटना), 5. प्रचलित (ऊपर की त्वचा का निचली त्वचा पर से हटना), 6. घृष्ट (रगड़ लगना), 7. विद्ध (बिंध जाना) और 8. निपातित (जड़ से उखड़ना, जिसमें केवल गड्ढा रह जाये)।

**वक्तव्य**–ध्यान दें, ये भिन्न-भिन्न प्रकार के घाव हैं। व्रण का अर्थ है–उस स्थान का विचूर्णित हो जाना। देखें–'व्रण विचूर्णने' धातु।

**कोष्ठभेद-गणना**

**कोष्ठभेदो द्विधा प्रोक्तश्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः।**

कोष्ठ या उदर का भेद या फटना दो प्रकार का होता है–1. छिन्नान्त्र (अँतड़ी का फटना) तथा 2. निःसृतान्त्रक (उदर की दीवार फटकर आँतों का बाहर निकलना)।

**अस्थिभंग-गणना**

**अस्थिभङ्गोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारितौ।। 77।।**
**विवर्तितश्च विश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः।**
**ऊर्ध्वगः सन्धिभग्नश्च–**

अस्थिभग्न आठ प्रकार का कहा गया है–1. भग्न (टूटना), 2. पृष्ठविदारित (अस्थि की पीठ का फटना या दरार पड़ना), 4. विवर्तित (ऐंठ जाना या मरोड़ खा जाना), 4. विश्लिष्ट (सन्धि का सरकना), 5. तिर्यक्क्षिप्त (सन्धि-स्थान का टेढ़ा होना), 6. अधोगत (सामने वाली हड्डी के नीचे आ जाना), 7. ऊर्ध्वग (ऊपर वाली हड्डी के ऊपर चढ़ जाना) और 8. सन्धि भग्न (सन्धिस्थान का टूट जाना)।

**वक्तव्य**–उक्त भग्न दो प्रकार का भी माना जाता है, यथा–1. काण्डभग्न (अस्थि का टूटना) तथा 2. सन्धिभग्न (सन्धि या जोड़ का खिसकना)। इनमें पहले दो अस्थिभग्न तथा शेष छः सन्धिभग्न कहे जाते हैं।

**अग्निदग्ध-गणना**

**– वह्निदग्धश्चतुर्विधः।। 78।।**
**प्लुष्टो विदग्धो दुर्दग्धः सम्यग्दग्धः प्रकीर्तितः।**

वह्निदग्ध (आग से जलना) चार प्रकार का होता है–1. प्लुष्ट (झुलसना), 2. विदग्ध (फफोला पड़ना), 3. दुर्दग्ध (त्वचा का जल जाना) तथा 4. सम्यग्दग्ध या अतिदग्ध (मांस आदि का जल जाना)।

**नाड़ीव्रण-गणना**

**नाड्यः पञ्च समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 79।।**
**त्रिदोषैरपि शल्येन–**

नाड़ीव्रण पाँच प्रकार के कहे गये हैं–वात, पित्त और कफ से तीन, त्रिदोष से एक तथा शल्य (तीर, भाला आदि) से एक।

**वक्तव्य**–नाड़ीव्रण को ही 'नासूर' कहते हैं।

**भगन्दर-गणना**

**–तथाऽष्टौ स्युर्भगन्दराः।**
**शतपोनस्तु पवनादुष्ट्रग्रीवश्च पित्ततः।। 80।।**
**परिस्रावी कफाज्ज्ञेय ऋजुर्वातकफोद्भवः।**
**परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः।। 81।।**
**आगन्तुजातश्चोन्मार्गी शङ्खावर्तस्त्रिदोषजः।**

भगन्दर नामक व्रण आठ होते हैं–1. शतपोनक (चलनी या छलनी के समान बहुत से छिद्रों वाला) वायु से, 2. उष्ट्रग्रीव (ऊँट की गर्दन के आकार का) पित्त से, 3. परिस्रावी कफ से, 4. ऋजु (सीधा) वात-पित्त से, 5. परिक्षेपी (पीब को जोर से निकालने वाला) वातपित्त से, 6. अर्शोज (अर्श के कारण होने वाला) कफपित्त से, 7. उन्मार्गी (उलटे मार्ग वाला), आगन्तुज अर्थात् शल्य आदि के लगने से होने वाला तथा 8. शंखावर्त्त (शंख की भाँति आवर्तों वाला) त्रिदोष से।

**वक्तव्य**–गुद-द्वार के आस-पास होने वाला नासूर ही 'भगन्दर' कहा जाता है।

**उपदंश-गणना**

**मेढ्रे पञ्चोपदंशाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 82।।**
**सन्निपातेन रक्ताच्च–**

मूत्रमार्ग पर पाँच 'उपदंश' होते हैं–वात, पित्त तथा कफ से तीन, सन्निपात से चौथा एवं रक्त से पाँचवाँ।

**वक्तव्य**–उपदंश स्त्री एवं पुरुष दोनों का होता है। यह प्रायः संसर्ग या संपर्क से होता है। इसका विवेचन सु० नि० अ० 12 में तथा च० चि० अ० 30 में देखें। चरक ने इसे 'ध्वजभङ्ग' कहा है।

### शूकरोग-गणना

-मेढ्रे शूकामयास्तथा।
चतुर्विंशतिराख्याता लिङ्गार्शो ग्रथितं तथा।।83।।
निवृत्तमवमन्थश्च मृदितं शतपोनकः।
अष्ठीलिका सर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका।।84।।
मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुत्तमा।
मांसार्बुदं पुष्करिका सम्मूढपिडिकालजी।।85।।
रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुम्भिका तिलकालकः।
निरुद्धप्रकशः प्रोक्तस्तथैव परिवर्तिका।।86।।

लिङ्ग पर होने वाले 'शूक रोग' चौबीस कहे जाते हैं–1. लिङ्गार्श, 2. ग्रथित, 3. निवृत्त, 4. अवमन्थ, 5. मृदित, 6. शतपोनक, 7. अष्ठीलिका, 8. सर्षपिका, 9. त्वक्पाक, 10. अवपाटिका, 11. मांसपाक, 12. स्पर्शहानि, 13. निरुद्धमणि, 14. उत्तमा, 15. मांसार्बुद, 16. पुष्करिका 17. सम्मूढपिडिका, 18. अलजी, 19. रक्तार्बुद, 20. विद्रधि, 21. कुम्भिका, 22. तिलकालक, 23. निरुद्धप्रकश तथा 24. परिवर्तिका।

**वक्तव्य**–लिङ्गवृद्धिकर उपायों का नाम 'शूक' है, जिसे 'तिला' भी कहते हैं। उक्त रोग प्रायः 'शूक' के प्रयोगों से हो जाया करते हैं। अतएव इन्हें 'शूकोमय' या 'शूकरोग' कहते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी रोग हैं, जो करमर्दन या हस्तमैथुन आदि कारणों से भी हो जाते हैं।

### कुष्ठरोग-गणना

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात्कापालिकं भवेत्।
पित्तेनोदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके।।87।।
मरुत्पित्तादृक्षजिह्वं श्लेष्मवाताद्विपादिका।
तथा सिध्मैककुष्ठं च किटिभं चालसं तथा।।88।।
कफपित्तात् पुनर्दद्रुः पामा विस्फोटकं तथा।
महाकुष्ठं चर्मदलं पुण्डरीकं शतारुकम्।।89।।
त्रिदोषैः काकणं ज्ञेयं तथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम्।
तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत्।।90।।

कुष्ठरोग अठारह कहे गये हैं–1. कापालिक वायु से, 2. औदुम्बर पित्त से, 3. मण्डल एवं 4. विचर्चिका कफ से, 5. ऋष्यजिह्व वातपित्त से, 6. विपादिका, 7. सिध्म, 8. एककुष्ठ, 9. किटिभ एवं 10. अलस भी कफवात से और 11. दद्रु (दाद), 12. पामा (खुजली) विस्फोट, 14. महाकुष्ठ, 15. चर्मदल (चम्मल), 16. पुण्डरीक, 17. शतारुक, ये कफपित्त से एवं 18. काकण सन्निपात् से। तथा 'श्वित्र' या फुलबहरी नामक एक दूसरा रोग होता है, जो तीन प्रकार का होता है–1. वात से, 2. पित्त से तथा 3. कफ से।

**वक्तव्य**–कुष्ठ 'कोढ़' नाम से प्रसिद्ध है। इसे आयुर्वेद में पापरोग भी कहा गया है।

### क्षुद्ररोग-गणना

क्षुद्ररोगाः षष्टिसङ्ख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम्।
इन्द्रवृद्धा पनसिका विवृतान्धालजी तथा।।91।।
वराहदंष्ट्री वल्मीकं कच्छपी तिलकालकः।
गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका।।92।।
कदरं मषकश्चैव नीलिका जालगर्दभः।
इरिवेल्ली जतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी।।93।।
सन्निरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयी तथा।
पद्मिनीकण्टकश्चिप्यमलसो मुखदूषिका।।94।।
कक्षा वृषणकच्छूश्च गन्धः पाषाणगर्दभः।
राजिका च तथा व्यङ्गश्चतुर्धा परिकीर्तितः।।95।।
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यङ्गलक्षणम्।
विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्तिताः।।96।।
पृथग्दोषैस्त्रयो द्वन्द्वैस्त्रिविधः सप्तमोऽसृजः।
अष्टमः सन्निपातेन क्षुद्ररुक्षु मसूरिका।।97।।
चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा।
द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता सन्निपातेन सप्तमी।।98।।
अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया नवमी रक्तजा स्मृता।
दशमी मांसजा ख्याता चतस्त्रोऽन्याश्च दुस्तराः।।99।।
मेदोऽस्थिमज्जाशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः।

क्षुद्ररोग साठ होते हैं–1. शर्करार्बुद, 2. इन्द्रविद्धा, 3. पनसिका, 4. विवृता, 5. अन्धालजी, 6. वराहदंष्ट्र, 7. वल्मीक, 8. कच्छपी, 9. तिलकालक, 10. गर्दभी, 11. रकसा, 12. यवप्रख्या, 13. विदारिका, 14. कदर, 15. मसक, 16. नीलिका (झाँई), 17. जालगर्दभ, 18. इरिवेल्ली, 19. जतुमणि, 20. गुदभ्रंश (काँच निकलना), 21. अग्निरोहिणी, 22. सन्निरुद्धगुद, 23. कोठ (धप्पड़ या चकत्ता), 24. कुनख, 25. अनुशयी, 26. पद्मिनीकण्टक, 27. चिप्प, 28. अलस, 29. मुखदूषिका (मुँहासे), 30. कक्षा, 31. वृषणकच्छू

(अण्डकोष की खुजली), 32. गन्ध (बगलगन्ध), 33. पाषाणगर्दभ, 34. राजिका और (4) चार प्रकार के व्यंग, (8) आठ प्रकार के विस्कोट (बड़ी माता) भी क्षुद्र रोगों में गिने जाते हैं। यथा–पृथक्-पृथक् दोषों से तीन, दो-दो दोषों से तीन, सन्निपात से एक तथा रक्त से एक। (14) चौदह प्रकार की मसूरिका (छोटी माता) भी क्षुद्र रोगों में गिनी जाती है। यथा–तीनों दोषों से तीन, दो-दो दोषों से तीन सन्निपात से सातवीं, त्वचागत आठवीं, रक्तगत नौवीं, मांसगत दसवीं और चार बड़ी ही भयंकर होती हैं, जो कि मेदा में, अस्थि में, मज्जा में एवं शुक्र में व्याप्त होती हैं। इस प्रकार यहाँ 60 क्षुद्र रोगों की गणना की गयी है।

**वक्तव्य**–क्षुद्र रोग वे कहे जाते हैं, जिनका वर्णन आयुर्वैदिक-ग्रन्थों में सामान्य रूप से या संक्षेप से किया गया है।

### विसर्परोग-गणना

**विसर्परोगो नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 100।।**
**त्रिधा स द्वन्द्वभेदेन सन्निपातेन सप्तमः।**
**अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः।। 101।।**

विसर्प रोग नौ प्रकार का होता है–वात, पित्त तथा कफ से तीन, दो-दो दोषों से तीन, सन्निपात से सातवाँ, अग्नि द्वारा जलने से आठवाँ तथा अभिघात से नौवाँ।

**वक्तव्य**–कुछ विद्वान् तीन और विसर्प मानते हैं। यथा–1. अग्निविसर्प, 2. ग्रन्थिविसर्प तथा 3. कर्दमविसर्प। इस रोग में शरीर पर किसी एक स्थान में फफोले या छाले उठते हैं और फूटते हैं। जहाँ-जहाँ उनका पानी लगता है, वहाँ-वहाँ और फफोले उठते जाते हैं, पहिले वाले शान्त होते जाते हैं। बस यही विसर्प का सामान्य लक्षण है। इसे 'मकड़ी' भी कहते हैं।

### उदर्द एवं शीतपित्त-गणना

**तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः।**
**वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः।। 102।।**

'उदर्द' एक होता है, जो कि कफ-पित्त से होता है तथा 'शीतपित्त' भी एक ही होता है, जो कि वात-पित्त से होता है।

**वक्तव्य**–उक्त रोगों को 'जुलपित्ती', 'रक्तपित्ती' या 'पित्ती' भी कहते हैं।

### अम्लपित्त-गणना

**अम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेन श्लेष्मणा तथा।**
**तृतीयं श्लेष्मवाताभ्यां वातरक्तं तथाऽष्टधा।। 103।।**

अम्लपित्त रोग तीन प्रकार का होता है–1. वायु से, 2. कफ से तथा 3. कफवात से।

**वक्तव्य**–इसका सामान्य लक्षण है–छाती में जलन तथा खट्टे डकारों का आना।

### वातरक्तरोग-गणना

**वाताधिक्येन पित्ताच्च कफाद् दोषत्रयेण च।**
**रक्ताधिक्येन दोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः।। 104।।**

वातरक्त आठ प्रकार का होता है। यथा–1. वायु से, 2. पित्त से, 3. कफ से 4, त्रिदोष से, 5. रक्त तथा दो-दो दोषों से तीन=8।

**वक्तव्य**–यह कुष्ठ जैसा ही होता है, किन्तु इसमें वात दोष की प्रधानता होती है।

### वातज रोग-गणना

**अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः।**
**आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः।। 105।।**
**बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलं कटिग्रहः।**
**दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तम्भस्तथार्दितम्।। 106।।**
**पक्षाघातः क्रोष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पङ्गुता।**
**कलायखञ्जता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता।। 107।।**
**पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चापबाहुकः।**
**अपतानो व्रणायामो वातकण्टोऽपतन्त्रकः।। 108।।**
**अङ्गभेदोऽङ्गशोषश्च मिन्मिनत्वं च गद्गदः।**
**प्रत्यष्ठीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता।। 109।।**
**अङ्गपीडाङ्गशूलं च सङ्कोचस्तम्भरूक्षता।**
**अङ्गभङ्गोऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता।। 110।।**
**मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारोऽन्त्रकूजनम्।**
**वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा।। 111।।**
**कम्पः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता।**
**निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः।। 112।।**
**अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यं नाशश्च रेतसः।**
**अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता।। 113।।**
**कषायवक्त्रताऽऽध्मानं प्रत्याऽऽध्यानं च शीतता।**
**रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कण्डूरसाज्ञता।। 114।।**

**शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च गन्धाज्ञत्वं दृशः क्षयः।**

मुनियों द्वारा कहे हुये वायु के अस्सी रोग (वातव्याधि) कहे जाते हैं–1. आक्षेपक, 2. हनुस्तम्भ, 3. ऊरुस्तम्भ, 4. शिरोग्रह, 5. बाह्यायाम, 6. अन्तरायाम, 7. पार्श्वशूल, 8. कटिग्रह (हूक, चूक), 9. दण्डापतानक, 10. खल्ली, 11. जिह्वास्तम्भ, 12. अर्दित (मुख का लकवा), 13. पक्षाघात (अर्द्धाङ्ग), 14. क्रोष्टुशीर्षक (घुटने की सूजन), 15. मन्यास्तम्भ, 16. पंगुता, 17. कलायखंजता, 18. तूनी, 19. प्रतितूनी, 20. खँजता (लँगड़ा होना), 21. पादहर्ष, 22. गृध्रसी (टाँग का अकड़ना), 23. विश्वाची (बाँह का अकड़ना), 24. अपबाहुक, 25. अपतानक (हिस्टीरिया), 26. व्रणायाम, 27. वातकण्टक (पैर की मोच), 28. अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), 29. अंगभेद, 30. अंगशोष, 31. मिन्मिनत्त्व (मिन्मिनापन), 32. गद्गद (हकलापन), 33. प्रत्यष्ठीला, 34. अष्ठीला, 35. वामनत्व (बौनापन), 36. कुब्जता (कुबड़ापन), 37. अंगपीड़ा, 38. अंगशूल, 39. अंगसंकोच, 40. अंगस्तम्भ, 41. अंगरूक्षता, 42. अंगभंग, 43. अंगविभ्रंश, 44. विड्ग्रह (कब्जियत), 45. बद्धविट्कता, 46. मूकता (गूँगापन), 47. अतिजृम्भा, 48. अत्युद्गार, 49. अन्त्रकूजन, 50. वातप्रवृत्ति, 51. स्फुरण (फड़कन), 52. सिरापूरण, 53. कम्प, 54. कार्श्य, 55. श्यावता, 56. प्रलाप, 57. क्षिप्रमूत्रता, 58. निद्रानाश, 59. स्वेदनाश, 60. दुर्बलता, 61. बलक्षय, 62. शुक्रातिप्रवृत्ति, 63. शुक्राल्पता, 64. शुक्रनाश, 65. चञ्चलचित्तता, 66. कठिनता, 67. मुखविरसता, 68. कषायवक्त्रता, 69. आध्मान (अफारा), 70. प्रत्याध्मान, 71. शीतता, 72. रोमहर्ष, 73. भीरुता (भय), 74. तोद, 75. कण्डू, 76. रसाज्ञता (रसज्ञान का अभाव), 77. शब्दाज्ञता (बधिरता), 78. प्रसुप्ति (अंग विशेष का सो जाना), 79. गन्धाज्ञत्त्व (घ्राणनाश), और 80. दृष्टिनाश (अन्धापन)।

**वक्तव्य**–ये अस्सी रोग वायु के प्रकोप के बिना हो ही नहीं सकते, अतः इन्हें 'वातरोग' या 'वातव्याधि' कहते हैं।

### पित्तज रोग-गणना

**अथ पित्तभवा रोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः।। 115।।**
**धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णाङ्गत्वं मतिभ्रमः।**
**कान्तिहानिः कण्ठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता।। 116।।**
**तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽङ्गपाकता।**
**क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतकायता।। 117।।**
**रक्तस्रावोऽङ्गदरणं लोहगन्धास्यता तथा।**
**दौर्गन्ध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविट्कता।। 118।।**
**पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता।**
**शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता।। 119।।**
**कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्धता।**
**उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च।। 120।।**
**तमसो दर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम्।**
**निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः।। 121।।**

आयुर्वेद में पित्त रोग चालीस कहे गये हैं–1. धूमोद्गार (धुआँ जैसा डकार आना), 2. विदाह (जलन होना), 3. उष्णांगत्व (अंगों का गर्म होना), 4. मतिभ्रम (बुद्धिभ्रम होना या चक्कर आना), 5 कान्तिहानि (शरीर की छवि का कम होना), 6. कण्ठशोष (गले का सूखना), 7. मुखशोष (मुँह का सूखना), 8. अल्पशुक्रता (शुक्र की कमी), 9. तिक्तास्यता (मुख का कड़वापन), 10. अम्लवक्त्रत्व (मुख का खट्टा होना), 11. स्वेदस्राव (पसीना आना), 12. अंगपाकता (अंगों में पाक होना), 13 क्लम (सुस्ती), 14. हरितवर्णत्व (वर्ण का हरा होना), 15. अतृप्ति (तृप्ति न होना), 16. पीतकायता (शरीर का पीला होना), 17. रक्तस्राव (खून का पतला होना), 18. अंगदरण (अंगों का फटना), 19. लोहगन्धास्यता (मुख से बुताये हुये लोहे की-सी गन्ध का आना), 20. दौर्गन्ध्य (दुर्गन्धिता), 21. पीतमूत्रत्व (मूत्र का पीला होना), 22. अरति (बेचैनी), 23. पीतविट्कता (पुरीष का पीला होना), 24. पीतावलोकन (सभी वस्तुएँ पीली दिखलाई देना), 25. पीतनेत्रता (आँखें पीली होना), 26. पीतदन्तता (दाँतों का पीला होना), 27. शीतेच्छा (शीत की अभिलाषा), 28. पीतनखता (नाखूनों का पीला होना), 29. तेजोद्वेष (प्रकाश का अच्छा न लगना), 30. अल्पनिद्रता (नींद कम आना), 31. कोप (क्रोध), 32. गात्रसाद (शरीर की शिथिलता), 33. भिन्नविट्कत्व (दस्त होना), 34. अन्धता (अन्धा होना), 35. उष्णोच्छ्वासत्व (साँस का गर्म होना), 36. उष्णमूत्रता (मूत्र का गर्म होना), 37. उष्णमलता (पुरीष का गर्म होना), 38. तमोदर्शन (आँखों के आगे अँधेरा आना),

39. पीतमण्डल दर्शन (आकाश में पीले मण्डल दिखलायी पड़ना) तथा 40. पित्तनिःसरत्व (पित्त निकलना)–ये चालीस पित्त के रोग कहे गये हैं।

**वक्तव्य**–उक्त रोग पित्तप्रकोप के बिना हो ही नहीं सकते, अतः इन्हें 'पित्तरोग' कहते हैं।

कफज रोग-गणना

**कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तन्द्रातिनिद्रता।**
**गौरवं मुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता।। 122।।**
**श्वेतावलोकनं श्वेतविट्कत्वं श्वेतमूत्रता।**
**श्वेताङ्गवर्णता शैत्यमुष्णेच्छा तिक्तकामिता।। 123।।**
**मलाधिक्यं च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता।**
**आलस्यं मन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता।। 124।।**
**अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः।**

कफ के बीस रोग कहे जाते हैं–1. तन्द्रा (उँघाई), 2. अतिनिद्रता (अधिक नींद आना), 3. गौरव (शरीर में भारीपन), 4 मुखमाधुर्य (मुख का मीठा होना), 5. मुखलेप (मुख में चिपचिपाहट), 6 प्रसेकता (मुख आदि से पानी जाना), 7. श्वेतावलोकन (सभी वस्तुएँ सफेद दिखलायी देना), 8. श्वेतविट्कत्व (सफेद पुरीष होना), 9. श्वेतमूत्रता (सफेद मूत्र होना), 10. श्वेताङ्गवर्णता (शरीर के वर्ण का सफेद होना), 11. शैत्य (शीत लगना), 12. उष्णेच्छा (गर्म की अभिलाषा), 13. तिक्तकामिता (कड़ुये पदार्थों की इच्छा), 14. मलाधिक्य (मलों की अधिकता), 15. शुक्रबाहुल्य (शुक्र की अधिकता), 16. बहुमूत्रता (मूत्र का अधिक होना), 17. आलस्य, 18. मन्दबुद्धित्व (बुद्धि का मन्द होना), 19. तृप्ति (भूख न लगना), 20. घर्घर-वाक्यता (बोलने में घरघराहट), एवं 21. अचैतन्य (जड़ता)–ये बीस कफज रोग होते हैं।

**वक्तव्य**–उक्त रोग कफ-प्रकोप के बिना हो ही नहीं सकते, अतः इन्हें 'कफ रोग' कहते हैं। उक्त रोग बीस कहकर इक्कीस गिनाये गये हैं।

रक्तज रोग-गणना

**रक्तस्य च दश प्रोक्ता व्याधयस्तेषु गौरवम्।। 125।।**
**रक्तमण्डलता रक्तनेत्रत्वं रक्तमूत्रता।**
**रक्तष्ठीनवता रक्तपिडकानां च दर्शनम्।। 126।।**
**औष्ण्यं च पूतिगन्धत्वं पीडा पाकश्च जायते।**

रक्त के दस रोग कहे जाते हैं–1. गौरव (भारीपन), 2. रक्तमण्डलता (लाल चकत्ते निकलना), 3. रक्तनेत्रत्व (आँखों में सुर्खी), 4. रक्तमूत्रता (मूत्र में सुर्खी), 5. रक्तष्ठीवन (थूक में खून आना), 6. रक्तपिडका-दर्शन (लाल फुन्सियाँ निकलना), 7. औष्ण्य (गर्मी), 8. पूतिगन्धत्व (दुर्गन्ध आना), 9. पीड़ा (छूने पर भी कष्ट होना) तथा 10. पाक (पक जाना)।

**वक्तव्य**–उक्त सभी रोग रक्त की विकृति से होते हैं। वात, पित्त, कफ तथा रक्त के रोगों का भली-भाँति परिचय प्राप्त कर लेने पर निदान करने में बहुत सहायता मिलती है।

मुखरोग-गणना

**चतुःसप्ततिसङ्ख्याका मुखरोगास्तथोदिताः।। 127।।**

मुखरोग चौहत्तर कहे गये हैं।

**वक्तव्य**–ओष्ठ, दन्त, दन्तमूल या दन्तवेष्ट, जिह्वा, तालु तथा गले के रोग 'मुखरोग' कहे जाते हैं। स्मरण रहे कि यहाँ पर 'मुख' का अर्थ है–मुखगुहा अर्थात् ओठों से गले तक का स्थान।

ओष्ठरोग-गणना

**तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः।**
**वातपित्तकफैस्त्रेधा त्रिदोषैरसृजा तथा।। 128।।**
**क्षतं मांसार्बुदं चैव खण्डौष्ठं च जलार्बुदम्।**
**मेदोऽर्बुदं चार्बुदं च रोगा एकादशौष्ठजाः।। 129।।**

विद्वानों ने मुखरोगों में ग्यारह 'ओष्ठरोग' माने हैं। यथा–वात, पित्त एवं कफ से तीन, सन्निपात से एक, रक्त से एक, क्षत (अभिघात) से एक, मांसार्बुद (मांस दोष से) एक, खण्डौष्ठ (ओठ फटना) एक, जलार्बुद एक, मेदोर्बुद (मेदा से) एक तथा अर्बुद (रसौली) एक–इस प्रकार ओठों के ग्यारह रोग होते हैं।

**वक्तव्य**–अर्बुद एक ऐसा व्यापक रोग है, जो शरीर के किसी अवयव में उत्पन्न हो सकता है। इस विवेचन पर ध्यान दें।

दन्तरोग-गणना

**दन्तरोगा दशाख्याता दालनः कृमिदन्तकः।**

दन्तहर्षः करालश्च दन्तचालश्च शर्करा।। 130।।
अधिदन्तः श्यावदन्तो दन्तभेदः कपालिका।

दन्तरोग दस होते हैं–1. दालन (दाँत-दुखना), 2. कृमिदन्तक (दाँत में कीड़ा लगना 'दन्तादाः'–सु० उ० अ० 54), 3. दन्तहर्ष (शीत एवं अम्ल आदि के स्पर्श को न सहना), 4. कराल (दाँतों का आगे-पीछे हो जाना), 5. दन्तचाल (दाँतों का हिलना), 6. शर्करा (दाँतों पर से बालू जैसे कण गिरना), 7. अधिदन्त (दाँत के आगे-पीछे अधिक दाँत निकलना), 8. श्यावदन्त (दाँत का नीला या काला हो जाना), 9. दन्तभेद (दाँत का टूटना) तथा 10. कपालिका (दाँत पर से पपड़ी उतरना)।

### दन्तमूलगत रोग-गणना

तथा त्रयोदशमिता दन्तमूलामयाः स्मृताः।। 131।।
शीतादोपकुशौ द्वौ तु दन्तविद्रधिपुप्पुटौ।
अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ।। 132।।
तेष्वेव गतयः पञ्च वातात्पित्तात्कफादपि।
सन्निपाताद् गतिश्चान्या रक्तनाडी च पञ्चमी।। 133।।

दन्तमूल या मसूड़ों के रोग तेरह होते हैं–1. शीताद (खून जाना, दाँत की जड़ का पक जाना), 2. उपकुश (मसूड़े में दाह, पाक एवं दाँत का हिलना), 3. दन्तविद्रधि (फुड़िया निकलना), 4. पुप्पुट (मसूड़ा फूलना), 5. अधिमांस (पिछली दाढ़ का जड़ में सूजन होना), 6. विदर्भ (मसूड़ों पर रगड़ लगने से सूजन होना), 7. महासौषिर (दाँतों का हिलना एवं तालु का फटना), 8. सौषिर (मसूड़ों में पीड़ा तथा सूजन होना) तथा मसूड़ों में पाँच प्रकार के नासूर होना, यथा–1. वात, 2. पित्त, 3. कफ, 4. सन्निपात तथा 5. रक्त से।

### जिह्वागत रोग-गणना

तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।
अलसश्च चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्च पञ्चमः।। 134।।
षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्–

जिह्वा (जीभ) के छः रोग होते हैं–वात, पित्त तथा कफ से तीन, अलस चौथा, अधिजिह्वा पाँचवीं और उपजिह्वा छठीं।

### तालुगत रोग-गणना

–तथाष्टौ तालुजा गदाः।
अर्बुदं तालुपिडका कच्छपी तालुसंहतिः।। 135।।
गलशुण्डी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः।

तालु रोग आठ होते हैं–1. अर्बुद, 2. तालुपिड़का, 3. कच्छपी, 4. तालुसंहति, 5. गलशुण्डी, 6. तालुशोथ, 7. तालुपाक तथा 8. तालुपुप्पुट।

### कण्ठगत रोग-गणना

गलरोगास्तथाख्याता अष्टादशमिता बुधैः।। 136।।
वातरोहिणिका पूर्वं द्वितीया पित्तरोहिणी।
कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी।। 137।।
मेदोरोहिणिका वृन्दो गलौघो गलविद्रधिः।
स्वरहा तुण्डिकेरी च शतघ्नी शालुकोऽर्बुदम्।। 138।।
गलायुर्वलयश्चापि वाताद् गण्डः कफात् तथा।
मेदोगण्डस्तथैव स्यादित्यष्टादश कण्ठजाः।। 139।।

विद्वानों ने गले के अठारह रोग माने हैं–1. वातरोहिणिका, 2. पित्तरोहिणी, 3. कफरोहिणी, 4. सन्निपातरोहिणी, 5. मेदोरोहिणी, 6. वृन्द, 7. गलौघ, 8. गलविद्रधि, 9. स्वरहा (स्वरयन्त्र का नाश), 10. तुण्डिकेरी, 11. शतघ्नी, 12. शालूक, 13. अर्बुद, 14. गलायु, 15. वलय, 16. वातगण्ड, 17. कफगण्ड तथा 18 मेदोगण्ड।

### मुखगत रोग-गणना

मुखान्तःसम्भवा रोगा अष्टौ ख्याता महर्षिभिः।
मुखपाको भवेद् वातात्पित्तात् तद्वत् कफादपि।। 140।।
रक्ताच्च सन्निपाताच्च पूत्यास्योर्ध्वगदावपि।
अर्बुदं चेति मुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः।। 141।।

महर्षियों ने मुख की भीतरी दीवार के आठ रोग कहे हैं। पाँच प्रकार का 'मुखपाक' यथा–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से, 5. रक्त से तथा, 6. पूत्यास्य (मुख से दुर्गन्ध आना), 7. ऊद्ध्र्वगद (तालु का लाल हो जाना) और 8. अर्बुद। इस प्रकार कुल मिलाकर 'चौहत्तर' रोग मुख के कहे गये हैं।

### कर्णगत रोग-गणना

कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिता बुधैः।
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात् सन्निपाताच्च विद्रधिः।। 142।।
शोथोऽर्बुदं पूतिकर्णः कर्णार्शः कर्णहल्लिका।
बाधिर्यं तन्त्रिका कण्डूः शष्कुली कृमिकर्णकः।। 143।।
कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः।

विद्वानों ने कर्ण (कान) के अठारह रोग कहे हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. रक्त से, 5. सन्निपात से, 6. विद्रधि (कान के भीतर जो फुन्सी हो जाती है), 7. कर्णशोथ, 8. अर्बुद, 9. पूतिकर्ण (कान में दुर्गन्धि युक्त पीब बहना), 10. कर्णार्श (कान में मांसांकुर होना), 11. कर्णहल्लिका (कान में पतंगा या सलाई आदि का चला जाना), 12. बाधिर्य (बहरा होना), 13. तन्त्रिका (सितार की-सी ध्वनि सुनायी पड़ना), 14. कण्डू (खुजली), 15. शष्कुली (कान में से 'कर्णगूथ' का निकलना), 16. कृमिकर्णक (कान में कीड़े पड़ना–सु० उ० अ० 54 श्लोक 14), 17. कर्णनाद (अनेक प्रकार के शब्द सुनायी पड़ना) तथा 18. प्रतिनाह, यह कर्णगूथ का ही अवस्थान्तर है। इसमें 'आधासीसी' नामक शिरोरोग भी हो जाता है।

**वक्तव्य**–उक्त रोग कान के भीतरी अवयवों में होते हैं।

### कर्णपालीगत रोग-गणना

**कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः।। 144।।**
**उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्धनः।**
**परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः।। 145।।**

कर्णपाली (बाह्यकर्ण या कर्णशष्कुली) के रोग सात कहे जाते हैं–1. उत्पात, 2. पालिशोष, 3. विदारी, 4. दुःखवर्धन, 5. परिपोट, 6. परिलेही तथा 7. पिप्पली।

**वक्तव्य**–उक्त रोग कान के बाहरी अवयव के हैं। विशेष जानने के लिए सु० उ० अ० 20 देखें।

### कर्णमूलगत रोग-गणना

**कर्णमूलामयाः पञ्च वातात्पित्तात्कफादपि।**
**सन्निपाताच्च रक्ताच्च–**

कर्णमूलगत रोग पाँच होते हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से तथा 5. रक्त से।

**वक्तव्य**–कान के मूल में शोथ प्रायः सन्निपातज ज्वरों के अन्त में होता है।

### नासारोग-गणना

**–तथा नासाभवा गदाः।। 146।।**
**अष्टादशैव सङ्ख्याताः प्रतिश्यायास्तु तेष्वपि।**
**वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात् सन्निपातेन पञ्चमः।। 147।।**
**अपीनसः पूतिनासो नासार्शो भ्रंशथुः क्षवः।**
**नासानाहः पूतिरक्तमर्बुदः दुष्टपीनसम्।। 148।।**
**नासाशोषो घ्राणपाकः पूयस्रावश्च दीप्तकः।**

नासा में होने वाले रोग अठारह कहे जाते हैं। इनमें पाँच 'प्रतिश्याय' होते हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3 कफ से, 4 रक्त से तथा 5. सन्निपात से, 6. अपीनस (जुकाम), 7. पूतिनास (नाक से दुर्गन्ध आना), 8. नासार्श (नाक में अर्श होना), 9. भ्रंशथु (नाक से बहुत अधिक मैल जाना), 10. क्षव (छींक), 11. नासानाह (नाक का बन्द हो जाना), 12 पूतिरक्त (दुर्गन्धियुक्त रक्त का जाना), 13 अर्बुद, 14. दुष्टपीनस (जुकाम बिगड़ना), 15. नासाशोष, 16. घ्राणपाक, 17. पूयस्राव (पीब जाना) तथा 18. दीप्तक (दाह या जलन होना)।

### शिरोरोग-गणना

**तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः।। 149।।**
**शिरस्तापश्च वातेन पित्तपीडा तृतीयका।**
**चतुर्थी कफजा पीडा रक्तजा सन्निपातजा।। 150।।**
**सूर्यवर्ताच्छिरःकम्पात् कृमिभिः शङ्खकेन च।**

शिरोरोग दस कहे जाते हैं–1. वात से अर्द्धावभेदक या आधासीसी, 2. शिरस्ताप-वात से सिर दुखना, 3. पित्त से सिर दुखना, 4. कफ से सिर दुखना, 5. रक्त तथा 6. सन्निपात से सिर दुखना, 7. सूर्यावर्त्त (प्रातःकाल से दोपहर तक बढ़ता है, सायंकाल तक घटता है और रात्रि में शान्त रहता है), 8. शिरःकम्पः (इसको 'अनन्तवात' कहना उचित होगा–'गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं' सु० उ० अ० 25), 9. कृमिज शिरोरोग (सिर में कृमि पड़ने से होने वाला) तथा 10 शंखक (यह बहुत भयंकर सिर-दर्द है)।

### शिरःकपालगत रोग-गणना

**तथा कपालरोगाः स्युर्नव तेषूपशीर्षकम्।। 151।।**
**अरुंषिका विद्रधिश्च दारुणं पिडकाऽर्बुदम्।**
**इन्द्रलुप्तं च खलितं पलितं चेति ते नव।। 152।।**

शिरःकपाल के नौ रोग होते हैं–1. उपशीर्षक (शिर का बड़ा हो जाना–'कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्यापि जायते। सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यात् उपशीर्षकम्।।', 2. अरुंषिका (इसमें अनन्त फुन्सियाँ निकल कर उनमें से पीला पंछा निकलता है,

जो वहीं जम जाता है), 3. विद्रधि, 4. दारुण, (रूसी), 5. पिडका, 6. अर्बुद, 7. इन्द्रलुप्त (शिर पर से बालों का उखड़ना), 8. खलिति (जो सदा के लिए चाँद के बाल उखड़ जाते हैं) तथा 9. पलित (अकाल में बालों का सफेद होना)।

**वक्तव्य**—ये शिर के बाहरी भाग के रोग हैं।

### नेत्ररोग-गणना

**तथा नेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः।**

नेत्र में होने वाले रोग 'चौरानवे' होते हैं।

### नेत्रवर्त्म रोग

**तेषु वर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञकाः।। 153।।**
**कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मपातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः।**
**अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः।। 154।।**
**पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी।**
**क्लिष्टवर्त्मा च बहलः पक्ष्मोत्सङ्गस्तथार्बुदम्।। 155।।**
**कुम्भिका सिकतावर्त्म लगणोऽञ्जननामिका।**
**कर्दमः श्याववर्त्मा च बिसवर्त्मा तथाऽलजी।। 156।।**
**उत्क्लिष्टवर्त्मेति गदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः।**

उनमें वर्त्म या बरौनी के रोग 'चौबीस' होते हैं—1. कृच्छ्रोन्मील (आँख खोलने में कष्ट होना), 2. पक्ष्मपात (बरौनियों का उखड़ना), 3. कफोत्क्लिष्ट (कीचड़ आना), 4. लोहित (बरौनी लाल होना), 5 अरुङ्निमेष (बार-बार आँख फड़कना), 6. रक्तोत्क्लिष्ट (शोणितार्श), 7. कुकूणक, 8. पक्ष्मार्श (बालों की जड़ में मांसांकुर का होना), 9. पक्ष्मरोध (शोथ के कारण बरौनी को चला न सकना), 10. पित्तोत्क्लिष्ट (पित्तवृद्धि से होने वाला), 11. पोथकी (बरौनी में कण्डूयुक्त अनेक फुन्सियाँ होना), 12. क्लिष्टवर्त्मा (लाल होना), 13. बहलवर्त्म (बरौनी पर अनेक फुन्सियाँ निकलना), 14. पक्ष्मोत्सर्ग (बिलनी), 15. अर्बुद (रसौली), 16 कुम्भिका (एक प्रकार का फुन्सी), 17. सिकतावर्त्म (वर्त्म शर्करा), 18. लगण (बरौनी में एक प्रकार का गाँठ), 19. अञ्जननामिका (लाल फुन्सी), 20. कर्दम (बरौनी का सड़ना), 21. श्याववर्त्म (बरौनियों का काला या नीला हो जाना), 22. बिसवर्त्मा (पानी जाना), 23. अलजी तथा 24. उत्क्लिष्ट-वर्त्म (निमेषोन्मेष का न होना)।

### नेत्रसन्धिगत रोग-गणना

**नेत्रसन्धिसमुद्भूता नव रोगाः प्रकीर्तिताः।। 157।।**
**जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी।**
**पूयस्रावः कृमिग्रन्थिरुपनाहस्तथाऽलजी।। 158।।**
**पूयालस इति प्रोक्ता रोगा नयनसन्धिजाः।**

नेत्रसन्धि (बरौनी तथा नेत्रबुद्बुद की सन्धि) के नौ रोग कहे गये हैं—1. जलस्राव, 2. कफस्राव, 3 रक्तस्राव, 4. पर्वणी (शुक्ल तथा कृष्णमण्डल की सन्धि में), 5. पूयस्राव, 6. कृमिग्रन्थि, 7. उपनाह, 8. अलजी तथा 9. पूयालस।

**वक्तव्य**—आँख में छः सन्धियाँ होती हैं। यथा—1. पक्ष्य (बाल) तथा वर्त्म (बरौनी) की, 2. वर्त्म तथा शुक्लमण्डल की, 3. शुक्लमण्डल तथा कृष्णमण्डल की, 4. कृष्णमण्डल तथा दृष्टिमण्डल की, 5. कनीनिका (आँख का अवयव जो नाक की ओर होता है) तथा 6. अपाङ्ग (जो पुटीपुटी की ओर होता है) का सन्धि। देखें—सु० उ० अ० 1।

### नेत्रशुक्ल-भागगत रोग-गणना

**तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश।। 159।।**
**सिरोत्पातः सिराहर्षः सिराजालं च शुक्लिका।**
**शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः।। 160।।**
**शिराजपिडका चैव कफग्रन्थितकोऽर्जुनः।**
**स्नाय्वर्म शोणितार्म स्यादिति शुक्लगता गदाः।। 161।।**

विद्वानों ने नेत्र-शुक्लभाग के तेरह रोग कहे हैं—1. सिरोत्पात, 2. सिराहर्ष, 3. सिराजाल, 4. शुक्लिका, 5. शुक्लार्म, 6. अधिमांसार्म, 7. प्रस्तार्यर्म, 8. विष्टक, 9. सिराजपिडका, 10. कफग्रन्थितक (कफग्रन्थि), 11. अर्जुन, 12. स्नायु-मर्म तथा 13. शोणितार्म (रक्तार्म)।

### नेत्रकृष्ण-भागगत रोग-गणना

**तथा कृष्णसमुद्भूताः पञ्च रोगाः प्रकीर्तिताः।**
**शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाऽजका।। 162।।**
**शिरासङ्गश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः।**

नेत्र-कृष्णमण्डल के पाँच रोग हैं—1. शुद्धशुक्र, 2. शिराशुक्र, 3. क्षतशुक्र, 4. अजका तथा 5. सिरासंग।

### काचरोग-गणना

**काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि।। 163।।**
**सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम्।**

काच (मोतिया) छः प्रकार का होता है–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से, 5. रक्त से, तथा 6. संसर्ग से (परिम्लायी)।

**वक्तव्य**–मोतियाबिन्द के उक्त छः भेद वर्ण (रंग) के कारण होते हैं। देखें–सु० उ० अ० 7।

तिमिररोग-गणना

**तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।। 164।।**
**संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात् सन्निपाततः।**

तिमिर (धुन्ध) छः प्रकार के होते हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. संसर्ग से, 5. रक्त से एवं, 6. सन्निपात से।

**वक्तव्य**–तिमिर को 'धुन्ध' भी कहा जाता है।

लिङ्गनाश रोग-गणना

**लिङ्गनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेन च।। 165।।**
**त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा।**

लिङ्गनाश (दृष्टिनाश) सात होते हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. त्रिदोष से, 5. उपसर्ग से, 6. संसर्ग से तथा 7. रक्त से।

**वक्तव्य**–इस रोग से दृष्टि या दर्शनशक्ति नष्ट हो जाती है। (उक्त 5वाँ तथा 6ठा लिंगनाश निमित्तज तथा अनिमित्तज नाम से प्रसिद्ध है)।

दृष्टिगत रोग-गणना

**अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम्।। 166।।**
**अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम्।**
**नकुलान्ध्यं धूसरान्ध्यं रात्र्यान्ध्यं ह्रस्वदृष्टिकः।। 167।।**
**गम्भीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगता मताः।**

दृष्टि के रोग आठ होते हैं–1. पित्तविदग्धक (दिवान्ध्य), 2. अम्लपित्तविदग्ध (अम्लपित्त से होने वाला दृष्टिदोष), 3. उष्णविदग्ध (धूप में तथा आग के सामने बैठने से होने वाला), 4. नकुलांध्य (नेवले की-सी आँखें होकर कम दिखलायी देना), 5. धूसरांध्य (साफ-साफ न दिखलायी देना) 6. रात्र्यांध्य (कफविदग्धक या रतौंधी), 7. ह्रस्वदृष्टिक (बारीक वस्तुएँ न दिखलायी देना) और 8. गम्भीरदृष्टि (दृष्टिमण्डल का संकुचित होना या सिकुड़ जाना)।

**वक्तव्य**–उक्त रोगों में दृष्टि विकृत हो जाती है, नष्ट नहीं होती। अम्लपित्त के रोगी की दृष्टि मन्द हो जाती है।

अधिमन्थ रोग-गणना

**(चत्वारश्चाधिमन्थाः स्युर्वातपित्तकफास्त्रतः।। 168।।)**

अधिमंथ नामक रोग चार होते हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से तथा 4. रक्त से।

**वक्तव्य**–अभिष्यन्द रोग के बिगड़ जाने से 'अधिमन्थ' रोग हो जाता है।

अभिष्यन्द रोग-गणना

**अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद्दोषैस्त्रिभिस्त्रिधा।**

अभिष्यन्द चार होते हैं–रक्त से एक तथा वात आदि तीनों दोषों से तीन।

**वक्तव्य**–अभिष्यन्द को ही 'आँख दुखना' या 'आँख आना' कहते हैं।

सर्वनेत्ररोग-गणना

**सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः।। 169।।**
**अल्पशोफोऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः।**
**शुष्काक्षिपाकश्च तथा शोफोऽध्युषित एव च।। 170।।**
**हताधिमन्थ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसम्भवाः।**

सम्पूर्ण आँख के आठ रोग होते हैं–1. वातविपर्यय, 2. अल्पशोफ, 3. अन्यतोवात, 4. पाकात्यय, (नेत्रबुद्बुद का पक जाना, इसमें अन्त में आँख बैठ जाती है), 5. शुष्काक्षिपाक (इसमें बुद्बुद छोटा हो जाता है), 6. शोफ, 7. अध्युषित (अम्लाध्युषित खटाई खाने या आँख में पड़ने से होता है) एवं 8. हताधिमन्थ (अधिमन्थ से आँख का नष्ट हो जाना)।

**वक्तव्य**–उक्त रोगों का प्रभाव आँख के सम्पूर्ण भागों पर पड़ता है।

पुंस्त्वरोग-गणना

**पुंस्त्वदोषास्तु पञ्चैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः।। 171।।**
**आसेक्यश्चैव कुम्भीकः सुगन्धिः षण्ढसंज्ञकः।**

पुंस्त्व (पुरुषत्व या मर्दानगी) के पाँच दोष होते हैं। जिनसे पाँच प्रकार के पुरुष पाये जाते हैं–1. ईर्ष्यक, 2. आसेक्य, 3 कुम्भीक, 4. सुगन्धि तथा 5. षण्ढ नामक।

**वक्तव्य**–उक्त प्रकार के मनुष्य पूर्ण पुरुष नहीं होते अर्थात्

उनमें स्वतः मैथुन-शक्ति नहीं होती, अतः वे स्वयं मैथुन नहीं कर सकते। 1. **ईर्ष्यक**—जो ईर्ष्या से अर्थात् दूसरों को मैथुन करते देखकर मैथुन में समर्थ हो सकते हैं। 2. **आसेक्य**—जो शुक्र अर्थात् दूसरों के शुक्र जैसे शिववीर्य पारद या मकरध्वज आदि तथा शुक्रवर्धकं औषधियाँ तथा बकरे, मुर्गे आदि का शुक्र खाकर ('शुक्रं शुक्रेण' च० शा० अ० 6) मैथुन में समर्थ हो सकते हैं ('आसेक्यः शुक्रासेचनयोग्यः' 'अर्थात् येषां शरीरे शुक्रस्य आसेचनस्य आवश्यकता भवति' इति)। 3. **कुम्भीक**—ये लोग अपने गुद में मैथुन कराने के अभिलाषी होते हैं। 4. **सुगन्धि**—ये लोग लिंग अथवा योनि की गन्ध सूँघकर मैथुन-कर्म करने में समर्थ हो सकते हैं। जैसे—साँड़ आदि। 5. **षण्ढ**—जो सर्वथा मैथुन के अयोग्य होते हैं, इन्हें हिजड़ा या तृतीया-प्रकृति कहा जाता है। इस सम्बन्ध में सु० शा० अ० 2 तथा च० शा० अ० 2 देखें।

### शुक्रधातु रोग-गणना

**शुक्रदोषास्तथाष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च।। 172।।**
**कुणपं श्लेष्मवाताभ्यां पूयाभं श्लेष्मपित्ततः।**
**क्षीणं च वातपित्ताभ्यां ग्रन्थिलं श्लेष्मवाततः।। 173।।**
**मलाभं सन्निपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः।**

शुक्रधातु के दोष आठ होते हैं—1. वात (वायु के वर्ण के सदृश एवं वेदना) से, 2. पित्त (पित्त के वर्ण एवं वेदना) से, 3. कफ (कफ के वर्ण एवं वेदना) से, 4. कुणप (मुरदे की-सी गन्ध से युक्त) रक्तपित्त से, 5. मलाभ (पीब जैसा कफपित्त) से, 6. क्षीण (जिसका शुक्र क्षय हो गया हो) वातपित्त से, 7. ग्रन्थिल (गाँठों वाले कफवायु से) एवं 8. पूयाभ (मूत्र तथा पुरीष की-सी गन्ध वाला) सन्निपात से।

**वक्तव्य**—ये शुक्र की विकृतियाँ हैं, जो शुक्र में पायी जाती हैं।

### स्त्रीरोग-गणना

**अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः।। 174।।**
**अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा।**
**पूयाभं कुणपं ग्रन्थिं क्षीणं मलसमं तथा।। 175।।**

अब प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार स्त्री-रोगों (जो केवल स्त्रियों को ही होते हैं) के नाम कहे जाते हैं। आर्तव के दोष या विकार आठ होते हैं—1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. पूयाभ, 5. कुणप, 6. ग्रन्थिल, 7. क्षीण एवं 8. मलसम।

**वक्तव्य**—उक्त दोष रज में होते हैं। इनके लक्षण शुक्र दोषों के समान ही होते हैं।

### रक्तप्रदर-गणना

**तथा च रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम्।**
**वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं सन्निपाततः।। 176।।**

रक्तप्रदर चार प्रकार का होता है—1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से तथा 4. सन्निपात से।

**वक्तव्य**—उचित मासिकस्राव से अधिक स्राव होना 'प्रदर' कहलाता है।

### योनिरोग-गणना

**विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातात्पित्तात्कफादपि।**
**सन्निपाताच्च रक्ताच्च लोहितक्षयतस्तथा।। 177।।**
**शुष्का च वामिनी चैव षण्डितान्तर्मुखी तथा।**
**सूचीमुखी विलुप्ता च जातघ्नी च परिप्लुता।। 178।।**
**उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्च कर्णिनी।**
**स्यान्नन्दा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः।। 179।।**

योनि (भग एवं गर्भाशय) के रोग बीस होते हैं—1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से, 5. रक्त के क्षय से, 7. शुष्का (जो सूखी रहती है), 8. वामिनी (रजयुक्त वीर्य को उगल देती है), 9. षण्डिता, 10. अन्तर्मुखी (बाहर से बन्द; इसमें ऑपरेशन से सफलता मिल जाती है), 11. सूचीमुखी (इसमें गर्भाधान तो हो जाता है, परन्तु शिशु को ऑपरेशन करके निकालना पड़ता है), 12. विलुप्ता (इसमें सर्वदा पीड़ा होती रहती है), 13. जातघ्नी (पुत्रघ्नी, इसी को मृतवत्सा दोष कहा जाता है अथवा जिससे गर्भपात होते रहते हैं), 14. परिप्लुता (मैथुन में पीड़ा होती है), 15. उपप्लुता (इसमें कष्ट से रज निकलता है), 16. प्राक्चरणा (छोटी उम्र में मैथुन करने से जो पीठ, कमर, टाँग एवं कूल्हों में पीड़ा होती है), 17. महायोनि (योनि का शिथिल हो जाना), 18. कर्णिनी (योनि में गाँठ हो जाना), 19. नंदा (मैथुन से संतुष्ट न होने वाली; इसी से स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं) तथा 20. अतिचरणा (अति मैथुन से योनि में सूजन, शून्यता एवं पीड़ा का हो जाना)—इस प्रकार योनि के 20 रोग कहे गये हैं।

**वक्तव्य**—इसे विशेष रूप से जानने के लिए च० चि० अ० 30 देखें।

### योनिकन्द-गणना

**चतुर्विधं योनिकन्दं वातपित्तकफैस्त्रिधा।**
**चतुर्थं सन्निपातेन–**

योनिकन्द चार प्रकार का होता है–1. वातज, 2. पित्तज, 3. कफज तथा 4. सन्निपातज।

**वक्तव्य**–योनि में लकुच (बड़हर) के फल के समान उभारदार जो गाँठें उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हें योनिकन्द कहा जाता है।

### गर्भरोग-गणना

**–तथाष्टौ गर्भजा गदाः।। 180।।**
**उपविष्टकगर्भः स्यात् तथा नागोदरः स्मृतः।**
**मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्कम्भो मूढगर्भकः।। 181।।**
**जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः।**

गर्भ-सम्बन्धी आठ रोग होते हैं–1. उपविष्टक (किन्हीं कारणों से गर्भपोषक पदार्थों के योनिमार्ग द्वारा निकल जाने के कारण जो गर्भ पुष्ट नहीं हो पाता), 2. नागोदर (माता के उपवास आदि करने के कारण पोषक पदार्थ नहीं मिलने से जो गर्भ सूख जाता है), उक्त दोनों प्रकार के गर्भ अनेक वर्षों तक गर्भाशय में पड़े रह जाते हैं (च० शा० अ० 8); 3. मक्कल्लक, 4. मूढ़गर्भ अनेक प्रकार का होता है, उचित प्रकार से जन्म न होना 5. विष्कम्भ (गर्भ का मार्ग में अड़ जाना), 6. मूढ़गर्भ (गर्भाशय में लीन हो जाना), 7. जरायु दोष (जरायु के न फटने के कारण शिशु का न निकल पाना) तथा 8. गर्भपात (गर्भ का गिर जाना)।

### स्तनगत रोग-गणना

**पञ्चैव स्तनरोगाः स्युर्वातात्पित्तात्कफादपि।। 182।।**
**सन्निपातात् क्षताच्चैव–**

स्तन रोग पाँच होते हैं–1. वात से, 2. पित्त से, 3. कफ से, 4. सन्निपात से तथा 5. क्षत (घाव) से।

**वक्तव्य**–इसे प्रायः 'थनैला' कहा जाता है।

### स्तनविकार-गणना

**–तथा स्तन्योद्भवा गदाः।**
**बालरोगेषु कथिताः–**

स्तन या दुग्ध से होने वाले रोग 'बालरोगों' में कहे जायेंगे।

**वक्तव्य**–क्योंकि दूषित दूध का बुरा प्रभाव बच्चे पर ही पड़ता है।

### स्त्रीदोष-गणना

**–स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः।। 183।।**
**अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहितस्तथा।**
**दैवाज्जातस्तृतीयस्तु –**

स्त्री-दोष तीन होते हैं–1. अदक्ष (मूढ़) पुरुष (पति) से उत्पन्न होने वाला, 2. सपत्नी (सौतिन) के कारण होने वाला तथा 3. प्रारब्ध के कारण होने वाला।

**वक्तव्य**–तीन कारणों से स्त्रियाँ दूषित या खराब हो जाती हैं–1. कामकला-विहीन या व्यवहारानभिज्ञ या मूर्ख पति मिलने से; 2. पति के दूसरी स्त्री में आसक्त होने पर ईर्ष्यावश स्त्रियाँ कुमार्गगामिनी हो जाती हैं; 3. स्वभाव से ही व्यभिचारिणी होती हैं। उक्त कारणों से ही स्त्रियाँ झगड़ालू तथा कटु स्वभाव की हो जाती हैं।

### प्रसूताविकार-गणना

**–तथा ये सूतिका गदाः।। 184।।**
**ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम्।**

प्रसूता स्त्रियों के ज्वरादि रोग 'सूतिका रोग' कहे जाते हैं। दोषों के अनुसार या रोग तथा रोगिणी के बल के अनुसार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये।

**वक्तव्य**–बच्चा जनने के बाद पैंतालीस दिन तक स्त्री की 'प्रसूता' संज्ञा होती है। इस अवधि के भीतर जो भी रोग हो जाता है, उसे 'सूतिका रोग' कहते हैं।

### बालरोग-गणना

**द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः।। 185।।**
**वातात्पित्तात्कफाच्चैव दन्तोद्भेदश्चतुर्थकः।**
**दन्तघातो दन्तशब्दोऽकालदन्तोऽहिपूतनम्।। 186।।**
**मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षकौ।**
**पार्श्वरुणस्तालुकण्टो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः।। 187।।**
**दौर्बल्यं गात्रशोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः।**
**रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः।। 188।।**

बालरोग बाईस होते हैं–इनमें वात, पित्त तथा कफ से 'क्षीरालस' (दूषित दूध पीने से होने वाला) नामक तीन रोग होते हैं। चार दन्तोद्भेद (दाँत निकलते समय इसके कारण

होने वाले प्रायः ज्वर, अतिसार, कास, कै या शिरोरोग आदि), 5. दन्तघात (दुबारा दाँत टूटना), 6. दन्तशब्द (सोते समय दाँत किटकिटाना), 7. अकालदन्त (असमय में दाँत निकलना, कुछ बच्चे दाँत सहित ही पैदा होते हैं और कुछ को दो-दो वर्ष की आयु तक दाँत नहीं निकलते), 8. अहिपूतन (स्वच्छता के अभाव से चूतड़ों पर फुड़िया या फुड़ियाओं का निकलना), 9. मुखपाक, 10. मुखस्राव (अधिक लार आना), 11. गुदपाक (गुद-प्रदेश का लाल हो जाना), 12. उपशीर्षक (सिर का फूल जाना या सिर के पिछले भाग में एक फुड़िया होती है, जो चिरस्थायी होती है), 13. पार्श्वारुण (पद्म नामक पसली पर जो लाल चौड़ा दाग हो जाता है, जो कि प्रायः मारक होता है), 14. तालुकण्टक (कौवा बढ़ना), 15. विच्छिन्न (तालु दबाना), 16. पारिगर्भिक (परिभव नामक रोग-इसमें बच्चा पीला पड़ जाता है, पेट बढ़ जाता है। यह रोग गर्भिणी माता का दूध पीने से हो जाता है), 17. दौर्बल्य (दुर्बलता), 18. गात्रशोष (कृशता या सुखण्डी), 19. शय्यामूत्र (सोते में मूतना), 20. कुकूणक, 21. रोदन (अत्यन्त रोना) तथा 22. अजगल्ली (एक प्रकार की माता)।

**वक्तव्य**–उक्त रोगों का प्रभाव 16 वर्ष की अवस्था तक ही होता है। अतएव इनका नाम 'बालरोग' है। 'ऊनषोडशवर्षा बालाः' (सु० सू० अ० 35)।

### बालग्रह-गणना

**तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः।**
**स्कन्दग्रहो विशाखः स्वाच्छ्वग्रहश्च पितृग्रहः॥ 189॥**
**नैगमेयग्रहस्तद्वच्छकुनिः शीतपूतना।**
**मुखमण्डितिका तद्वत् पूतना चान्धपूतना॥ 190॥**
**रेवती चैव सङ्ख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती।**

महर्षियों ने 'बालग्रह' बारह कहे हैं–1. स्कन्दग्रह, 2. विशाख, 3. श्वग्रह (स्कन्दापस्मार, जो 'मिरगी' जैसा होता है), 4. पितृग्रह, 5. नैगमेयग्रह, 6. शकुनिग्रह, 7. शीतपूतना, 8. मुखमण्डितिका, 9. पूतना, 10. अन्धपूतना, 11. रेवती एवं 12. शुष्करेवती।

**वक्तव्य**–ये अलौकिक आत्माएँ हैं, जो बालकों में आवेश करती हैं। गन्दे घरों के बालकों पर अधिकतर इनका प्रभाव होता है। इनमें औषधियों के साथ-साथ बलि, मंगल आदि क्रियाएँ करने पर आरोग्य की प्राप्ति हो जाती है।

### पादरोग-गणना

**तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये॥ 191॥**
**द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः।**

विद्वान् चिकित्सकों ने वातरक्त (पैरों में झुनझुनी या सूनापन चढ़ना) आदि चरणों के बयालीस रोग कहे हैं और वे पूर्व कहे गये रोगों में ही बतला दिये गये हैं।

### दोष-भेद

**द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः सन्निपातादिकाश्च ये॥ 192॥**
**तेऽपि रोगेषु गणिताः पृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित्।**

वातादि दोषों के जो रोग सन्निपात और संसर्ग आदि बासठ प्रकार के होते हैं, वे पूर्वोक्त रोगों में ही आ जाते हैं, उनका पृथक् उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया है।

**वक्तव्य**–'न रोगोऽप्येकदोषजः' अर्थात् कोई भी रोग केवल एक दोष से उत्पन्न नहीं होता, अपितु प्रत्येक रोगों में तीनों ही दोषों की न्यूनाधिक विकृति होती ही है। दोषों की यह न्यूनाधिकता अर्थात् ह्रास तथा वृद्धि बासठ प्रकार की होती है। धातु तथा मलों के साथ दोषों का मिश्रण होने पर असंख्य प्रकार की हो जाती है। प्रत्येक रोग में कौन दोष कितना बढ़ा है और कौन दोष कितना घटा है, इसको विचारना अत्यन्त आवश्यक है। देखें–सु० उ० तं० अ० 66 तथा अ० हृ० सू० अ० 12।

### पञ्चकर्म-व्यापद्

**हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पञ्चदशोदिताः॥ 193॥**
**पञ्चकर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः।**

पञ्चकर्म (वमन, विरेचन, नस्य, निरूहणवस्ति तथा अनुवासनवस्ति) के हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग से पन्द्रह भेद होते हैं। उनसे उत्पन्न होने वाले रोग यथास्थान कह दिये गये हैं।

### स्नेहादि व्यापद्

**स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गण्डूषोऽञ्जनतर्पणे॥ 194॥**
**पीडा अष्टादशैतज्जास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः।**

स्नेहन, स्वेदन, धूमपान, गण्डूष, अञ्जन तथा तर्पण के हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग से अठारह भेद होते हैं। इनसे होने वाले रोग भी पूर्वोक्त रोगों में कह दिये गये हैं।

**वक्तव्य**–जब वमन, विरेचन, स्नेहन तथा स्वेदन आदि किये जाते हैं, तो वैद्य परिचारक एवं रोगी की असावधानी से कुछ भूलें हो जाती हैं। यथा–वमन आदि का कम होना, ठीक-ठीक न होना तथा अधिक हो जाना। इन्हीं को क्रमशः हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग कहा जाता है। इनसे मनुष्य को पूर्वोक्त रोगों में से ही कोई न कोई रोग हो जाता है।

### शीत आदि उपद्रव

**शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोद्भवो मतः।। 195।।**
**शल्योपद्रव एकश्च क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा।**

शीत का उपद्रव (अत्यंत शीत लगने से होने वाला रोग) एक, उष्ण (गर्मी=लू) लगने से होने वाला रोग) एक, शल्य (बाण, बरछी आदि का उपद्रव) एक तथा क्षार (चूना) आदि से होने वाला उपद्रव एक होता है।

**वक्तव्य**–शीत लगने से स्तम्भ (जकड़न), वेपथु (कँपकँपी) आदि, लू लगने से ज्वर, दाह, प्रलाप तथा रक्तनेत्रता (आँखों का लाल हो जाना) आदि, शल्य लगने से व्रण आदि तथा क्षार लगने से क्षत आदि लक्षण होते हैं।

### विष-विवेचन

**स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम्।। 196।।**
**तेषां च कालकूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम्।**

विष तीन प्रकार का होता है–1. स्थावर (वृक्ष जाति का), 2. जंगम (प्राणी जाति का) तथा 3. कृत्रिम (बनावटी)। इनमें स्थावर विष नौ प्रकार का होता है–1. कालकूट, 2. वत्सनाभ (वच्छनाग), 3. शृङ्गिक, 4. प्रतीपक, 5. हालाहल, 6. ब्रह्मपुत्र, 7. हारिद्र, 8. सक्तुक तथा 9. सौराष्ट्रिक। देखें–शा० म० खं० अ० 12।

### जङ्गमविष-भेद

**जङ्गमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूता भुजङ्गमाः।। 197।।**
**वृश्चिका मूषिकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः।**
**दंष्ट्राविषं नखविषं बालशृङ्गास्थिभिस्तथा।। 198।।**
**मूत्रात् पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टेर्निश्वासतस्तथा।**
**लालायाः स्पर्शतस्तद्वत् तथा शङ्काविषं मतम्।। 199।।**

जङ्गम विष अनेक प्रकार का होता है, यथा–अनेक प्रकार की लूताएँ, साँप, बिच्छू, चूहे तथा अन्य कीट (कीड़े)। ये सभी प्रत्येक जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज भेद से अथवा वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातं की प्रकृति के भेद से, चार-चार प्रकार के होते हैं। इनमें भी किसी के दाँत में विष होता है, किसी के नाखून में, किसी के बाल में, शृंग में, हड्डी में, मूत्र में, पुरीष में, शुक्र में, दृष्टि में, साँस में, लार में तथा स्पर्श (छूने) में विष होता है और एक 'शंकाविष' भी होता है, जिसमें केवल संदेह होने पर विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। देखें–सु० क०।

### कृत्रिम-विष

**कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः।**
**सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम्।। 200।।**
**तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं मतम्।**
**दुष्टनीरविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम्।। 201।।**

कृत्रिम विष दो प्रकार का होता है–1. गर तथा 2. दूषीविष। धातुविष (स्वर्ण आदि धातुएँ) सात, उपधातु विष (हरिताल आदि) सात, उपविष (आक, धतूरा आदि) सात, दूषित जल रूपी विष एक तथा दिग्धज विष (विषैले द्रव्यों में बुझाये हुये बाण, तलवार आदि दिग्ध कहे जाते हैं), इनके लगने से शरीर में विष का प्रवेश हो जाता है, यह भी एक ही प्रकार का होता है।

**वक्तव्य**–"विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो 'गर' इति स्मृतः" (अ० हृ० उ० अ० 35)। अर्थात् अल्प शक्ति वाले विषों का मिश्रण 'गर' कहा जाता है और जो विष मारता नहीं, किन्तु धातुओं को दूषित करता है, उसे 'दूषीविष' कहा जाता है।

### अन्य उपद्रव

**कपिकच्छूभवा कण्डूर्दुष्टनीरभवा तथा।**
**तथा सूरणकण्डूश्च शोथो भल्लातजस्तथा।। 202।।**

पकी किवाँच की फली के छूने से, दूषित जल के सम्पर्क से तथा सूरण (जिमीकन्द) का रस लगने से खुजली और भिलावा का रस या भाप लगने से शोथ हो जाता है।

### मद-विचार

**मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभङ्गाक्षकोद्रवैः।**
**चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः।। 203।।**

मद चार प्रकार का होता है–1. पूग (सुपारी), 2. भाँग, 3. बहेड़ा की मींगी तथा 4. कोदों के चावलों को खाने तथा फल (जायफल आदि), छाल (खदिर, बबूल आदि) के

मूल, झाड़ी आदि एवं पत्तों के भाग आदि के सेवन से मद चार प्रकार का और भी होता है।

### अध्यायोपसंहार

**इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि।**
**असङ्ख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसम्भवाः।। 204।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे रोगगणना नाम सप्तमोऽध्यायः।। 7।।**

संसार में जो रोग प्रसिद्ध होते हैं, उनकी इस प्रकार गणना की गयी है तथा धातु मूल एवं जीवादि से उत्पन्न होने वाले अन्यान्य रोग तो असंख्य होते हैं।

**वक्तव्य**–सम्पूर्ण सृष्टि दो भागों में विभक्त है–1. चेतन या सजीव और 2. जड़ या निर्जीव। इनमें चेतन को जंगम और जड़ को स्थावर कहते हैं। इन्हीं से प्राणीमात्र पोषण भी पाते हैं और इन्हीं से रोग भी उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त।। 7।।

**पूर्वखण्ड समाप्त।**

# मध्यमखण्डे

## प्रथमोऽध्यायः

# स्वरसादिकल्पना

### पञ्च-कषाय

**अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ।**
**ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम्।।1।।**

पूर्वखण्ड की समाप्ति होने के पश्चात् 'अथ' शब्द रूपी मंगलाचरण करके अब यहाँ से 1. स्वरस, 2. कल्क, 3. क्वाथ, 4. हिम तथा 5. फाण्ट–ये पाँच कषाय कहे जा रहे हैं। ये उत्तरोत्तर लघु होते हैं।

**वक्तव्य**–परिभाषोक्त क्रम छोड़कर उपर्युक्त श्लोक में जो क्रम दिया गया है, वह स्वरस की अपेक्षा कल्क, कल्क की अपेक्षा क्वाथ, क्वाथ की अपेक्षा हिम, हिम की अपेक्षा फाण्ट, लघु या हल्का होता है। यह क्रम इनकी उत्तरोत्तर लघुता का उल्लेख करने के लिए दिया गया है।

### स्वरस-निर्माण-विधि

**अहतात् तत्क्षणाकृष्टाद् द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्धरेत्।**
**वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते।।2।।**

अहत (शीत, आतप तथा कृमि आदि से जो खराब नहीं हो गया हो, वह अदूषित) है तथा तत्काल उखाड़े अथवा काटे हुये (अर्थात् ताजे या हरे) और कूटे-पीसे हुये द्रव्य को कपड़े में निचोड़ने से जो रस निकाला जाता है, वह स्वरस कहा जाता है।

**वक्तव्य**–ताजे गिलोय आदि द्रव्य को पीसकर जो रस निकाला जाता है, वही स्वरस कहा जाता है। पाठभेद **'आहतात्'** के अनुसार 'टुकड़े किये गये' यह अर्थ होता है, जो **'क्षुण्णात्'** पद से प्राप्त हो जाता है। पाठक ध्यान दें।

### स्वरस की दूसरी विधि

**कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे जले।**
**अहोरात्रं स्थितं तस्माद् भवेद् वा रस उत्तमः।।3।।**

एक कुडव (4 पल=16 कर्ष) भर द्रव्य को कूटकर दुगुने जल में डालकर आठ पहर रखा रहने दें और फिर कपड़े से छान ले। यह भी उत्तम रस होता है।

**वक्तव्य**–यह रस निकालने का दूसरा प्रकार है। 'आठपहरी अजवायन'. आदि इसी विधि से बनाये जाते हैं। उक्त विधि में 'कुड़व' परिमाण उपलक्षण मात्र है। अतः आवश्यकतानुसार ही परिमाण की व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

### स्वरस की तीसरी विधि

**आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे।**
**जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते।।4।।**

यदि उक्त रीतियों से स्वरस बनाना सम्भव न हो तो सूखे द्रव्य लेकर कूटकर आठ गुने जल में डालकर पकाये और चौथाई जल शेष रहने पर छानकर ग्रहण करे।

**वक्तव्य**–यह 'स्वरस' का तीसरा प्रकार है। हरे द्रव्य न मिलने पर उक्त विधि से 'स्वरस' बना लिया जाता है।

### स्वरस-पान की मात्रा

**स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत्।**
**निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्।।5।।**

पहली विधि से बनाया हुआ स्वरस गुरु होता है, अतः आधा पल (दो कर्ष) सेवन करना चाहिये और निशा उषित

(आठ पहरी) तथा अग्नि द्वारा पकाया हुआ रस एक पल (4 कर्ष) पीना चाहिये।

### प्रक्षेप द्रव्यों का मान

**मधु श्वेता गुडं क्षाराञ्जीरकं लवणं तथा।**
**घृतं तैलं च चूर्णादीन् कोलमात्रान् रसे क्षिपेत्।। 6।।**

शहद, चीनी, खाँड, गुड़, जौखार आदि तथा खार, जीरा, नमक, घी, तेल एवं चूर्ण आदि यदि रस या स्वरस में डालने हों तो एक कोल (आधा कर्ष) डालने चाहिये।

**वक्तव्य**–स्वरस में मधु आदि डालने का परिमाण उक्त श्लोक द्वारा बतलाया गया है।

### अमृता-स्वरस

**अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित्।**
**हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः।। 7।।**

गिलोय का स्वरस मधु मिलाकर अथवा आँवले का रस हल्दी का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पिया जाये तो सब प्रमेहों को नष्ट करता है।

### वासक-स्वरस

**वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित्।**
**ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा।। 8।।**

अडूसे का रस मधु मिलाकर पीना चाहिये। इससे रक्तपित्त, ज्वर, कास, क्षय, कामला, कफ तथा पित्त नष्ट होते हैं।

### त्रिफलादि का स्वरस

**त्रिफलाया रसः क्षौद्रयुक्तो दार्वीरसोऽथवा।**
**निम्बस्य वा गुडूच्या वा पीतो जयति कामलाम्।। 9।।**

त्रिफला का रस अथवा दारुहल्दी का रस अथवा नीम का रस अथवा गिलोय का रस मधु मिलाकर पीने से कामला को जीतता है।

### तुलसी आदि का स्वरस

**पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः।**
**द्रोणपुष्पीरसो वापि निहन्ति विषमज्वरान्।। 10।।**

तुलसी के पत्रों का रस अथवा गूमा का रस मरिच के चूर्ण को मिलाकर पीने से विषमज्वरों (मलेरिया आदि) को नष्ट करता है।

### जम्ब्वादि पत्र-स्वरस

**जम्ब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत्।**
**मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्बणम्।। 11।।**

जामुन, आम तथा आँवले के कोमल पत्तों का स्वरस मधु, घी तथा दूध मिलाकर पीने से भीषण अतिसार का नाश होता है।

### बब्बूलादि स्वरस

**स्थूलबब्बूलिकापत्ररसः पानाद् व्यपोहति।**
**सर्वातिसारान् स्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा।। 12।।**

जंगली बबूल के पत्तों का स्वरस अथवा टेंटू तथा कुरैया की छाल का स्वरस पीने से यह सभी अतिसारों को नष्ट करता है।

### आर्द्रक-स्वरस

**आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत्।**
**श्वासकासारुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति।। 13।।**

अदरख का स्वरस मधु मिलाकर पीने से अण्डकोषों की वायु को, श्वास, कास, अरुचि तथा प्रतिश्याय को नष्ट करता है।

### बीजपूर-स्वरस

**बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत्।**
**पार्श्वहृद्वस्तिशूलानि कोष्ठवातं च दारुणम्।। 14।।**

बिजौरा नीबू का रस मधु तथा क्षार (जौखार आदि कोई भी क्षार) मिलाकर पीने से यह पसली, हृदय तथा मूत्राशय के शूल को तथा उदर की भीषण वायु को जीतता है।

**वक्तव्य**–इस योग में बिजौरा आदि किसी भी नीबू के रस का प्रयोग किया जा सकता है। नीबू के रस में क्षार डालते ही गैस उत्पन्न होने लगती है, इस गैस के साथ उसे पी जाना चाहिये। इसका स्वाद 'मीठा सोडा' जैसा होता है। हमारा विचार है कि आजकल जो 'सोडावाटर' बन रहा है, वह उक्त योग का ही सुधरा हुआ रूप है। देखें–सु० उ० अ० 5.22।

### शतावरी आदि का स्वरस

**शतावर्याश्च मधुना पित्तशूलहरो रसः।**
**निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः।। 15।।**

शतावर का रस शहद मिलाकर पीने से यह पित्त के शूल को हरता है और घीकुआर का रस हल्दी के चूर्ण के साथ पीने से प्लीहावृद्धि तथा गण्डमाला का नाश होता है।

### अलम्बुषादि स्वरस

**अलम्बुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया।**
**अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः।। 16।।**

गोरखमुंडी का रस 2 पल (8 तोला) भर पीने से अपची, गण्डमाला तथा कामला को नष्ट करता है।

**मुण्डी-स्वरस**

**रसो मुण्ड्याः स कोष्णो वा मरीचैरवधूलितः।**
**जयेत् सप्तदिनाभ्यासात् सूर्यावर्तार्धभेदकौ।। 17।।**

गोरखमुंडी का कुछ गर्म किया हुआ मरिच के चूर्ण से मिश्रित स्वरस सात दिन पीने से सूर्यावर्त्त तथा अर्द्धावभेदक (आधाशीशी) नामक शिरोरोगों को नष्ट करता है।

**ब्राह्मी आदि का स्वरस**

**ब्राह्मीकूष्माण्डषड्ग्रन्थाशङ्खिनीस्वरसाः पृथक्।**
**मधुकुष्ठयुताः पीताः सर्वोन्मादापहारिणः।। 18।।**

पृथक्-पृथक् ब्राह्मी, कोहड़ा (पेठा), वच तथा शङ्खपुष्पी (शंखाहुली) के स्वरस शहद तथा कूठ का चूर्ण मिलाकर पीने से सभी प्रकार के उन्माद रोग नष्ट होते हैं।

**सोमरोग-चिकित्सा**

**(कदलीनां फलं पक्वं धात्री-फल-रसं तथा।**
**शर्करासहितं खादेत् सोमधारणमुत्तमम्।। 19।।)**

केले का पका फल और आँवले का स्वरस चीनी मिलाकर खाने से 'सोमरोग' दूर हो जाता है।

**उदर्द-चिकित्सा**

**(गैरिकं कोलमात्रं च सप्तभिर्मरिचैर्युतम्।**
**मधुना कर्षमात्रेण पयः पीतमुदर्दनुत्।। 20।।)**

गेरू आधा तोला, कालीमिर्च सात दाना, मधु एक तोला, जल आधा पाव पीने से 'उदर्द' अर्थात् जुलपित्ती या रक्तपित्ती दूर होती है।

**उष्णोपद्रव-चिकित्सा**

**(रसः पलाण्डोः पानार्थं स्विन्न आम्ररसस्तथा।**
**प्रदेयो लवणोपेतः उष्णोपद्रवशान्तये।। 21।।**
**अम्लिकाद्यम्लद्रव्याणां रसो वै सितया युतः।**
**पेयो मद्यःशरीरे च प्रलापोष्मज्वरे हितम्।। 22।।)**

उष्णोपद्रव (अत्यन्त गर्म वायु, लू या धूप के लगने) से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों की शान्ति के लिए रोगी को पीने के लिए प्याज का रस तथा अग्नि में भूने हुये कच्चे आम का रस (पन्ना) उचित मात्रा में नमक मिलाकर देना चाहिये और इमली आदि खट्टे द्रव्यों का रस चीनी मिलाकर पीने को दें तथा शरीर पर मले। इससे भी प्रलाप, दाह तथा ज्वर शान्त हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–विशेष जानने के लिए सु० सू० अ० 12.38 देखें।

**कूष्माण्ड-स्वरस**

**कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन सह योजितः।**
**दुष्टकोद्रवसञ्जातमदं पानाद् व्यपोहति।। 23।।**

कोहड़े का स्वरस गुड़ मिलाकर पीने से कोदों के मद (नशा) को नष्ट करता है।

**गाङ्गेरुकी-स्वरस**

**खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः।**
**गाङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः।। 24।।**

तलवार आदि के लगने से उत्पन्न शरीर के घाव में तत्काल गंगरेन की जड़ के रस को भरने पर वह पीड़ा रहित हो जाता है।

**वक्तव्य**–यहाँ तक स्वरसों के कुछ उदाहरण दिये गये हैं और अन्तिम पाठ से यह भी बतला दिया कि स्वरसों का प्रयोग केवल पीने के लिए ही नहीं होता, अपितु वे लगाए भी जाते हैं।

**पुटपाक-विधि**

**पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः।**
**अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया।। 25।।**
**पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता।**
**लेपं च द्व्यङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्वाङ्गुष्ठमात्रकम्।। 26।।**
**काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ।**
**पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत्।। 27।।**
**कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः स्वरसवद् बुधैः।**

पुट (सम्पुट) में पकाये हुये कल्क (चटनी के समान पीसे हुये द्रव्य) का भी स्वरस ही ग्रहण किया जाता है। इसलिये इस अध्याय में पुटपाकों की भी विधि लिखी जाती है। उपयोगी द्रव्य का कल्क बनाकर गंभार, बरगद तथा जामुन आदि के पत्तों से भली प्रकार लपेट कर और ऊपर से सनी हुई चिकनी मिट्टी का दो या डेढ़ अंगुल मोटा लेप चढ़ाकर सुखा लें, फिर गोहरी की आग में पकाये। जब लेप का वर्ण लाल हो जाये तो निकाल लेना चाहिये। कुछ ठंडा होने पर सँभाल कर लेप और पत्ते हटाकर कल्क निकाल कर उसे निचोड़ कर रस निकाल लेना चाहिये और कल्क, चूर्ण तथा द्रव (दूध तथा गोमूत्र आदि) आदि पदार्थ स्वरस के समान (इसी अध्याय का श्लोक 6 देखें) डालने चाहिये।

### कुटज पुटपाक

**तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा।। 28।।**
**पिष्टां चतुष्पलमितां जम्बूपल्लववेष्टिताम्।**
**सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम्।। 29।।**
**लिप्तां च घनपङ्केन गोमयैर्वह्निना दहेत्।**
**अङ्गारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत्।। 30।।**
**ततो रसं गृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत्।**
**जयेत् सर्वानतीसारान् दुस्तरान् सुचिरोत्थितान्।। 31।।**

तत्काल उतारी हुई कुरैया की सोलह तोला छाल को चावलों के धोवन से पीसकर, जामुन के पत्तों से लपेट कर, तागों से बाँधकर, गेहूँ के गूँथे आटे से लेप करके उस पर चिकनी मिट्टी का लेप चढ़ा दें और गोहरी (कण्डे) की आग में पकायें, ऊपर के लेप को लाल वर्ण का देखकर निकाल लें। तदनन्तर कुछ शीत होने पर औषध को निकाल कर उससे रस निचोड़ लें। यह रस जब सर्वथा शीत हो जाये तो मधु मिलाकर पीना चाहिये। यह पुराने भयंकर अतिसारों को जीतता है।

### चावल का धोवन बनाने की विधि

**कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्।**
**भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु।। 32।।**

कण्डित (छड़े हुये या तुष उतारे हुये) चार तोला चावलों को आठ गुने जल में डाल दें, कुछ समय (एक-दो घण्टा) के पश्चात् जल निकाल कर आवश्यक कार्यों में प्रयुक्त करें।

**वक्तव्य**–इसी को 'चावलों का पानी' कहा जाता है।

### अरलूत्वक् पुटपाक

**अरलूत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः।**
**मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारजित्।। 33।।**

टैंटू की छाल का उक्त रीति से बनाया हुआ पुटपाक रस अग्नि को दीप्त करता है और मधु तथा मोचरस से युक्त सभी अतिसारों को जीतता है।

### तित्तिर पुटपाक

**न्यग्रोधादेश्च कल्केन पूरयेद् गौरतित्तिरेः।**
**निरन्त्रमुदरं सम्यक्पुटपाकेन तत्पचेत्।। 34।।**
**तत्कल्कस्य रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत्।**

तीतर का पेट चीर कर अँतड़ियाँ निकाल दें और न्यग्रोधादिगण (शा० म० खं० अ० 2) के कल्क से उसके (पेट) को भरकर पुटपाक-विधि से उसे पकायें। तत्पश्चात् उस कल्क का रस मधु मिलाकर पीने के लिए दें। यह सभी अतिसारों को नष्ट करता है।

### दाड़िम पुटपाक

**पुटपाकेन विपचेत् सुपक्वं दाडिमीफलम्।। 35।।**
**तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः।**

अनार के फल को पुटपाक-विधि से पका कर इसका रस शहद मिलाकर देने से यह सभी अतिसारों को नष्ट करता है।

### बीजपूरादि पुटपाक

**बीजपूराम्रजम्बूनां पल्लवानि जटाः पृथक्।। 36।।**
**विपचेत् पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः।**
**छर्दिं निवारयेद्घोरां सर्वदोषसमुद्भवाम्।। 37।।**

बिजौरानीबू, आम एवं जामुन के कोमल पत्तों अथवा जड़ों की छाल को पुटपाक के विधान से पकाये। मधु से युक्त इनका रस सन्निपात से उत्पन्न भीषण कै (उलटी) को रोक देता है।

### वासा पुटपाक

**पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः।**
**मधुयुक्तो जयेद् रक्तपित्तकासज्वरक्षयान्।। 38।।**

अडूसा के पत्तों को पीसकर पुटपाक की विधि से निकाला हुआ रस शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त, खाँसी, ज्वर एवं क्षय को जीतता है।

### कण्टकारी पुटपाक

**पचेत् क्षुद्रां सपञ्चाङ्गां पुटपाकेन तद्रसः।**
**पिपलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः।। 39।।**

भटकटैया (कण्टकारी) के पञ्चाङ्ग अर्थात् जड़, फूल, पत्ते, फल एवं छाल को लेकर पुटपाक की विधि से पकाये। इसका रस पीपल के चूर्ण से युक्त पीने से खाँसी, दमा एवं कफ को नष्ट करता है।

### बिभीतक पुटपाक

**बिभीतकफलं किञ्चिद् घृतेनाभ्यज्य लेपयेत्।**
**गोधूमपिष्टेनाङ्गारैर्विपचेत् पुटपाकवत्।। 40।।**
**ततः पक्वं समुद्धृत्य त्वचं तस्य मुखे क्षिपेत्।**
**कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभङ्गाञ्जयेत् ततः।। 41।।**

बहेड़ा के फल पर थोड़ा घी चुपड़ कर गेहूँ के गुँथे आटे का लेप कर दें और पुटपाक के समान अंगारों में पकाये। जब आटा पक जाये तो उसके छिलके को मुख में डालकर चूसे तो

यह खाँसी, दमा, प्रतिश्याय एवं स्वरभेद (गला बैठना) को जीतता है।

**वक्तव्य**–इस पर पत्ते लपेटने की आवश्यकता नहीं होती है, जैसा कि अन्य पुटपाकों में कहा गया है।

### शुण्ठी पुटपाक

**चूर्णं किञ्चिद् घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलैः।**
**वेष्टितं पुटपाकेन विपचेन्मन्दवह्निना।। 42।।**
**तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम्।**
**तेन यान्ति शमं पीडा आमातीसारसम्भवाः।। 43।।**

सोंठ के चूर्ण को थोड़े घी में मिलाकर और एरण्ड के पत्तों से लपेट कर पुटपाक की विधि से अत्यन्त मन्द आग में पकाये, तदनन्तर उसे निकाल कर तथा समभाग चीनी मिलाकर प्रातःकाल सेवन करे, इससे आमातिसार की पीड़ा शान्त हो जाती है।

**वक्तव्य**–द्रव्य के सूखा होने के कारण तथा उसमें भी घी जैसी ज्वलनशील वस्तु होने के कारण 'मन्दाग्नि' में देने की सम्मति दी गयी है।

### दूसरा शुण्ठी पुटपाक

**शुण्ठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरण्डमूलजैः।**
**विपचेत् पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः।। 44।।**
**आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम्।**

एरण्ड की जड़ के रस से सोंठ का कल्क (चटनी) बनाकर और एरण्ड के ही पत्तों में डालकर (लपेट) पुटपाक की विधि से पकाये। इसका रस शहद मिलाकर पीने से दुःसाध्य आमवात अर्थात् गठिये की पीड़ा को जीतता है।

### सूरण पुटपाक

**सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत्।। 45।।**
**सतैलवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत्।**

सूरण (जिमीकन्द) के कन्द को लेकर पुटपाक की विधि से पकाये। फिर उसके रस को निकाल कर तिल-तैल तथा नमक मिलाकर पीये। यह बवासीर को नष्ट करता है।

### मृगशृंग पुटपाक

**शरावसम्पुटे दग्धं शृङ्गं हरिणजं पिबेत्।। 46।।**
**गव्येन सर्पिषा युक्तं हृच्छूलं नाशयेद् ध्रुवम्।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे स्वरसादिकल्पना नाम प्रथमोऽध्यायः।। 1।।**

हरिण के सींग को टुकड़े कर दो सिकोरों में बन्द करके जला दें, फिर गाय के घी के साथ मिलाकर खायें, तो इससे हृदय का शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

**वक्तव्य**–आजकल प्रायः बारहसिंगा का सींग उपयोग में लाया जाता है और इसे 'शृङ्गराज' कहा जाता है। इसकी भस्म एक पुट में ही उत्तम नहीं बनती, अतः कई पुटें दी जाती हैं। जब तक सफेद न हो जाये तब तक घीकुआर के रस अथवा आक के दूध में पीसकर पुटें दी जाती हैं। इस प्रकार यह और भी उत्तम हो जाता है। यह भस्म कास, श्वास, ज्वर, आमवात आदि रोगों में बहुत लाभ करती है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का पहला अध्याय समाप्त।। 1।।

# द्वितीयोऽध्यायः
# क्वाथादिकल्पना

### क्वाथ बनाने की विधि

**पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत्।**
**मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्।।1।।**
**तज्जलं पाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्।**
**शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते।।2।।**

जौकुट किये (कुछ-कुछ कुटे या दर्दरा चूर्ण किये) हुये एक पल (4 तोला) द्रव्य (औषधि) में सोलह गुना पानी डालकर मन्द-मन्द अग्नि से काढ़ा करें, आठवाँ भाग अवशिष्ट (शेष) रहने पर उतार लें, तत्पश्चात् बुद्धिमान् चिकित्सक इसे छानकर कुछ-कुछ उष्ण क्वाथ को पिलाये। इस परिपक्व जल का नाम शृत, क्वाथ, कषाय एवं निर्यूह है।

**वक्तव्य**–'धीमान्' शब्द का प्रयोग करके आचार्य शार्ङ्गधर ने सूचित किया है कि औषध एवं जल के परिमाण की व्यवस्था विद्वान् चिकित्सक स्वयं करे। क्वाथ्य द्रव्य जितने जल में भली प्रकार कोमल या मृदु हो सकें उतना जल देना चाहिये। क्वाथ करने से औषधियों के घुलनशील अंश जल में घुल जाते हैं, जिससे काढ़ा कुछ गाढ़ा हो जाता है और क्वाथ को छानते समय भली प्रकार मलकर छान लेना चाहिये, जिससे उसका सार भाग पूर्ण रूप से जल में घुलकर आ सके।

### क्वाथ-पान की विधि

**आहाररसपाके च सञ्जाते द्विपलोन्मितम्।**
**वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत् क्वाथं सुपाचितम्।।3।।**

आहार के रस का भली प्रकार पाक हो जाने पर अनुभवी वैद्य की सम्मति के अनुसार यथाविधि पकाया हुआ दो पल (8 तोला) क्वाथ पीना चाहिये।

**वक्तव्य**–यहाँ भी 'वृद्धवैद्य' को ही उत्तरदायी ठहराया गया है, अर्थात् कब और कितना क्वाथ किसको पिलाना उचित है, इसका तात्कालिक निर्णय वैद्य स्वयं करें।

### क्वाथ में मधु आदि का परिमाण

**क्वाथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः।**
**वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधुस्मृतम्।।4।।**

काढ़े में शर्करा (खाँड़) वातरोग में चौथाई भाग, पित्तरोग में आठवाँ भाग तथा कफरोग में सोलहवाँ भाग डालना चाहिये और मधु (शहद) इसके विपरीत अर्थात् वातरोग में सोलहवाँ भाग, पित्त में आठवाँ भाग और कफ में चौथाई भाग डालना चाहिये।

### क्वाथ में जीरा आदि का परिमाण

**जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु।**
**हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत्।।5।।**

काढ़े में जीरा, गुगुल, क्षार, नमक, शिलाजीत, हींग एवं त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) एक-एक शाण (4-4 आना भर) डालना चाहिये।

**वक्तव्य**–जीरा और हींग को थोड़े घी में भूनकर तथा चूर्ण बनाकर, गुगुल तथा शिलाजीत को शुद्ध कर एवं क्षार, नमक तथा त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) को चूर्ण बनाकर क्वाथ पीते समय डालना चाहिये।

### क्वाथ में दूध आदि का परिमाण

**क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद् द्रवं तथा।**
**कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसम्मितम्।। 6।।**

क्वाथ में दूध, घी, गुड़, तैल, मूत्र (गोमूत्र आदि) अन्यान्य द्रव (नीबू आदि का रस), कल्क तथा चूर्ण आदि एक कर्ष (तोला) डालना चाहिये।

### क्वाथ पकाने को विधि

**(अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत्।**
**तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादींश्च विपाचयेत्।।7।।)**

पात्र का मुँह ढँक देने से क्वाथ दुर्जर (दुःख से पचने

वाला) हो जाता है, इसलिये ढँकना न देकर ही क्वाथ को पकाना चाहिये।

**वक्तव्य**–सुगन्धित औषधियों का क्वाथ तो ढँककर एवं उनकी गन्ध की रक्षा करते हुये थोड़ी ही देर पकाना चाहिये अथवा उक्त औषधों को प्रक्षेप के रूप में ही डालना चाहिये, अन्यथा उनका तैलांश उड़ जायेगा, जिसकी सत्ता बहुत आवश्यक है। अतएव सौंफ, अजवायन आदि के अर्क निकालते समय यन्त्र की पूर्ण रूप से रक्षा की जाती है।

### गुडूच्यादिगण क्वाथ

**गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचन्दनपद्मकैः ।**
**गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ।। 8 ।।**
**दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाच्छर्द्यरुचीर्जयेत् ।**

गिलोय, धनियाँ, नीम की छाल, लालचन्दन एवं पद्मकाठ यह 'गुडूच्यादि गण' कहलाता है। इसका काढ़ा सभी ज्वरों को नष्ट करता है, अग्नि को दीप्त करता है, दाह, जी मिचलाना, प्यास, कै तथा अरुचि को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–यह 'गुडूच्यादि गण' सु० सू० अ० 38 का है। यह शीतज्वर या मलेरिया की परमौषध है।

**नागरादि क्वाथ**–सोंठ, देवदारु का चूर्ण, धनियाँ, बनभण्टा (बड़ी भटकटैया) तथा कण्टकारी का पाचनक क्वाथ ज्वर रोगियों को पहले (आमज्वर में) देना चाहिये। यह ज्वरनाशक है। आमज्वरों में सामान्य क्वाथ देने का निषेध है, किन्तु 'पाचन' क्वाथ दिया जा सकता है।

**क्षुद्रादि क्वाथ**–भटकटैया, चिरायता, सोंठ, गुरुच तथा पोहकरमूल का काढ़ा पीने से आठ प्रकार के ज्वरों की शान्ति होती है। उक्त दोनों क्वाथ ज्वरशामक हैं।

### गुडूच्यादि क्वाथ

**गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ।। 9 ।।**
**दद्याद् वातज्वरे पूर्णलिङ्गे सप्तमवासरे ।**

गिलोय, पिप्पलामूल तथा सोंठ का काढ़ा भी 'पाचन' कहा जाता है। यह सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त वातज्वर में सातवें दिन देना चाहिये।

### शालपर्ण्यादि क्वाथ

**शालिपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा ।। 10 ।।**
**आसां क्वाथं पिबेत् कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ।**

शालपर्णी (सरिवन), बरियारा, मुनक्का, गिलोय तथा सारिवा–इनका काढ़ा कुछ गुनगुना पीना चाहिये। इससे भीषण वातज्वर नष्ट हो जाता है।

### काश्मर्यादि क्वाथ

**काश्मरीसारिवाद्राक्षात्रायमाणामृताभवः ।। 11 ।।**
**कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ।**

गम्भार का फल अथवा छाल, सारिवा, मुनक्का, त्रायमाणा तथा गिलोय का काढ़ा गुड़ मिलाकर पीने से वातज्वर को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त तीनों क्वाथ वातज्वर शामक हैं।

### कट्फलादि क्वाथ

**कट्फलेन्द्रयवापाठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ।। 12 ।।**
**पाचनं दशमेऽह्नि स्यात् तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ।**

कायफल की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, कुटकी तथा नागरमोथा का काढ़ा 'पाचन' कहलाता है। यह भयानक पित्तज्वर में दसवें दिन देना चाहिये।

### पर्पटादि क्वाथ

**पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः ।। 13 ।।**
**प्रियङ्गुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः ।**
**पिपासादाहपित्तास्त्रयुतं पित्तज्वरं जयेत् ।। 14 ।।**

पित्तपापड़ा, अडूसा के पत्ते, कुटकी, चिरायता, धमासा और फूलप्रियंगु, इनका काढ़ा खाँड़ या मिश्री मिलाकर पीने से प्यास, दाह तथा रक्तपित्त युक्त पित्तज्वर को जीतता है।

### द्राक्षादि क्वाथ

**द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुकी कृतमालकः ।**
**पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः ।। 15 ।।**
**तृण्मूर्च्छादाहपित्तासृक्शमनो भेदनः स्मृतः ।**

मुनक्का, बड़ी हरड़, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास की गुद्दी तथा पित्तपापड़ा इनका काढ़ा पित्तज्वर को नष्ट करता है। प्यास, मूर्च्छा, दाह तथा रक्तपित्त को शान्त करता है और यह दस्तावर है।

### पर्पटादि क्वाथ

**(एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।। 16 ।।**
**किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरबालकैः ।)**

अकेले पित्तपापड़ा का काढ़ा ही पित्तज्वर को नष्ट कर देता है और यदि इसमें सफेद चन्दन, खस तथा नेत्रबाला मिला दिया जाये तो फिर क्या कहना, अर्थात् तब तो यह क्वाथ बहुत ही लाभ करता है।

**वक्तव्य**–उक्त तीनों क्वाथ पित्तज्वरों का शमन करते हैं।

### बीजपूरादि क्वाथ

**बीजपूरशिफापथ्यानागरग्रन्थिकैः शृतम्॥ 17॥**
**सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे।**

बिजौरा नींबू की जड़, बड़ी हरड़, सोंठ तथा पिप्पलामूल काढ़ा, जौखार मिलाकर कफज्वर में बारहवें दिन पीना चाहिये। यह क्वाथ भी 'पाचन' है।

**वक्तव्य**–प्रायः आम के दोष से ('दोषा हि आमाशयाश्रयाः बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्युः') ज्वर उत्पन्न होते हैं, अतः उनमें लंघन ('ज्वरादौ लङ्घनं प्रोक्तम्') किया जाता है। यद्यपि वह आवश्यकतानुसार (जब तक आम ज्वर के लक्षण विद्यमान रहें) किया जाता है, तथापि–'वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः। श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि॥'–के अनुसार वातज्वर में सातवें दिन, पित्तज्वर में दसवें दिन तथा कफज्वर में बारहवें दिन दोष पक जाने पर क्वाथ देने का विधान किया गया है। इस बीच प्रतिदिन वैद्य रोगी को शिक्षा दें कि तुम स्नान, स्नेहपान, दस्त की दवा, दिन में सोना, मैथुन, व्यायाम, शीतल जल, क्रोध, बाहरी हवा का सेवन मत करना तथा गर्म जल अथवा गर्म करके ठण्डा किया हुआ जल पीना इत्यादि। औषध में मृत्युञ्जय आदि रस एवं स्वरस तथा षडङ्गपानीय आदि दे सकते हैं और पाचन क्वाथ देने के लिए जो दिन निश्चित किये हैं, यदि उक्त दिनों में भी दोष पूर्णरूप से पचे न हों तो पाचन क्वाथ देना चाहिये। यदि लंघनादि से ही दोषपाक हो जाये तो शमन अर्थात् ज्वरनाशक औषधि देनी चाहिये।

### भूनिम्बादि क्वाथ

**भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शठी शुण्ठी शतावरी॥ 18॥**
**गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात् कफज्वरम्।**

चिरायता, नीम की छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय और बनभण्टा, इनका काढ़ा कफज्वर को नष्ट करता है।

### पटोलादि क्वाथ

**पटोलत्रिफलातिक्ताशटीवासामृताभवः ॥ 19॥**
**क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात् कफकृतं ज्वरम्।**

परवल की पत्ती, त्रिफला, कुटकी, कचूर, अडूसा की पत्ती तथा गिलोय का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से कफज्वर को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त दोनों क्वाथ कफदोषशामक हैं। आमदोष को पकाने वाला काढ़ा 'पाचन' तथा ज्वरनाशक काढ़ा 'शमन' कहलाता है।

### पञ्चभद्र क्वाथ

**पर्पटाब्दामृताविश्वकैरातैः साधितं जलम्॥ 20॥**
**पञ्चभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम्।**

पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ तथा चिरायता–इनका यथाविधि बनाया हुआ क्वाथ 'पञ्चभद्र' नाम से प्रसिद्ध है। यह वातपित्त (द्वन्द्वज) ज्वर को नष्ट करता है।

### कण्टकार्यादि क्वाथ

**क्षुद्राशुण्ठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च॥ 21॥**
**कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे।**
**कासश्वासारुचिकरे पार्श्वशूलविधायिनि॥ 22॥**

कण्टकारी, सोंठ, गिलोय तथा पोहकरमूल का काढ़ा कफ-वातज्वर तथा त्रिदोषज्वर में पीना चाहिये और यह काढ़ा कास, श्वास तथा अरुचि को हरता है तथा पसली की पीड़ा (निमोनिया) को नष्ट करता है।

### आरग्वधादि क्वाथ

**आरग्वधकणामूलमुस्तातिक्ताभयाकृतः ।**
**क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम्॥ 23॥**
**आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः।**

अमलतास की गुद्दी, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी तथा बड़ी हरड़ का काढ़ा वात-कफ-ज्वर को तथा आमशूल को शीघ्र ही शान्त करता है, यह दस्तावर भी है, अग्नि को बढ़ाता है आम दोष को पकाता है।

### अमृताष्टक क्वाथ

**अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः ॥ 24॥**
**पटोलचन्दनाभ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक् शृतम्।**
**अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम्॥ 25॥**
**छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णाविनाशनम् ।**

गिलोय, नीम की छाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, परवल की पत्ती तथा लालचन्दन का काढ़ा पीपल का चूर्ण डालकर पीने से पित्त-कफ-ज्वर को नष्ट करता है, साथ ही कै, अरुचि, जी मिचलाना, दाह तथा प्यास का भी नाश होता है। इसका नाम 'अमृताष्टक' है।

### पटोलादिगण क्वाथ

**(पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठामृतागणः॥ 26॥**
**पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूविषापहः ।)**

परवल की पत्ती, लालचन्दन, मरोड़फली, कुटकी, पाठा तथा गिलोय का काढ़ा पित्तकफज्वर, कै, दाह, खुजली तथा विष को नष्ट करता है। इसका नाम 'पटोलादिगण' है।

**वक्तव्य**–विशेष देखें–सु० सू० अ० 38।

**कण्टकार्यादि क्वाथ**

**कण्टकारीद्वयं शुण्ठी धान्यकं सुरदारु च।।27।।**
**एभिः श्रितं पाचनं स्यात् सर्वज्वरविनाशनम्।**

कण्टकारी, बनभंटा, सोंठ, धनियाँ तथा देवदारु का काढ़ा सभी ज्वरों को नष्ट करता है।

**दशमूल क्वाथ**

**शालिपर्णीपृष्ठिपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।।28।।**
**बिल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ।**
**दशमूलमितिख्यातं क्वथितं तज्जलं पिबेत्।।29।।**
**पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं वातश्लेष्मज्वरापहम्।**
**सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम्।।30।।**
**शोषशैत्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत् ।**
**हृत्कण्ठग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ।।31।।**

शालपर्णी, पिठवन, कंटकारी, बनभण्टा, गोखरू, बेल का गुद्दी, अरणी की छाल, सोनापाठा की छाल, गम्भार की छाल तथा पाढल की छाल–ये सब द्रव्य 'दशमूल' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका काढ़ा पीपल का चूर्ण मिलाकर पीये। यह वातकफज्वर, सन्निपातज्वर, प्रसूति रोग, मुखशोष (मुख का सूखना), शोथशैत्य (हाथ-पाँव या सम्पूर्ण शरीर का ठण्डा होना), भ्रम (चक्कर आना), स्वेद (ज्वर रहने पर भी अधिक पसीना आना), कास, श्वास आदि विकारों को नष्ट करता है और हृदय तथा कण्ठ की रुकावट (हृदय की गति अथवा साँस जब रुकने लगती है) में यह काढ़ा देना चाहिये और यह पसली की पीड़ा, तन्द्रा (उँघाई) तथा सिर की पीड़ा को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–सन्निपातज्वर में उक्त लक्षणों को देखकर ही इस क्वाथ का प्रयोग करना चाहिये।

**अभयादि क्वाथ**

**अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः ।**
**वासकेन्द्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ।।32।।**
**पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक्शृतम्।**
**पिबेत् त्रिदोषज्वरजित् पिपासाकासदाहनुत्।।33।।**
**प्रलापश्वासतन्द्राघ्नं दीपनं पाचनं परम्।**
**विण्मूत्रानिलविष्टम्भवमिशोषारुचिं जयेत्।।34।।**

बड़ी हरड़ का छिलका, नागरमोथा, धनियाँ, लालचन्दन, पद्मकाठ, अड़ूसा की पत्ती, इन्द्रजौ, खस, गिलोय, अमलतास की गुद्दी, पाठा, सोंठ तथा कुटकी का काढ़ा, पीपल का चूर्ण मिलाकर पीये। यह सन्निपात ज्वर को जीतता है। प्यास, खाँसी और दाह को नष्ट करता है, प्रलाप (बड़बड़ाना), श्वास एवं तन्द्रा का नाशक है। अत्यन्त दीपन (अग्निवर्द्धक) तथा पाचन है और पुरीष, मूत्र तथा वायु की रुकावट को दूर करता है। कै, मुखशोष तथा अरुचि को जीतता है।

**वक्तव्य**–यह क्वाथ भी सन्निपातज्वर को शान्त करने के लिए उत्तम है।

**पिप्पल्यादि क्वाथ**

**(पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।**
**वचासातिविषाजाजीपाठावत्सकरेणुकैः ।।35।।**
**किराततिक्तकं मूर्वा सर्षपा मरिचानि च।**
**कटुकं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम्।।36।।**
**अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा।**
**दीप्यकं चाजमोदा च शुकनासादिहिङ्गुभिः।।37।।**
**एतानि समभागानि गणोऽष्टविंशको मतः।**
**कषायमुपभुञ्जीत वातश्लेष्मज्वरापहम्।।38।।**
**हन्ति वातं तथा शीतं स्वेदजं प्रबलं कफम्।**
**प्रलापं चातिनिद्रां च रोमहर्षारुची तथा।।39।।**
**महावातेऽपतन्त्रे च सर्वगात्रे च शून्यताम्।**
**अयं सर्वज्वरान् हन्ति सन्निपातांस्त्रयोदश।।40।।)**

पीपल, पिप्पलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, बच, अतीस, सफेद जीरा, पाठा, कुरैया की छाल, पित्तपापड़ा, चिरायता, मरोड़फली, सरसों, मरिच, कुटकी, पोहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकड़ासिंगी, आक की जड़, बनभण्टा, गजपीपल, धमासा, अजवायन, अजमोद, सोनापाठा तथा हींग इन सब द्रव्यों को समान भाग में लें। इसका नाम 'अष्टाविंशक गण' है, इसमें अट्ठाईस द्रव्य हैं। इनका क्वाथ बनाकर सेवन करें। यह वात, कफ, ज्वर को नष्ट करता है, वायु को, स्वेद (पसीना) के अधिक निकल जाने से उत्पन्न हुये शीत को, बढ़े हुये कफ को, प्रलाप को, अतिनिद्रा को, रोमाञ्च तथा अरुचि को नष्ट करता है और अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) नामक महावातव्याधि में तथा सम्पूर्ण शरीर की शून्यता (सुन्न हो जाने) में इसका प्रयोग करना चाहिये और यह काढ़ा सभी ज्वरों को तथा तेरह प्रकार के सन्निपातों को नष्ट करता है।

### किरातादि क्वाथ

कैरातकटुकीमुस्ताधान्येन्द्रयवनागरैः ।
दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ 41 ॥
कृतः कषायः पार्श्वार्तिसन्निपातज्वरं जयेत्।
कासश्वासवमीहिक्कातन्द्राहृद्ग्रहनाशनः ॥ 42 ॥

चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, धनियाँ, इन्द्रजौ, सोंठ, दशमूल (प्रसिद्ध दस द्रव्य), देवदारु तथा गजपीपल, इनका काढ़ा पसली की पीड़ा प्रधान सन्निपात (निमोनिया) ज्वर को जीतता है। कास, श्वास, कै, हिचकी, तन्द्रा और हृद्ग्रह (हृदय की गति के रुकावट) को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ में अठारह द्रव्य हैं, अतः इसका नाम 'अष्टादशाङ्ग क्वाथ' भी है।

### कट्फलादि क्वाथ

कट्फलाम्बुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ।
वचाहरीतकीशृङ्गीदेवदारुमहौषधैः ॥ 43 ॥
हिक्कां कासं ज्वरं हन्ति श्वासश्लेष्मगलग्रहान्।

कायफल का छिलका, नागरमोथा, भारंगी, धनियाँ, रोहिषतृण, पित्तपापड़ा, वच, बड़ी हरड़, काकड़ासिंगी, देवदारु तथा सोंठ का काढ़ा, हिचकी, कास, ज्वर, श्वास, कफ एवं गलग्रह (गले की रुकावट) को नष्ट करता है।

### गुडूची क्वाथ

क्वाथो जीर्णज्वरं हन्ति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥ 44 ॥
तथा पर्पटजः क्वाथः पित्तज्वरहरः परः।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ 45 ॥

गिलोय का काढ़ा पीपल के चूर्ण से युक्त पीने से जीर्ण (पुराने अथवा इक्कीस दिन के बाद भी रहने वाले) को नष्ट करता है। उसी प्रकार पित्तपापड़े का क्वाथ भी पित्तज्वरनाशक क्वाथों में उत्तम है। यदि उसमें सफेद चन्दन, नेत्रबाला और सोंठ मिला दी जाये तो यह और भी उत्तम हो जाता है।

### निदिग्धिकादि क्वाथ

निदिग्धिकामृताशुण्ठीकषायं पाययेद् भिषक्।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ॥ 46 ॥
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलाजीर्णज्वरच्छिदम् ।

कण्टकारी, गिलोय और सोंठ का काढ़ा पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से श्वास, कास और अर्दित (लकवा) को नष्ट करता है। पीनस (जुकाम) अरुचि, स्वरभेद, शूल, अजीर्ण (अनपच) तथा ज्वर को नष्ट करता है।

### देवदार्वादि क्वाथ

(देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। ॥ 47 ॥
कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्तधान्या हरीतकी।
गजकृष्णा च दुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकम् ॥ 48 ॥
बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटं कृष्णजीरकम्।
क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम् ॥ 49 ॥
शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्तिजित् ।)

देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियाँ, बड़ी हरड़, गजपीपल, जवासा, गोखरू, धमासा, बनभण्टा, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी तथा कालाजीरा का आठवाँ भाग शेष रहा हुआ क्वाथ प्रसूता स्त्री को पिलाना चाहिये। यह काढ़ा उसके शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प तथा सिर की पीड़ा को शान्त करता है।

**वक्तव्य**–यह क्वाथ हिस्टीरिया में भी बहुत लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

### क्षुद्रादि क्वाथ

क्षुद्राधान्यकशुण्ठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥ 50 ॥
रक्तचन्दनभूनिम्बपटोलवृषपौष्करैः ।
कटुकेन्द्रयवाऽरिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैः समैः ॥ 51 ॥
क्वाथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम्।

कण्टकारी, धनियाँ, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पद्मकाठ, लालचन्दन, परवल की पत्ती, अडूसा की पत्ती, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजौ, नीम की छाल, भारंगी तथा पित्तपापड़ा को समान भाग में लेकर काढ़ा बनाकर प्रातःकाल पीये। यह सभी शीतज्वरों (जड़ैया ज्वर या शीतपूर्वक विषम ज्वर) को नष्ट करता है।

### मुस्तादि क्वाथ

मुस्तक्षुद्रामृताशुण्ठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ॥ 52 ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः।

नागरमोथा, भटकटैया, गिलोय, सोंठ और आँवला का काढ़ा शहद और पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से विषमज्वर को नष्ट करता है।

### पटोलादि क्वाथ

पटोलेन्द्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः ॥ 53 ॥
मधुकामृतवासानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
सन्तते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके ॥ 54 ॥
ऐकाहिके वा विषमे दाहपूर्वे नवज्वरे।

परवल की पत्ती, इन्द्रजौ, देवदारु, त्रिफला, नागरमोथा, मुनक्का, मुलेठी, गिलोय तथा अडूसा की पत्ती का काढ़ा शहद मिलाकर सन्तत (सात, दस अथवा बारह दिन तक निरन्तर रहने वाले), सतत (आठ पहर में दो बार होने वाले), द्वितीयक (दो दिन तक निरन्तर चढ़ा रहने वाला अर्थात् चातुर्थक का विपर्यय), तृतीयक (तिजारी) तथा ऐकाहिक (प्रतिदिन आने वाले) ज्वर में और दाहपूर्वक आने वाले विषमज्वर तथा नवज्वर में पीना चाहिये।

### पटोलादि क्वाथ

**पटोलत्रिफलानिम्बद्राक्षाशम्याकवासकैः ।।55।।**
**क्वाथः सितामधुयुतो जयेदैकाहिकं ज्वरम्।**

परवल की पत्ती, त्रिफला, नीम की छाल, मुनक्का, अमलतास तथा अडूसा की पत्ती का काढ़ा खाँड और मधु मिलाकर पीने से 'ऐकाहिक' (अन्येद्यु) ज्वर को जीतता है।

### गुडूच्यादि क्वाथ

**गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चन्दनोशीरनागरैः ।।56।।**
**कृतं क्वाथं पिबेत् क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः।**
**तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम्।।57।।**

गिलोय, धनियाँ, नागरमोथा, लालचन्दन, खस और सोंठ के काढ़े को मधु तथा मिश्री मिलाकर ज्वर रोगी, तृतीयक ज्वर को नष्ट करने के लिए पीये। यह काढ़ा प्यास और दाह का निवारण करता है।

### देवदार्वादि क्वाथ

**देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ।**
**धात्रीयुतं शतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम्।।58।।**
**चातुर्थिकज्वरे श्वासे कासे मन्दानले तथा।**

देवदारु, बड़ी हरड़, अडूसा का पत्ती, शालपर्णी, सोंठ तथा आँवला का काढ़ा ठंडा किया हुआ, मिश्री तथा शहद मिलाकर चातुर्थक (चौथैया) ज्वर, श्वास, कास और मन्दाग्नि में पीना चाहिये।

### बृहद्गुडूच्यादि क्वाथ

**गुडूचीधान्यकोशीरशुण्ठीबालकपर्पटैः ।।59।।**
**बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचन्दनवत्सकैः ।**
**किरातमुस्तेन्द्रयवैः क्वथितं शिशिरं पिबेत्।।60।।**
**सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम्।**

गिलोय, धनियाँ, खस, सोंठ, नेत्रबाला, पित्तपापड़ा, बेल की गुद्दी, अतीस, पाठा, लालचन्दन, कुरैया की छाल, चिरायता, नागरमोथा तथा इन्द्रजौ का काढ़ा ठंडा करके तथा मधु मिलाकर पीना चाहिये। यह काढ़ा रक्तपित्त तथा ज्वरातिसार को नष्ट करता है।

### नागरादि क्वाथ

**नागरं कुटजो मुस्तममृतातिविषा तथा।।61।।**
**एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं ज्वरातीसारनाशनम्।**

सोंठ, कुरैया की छाल, नागरमोथा, गिलोय और अतीस का काढ़ा पीने से यह ज्वरातिसार को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—ज्वरातिसार ज्वर तथा अतिसार का सम्मिलित रूप है। इसमें ज्वर के साथ अतिसार की प्रवृत्ति होती है। यही इस नाम की चरितार्थता है।

### धान्यपञ्चक क्वाथ

**धान्यबालकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम्।।62।।**
**आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम्।**

धनियाँ, नेत्रबाला, बेल की गुद्दी, नागरमोथा तथा सोंठ का यथाविधि बनाया हुआ क्वाथ आमशूल (पेचिस) को हरता है, मल को रोकता है। यह अत्यन्त दीपन तथा पाचन है।

### धान्यनागर क्वाथ

**धान्यनागरजः क्वाथः पाचनो दीपनस्तथा।।63।।**
**एरण्डमूलयुक्तश्च जयेदामानिलव्यथाम्।**

धनियाँ और सोंठ का काढ़ा पाचन तथा दीपन है और एरण्ड की जड़ से युक्त उक्त क्वाथ आमवात (गठिया) की पीड़ा को जीतता है।

### वत्सकादि क्वाथ

**वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तबालकजः शृतः।।64।।**
**अतीसारं जयेत् सामं चिरजं रक्तशूलजित्।**

कुरैया की छाल, अतीस, बेल की गुद्दी, नागरमोथा तथा नेत्रबाला का बनाया हुआ काढ़ा आँव से युक्त पुराने अतिसार को जीतता है और रक्तातिसार तथा शूल को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–'न तु सङ्ग्रहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे' (च० चि० अ० 19)। अर्थात् आमातिसार में पहले ही रोकने वाली औषध का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इस अवस्था में दीपन-पाचन औषधियाँ देनी चाहिये। भुनी सौंफ का चूर्ण तथा इसबगोल के बीज या उसकी भूसी बहुत लाभदायक होती है।

### कुटजाष्टक क्वाथ

**कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः ।।65।।**
**ह्रीबेरदाडिमयुतैः कृतः क्वाथः समाक्षिकः।**

पेयो मोचरसेनैव कुटजाष्टकसंज्ञकः।।66।।
अतीसाराञ्जयेद् दाहरक्तशूलामदुस्तरान्।

कुरैया की छाल, अतीस, पाठा, धाय के फूल, पठानी लोध, नागरमोथा, नेत्रबाला तथा अनार के फल का छिलका (नासपाल), इनका बनाया काढ़ा शहद और मोचरस का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। इसका नाम 'कुटजाष्टक' है। यह क्वाथ दाह, रक्त, शूल तथा आँव के कारण कष्टसाध्य अतिसारों को जीतता है।

### ह्रीबेरादि क्वाथ

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः ।।67।।
धान्यकातिविषामुस्तागुडूचीबिल्वनागरैः ।
कृतः कषायः शमयेदतीसारं चिरोत्थितम्।।68।।
अरोचकामशूलास्त्रज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः।

नेत्रबाला, धाय के फूल, लोध, पाठा, लज्जावन्ती, कुरैया का छाल, धनियाँ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, बेल की गिरी तथा गिलोय का काढ़ा पुराने अतिसार, अरुचि, आँव, शूल, रक्त तथा ज्वर को नष्ट करता है तथा यह पाचन है।

### धातक्यादि क्वाथ

धातकीबिल्वरोध्राणि बालकं गजपिप्पली।।69।।
एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम्।
प्रदद्यादवलेहं वा सर्वातीसारशान्तये।।70।।

धाय के फूल, बेल की गुद्दी, लोध, नेत्रबाला और गजपीपल का काढ़ा ठंडा करके शहद मिलाकर बच्चों को देना चाहिये। अथवा उक्त द्रव्यों का चूर्ण मधु मिलाकर चटनी-सा बनाकर बच्चों को दें। यह योग सब अतिसारों को शान्त करता है।

### शालपर्ण्यादि क्वाथ

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतः शृतः।
आध्मानशूलसहितां वातजां ग्रहणीं जयेत्।।71।।

शालपर्णी, बरियारा, बेल की गिरी, धनियाँ और सोंठ का काढ़ा अफरा तथा शूल से युक्त वातज ग्रहणी रोग को जीतता है।

### गुडूच्यादि क्वाथ

गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्वाथः कृतो जयेत्।
आमानुषक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः।।72।।

गिलोय, अतीस, सोंठ तथा नागरमोथा का बनाया हुआ काढ़ा आँव से युक्त ग्रहणी को जीतता है। यह ग्राही, पाचन और दीपन होता है।

### इन्द्रयवादि क्वाथ

यवधान्यपटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः।
योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा।।73।।

इन्द्रजौ, धनियाँ और परवल की पत्ती का काढ़ा मधु तथा चीनी मिलाकर सभी अतिसारों में देना चाहिये। बेल का गुद्दी तथा आम की गिरी का काढ़ा भी दिया जाता है।

### त्रिफलादि क्वाथ

त्रिफला देवदारुश्च मुस्ता मूषककर्णिका।
शिग्रूरेतै कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः।।74।।
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नः कृमिरोगहा।

त्रिफला, देवदारु, नागरमोथा, मूषाकर्णी तथा सहिजन की छाल, इनका बनाया हुआ काढ़ा पीपल और वायविडंग के चूर्ण से युक्त पीने से कृमियों तथा कृमियों के विकारों को नष्ट करता है।

### फलत्रिकादि क्वाथ

फलत्रिकामृतातिक्तानिम्बकैरातवासकैः ।।75।।
जयेन्मधुर्युतः क्वाथः कामलां पाण्डुतां तथा।

त्रिफला, गिलोय, कुटकी, नीम की छाल, चिरायता तथा अड़ूसा की पत्ती का काढ़ा मधु मिलाकर पीने से कामला तथा पाण्डुरोग को नष्ट करता है।

### पुनर्नवादि क्वाथ

पुनर्नवाभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः ।।76।।
गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः।
पाण्डुकासोदरश्वासशूलसर्वाङ्गिशोथहा ।।77।।

पुनर्नवा (गदहपुन्ना), बड़ी हरड़, नीम की छाल, दारुहल्दी, कुटकी, परवल की पत्ती, गिलोय तथा सोंठ का काढ़ा, गोमूत्र मिलाकर पीने से पाण्डुरोग, कास, उदररोग, श्वास, शूल तथा सम्पूर्ण शरीर का सूजन को नष्ट करता है।

### वासादि क्वाथ

वासाद्राक्षाभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः।
निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान् सुदारुणान्।।78।।
रक्तपित्तं क्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वर तथा।
केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत्।।79।।

अड़ूसा की पत्ती, मुनक्का तथा बड़ी हरड़ का काढ़ा

शहद और मिश्री मिलाकर पीने से भीषण रक्तपित्त रोग, श्वास तथा कास को नष्ट करता है। केवल अडूसा की पत्ती का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त, क्षय, खाँसी और कफपित्तज्वर को नष्ट करता है।

### वासादि तथा क्षुद्रा क्वाथ

**वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा।**
**कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राशृतस्तथा।। 80।।**

अडूसा की पत्ती, भटकटैया तथा गिलोय का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से ज्वर और कास को हरता है। केवल भटकटैया का काढ़ा पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से कास को नष्ट करता है।

### क्षुद्रादि क्वाथ

**क्षुद्राकुलित्थवासाभिर्नागरेण च साधितः।**
**क्वाथः पुष्करचूर्णाढ्यः श्वासकासौ निवारयेत्।। 81।।**

भटकटैया, कुलथी, अडूसा की पत्ती तथा सोंठ का काढ़ा पोहकरमूल के चूर्ण से युक्त पीने से श्वास तथा कास को रोकता है।

### रेणुकादि क्वाथ

**रेणुकापिप्पलीक्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः।**
**पानादेव हि पञ्चापि हिक्का नाशयति क्षणात्।। 82।।**

सम्भालू के बीज तथा छोटी पीपल का काढ़ा हींग के कल्क के साथ पीने से पाँच प्रकार की हिचकी को क्षण भर में नष्ट करता है।

### बिल्वत्वक् क्वाथ

**बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः।**
**जयेत् त्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा।। 83।।**

बेल वृक्ष की छाल अथवा गिलोय का क्वाथ शहद मिलाकर पीने से तीनों दोषों से उत्पन्न हुई कै को जीतता है और पित्तपापड़ा का क्वाथ पित्त की कै को हरता है। ये भिन्न-भिन्न द्रव्यों के तीन योग हैं।

### गृध्रसीनाशक क्वाथ

**हिङ्गुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलशृतं जयेत्।**
**गृध्रसीं केवलः क्वाथः शेफालीपत्रजस्तथा।। 84।।**

दशमूल का काढ़ा, हींग (घी में भुनी हुई) तथा पोहकरमूल का चूर्ण डालकर पीने से अथवा सम्भालू के पत्तों का काढ़ा हींग और पोहकरमूल का चूर्ण डालकर पीने से 'गृध्रसी' (रिंगण) नामक वातरोग को जीतता है।

### रास्नापञ्चक क्वाथ

**रास्नामृतामहादारुनागरैरण्डजैः शृतम्।**
**सप्तधातुगते वाते सामे सर्वङ्गजे पिबेत्।। 85।।**

रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ और एरण्ड की जड़ का काढ़ा रस, रक्त आदि सातों धातुओं में प्रविष्ट हुये वात तथा आम से युक्त वायु (आमवात या गठिया) में पीना चाहिये।

### रास्नासप्तक क्वाथ

**रास्ना गोक्षुरकैरण्डदेवदारु पुनर्नवा।**
**गुडूच्यारग्वधश्चैव क्वाथमेषां विपाचयेत्।। 86।।**
**शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तं पिबेज्जङ्घाकटिग्रहे।**
**पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे।। 87।।**

रास्ना, गोखरू, एरण्ड की जड़, देवदारु, पुनर्नवा (गदहपुन्ना), गिलोय और अमलतास की गुद्दी का यथाविधि काढ़ा पकाये और सोंठ का चूर्ण मिलाकर निम्नलिखित रोगों में सेवन करायें-जंघा (टाँग) और कमर की जकड़न में, पसली, पीठ तथा ऊरु (रान) की पीड़ा में तथा कष्टसाध्य आमवात (गठिया) में।

### महारास्नादि क्वाथ

**रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्ततः परे।**
**धन्वयासबलैरण्डदेवदारुशठीवचाः।। 88।।**
**वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा।**
**गुडूची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः।। 89।।**
**अश्वगन्धा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी।**
**कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम्।। 90।।**
**एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम्।**
**कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुनाथ वा।। 91।।**
**अजमोदादिना वापि तैलेनैरण्डजेन वा।**
**सर्वाङ्गकम्पे कुब्जत्वे पक्षाघातेऽपबाहुके।। 92।।**
**गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके।**
**अन्त्रवृद्धौ तथाध्माने जङ्घाजानुगतेऽर्दिते।। 93।।**
**शुक्रामये मेढ्ररोगे वन्ध्यायोन्यामयेषु च।**
**महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम्।। 94।।**

रास्ना दो भाग और निम्नलिखित प्रत्येक द्रव्य एक भाग-धमासा, वरियारा, एरण्ड की जड़, देवदारु, कचूर, वच, अडूसा की पत्ती, सोंठ, बड़ी हरड़, चव्य, नागरमोथा, पुनर्नवा, गिलोय, विधारा, सौंफ (सोया भी डाला जाता है), गोखरू, असगन्ध, अतीस, अमलतास की गुद्दी, शतावर, पीपल, कटसरैया (पीयावांसा), धनियाँ, बनभण्टा तथा

कण्टकारी–इनका क्वाथ सोंठ अथवा पीपल का चूर्ण मिलाकर 'योगराजगुगुल' (शा० म० खं० अ० 7) अथवा 'अजमोदादि चूर्ण' (शा० म० खं० अ० 6) के साथ अथवा एरण्ड का तैल (2 से 4 तोला तक) मिलाकर निम्नलिखित रोगों में पीना चाहिये–सम्पूर्ण शरीर की कम्पवायु में, कुब्जवात (कुबड़ापन) में, पक्षाघात (अर्द्धांग) में, अपबाहुक (बाँह की जकड़न) में, गृध्रसी (रिंगण वात) में, आमवात (गठिया) में, श्लीपद (फीलपाँव) में, अपतानक (हिस्टीरिया) में, अन्त्रवृद्धि (आँत उतरने) तथा अण्डवृद्धि में, आध्मान (अफरा) में, जंघा (टाँग) और जानु (घुटना) की पीड़ा में, लकवा में, शुक्र के विकारों में, लिंग-रोगों (उपदंश आदि तथा नपुंसकता या नस की दुर्बलता) में, बन्ध्या आदि योनि या गर्भाशय के रोगों में। यह क्वाथ 'महारास्नादि' नाम से प्रसिद्ध है। इसे ब्रह्मा ने गर्भ का कारण बतलाया है।

**वक्तव्य**–उक्त महारास्नादि क्वाथ की औषधियों के मान के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत देखे जाते हैं–1. रास्ना दो भाग (दो तोला) और सब द्रव्य मिलाकर एक भाग (एक तोला) तथा 2. रास्ना दो भाग (दो तोला) और सब द्रव्य एक-एक भाग (एक-एक तोला)। इनमें दूसरा मत ही अधिक प्रचलित है।

**'ब्रह्मणा गर्भकारणम्'** कहने से प्रतीत होता है कि यह योग सम्प्रति अनुपलब्ध 'ब्रह्मसंहिता' का है। सौभाग्य की बात है कि यह परमोत्तम योग आज हमें उपलब्ध है, जिसका हम प्रयोग कराकर जनता को लाभान्वित कर रहे हैं।

### एरण्डादि क्वाथ

**एरण्डो बीजपूरश्च गोक्षुरो बृहतीद्वयम्।**
**अश्मभेदस्तथा बिल्व एतन्मूलैः कृतः शृतः।।95।।**
**एरण्डतैलहिङ्ग्वाढ्यः सयवक्षारसैन्धवः।**
**स्तनस्कन्धकटीमेढ्रहृदयोत्थां व्यथां जयेत्।।96।।**

एरण्ड की जड़, बिजौरा नींबू की जड़, गोखरू, बनभण्टा, पाषाणभेद और बेल, इनकी जड़ों का काढ़ा, एरण्ड का तैल, हींग (घी में भुनी हुई) और जौखार तथा सेंधा नमक मिलाकर पीने से यह क्वाथ स्तन, कन्धे, कमर, लिङ्ग तथा हृदय की पीड़ा को जीतता है।

### नागरादि क्वाथ

**नागरैरण्डजः क्वाथः क्वाथ इन्द्रयवस्य च।**
**हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः।।97।।**

सोंठ तथा एरण्ड की जड़ क्वाथ चीनी और शहद मिलाकर पीने से रक्त-पित्त को हरता है और दाह तथा पित्तशूल (पित्ति-जनित उदरशूल) को हटाता है।

### त्रिफलादि क्वाथ

**त्रिफलाऽऽरग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः।**
**रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः।।98।।**

त्रिफला एवं अमलतास के क्वाथ में चीनी और मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त रोग का विनाश करता है। यह दाह तथा पित्तजनित उदरशूल को भी दूर करता है।

### एरण्ड क्वाथ

**एरण्डमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत्।**
**तत्क्वाथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत् कफशूलहा।।99।।**

एरण्ड की जड़ दो पल (8 तोला) लेकर (जौकुट कर) आठ गुने पानी में पकाये (चतुर्थांश शेष रहने पर उतार ले)। यह काढ़ा जौखार मिलाकर पीने से पसली तथा हृदय के शूल को तथा कफजनित शूल को नष्ट करता ई।

### दशमूल क्वाथ

**दशमूलकृतः क्वाथः सयवक्षारसैन्धवः।**
**हृद्रोगगुल्मशूलानि कासं श्वासं च नाशयेत्।।100।।**

दशमूल का काढ़ा जौखार तथा सेंधा नमक मिलाकर पीने से हृदयरोग, गुल्म (वायुगोला), शूल, कास और श्वास को नष्ट करता है।

### हरीतक्यादि क्वाथ

**हरीतकीदुरालम्भाकृतमालकगोक्षुरैः।**
**पाषाणभेदसहितैः क्वाथो माक्षिकसंयुतः।।101।।**
**विबन्धे मूत्रकृच्छ्रे च सदाहे सरुजे हितः।**

बड़ी हरड़, धमासा, अमलतास, गोखरू तथा पाषाणभेद–इन सबका क्वाथ शहद मिलाकर विबन्ध (मल तथा मूत्र की रुकावट), दाह तथा पीड़ा से युक्त मूत्रकृच्छ्र में पीना चाहिये।

### वीरतर्वादि क्वाथ

**वीरतरुर्वृक्षवन्दा काशः सहचरत्रयम्।।102।।**
**कुशद्वयं नलो गुन्द्रा बकपुष्पोऽग्निमन्थकः।**
**मूर्वा पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा।।103।।**
**अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः।**
**वीरतर्वादिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा।।104।।**
**मूत्राघातं वायुरोगान्नाशयेन्निखिलानपि।**

वीरतरु (खस अथवा सरपत की जड़), वृक्षवन्दा (बन्द या बाँदा), काश, तीनों कटसरैया (पीले, लाल, नीले फूल वाली), दोनों प्रकार की कुशा (कुशा तथा दर्भ), की जड़, नल (नरकट या नरसल) की जड़, गुन्द्रा (पटेरक), बकपुष्प (अगस्त वृक्ष के फूल), अरणी, मरोड़फली, पाषाणभेद, सोनापाठा, गोखरू, अपामार्ग (चिरचिटा), कमल का फूल तथा ब्राह्मी–यह एक श्रेष्ठ गण (देखें–सु० सू० अ० 38) 'वीरतर्वादि' नाम से प्रसिद्ध है। इसका क्वाथ (अथवा चूर्ण, स्वरस, कल्क आदि प्रकार-भेद से प्रयोग करना चाहिये) शर्करा (मूत्र के साथ बालू की-सी कणिकाओं का निकलना), अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात तथा वात के सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है।

### एलादि क्वाथ

**एलामधुकगोकण्टरेणुकैरण्डवासकाः ।। 105 ।।**
**कृष्णाश्मभेदसहिताः क्वाथ एषां सुसाधितः।**
**शिलाजतुयुतः पेयः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ।। 106 ।।**

इलायची (छोटी अथवा बड़ी), मुलेठी, गोखरू, रेणुका (सम्भालू के बीज), एरण्ड का जड़, अड़ूसा की पत्ती, पीपल पथा पाषाणभेद का विधिपूर्वक बनाया हुआ काढ़ा शिलाजीत मिलाकर पीने से शर्करा, पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है।

### गोक्षुरादि क्वाथ

**समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः।**
**नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ।। 107 ।।**

जड़ सहित गोखरू का काढ़ा चीनी तथा शहद मिलाकर पीने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्रों को और विशेष रूप से उष्णवात (मूत्र के साथ रक्त आना) को नष्ट करता है।

### वरादि क्वाथ

**वरादार्व्यब्ददारूणां क्वाथः क्षौद्रेण मेहहा।**
**वत्सकत्रिफला दार्वी मुस्तको बीजकस्तथा ।। 108 ।।**

त्रिफला, दारुहल्दी, नागरमोथा तथा देवदारु का काढ़ा अथवा–कुरैया की छाल, त्रिफला, दारुहल्दी, नागरमोथा तथा विजयसार का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से 'प्रमेह' को नष्ट करता है।

### फलत्रिकादि क्वाथ

**फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः शृतं पिबेत्।**
**निशाकल्कयुतं सर्वप्रमेहविनिवृत्तये ।। 109 ।।**

त्रिफला, नागरमोथा, दारुहल्दी तथा इन्द्रायण की जड़ का काढ़ा, हल्दी का कल्क (चटनी) मिलाकर पीने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

### दार्व्यादि क्वाथ

**दार्वी रसाञ्जनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः।**
**कैरातश्च पिबेदेषां क्वाथं शीतं समाक्षिकम् ।। 110 ।।**
**जयेत् सशूलं प्रदरं पीतश्वेतासितारुणम्।**

दारुहल्दी, रसवत, नागरमोथा, शुद्ध भिलावा, बेलगिरी, अड़ूसा की पत्ती तथा चिरायता का काढ़ा ठण्डा करके और शहद मिलाकर पीने से शूल युक्त पीले, सफेद, काले तथा लाल प्रदर को जीतता है।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ प्रदर की उत्तम औषध है। इसमें शुद्ध भिलावा डाला जाता है। भिलावा का शोधन इस प्रकार होता है–भिलावा की टोपी (वृन्त) को सरौता से काटकर गोबर (गाय अथवा भैंस का) और पानी में दो तीन बार पकाकर फिर उष्ण जल से धोकर सुखा लें। सावधानी–भिलावा इतनी कुशलता के साथ काटना चाहिये कि उसका रस शरीर के किसी अवयव पर न लगे और पकाते समय भाप (वाष्प) भी न लगे, अन्यथा इससे शरीर पर प्रायः सूजन हो जाती है।

### न्यग्रोधादि क्वाथ

**न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसा बदरी तुणिः ।। 111 ।।**
**मधुयष्टी प्रियालश्च लोध्रद्वयमुदुम्बरः।**
**पिप्पलश्च मधूकश्च तथा पारिसपिप्पलः ।। 112 ।।**
**सल्लकी तिन्दुकी जम्बूद्वयमाम्रतरुः शिवा।**
**कदम्बककुभौ चैव भल्लातकफलानि च ।। 113 ।।**
**न्यग्रोधादिगणक्वाथं यथालाभं च कारयेत्।**
**अयं क्वाथो महाग्राही व्रण्यो भग्नं च साधयेत् ।। 114 ।।**
**योनिदोषहरो दाहमेदोमेहविषापहः।**

बरगद की छाल, प्लक्ष (पाकड़ या पिलखन), कोशाम्र (आमड़ा), वेतस (वेत की जड़ या फल), बदरी (बेर वृक्ष का छाल), तुणि (तुन), मुलेठी, चिरौंजी के वृक्ष की छाल, लोध, पठानीलोध, गूलर की छाल, पारस पीपल, सलई, तेन्दू, जामुन, जमोया (कठजामुन), आम, हरड़, कदम्ब, अर्जुन (कौह या कौव) तथा भिलावा के फल। यह 'न्यग्रोधादिगण' है (देखें–सु० सू० 38)। इनमें से जितने द्रव्य मिल जायें (अधिक से अधिक द्रव्य प्राप्त करने चाहिये) उनका काढ़ा बनायें।

यह काढ़ा अत्यन्त ग्राही (मल को रोकने वाला) है,

व्रणों (घावों) के लिए हितकर है (व्रण धोने के लिए भी उपयुक्त है)। भग्न (टूटी हड्डी) को (पिलाने और सेचन करने से) जोड़ता है, योनि के विकारों को हरता है, दाह, मेदोवृद्धि, प्रमेह तथा विष को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त गण सभी प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है। यह उक्त गुणों के अतिरिक्त गर्भस्थापक भी है और गर्भाधानकारक भी। स्त्रियों को इसका कुछ महीनों तक सेवन कराना चाहिये।

### बिल्वादि क्वाथ

**बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा।। 115।।**
**क्वाथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः।**

बेल की गुद्दी, अरणी, सोनापाठा, गम्भार और पाढल की छाल का क्वाथ मधु मिलाकर पीने से मेदोदोष (मेदोवृद्धि तथा मेदा के विकारों) को जीतता है।

### त्रिफला क्वाथ

**क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः।। 116।।**
**शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोहृत् क्षौद्रसंयुतम्।**

त्रिफला का काढ़ा मधु मिलाकर पीने से बढ़े हुये मेदा को घटाता है। और जल को पहले उष्ण (गर्म) कर और फिर ठण्डा करके मधु मिलाकर पीने से मेदा घट जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त दोनों योगों का चिरकाल तक सेवन करने से स्थूलता का नाश होता है।

### चव्यादि क्वाथ

**चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा।। 117।।**
**क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदराञ्जयेत्।**

चव्य, चित्ता, सोंठ तथा देवदारु का सिद्ध किया हुआ क्वाथ निशोत तथा गोमूत्र मिलाकर पीने के सभी प्रकार के उदर रोगों को जीतता है।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ के सेवन से रेचन होता है। इसमें गोमूत्र 4-8 तोला तक आवश्यकतानुसार मिलाना चाहिये।

### पुनर्नवादि क्वाथ

**पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः ।। 118।।**
**गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथः शोथोदरापहः।**

पुनर्नवा, गिलोय, देवदारु, बड़ी हरड़, तथा सोंठ का क्वाथ गोमूत्र तथा शुद्ध गुगुल मिलाकर पीने से शोथ (सूजन) तथा उदर रोग को नष्ट करता है।

### पथ्यादि क्वाथ

**पथ्यारोहितकक्वाथं यवक्षारकणायुतम्।। 119।।**
**पिबेत् प्रातर्यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये।**

बड़ी हरड़ तथा रोहीतक (रोहिड़ा) का काढ़ा जौखार तथा पीपल का चूर्ण मिलाकर प्रातः (प्रतिदिन) पीने से यकृत्-विकार (जिगर का बढ़ना आदि), प्लीहा रोग गुल्म (वायुगोला) तथा उदर रोग नष्ट होते हैं।

### पुनर्नवादि क्वाथ

**पुनर्नवा दारुनिशा निशा शुण्ठी हरीतकी।। 120।।**
**गुडूची चित्रको भार्ङ्गी देवदारु च तैः शृतः।**
**पाणिपादोदरमुखप्राप्तं शोफं निवारयेत्।। 121।।**

पुनर्नवा, दारुहल्दी, हल्दी, सोंठ, बड़ी हरड़, गिलोय, चित्रक (चीता को जड़), भारंगी और देवदारु का बनाया हुआ काढ़ा हाथ, पाँव, उदर तथा मुख पर उत्पन्न शोथ को दूर कर देता है।

### फलत्रिक क्वाथ

**फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव पाययेत्।**
**वातश्लेष्मकृतं हन्ति शोथं वृषणसम्भवम्।। 122।।**

त्रिफला का बनाया हुआ क्वाथ गोमूत्र मिलाकर पिलायें तो वह अण्डकोष पर उत्पन्न हुये वात तथा कफ के सूजन को नष्ट करता है।

### रास्नादि क्वाथ

**रास्नामृताबलायष्टीगोकण्टैरण्डजः शृतः।**
**एरण्डतैलसंयुक्तो वृद्धिमन्त्रभवां जयेत्।। 123।।**

रास्ना, गिलोय, बरियारा, मुलेठी, गोखरू तथा एरण्ड की जड़ के क्याथ में एरण्ड का तैल मिलाकर पीने से अन्त्रवृद्धि (आँत उतरना) को जीतता है।

**वक्तव्य**–अन्त्रवृद्धि-नाशक इस क्वाथ को महीनों तक सेवन कराना चाहिये।

### काञ्चनार क्वाथ

**काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत्।**
**गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः।। 124।।**

कचनार की छाल का क्वाथ सौंठ का चूर्ण मिलाकर अथवा वरुण की छाल का क्वाथ मधु मिलाकर पीने से गण्डमाला को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ को 'काञ्चनारगुग्गुलु' (शा० म०

खं० अ० 7) के साथ दो-तीन मास तक निरन्तर पीने से गण्डमाला रोग समूल नष्ट हो जाता है।

### शाखोटक क्वाथ

**शाखोटवल्कलक्वाथं गोमूत्रेण युतं पिबेत्।**
**श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये।। 125।।**

शाखोट (सिहोरा) की छाल का क्वाथ गोमूत्र मिलाकर श्लीपद (फीलपाँव) का विनाश करने के लिए तथा मेदोदोष (मेदाविकार) की निवृत्ति के लिए पीना चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ का सेवन भी बहुत दिनों तक करना चाहिये, तभी लाभ होता है।

### पुनर्नवादि क्वाथ

**पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोऽन्तर्विदधीञ्जयेत्।**
**तथा शिग्रुभवः क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।। 126।।**

पुनर्नवा तथा वरुण (वरना) का काढ़ा अथवा सहिजन की छाल का काढ़ा भुनी हींग, सेंधा नमक मिलाकर पीने से अन्तर्विद्रधि (भीतरी फोड़ा) को जीतता है।

### वरुणादिगण में ऊषकादिगण का योग

**वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ।**
**ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे।। 127।।**

वरुणादिगण के द्रव्यों का क्वाथ बनाकर और उसमें ऊषकादिगण के द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर अपक्व (न पके हुये) मध्यकाय (मध्य शरीर या धड़) के भीतरी अवयवों (यकृत, वृक्क आदि) में होने वाले विद्रधि (फोड़ा) की शान्ति के लिए पीना चाहिये।

### वरुणादिगण क्वाथ

**वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः।**
**अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम्।। 128।।**
**सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः।**
**अजश्शृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी।। 129।।**
**वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः।**
**हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाभ्यन्तरविद्रधीन्।। 130।।**

वरुण (वरना), वकपुष्प (अगस्त्यवृक्ष के फूल), बेल, अपामार्ग (चिरचिटा), चित्रक (चीता), अरणी छोटी, अरणी बड़ी, सहिजन मीठा, सहिजन कड़ुवा, बनभण्टा, कण्टकारी, तीन प्रकार की कटसरैया–1. पीले फूल की, 2. लाल फूल की और 3. नीले फूल की, मरोड़फली, मेढ़ासिंगी, चिरायता, काकड़ासिंगी, कुन्दरु, करञ्ज तथा शतावर यह 'वरुणादिगण' है (देखें–सु० सू० अ० 38)। इसका काढ़ा कफ और मेदा को हरता है तथा गुल्म (वायुगोला), शिर की पीड़ा तथा भीतरी फोड़ों को नष्ट करता है।

**ऊषकादिगण**–ऊषक (खारी मिट्टी से निकाला हुआ नमक), तूतिया, हींग, हरा तथा लाल कौसीस, सेंधा नमक तथा शिलाजीत। यह मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वायुगोला, मेदोदोष तथा कफ को हटाता है। इस ऊषकादिगण में तूतिया और लालकासीस ये दोनों द्रव्य वमनकारक हैं, अतः इसके सेवन से वमन हो तो चिन्ता न करें। देखें–सु० सू० अ० 38।

### खदिरादि क्वाथ

**खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः।**
**विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः।। 131।।**

खैरसार तथा त्रिफला का क्वाथ भैंस का घी तथा वायविडंग का चूर्ण मिलाकर पीने से 'भगन्दर' को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ से भगन्दर के घाव को धोना भी चाहिये।

### पटोलादि क्वाथ

**पटोलत्रिफलानिम्बकिरातखदिरासनैः ।**
**क्वाथः पीतो जयेत् सर्वानुपदशान् सगुग्गुलुः।। 132।।**

परवल की पत्ती, त्रिफला, नीम का छाल, चिरायता, खैरसार, विजयसार तथा शुद्ध गुग्गुलु का काढ़ा पीने से सब प्रकार के 'उपदंश' को जीतता है।

**वक्तव्य**–उक्त उपदंशनाशक पटोलादि क्वाथ में शुद्ध गुग्गुल को प्रक्षेप रूप में डालना चाहिये, किन्तु साथ ही उसमें पका देने से घुलने में सरलता होती है और पीने में भी सुविधा रहती है। यह क्वाथ उस स्थिति में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है, जब रोगी की हथेलियों में काले दाग पड़ जाते हैं अथवा शरीर भर में फोड़े निकल जाते हैं। इसे कैशोरगुग्गुल के साथ भी पिलाया जाता है। यह 'आतशक' या गर्मी की भी परमोत्तम औषधि है। इसके सेवन काल में रोगी को केवल चने की रोटी घी के साथ देनी चाहिये और नमक, खटाई आदि का परहेज कराना चाहिये।

### अमृतादि क्वाथ

**अमृतैरण्डवासानां क्वाथ एरण्डतैलयुक्।**
**पीतः सर्वाङ्गसञ्चारि वातरक्तं जयेद् ध्रुवम्।। 133।।**

गिलोय, एरण्ड की जड़ तथा अडूसा की पत्ती का काढ़ा

एरण्ड (रेड़ी) का तेल मिलाकर पीने से सम्पूर्ण शरीर में फैले हुये वातरक्त को अवश्यमेव जीत लेता है।

### पटोलादि क्वाथ

**पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी।**
**एतत्क्वाथो जयेत् पीतो वातास्रं दाहसंयुतम्।। 134।।**

परबल की पत्ती, त्रिफला, कुटकी, गिलोय तथा शतावर का क्वाथ पीने से दाह से युक्त 'वातरक्त' का विनाश हो जाता है।

### धात्रीखदिर क्वाथ

**क्वाथोऽवल्गुजचूर्णाढ्यो धात्रीखदिरसारयोः।**
**जयेत् सुशीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनां नृणाम्।। 135।।**

आँवला तथा खैरसार का क्वाथ बाकुची का चूर्ण मिलाकर बहुत दिनों तक प्रतिदिन पीने से पथ्यपूर्वक रहने वाले मनुष्यों के श्वित्र (श्वेतदाग या फुलबहरी) को जीत लेता है।

### लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ

**मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारु निशामृता।**
**निम्बश्चैषां कृतः क्वाथो वातरक्तविनाशनः।। 136।।**
**पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमण्डलजिन्मतः।**

मजीठ, त्रिफला, कुटकी, वच, दारुहल्दी, गिलोय तथा नीम का काढ़ा वातरक्त को नष्ट करता है और पामा (खुजली), कापालिक कुष्ठ तथा रक्तमण्डल (रक्तपित्ती) को जीतता है।

### बृहन्मञ्जिष्ठादि क्वाथ

**मञ्जिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः।। 137।।**
**भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिम्बनिशाद्वयफलत्रिकैः।**
**पटोलकटुकीमूर्वाविडङ्गासनचित्रकैः।। 138।।**
**शतावरीत्रायमाणाकृष्णेन्द्रयववासकैः।**
**भृङ्गराजमहादारुपाठाखदिरचन्दनैः।। 139।।**
**त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः।**
**शाखोटकमहानिम्बकरञ्जातिविषाजलैः।। 140।।**
**इन्द्रवारुणिकानन्तासारिवापर्पटैः समैः।**
**एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं कणागुग्गुलसंयुतम्।। 141।।**
**अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तार्दिते तथा।**
**उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके।। 142।।**
**मेदोदोषे नेत्ररोगे मञ्जिष्ठादिः प्रशस्यते।**

मजीठ, त्रिफला, कुरैया की छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, भटकटैया, बच, नीम की छाल, दारुहल्दी, हल्दी, त्रिफला, परवल की पत्ती, कुटकी, मरोड़फली, वायविडंग विजयसार, चित्ता, शतावर, त्रायमाणा, पीपल, इन्द्रजौ, अडूसा की पत्ती, भंगरैया (भाँगरा), देवदारु, पाठा, खैरसार, लालचन्दन, निसोत (सफेद), बरना की छाल, चिरायता, बावची, अमलतास, सिहोरा की छाल, बकायन की छाल, करंज, अतीस, नेत्रबाला, इन्द्रायण की जड़, अनन्तमूल सारिवा और पित्तपापड़ा—इन सब द्रव्यों को लेकर जौकुट कर 2-4 तोला की एक मात्रा का काढ़ा बनायें तथा पीपल का चूर्ण तथा शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर पीयें। अठारह प्रकार के कुष्ठों, वातरक्त, लकवा, उपदंश, फीलपाँव, प्रसुप्ति (यह कुष्ठ का पूर्वरूप है अथवा किसी स्थान के शून्य हो जाने), अर्द्धांग, मेदोविकार तथा नेत्ररोगों में यह मञ्जिष्ठादि क्वाथ बहुत लाभ करता है।

**वक्तव्य**—यह क्वाथ रक्तशुद्धि की परमोत्तम तथा प्रसिद्ध औषध है।

### पथ्यादि क्वाथ

**पथ्याक्षधात्रीभूनिम्बनिशानिम्बामृतायुतैः।। 143।।**
**कृतः क्वाथः षडङ्गोऽयं सगुडः शीर्षशूलहृत्।**
**भ्रूशंङ्खकर्णशूलानि तथार्धशिरसो रुजम्।। 144।।**
**सूर्यावर्तं शङ्खकं च दन्तपातं च तद्रुजम्।**
**नक्तान्ध्यं पटलं शुक्रं चक्षुःपीडां व्यपोहति।। 145।।**

बड़ी हरड़, बहेड़ा, आँवला, चिरायता, हल्दी, नीम की छाल तथा गिलोय, इन द्रव्यों द्वारा बनाया हुआ यह '**षड्ङगक्वाथ**' कहलांता है। इसमें गुड़ मिलाकर पीने से यह शिर की पीड़ा को हरता है। भौं, शंख (पुटपुटी) तथा कान के शूल को, आधाशीशी की पीड़ा को, सूर्यावर्त्त (जो सिरदर्द सूर्य के साथ दोपहर तक बढ़ता है और सूर्य के साथ ही सायंकाल तक घट जाता है), शंखक नामक शिरोरोग, दाँत गिरना, दाँत की पीड़ा, रतौंधी, नेत्रपटल के रोग, फूली तथा नेत्रपीड़ा को दूर करता है।

**वक्तव्य**—इस क्वाथ में दो तोला घी डालकर पिलाने से बहुत लाभ होता है।

### वासादि क्वाथ

**वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचन्दनचित्रकैः।**
**भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलाम्बुदैः।। 146।।**
**यवकालिङ्गकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षरोगहा।**
**वैस्वर्यं पीनसं श्वासं नाशयेदुरसः क्षतम्।। 147।।**

अडूसा की पत्ती, सोंठ, गिलोय, दारुहल्दी, लालचन्दन,

चित्ता, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, परवल की पत्ती, त्रिफला, नागरमोथा, जौ, इन्द्रजौ तथा कुरैया की छाल का क्वाथ आँख के सभी रोगों को नष्ट करता है। स्वरभेद, पीनस (जुकाम नामक प्रसिद्ध नासारोग) को, श्वास को और उरःक्षत (वक्षःस्थल के भीतरी घाव) को नष्ट करता है।

**अमृतादि क्वाथ**

**अमृतात्रिफलाक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः।**
**सक्षौद्रः शीलितो नित्यं सर्वनेत्रव्यथां जयेत्।। 148।।**

गिलोय और त्रिफला का क्वाथ पीपल का चूर्ण तथा मधु मिलाकर बहुत दिनों तक प्रतिदिन पीने से यह आँख की पीड़ा को जीतता है।

**पञ्चवल्कल क्वाथ**

**अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम्।**
**व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात् स्मृतम्।। 149।।**

पीपल वृक्ष, गूलर, पाकर (पिलखन), बरगद तथा बेत की छालों का क्वाथ बनाकर प्रक्षालन करने (धोने) से व्रण (घाव), शोथ तथा उपदंश का नाश होता है।

**वक्तव्य**–उक्त क्वाथ द्वारा व्रणादि के प्रक्षालन का उपदेश देकर आचार्य शार्ङ्गधर ने यह बात व्यक्त की है, कि क्वाथ केवल पीने के ही काम में नहीं आते, अपितु व्रण धोने, आँख-नाक में डालने तथा कुल्ले करने आदि कामों में भी प्रयुक्त किये जाते हैं। इन क्वाथों का अर्क निकालकर भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रसंग में कतिपय प्रकरणोचित विषयों का यहाँ संग्रह किया जा रहा है।

**पाठादि क्वाथ**–पाठा, मरोड़फली, चिरायता, देवदार की छाल, सोंठ, इन्द्रजौ, सारिवा तथा कुटकी का क्वाथ–यह धात्री (धाय) के विकृत दूध को शुद्ध करता है।

**निम्बादि क्वाथ**–नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाठा, परवल की पत्ती, कुटकी, लालचन्दन, सफेदचन्दन, खस, आँवला, अडूसा की पत्ती और जवासा–यह 'निम्बादिक्वाथ' चीनी डालकर पीने से विसर्प और ज्वर से युक्त सभी प्रकार की 'मसूरिका' को नष्ट करता है।

**काञ्चनार क्वाथ**–जो शीतला थोड़ी निकल कर फिर शरीर में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् दिखलायी देकर फिर छिप जाती है, उसे कचनार की छाल के क्वाथ में (शुद्ध) स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण (दो रत्ती) मिलाकर पीने से उसे पुनः बाहर निकाल देता है।

**शतपुष्पादि क्वाथ**–सोंफ या सोया, वायविडंग, अमलतास की गुद्दी, हरड़, बालवच पलाश के बीज, अजवायन, सुहागा की खील, गुड़, काकड़ासिंगी अतीस, भारंगी, मुनक्का नागरमोथा तथा पीपल इन सब द्रव्यों का समान भाग क्वाथ काला नमक डालकर बालकों को पिलाना चाहिये। यह उत्तम **जन्मघुट्टी** है।

**लंघन या अपतर्पण**–वातादि दोषों से जकड़े हुये शरीर वाले रोगी को दोषों की उत्कटता की शान्ति के लिए दोष तथा बल का विचार करके 'अपतर्पण' (लंघन) कराना आवश्यक होता है।

**लंघन के अयोग्य व्यक्ति**–किन्तु वह अपतर्पण वातव्याधि, भूख, प्यास, मुखशोष तथा भ्रमरोग से पीड़ित तथा गर्भवती नारी, वृद्ध, बालक, दुर्बल तथा भीरु (डरपोक) को नहीं कराना चाहिये।

**लंघन का फल**–लंघन अव्यवस्थित या विकृत दोषों तथा अग्नि को व्यवस्थित करता है, दोषों को पकाता है, ज्वर को नष्ट करता है, अग्नि को दीप्त करता है, भोजन की इच्छा, खाने में रुचि (स्वाद) तथा शरीर में हल्कापन को उत्पन्न करता है।

**सुलंघित का लक्षण**–जब अधोवायु, मूत्र तथा पुरीष का उचित रूप से विसर्ग होने लगे, शरीर में हल्कापन या स्फूर्ति हो; हृदय, उद्गार, कण्ठ तथा मुख शुद्ध हो जाये; तन्द्रा, क्लम दूर हो जाये, पसीना निकलने लगे, रुचि उत्पन्न हो जाये, भूख तथा प्यास एक साथ लगने लगे और अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाये तब समझना चाहिये कि 'लंघन' भली-भाँति हो गया है।

**अतिलंघन के दोष**–आवश्यकता से अधिक लंघन करने से जोड़-जोड़ में वेदना, अंग-अंग में पीड़ा, खाँसी, मुखशोष, भूख का नाश, भोजन में अरुचि, अत्यन्त प्यास, कान, नाक में दुर्बलता, मन में खेद, उद्गारों की अधिकता हृदय में अन्धकार या मूर्च्छा, शरीर, जठराग्नि तथा बल का क्षय आदि दोष होने लगते हैं।

**लंघन का सदुपयोग**–लंघन तभी तक करे जब तक प्राण या बल का ह्रास न हो, क्योंकि जिस आरोग्य के लिए चिकित्सा की जाती है, उसका अधिष्ठान बल ही है।

**प्रमथ्यापाक-विधि**

**प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात् कल्कीकृताच्छृतात्।**
**तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम्।। 150।।**

एक पल (4 तोला) औषधियों का कल्क (चटनी) बनाकर आठ गुने जल में पकाने से जो द्रव तैयार होता है, उसे 'प्रमथ्या' कहा जाता है। इसे दो पल (8 तोला) की मात्रा में पीना चाहिये।

**वक्तव्य**—यह भी एक प्रकार का क्वाथ ही है। अन्तर केवल यह है कि इसमें औषधियों को चटनी के समान पीस लिया जाता है और आठ गुने जल में पकाया जाता है। क्वाथ-निर्माण में औषधियों को जौकुट करके सोलह गुने जल में पकाया जाता है।

**मुस्तकादि प्रमथ्या**

**मुस्तकेन्द्रयवैः सिद्धा प्रमथ्या द्विपलोन्मिता।**
**सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी।। 151।।**

नागरमोथा एवं इन्द्रजौ की बनायी हुई 'प्रमथ्या' ठंडी करके और उसमें मधु मिलाकर पीने से रक्तातिसार को नष्ट करती है।

**वक्तव्य**—यह उदाहरण मात्र है। इसी प्रकार दूसरी 'प्रमथ्याएँ' भी बनायी जा सकती हैं और इसमें मधु आदि का प्रक्षेप आवश्यकतानुसार क्वाथ के ही समान डालना चाहिये।

**यवागू-निर्माण-विधि**

**साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले।**
**तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद् घनाम्।। 152।।**

चार पल (16 तोला) औषध द्रव्य को चौसठ पल (3 सेर और 16 तोला) जल में पकाये, इसके आधा शेष रहने पर उस क्वाथ में गाढ़ी (खीर जैसी) 'यवागू' (चावल आदि डालकर) तैयार करें।

**वक्तव्य**—उचित चिकित्सा हो जाने पर चिकित्सिक को रोगी के पथ्य (खान-पान) की व्यवस्था करनी होती है। अतएव आचार्य शार्ङ्गधर ने 'यवागू' तथा 'यूप' आदि का विधान बतलाया है। 'यवागू' के विधान में औषधियों की यह (16 तोला) मात्रा बहुत अधिक बतलायी गयी है। इसलिये 'स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः' को भली-भाँति स्मरण रखना चाहिये और 'वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढकेऽम्भसि। भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदाचिदरुचिर्भवेत्'।। के अनुसार एक पल देने का भी विधान किया गया है, तथापि आम्रादि के वल्कल जैसी सौम्य वस्तुएँ सोलह तोला हानिकर नहीं, अपितु लाभकर ही होती हैं।

**आम्रादि यवागू**

**आम्राम्रातकजम्बूत्वक्कषाये विपचेद् बुधः।**
**यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत्।। 153।।**

आम, अमाड़ा और जामुन की छाल के क्वाथ में चावलों का 'यवागू' बनाये और इसे खाकर 'ग्रहणीरोग' पर विजय प्राप्त करें।

**यूष-निर्माण-विधि**

**कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी।**
**वारिप्रस्थेन विपचेत् स द्रवो यूष उच्यते।। 154।।**

कल्क किये हुये द्रव्य (कुलथी, मूँग आदि) एक पल (4 तोला), सोंठ तथा पीपल प्रत्येक आधा कर्ष (छः माशा) लेकर एक प्रस्थ (लगभग एक सेर या बारह छटाँक चार तोला) जल में पकाये। यह द्रव 'यूष' कहलाता है।

**वक्तव्य**—यूष दो प्रकार का होता है—1. अकृत (असंस्कृत) तथा 2. कृत (संस्कृत) (छौंक आदि लगाया हुआ या मसालेदार)। यथा—'अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटुकैर्विना। विज्ञेयं लवणं स्नेहं कटुकैः संयुतं कृतम्'।। (सु० सू० अ० 46)। अर्थात् जिसमें स्नेह (घी), नमक एवं कटुपदार्थ (मरिच, सोंठ, अदरख) आदि द्रव्यों का छौंक नहीं लगाया जाता है, वह 'अकृत' यूष है तथा जिसमें उक्त द्रव्य डाले जाते हैं, वह 'कृत' यूष कहलाता है। यूष को पतली दाल कहा जा सकता है। इसे अधिक से अधिक स्वादिष्ट बनाकर देना चाहिये।

**सप्तमुष्टिक यूष**

**कुलत्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकग्रन्थिकैः।**
**शुण्ठीधान्याकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मानिलापहः।। 155।।**
**सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वरं जयेत्।**
**आमवातहरः कण्ठहृद्वक्त्राणां विशोधनः।। 156।।**

कुलथी की दाल, जौ, बेर (खट्टे बेर), मूँग की दाल, मूली के टुकड़े, सोंठ या अदरख तथा धनिया का यूष कफ और वात को नष्ट करता है। इसका नाम 'सप्तमुष्टिक यूष' है। यह सन्निपात ज्वरों को जीतता है, आमवात (गठिया आदि) को हरता है। कण्ठ, हृदय एवं मुख को शुद्ध करता है अर्थात् कण्ठ की रुकावट, हृदय के भारीपन तथा मुख की चिपचिपाहट को दूर करता है।

**वक्तव्य**—इसमें कुलथी, जौ तथा मूँग की दाल आहारपूर्ति के लिए, बेर का चूर्ण खटाई के लिए, सोंठ कटुता के लिए, मूली रुचि बढ़ाने के लिए तथा धनिया सुगन्धि के लिए डाला

जाता है। आप आवश्यकतानुसार नमक, हींग तथा जीरा आदि का भी प्रयोग कर सकते हैं। इससे यह और भी स्वादिष्ट बन जायेगा।

### पानादि विधि

क्षुण्णं द्रव्यपलं साध्यं चतु:षष्टिपले जले।
अर्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसंविधौ ।। 157 ।।

एक पल द्रव्य को जौकुट कर चौसठ पल जल में पकाना चाहिये और आधा शेष रहने पर पीने के लिए तथा भात आदि (पेया, यूष आदि) बनाने के लिए काम में लाना चाहिये।

**वक्तव्य**–रोगी के पीने के लिए जल उक्त विधि से तैयार करना चाहिये और इसी जल में रोगी के लिए पथ्य भी तैयार किया जा सकता है।

### षडङ्ग-पानीय

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः ।
जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम् ।। 158 ।।

खस, पित्तपापड़ा, नेत्रबाला, नागरमोथा, सोंठ तथा लालचन्दन से पकाये हुये और ठंडा किये हुये जल को पीने से प्यास तथा ज्वर का नाश होता है।

**वक्तव्य**–यह पानीय अपने आश्चर्यजनक गुणों के कारण इतना प्रसिद्ध और प्रचलित हो गया है, कि प्रत्येक चिकित्सक प्रतिदिन इससे ज्वरपीड़ित जनसमाज को लाभ पहुँचा रहा है। इसका नाम 'षडङ्ग–पानीय' है। इससे ज्वर के सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। जो लोग इसका प्रयोग नहीं करते हों वे भी इस उत्तम योग से लाभ उठा सकते हैं।

### उष्णोदक-विधि

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा।
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ।। 159 ।।

जल को पकाने पर आठवाँ भाग अवशिष्ट रहने पर (इसे 'आठ कटोरी का पानी' भी कहा जाता है) तथा चौथाई भाग अवशिष्ट रहने पर अथवा केवल क्वाथ (उबाल देने) मात्र से ही सिद्ध (उत्तम) 'उष्णोदक' मान लिया जाता है।

**वक्तव्य**–प्राय: रोगियों को उष्णजल ही दिया जाता है और वह उक्त प्रकार से ही उष्ण करके देना चाहिये।

### उष्णोदक के गुण

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम्।
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ।। 160 ।।

यदि गर्म जल रात्रि में (सोते समय) पिया जाये तो कफ, आमवात तथा मेदोदोष को नष्ट करता है वस्ति (मूत्राशय) को शुद्ध करता है, अग्नि को दीप्त करता है, खाँसी, श्वास तथा ज्वर को हरता है।

**वक्तव्य**–उक्त गुणों के अतिरिक्त यह उष्णोदक पीनस (जुकाम) तथा कोष्ठबद्धता कब्जियत आदि को भी हरता है।

### क्षीरपाक-विधि

क्षरिमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्।
[1]क्षीरावशेषं कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ।। 161 ।।

द्रव्य से आठ गुना दूध तथा दूध से चौगुना जल मिलाकर उसे पकाना चाहिये और पकते-पकते जब दूध मात्र शेष रह जाये तो उतार लें। यही क्षीरपाक की विधि है।

### पञ्चमूलपक्व-क्षीर

(सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम्।
श्वासात् कासाच्छिरःशूलात् पार्श्वशूलात् सपीनसात् ।। 162 ।।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः।)

सभी प्रकार के दूध जीर्ण (पुराने) ज्वरों की उत्तम औषधि तो हैं ही, किन्तु लघुपञ्चमूल (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, वनभण्टा, कण्टकारी तथा गोखरू) के साथ पके हुये दूध को पाकर ज्वर से पीड़ित मनुष्य श्वास, कास, शिर की पीड़ा, पार्श्वशूल (पसली की पीड़ा) तथा पीनस (जुकाम) से भी मुक्त हो जाता है।

### त्रिकण्टकपक्व-क्षीर

(त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।। 163 ।।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं कफज्वरहरं पयः।)

गोखरू, बरियारा, भटकटैया, गुड़ तथा सोंठ से पकाया हुआ दूध पुरीष (मल) तथा मूत्र के बन्ध को नष्ट करता है और कफज ज्वर को हरता है।

**वक्तव्य**–उक्त दोनों ही क्षीर-योगों से वे रोग दूर होते हैं, जिनमें आमदोष की अधिकता के कारण प्रायः दूध पीने की व्यवस्था नहीं की जाती है, किन्तु उक्त औषधियों द्वारा पकाया गया दूध उक्त रोगों का नाशक हो जाता है।

**शीतोपद्रव चिकित्सा**–शीत, वर्षा तथा वायु के लगने से उत्पन्न स्तम्भ, कम्पन आदि उपद्रवों की शान्ति के लिए पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) तथा

---

1. पाठभेद 'क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत्'।

केसर से पकाया गया दूध, गुरु, उष्ण तथा स्निग्ध भोजन, मद्य, मांस, अग्नि, रूई से भरा लिहाफ और बिस्तरा का सेवन करना चाहिये।

**यवागू आदि की निर्माण-विधि**

**अथान्नप्रक्रियात्रैव प्रोच्यते नातिविस्तराद्।। 164।।**
**यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृशरा घना।**
**तण्डुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता।। 165।।**
**यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी।**

इसके पश्चात् संक्षेप से 'आहार' बनाने की विधि का वर्णन किया जाता है। आहार द्रव्य (चावल आदि) की अपेक्षा छः गुने जल में 'यवागू' बनायी जाती है और इससे कुछ गाढ़ी चौगुने या पचगुने जल में बनायी हुई 'कृशरा या पतली खिचड़ी' कहलाती है। चावल तथा मूँग अथवा उड़द की दाल तथा तिलों को (मिलाकर) बनायी हुई 'यवागू' (खीर जैसी पतली खिचड़ी) हितकर होती है। यह ग्राहिणी (मल के बाँधने वाली) है, बल्या (बल या शक्ति को बढ़ाने वाली) है, तर्पणी (तृप्ति करने वाली) है और वायु को नष्ट करती है।

**वक्तव्य**—उक्त विधान में चावल, दाल तथा तिलों की मात्रा निश्चित करने का भार चिकित्सक अथवा पाचक (रसोइया) पर छोड़ दिया जाता है। अतः उसी को इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। खिचड़ी में चावल तीन भाग और दाल दो भाग डालना चाहिये। इस यवागू तथा पेया आदि में जो पानी डाला जाता है, वह पहले आवश्यकतानुसार औषधियों से पकाया भी जा सकता है।

**विलेपी-विधि**

**विलेपी घनसिक्था स्यात् सिद्धा नीरे चतुर्गुणे।। 166।।**
**तर्पणी बृंहणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी।**

आहार-द्रव्यों से चौगुने पानी में तैयार की हुई घनसिक्था (गाढ़ी सीठी युक्त) विलेपी (लपसी) कही जाती है। यह तर्पणी (तृप्तिकारक) होती है, बृंहणी (धातुवर्द्धिनी) है, हृद्या (हृदय को शक्ति देने वाली) है, मधुरा (स्वादिष्ट) है तथा पित्त को नष्ट करती है।

**पेया तथा यूष**

**द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले।। 167।।**
**सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किञ्चिद् घनस्ततः।**
**पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।। 168।।**
**यूषो बल्यस्ततः कण्ठ्यो लघुपाकः कफापहः।**

आहार-द्रव्य से चौदह गुने जल में बनाई हुई अत्यन्त पतली बहुत थोड़ी-सी सीठी से युक्त वस्तु के विद्वान् लोग 'पेया' (पीने योग्य) कहते हैं और इसकी अपेक्षा कुछ गाढ़ा 'यूष' होता है। 'पेया' अत्यन्त हल्की (शीघ्र पचने वाली) होती है, मल को बाँधती है और धातुओं को पुष्ट करती है तथा 'यूष' बल को बढ़ाता है, गले के विकारों को हरता है, शीघ्र पचता है तथा कफ को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—इस यूष-प्रकरण में **'खडयूष'** तथा **'काम्बलिक'** का ग्रहण नहीं किया गया, अतः प्रकरणोचित समझ कर इसे 'चक्रदत्त' अतिसार चिकित्सा श्लोक 28-29 से उद्धृत किया जा रहा है। देखें–'तक्रं कपित्थचाङ्गेरी-मरिचाजाजिचित्रकैः। सुपक्वः खडयूषोऽयमयं काम्बलिकोऽपरः। दध्यम्लो लवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः।।

**खडयूष**—मठा में कैथ का फल, अमलोनियाँ, कालीमिर्च, जीरा, चीता की जड़ के साथ खड़े मूँग भी डालकर खडयूष बनायें। तीक्ष्ण द्रव्यों के 6-6 माशे एवं साधारण द्रव्यों को 1-1 पल लें। एक प्रस्थ मठा में पकाकर छान लें। इसे खडयूष कहते हैं।

**काम्बलिक**—दही, नमक, स्नेह, तिल एवं उड़द का चूर्ण मिलाकर जो तैयार किया जाता है, उसे 'काम्बलिक' कहते हैं।

**भक्त-निर्माण-विधि**

**जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम्।। 169।।**
**विपचेत् स्त्रावयेन्मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः।**

चार पल (16 तोला) चावलों को चौदह गुने जल में पकाये और (भली-भाँति चावल गल जाने पर) माँड को छान या निकाल दें, इसे 'भक्त' या भात कहा जाता है। यह स्वादिष्ट तथा हल्का (सुपाच्य) होता है।

**वक्तव्य**—इसमें जल इतना अधिक इसलिये दिया गया है कि चावलों की पिच्छिलता भली प्रकार निकल जाये। वैसे तो जिसका माँड नहीं निकाला जाता ऐसा भात भी बनाया जाता है, किन्तु यह गुरु होने के कारण रोगी के लिए उपयोगी नहीं होता।

**मण्ड-निर्माण-विधि**

**नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः।। 170।।**
**शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः।**

चावल आदि से चौदह गुने जल में बनाया सिक्थ (सीठी या भात) से रहित 'मण्ड' कहलाता है। यह सोंठ तथा सेंधा नमक डालकर पीने से पाचन और दीपन होता है।

**वक्तव्य**–भक्त और मण्ड बनाने की विधि एक ही है, केवल दोनों में स्वरूप भेद है।

**अष्टगुण मण्ड**

**धान्यत्रिकटुसिन्धूत्थमुद्गतण्डुलयोजितः ।। 171 ।।**
**भृष्टश्च हिङ्गुतैलाभ्यां स मण्डोऽष्टगुणः स्मृतः।**
**दीपनः प्राणदो वस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ।। 172 ।।**
**ज्वरजित् सर्वदोषघ्नो मण्डोऽष्टगुण उच्यते।**

धनियाँ, सोंठ, मिरच, पीपल तथा सेंधानमक से युक्त मूँग तथा चावलों का मण्ड हींग तथा तैल का छौंक लगा देने पर 'अष्टगुड मण्ड' कहलाता है। इसमें निम्न आठ गुण हैं– 1. अग्नि को दीप्त करता है, 2. प्राण (बल या शक्ति) देता है, 3. वस्ति को शुद्ध करता है, 4. रक्त को बढ़ाता है, 5. ज्वर को जीतता है, 6. वायु, 7. पित्त और 8. कफ को हरता है, अतएव इस मण्ड को 'अष्टगुण' कहा जाता है।

**यवमण्ड**

**सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमण्डो यवैर्भवेत् ।। 173 ।।**
**कफपित्तहरः कण्ठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः।**

सुकण्डित (भली प्रकार छिलका-भूँसी उतारे हुये) तथा कुछ भूने हुये जौ का जो मण्ड होता है, उसे **'वाट्य-मण्ड'** कहा जाता है। यह कफ और पित्त को हरता है, कण्ठ के विकारों को दूर करता है तथा रक्त तथा पित्त को शुद्ध करता है।

**वक्तव्य**–जौ का दलिया भी बहुत लाभदायक होता है। 'वाट्य एव वाट्यकः' इस अर्थ में यहाँ 'स्वार्थे कन्' इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय हुआ है। यह भुने हुये जौ का ही नाम है।

**लाजमण्ड**

**लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्तितः ।। 174 ।।**
**श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः।**

**इति श्रीदामोदरसुनूना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे क्वाथादिकल्पना नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।2।।**

धान का लावा (खीलों) का अथवा भुने हुये चावलों का मण्ड 'लाजमण्ड' कहलाता है। यह कफ तथा पित्त को हरता है, मल को रोकता है तथा प्यास व ज्वर को जीतता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र डॉ० **ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्यादि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ।। 2 ।।

# तृतीयोऽध्यायः

# फाण्टादिकल्पना

### फाण्ट-निर्माण-विधि

**क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत्।**
**मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत् पटात्।।1।।**
**स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्।**
**मधुश्वेतागुडादींश्च क्वाथवत् तत्र निक्षिपेत्।।2।।**

उचित रूप से कूटे हुये एक पल (4 तोला) द्रव्य को मिट्टी के पात्र में रख दें और उसमें एक कुडव (16 तोला) उष्ण (खौलता हुआ) जल डाल दें, तत्पश्चात् उसे कपड़े से छान ले। इसका नाम 'चूर्णद्रव' तथा 'फाण्ट' है। इसकी मात्रा दो पल (8 तोला) है। इसमें शर्करा (मिश्री), मधु तथा गुड़ आदि (जो क्वाथ-प्रकरण में कहे गये हैं) प्रक्षेप द्रव्य क्वाथ के समान डालने चाहिये।

**वक्तव्य**–'चाय' इसी प्रकार बनायी जाती है। द्रव्यों को इतना कूट-पीस लेना चाहिये कि उनका सार जल में शीघ्र आ सके। इसका नाम 'चूर्णद्रव' रखने का तात्पर्य यही है कि द्रव्य पूर्णरूप से चूर्ण बना लिये जायें।

### बृहत् मधूकपुष्पादि फाण्ट

**मधूकपुष्पं मधुकं चन्दनं सपरूषकम्।**
**मृणालं कमलं लोध्रं गम्भारीं नागकेशरम्।।3।।**
**त्रिफला-सारिवा-द्राक्षा-लाजान् कोष्णजले क्षिपेत्।**
**सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वासौ हिमोऽथवा।।4।।**
**वातपित्तज्वरं दाहं तृणामूर्च्छारतिभ्रमान्।**
**रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा।।5।।**

महुआ का फूल, मुलेठी, लालचन्दन, फालसा (फल अथवा छाल), कमल की नाल (भसीडा), कमल, लोध, गम्भार की छाल, नागकेसर, त्रिफला, सारिवा, मुनक्का तथा लावा (धान की खील) इन सबको गुनगुने जल में डाल दें, तत्पश्चात् छानकर इस फाण्ट को चीनी तथा शहद डालकर पीये। इसका 'हिम' (देखें–अ० 4 म० खं०) भी बनाया जाता है। यह योग वात तथा पित्त को हरता है तथा दाह, तृष्णा (प्यास), मूर्च्छा, अरति (बेचैनी), भ्रम, रक्तपित्त और मद को नष्ट करता है इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।

### आम्रादि फाण्ट

**आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः।**
**उशीरेण कृतः फाण्टः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः।।6।।**
**पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूर्च्छां जयति दुस्तराम्।**

आम तथा जामुन के कोमल पत्ते, वट (बरगद) के शुंग (बरगद के प्रारम्भिक पत्तों का समूह, जो सींग जैसा होता है) और प्ररोह (दाढ़ी या बरोह) तथा खस का 'फाण्ट' शहद मिलाकर पीने से ज्वर को नष्ट करता है। प्यास, कै और अतिसार को तथा भीषण मूर्च्छा को जीत लेता है।

### लघुमधूकपुष्पादि फाण्ट

**मधूकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः ।।7।।**
**द्राक्षया च कृतः फाण्टः शीतः शर्करया युतः।**
**तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत्।।8।।**

महुआ का फूल, गम्भार की छाल अथवा फल, लालचन्दन, खस, धनियाँ तथा मुनक्का का बनाया हुआ 'फाण्ट' सर्वथा ठण्डा होने पर चीनी मिलाकर पीने से तृष्णा (प्यास) और पित्त को हरता है। दाह, मूर्च्छा तथा भ्रम को जीतता है।

### मन्थ-विधि

**मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते।**
**जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत्।।9।।**
**मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत्।**

'मन्थ' भी फाण्ट का ही एक भेद है, इसलिये इसका विधान भी इसी अध्याय में कहा जाता है। चार पल (16

तोला) ठण्डे जल में एक पल (4 तोला) द्रव्य (औषधि) को कूट-पीसकर मिट्टी के पात्र में डाल दें, तत्पश्चात् (जब औषधियाँ भीगकर मृदु हो जायें) उन्हें भली-भाँति मलकर छान ले और इसे दो पल (8 तोला) लेकर पीयें।

**वक्तव्य**—फाण्ट एवं मन्थ में भेद-फाण्ट उष्ण जल में तैयार किया जाता है और मन्थ शीतल जल में मथकर तैयार किया जाता है।

### खर्जूरादि मन्थ

**खर्जूरदाडिमीद्राक्षातिन्तिडीकाम्लिकामलैः ।। 10।।**
**सपरूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत्।**

खजूर के परिपक्व फल, अनारदाना, मुनक्का, तिन्तिडीक (जिरिष्क), इमली (पकी हुई), आँवला और फालसा के फल अथवा छाल का बनाया हुआ 'मन्थ' मद्य (मादक द्रव्यों) के सभी विकारों को दूर करता है।

**वक्तव्य**—यह मन्थ इसके अतिरिक्त पित्तज्वर में भी अत्यन्त लाभदायक होता है।

### मसूरसक्तु मन्थ

**क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमाम्भसा।। 11।।**
**मथिता वारयन्त्याशु छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम्।**

मसूरी के सत्तू अनार के रस में घुले हुये तथा मधु मिलाकर पीये हुये त्रिदोष से उत्पन्न होने वाली छर्दि (कै) को रोकती है।

### यवसक्तु मन्थ

**प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः।। 12।।**
**नातिसान्द्रद्रवो मन्थस्तृष्णादाहास्रपित्तहा।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे फाण्टादिकल्पना नाम तृतीयोऽध्यायः।। 3।।**

जौ के सत्तुओं को थोड़े घी में मथकर शीतल जल से न बहुत गाढ़ा और न बहुत पतला बनाया हुआ मन्थ पीने से तृष्णा (प्यास), दाह तथा रक्त-पित्त को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**-मसूर, जौ, चना आदि को भूनकर पीस लिया जाता है, इस आटे को सत्तू कहा जाता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त।। 3।।

# चतुर्थोऽध्यायः

# हिमनिर्माणादिकल्पना

### हिम-निर्माण-विधि

**क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्।**
**निशोषितं हिमः स स्यात् तथा शीतकषायकः।।1।।**
**तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः।**

एक पल (4 तोला) द्रव्य को भली-भाँति कूट-पीसकर मिट्टी के पात्र में डालकर छः पल (24 तोला) जल से भिगोकर रात भर रखा रहने दें, प्रातःकाल छानकर इसे पीयें। इसे 'हिम' तथा 'शीतकषाय' कहा जाता है। इसका परिमाण (प्रक्षेप आदि तथा पीने का) फाण्ट के समान है।

**वक्तव्य**–इसकी भी एक मात्रा दो पल (8 तोला) की है। फाण्ट में तथा मन्थ में चार-चार पल और हिम में छः पल जल डालने का विधान किया गया है और पीने के लिए 'दो पल' की आज्ञा दी है। इसका तात्पर्य यह है कि फाण्ट तथा मन्थ दिन भर में दो बार और हिम तीन बार पीना चाहिये।

### आम्रादि हिम

**आम्रं जम्बूं च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत्।।2।।**
**हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित्।**

आम, जामुन तथा अर्जुन (कौह) की छाल का चूर्ण बनाकर जल में डाल दें। इसका हिम प्रातःकाल मधु मिलाकर पीये। यह रक्तपित्त को जीत लेता है।

### मरिचादि हिम

**मरिचं मधुयष्टी च काकोदुम्बरपल्लवाः।।3।।**
**नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः।**

मरिच (20-30 दाना), मुलेठी, कठगूलर के कोमल पत्ते और नीलाकमल (नीलोफर) इनका हिम तृष्णा (प्यास) तथा कै (वमन) को रोकता है।

### नीलोत्पलादि हिम

**नीलोत्पलं बला द्राक्षा मधूकं मधुकं तथा।।4।।**
**उशीरं पद्मकं चैव काश्मरी च परूषकम्।**
**एतच्छीतकषायश्च वातपित्तज्वराञ्जयेत्।।5।।**
**सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः।**

नीलोत्पल (नीलोफर), बरियारा, मुनक्का, महुआ का फूल, मुलेठी, खस, पद्मकाठ, गम्भार तथा फालसा के फल अथवा छाल का बनाया हुआ 'शीतकषाय' या 'हिम' वातपित्त प्रधान ज्वरों को जीतता है और प्रलाप (बड़-बड़ाना), भ्रम, कै, मोह (बेहोशी) तथा तृष्णा को दूर करता है।

### अमृता हिम

**अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः।।6।।**
**वासायाश्च हिमः कासं रक्तपित्तज्वराञ्जयेत्।**

गिलोय का 'हिम' पात्र से जीर्णज्वर को हरता है और अडूसा की पत्ती का 'हिम' कास (खाँसी), रक्तपित्त तथा ज्वरों को जीतता है।

### धान्यक हिम

**प्रातः सशर्करः पेयो हिमो धान्यकसम्भवः।।7।।**
**अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत् स्रोतोविशोधनः।**

धनिया का 'हिम' प्रातःकाल चीनी या मिश्री डालकर पीना चाहिये। यह अन्तर्दाह (भीतरी जलन) तथा तृष्णा को जीतता है और स्रोतों (मूत्रवाही) को शुद्ध करता है।

### धान्यकादि हिम

**धात्रीधान्याकवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः।।8।।**
**रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत्।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे हिमकल्पना नाम चतुर्थोऽध्यायः।।4।।**

आँवला, धनिया, अडूसा अथवा मुनक्का तथा पित्तपापड़ा

का 'हिम' रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृष्णा तथा मुखशोष को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—शीतला रोग में शीतोपचार का महत्त्व होने के कारण इसका समावेश हिम-प्रकरण में किया गया है। बहुत लोग शीतलारोग में औषधोपचार नहीं करते, वे निम्न विधि से शीतला का उपचार करें।

**शीतला-चिकित्सा**—विविध प्रकार के मन्त्रों का जप, इष्टदेवता के निमित्त हवन, यथाशक्ति दान, कल्याणकारक मन्त्रों का उच्चारण, इष्टदेवता का षोडशोपचार से पूजन तथा ब्राह्मण, गौ, शिव तथा ग (शीतला देवी) का पूजन-इन उपायों से शीतला को शान्त करें।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का चौथा अध्याय समाप्त।। 4।।

## पञ्चमोऽध्यायः

# कल्ककल्पना

### कल्क-निर्माण-विधि

**द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत्।**
**प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसम्मितम्।।1।।**
**कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया।**
**सितागुडौ समौ दद्याद् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः।।2।।**

आर्द्र (सरस) या हरे द्रव्य को शिला पर पीस लिया जाता है, सूखा हो तो जल डालकर पीस लिया जाता है। इस द्रव्य को 'प्रक्षेप', 'आवाप' या 'कल्क' कहते हैं। इसकी मात्रा एक कर्ष (1 तोला) होती है। कल्क में यदि मधु, घी अथवा तैल मिलाना हो तो दुगुना मिलाना चाहिये और यदि चीनी अथवा गुड़ मिलाना तो समान भाग तथा यदि कोई द्रव (दूध, गोमूत्र आदि) मिलाना हो तो चौगुना मिलाना चाहिये।

**वक्तव्य**—जब किसी रोगी को औषधि या औषधियों की चटनी बनाकर दी जाती है, तो इस चटनी को 'कल्क' कहा जाता है।

### वर्द्धमानपिप्पली कल्क

**त्रिवृद्ध्या पञ्चवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याथवा कणाः।**
**पिबेत् पिष्ट्वा दशदिनं तास्तथैवापकर्षयेत्।।3।।**
**एवं विंशद्दिनैः सिद्धं पिप्पलीवर्द्धमानकम्।**
**अनेन पाण्डुवातास्त्रकासश्वासारुचिज्वराः।।4।।**
**उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यन्त्युरोग्रहाः।**

कणा अर्थात् पिप्पली को प्रतिदिन तीन-तीन अथवा पाँच-पाँच अथवा सात-सात बढ़ाकर और पीसकर (दूध के साथ) दस दिन-पर्यन्त दूध में मिलाकर पीयें और फिर उसको उसी प्रकार (जिस प्रकार बढ़ाया था) घटायें। इस प्रकार बीस दिनों में 'पिप्पलीवर्द्धमानक' योग सिद्ध हो जाता है। इसके सेवन से पाण्डुरोग, वातरक्त, कास, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, अर्श (बवासीर), क्षय (यक्ष्मा), कफ के विकार, वात-विकार तथा उरोग्रह (फुफ्फुस तथा हृदय की गति की रुकावट) रोग नष्ट हो जाते हैं।

**वक्तव्य**—यह परमोत्तम योग है। इसमें अधिक से अधिक दूध पिलाना चाहिये। इसके सेवन काल में रोगी को पाँच-सात सेर तक दूध पिलाया जा सकता है। इसी से पिप्पली सेवन से उत्पन्न गर्मी शान्त होती है। इसका विस्तृत स्वरूप चरकसंहिता में देखें।

### निम्बपत्र कल्क

**लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः।।5।।**
**भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मक्रमीञ्जयेत्।**

नीम के पत्तों के कल्क का लेप करने से व्रण का शोधन हो जाता है और उसका घाव शीघ्र भर जाता है तथा इसे खाने से कै, कोढ़, पित्त-विकार, कफ-विकार तथा क्रिमि का नाश होता है।

### महानिम्ब कल्क

**महानिम्बजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः।।6।।**

वकायन के जड़ की छाल का 'कल्क' गृध्रसी (रिंगण) नामक वातव्याधि को जीतता है।

### रसोन कल्क

**शुद्धः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः।**
**वातरोगाञ्जयेत् तीव्रान् विषमज्वरनाशनः।।7।।**

केवल लहसुन का कल्क बनाकर और तिल के तेल में मिलाकर खाने से भीषण वातव्याधियों (अपतन्त्रक, पक्षाघात तथा अर्दित आदि) को तथा विषमज्वरों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—लहसुन को शुद्ध या साफ करने की विधि

तथा उसके पथ्य निम्नलिखित योग में देखें। एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि जहाँ तक हो सके ऐसे अवसरों पर 'एक पुतिया' लहसुन ही प्रयोग में लाना चाहिये। वह अधिक प्रभावकारक होता है।

**द्वितीय रसोन कल्क**

**पक्वकन्दरसोनस्य गुलिका निस्तुषीकृता।**
**पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात् तदङ्कुरम्।। 8।।**
**तदुग्रगन्धनाशाय रात्रौ तक्रे विनिक्षिपेत्।**
**अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत् ततः।। 9।।**
**तन्मध्ये पञ्चमांशेन चूर्णमेषां विनिक्षिपेत्।**
**सौवर्चलं यवानीं च भर्जितं हिङ्गु सैन्धवम्।। 10।।**
**कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत्।**
**एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः।। 11।।**
**खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया।**
**अनुपानं ततः कुर्यादेरण्डश्शृतमन्वहम्।। 12।।**
**सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतन्त्रकम्।**
**अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तम्भं च गृध्रसीम्।। 13।।**
**उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीञ्जयेत्।**
**अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम्।। 14।।**
**रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतन्निरन्तरम्।**
**मद्यं मांसं तथाम्लं च रसं सेवेत नित्यशः।। 15।।**

लहसुन के पूर्ण रूप से पके हुये कन्द को लेकर भली-भाँति छील लें और फाड़कर उनमें से अंकुरों (जो हरे-से होते हैं) को निकाल दें तथा लहसुन का उत्कट गन्ध को नष्ट (कम) करने के लिए रात को मट्ठा (लस्सी या छाछ) में डालकर रख दें और प्रातःकाल निकालें तथा (धोकर) शिला पर पीसकर 'कल्क' तैयार करें। तत्पश्चात् उसमें निम्नलिखित वस्तुओं का पाँचवाँ भाग चूर्ण मिलायें-काला नमक, देशी अजवायन, घी में भुनी हींग, सेंधा नमक, सोंठ, मरिच, पीपल तथा जीरा (इसे भी घी में भून लेना चाहिये) को समान भाग में लेकर चूर्ण तथा लहसुन के कल्क को एक में मिलाकर रख दें। तत्पश्चात् इसको एक कर्ष (1 तोला) की मात्रा में खाना चाहिये अथवा रोगी की अग्नि (पाचनशक्ति), शारीरिक बल, ऋतु (शीत पा उष्ण काल) तथा दोष (वात, पित्त, तथा कफ) का विचार करके मात्रा को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। इसे खाकर एरण्ड (रेड़) की जड का क्वाथ पीना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से सर्वांगवात, एकांगवात (पक्षाघात), अर्दित (मुख-प्रदेश का लकवा), अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अपस्मार (मृगी), उन्माद (पागलपन), ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी और उरःस्थल (छाती), पीठ, कमर, पसली तथा उदर की पीड़ा तथा कृमिरोग को जीतता है। इसका सेवन करते समय मनुष्य अजीर्ण (अनपच) न होने दें, धूप (घाम), क्रोध, अधिक जल, दूध तथा गुड़ को अवश्य त्याग दें। मद्य, मांस तथा खट्टे पदार्थ इच्छानुसार खाये जा सकते हैं।

**वक्तव्य**—यद्यपि उक्त योग में तैल प्रयोग का विधान नहीं किया है तथापि इसे तिलतैल में भली-भाँति भूनकर सेवन करना चाहिये। इस प्रकार यह रसोनकल्क कुछ दिनों तक रखा भी जा सकता है। उक्त रोगों के अतिरिक्त यह 'गठिया' की बहुत प्रसिद्ध औषधि है।

**पिपल्यादि कल्क**

**पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च।**
**एतत्कल्कश्च सक्षौद्र ऊरुस्तम्भनिवारणः।। 16।।**

पीपल, पीपलामूल तथा भिलावा के फल (शुद्ध) का कल्क मधु मिलाकर खाने से 'ऊरुक्वाथ स्तम्भ' को दूर करता है।

**वक्तव्य**—भल्लातक-शोधन की विधि शा० सं० म० खं० अ० 2 में दिये गये 'दार्व्यादि' के वक्तव्य में देखें।

**विष्णुक्रान्ता कल्क**

**विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः।**
**परिणामभवं शूलं नाशयेत् सप्तभिर्दिनैः।। 17।।**

विष्णुक्रान्ता (कोयल या अपराजिता) की जड़ का कल्क चीनी, घी तथा मधु मिलाकर सेवन करने से परिणामशूल को सात ही दिन में नष्ट कर देता है।

**शुण्ठ्यादि कल्क**

**शुण्ठीतिलगुडै कल्कं दुग्धेन सह योजयेत्।**
**परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत्।। 18।।**

सोंठ, तिल तथा गुड़ का कल्क दूध में मिलाकर पीने से 'परिणामशूल' तथा आमवात को नष्ट करता है।

**अपामार्गबीज कल्क**

**अपामार्गस्य बीजानां कल्कस्तण्डुलवारिणा।**
**पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः।। 19।।**

अपामार्ग (चिरचिटा) के बीजों का कल्क चावलों के धोवन में मिलाकर पीने से 'रक्तार्श' (खूनी बवासीर) नष्ट होता है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

**वक्तव्य**—रक्तार्श में अपामार्ग की जड़ का भी प्रयोग इसी प्रकार किया जाता है।

### बदरीमूल कल्क

**बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्च योजितः।**
**मधुक्षीरयुतः कुर्याद् रक्तातीसारनाशनः।। 20।।**

बेरी की जड़ की छाल का कल्क और तिल का कल्क दोनों को मिलाकर शहद तथा दूध में मिलाकर पीने से रक्तातिसार (खून के दस्तों) को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—यथासम्भव यहाँ झड़बेरी की जड़ का ही उपयोग करना चाहिये।

### लाक्षा कल्क

**कूष्माण्डकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत्।**
**रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत्।। 21।।**

लाक्षा (लाही या लाख) का कल्क दो तोला चौगुने कोहड़ा के पानी में मिलाकर पीयें। इससे रक्तक्षय (रक्त का जाना या घटना) उरोघात (छाती का भीतरी घाव) तथा क्षयरोग (यक्ष्मा) का नाश हो जाता है।

**वक्तव्य**—यह उत्तम योग है। लाही या लाख पीपल अथवा बेरी की लेनी चाहिये। उपयोग में लाने से पहले लाख को साफ सुथरी कर लेना चाहिये।

### तण्डुलीयक कल्क

**तण्डुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रः सरसाञ्जनः।**
**तण्डुलोदकसम्पीतो रक्तप्रदरनाशनः।। 22।।**

चौलाई की जड़ का कल्क मधु और रसौत (3-4 माशा) मिलाकर चावलों के धोवन के साथ पीने से 'रक्तप्रदर' नष्ट होता है।

### अङ्कोट कल्क

**अङ्कोटमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना।**
**अतीसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः।। 23।।**

अंकोट के जड़ की छाल का कल्क मधु मिलाकर चावलों के धोवन के साथ पीने से अतिसार तथा विष-विकार को हरता है।

**वक्तव्य**-अंकोट को 'अंकोल' तथा ढेरा भी कहा जाता है।

### वन्ध्याकर्कोटकादि कल्क

**वन्ध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटाऽथवा।**
**घृतेन बिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद् विषम्।। 24।।**

बाँझककोड़ा (खेखसा) की अथवा पाढल की अथवा बेल की जड़ का कल्क घी मिलाकर सेवन करने से दोनों प्रकार (स्थावर और जंगम) के विषों को नष्ट करता है।

### अभयादि कल्क

**अभयासैन्धवकणाशुण्ठीकल्कस्त्रिदोषहा ।**
**पथ्यासैन्धवशुण्ठीभिः कल्को दीपनपाचनः।। 25।।**

बड़ी हरड़, सेंधा नमक, पीपल तथा सोंठ का जल डालकर पीसा गया कल्क त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) के विकारों को नष्ट करता है। बड़ी हरड़, सेंधा नमक और सोंठ का कल्क दीपन (अग्निवर्द्धक) तथा पाचन होता है।

**वक्तव्य**—उक्त दोनों योगों का कल्क नीबू के रस से बनाया जाये तो और भी उत्तम फल देता है।

### त्रिवृतादि कल्क

**त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीकयवानिका।**
**कम्पिल्लकं विडङ्गं च गुडश्च समभागकः।। 26।।**
**तक्रेण कल्कमेतेषां पिबेत् कृमिगणापहम्।**

सफेद निसोत पलाश (ढाक) के बीज, खुरासानी अजवायन, कबीला, वायविडंग तथा गुड़ इन सबको समान भाग में लेकर कल्क बनाकर तक्र (मट्ठा या लस्सी) के साथ पीये तो उदर की कृमियों को निकाल देता है।

**वक्तव्य**—एक-दो समय गुड़ मिश्रित खीर खिलाकर तब उक्त योग का प्रयोग करना चाहिये। इस योग का कुछ दिनों तक सेवन करने से कृमियों की उत्पत्ति भी रुक जाती है। सावधान! एक बार कृमियों को निकाल देने पर भी वे फिर उत्पन्न हो जाते हैं।

### तिल कल्क

**नवनीततिलैः कल्को जेता रक्तार्शसां स्मृतः।। 27।।**
**नवनीतसितानागकेशरैश्चापि तद्विधः।**

तिलों का कल्क नवनीत (मक्खन) मिलाकर खाने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) को जीतता है और नागकेसर मिश्री तथा नवनीत का कल्क भी रक्तार्श को जीतता है।

### शुण्ठी कल्क

पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः।। 28।।
जयेत् सङ्ग्रहणीं तद्वत् तक्रेण बृहतीभवः।

इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां
शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे कल्ककल्पना नाम पञ्चमोऽध्यायः।। 5।।

सोंठ तथा बेल की गुद्दी का कल्क, मसूरी के यूष (दाल के पानी) के साथ अथवा बनभण्टा की जड़ का कल्क मट्ठा के साथ पीने से 'ग्रहणी' रोग को जीत लेता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र डॉ० **ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का पांचवा अध्याय समाप्त।। 5।।

# षष्ठोऽध्यायः
# चूर्णकल्पना

### चूर्ण-निर्माण-विधि

**अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्।**
**तत् स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता।। 1।।**

अत्यन्त शुष्क (सूखे हुये) द्रव्य को भली प्रकार पीसकर कपड़े से छान लें। यह 'चूर्ण' 'रजः' या 'क्षोद' कहलाता है। इसकी मात्रा एक कर्ष (एक तोला) होती है।

**वक्तव्य**—साधारणतया पिसी हुई औषध को 'चूर्ण', पूर्ण रूप से पिसी हुई (अत्यन्त बारीक की हुई) को 'रजः' (धूल जैसी) तथा दरदरे चूर्ण को 'क्षोद' कहा जाता है। सभी चूर्णों की मात्रा 'एक कर्ष' नहीं होती, अतः रोगी, रोग तथा औषधियों के बलाबल का विचार कर मात्रा की व्यवस्था चिकित्सक को स्वयं करनी चाहिये।

### चूर्ण में गुड़ आदि का मान

**चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्।**
**चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत्।। 2।।**

चूर्णों में गुड़ समान भाग तथा चीनी (मिश्री) दुगुनी डाली जाती है और चूर्णों में हींग को भूनकर डालना चाहिये, जिससे वह उत्क्लेद (जी-मिचलाना) कारक न हो।

**वक्तव्य**—जिन योगों में गुड़ तथा चीनी का मान न बतलाया गया हो, उन्हीं में उक्त परिभाषा का प्रयोग करना चाहिये और हींग को घी में भून लेना चाहिये। कच्ची हींग से जी मिचलाने लगता है। योग लिखते या खरीदते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिन भिन्न भिन्न द्रव्यों को लिया जा रहा है, उनको कूटने, पीसने, साफ करने तथा भूनने के बाद उतना चूर्ण जितना योग में लिखा है, तैयार होगा कि नहीं। यदि नहीं होता है, तो चिकित्सक से सलाह लें।

### चूर्ण-सेवन-विधि

**लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः।**
**पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः।।3।।**

यदि घृत आदि (मधु तथा अडूसा आदि के शर्बत) द्रव पदार्थ में मिलाकर चूर्ण को चाटने का विधान हो तो चूर्ण की अपेक्षा घी आदि दुगुने लेने चाहिये। यदि द्रव पदार्थ दूध, गोमूत्र तथा तक्र आदि में मिलाकर पीने का विधान हो तो चौगुना द्रव लेना चाहिये।

**वक्तव्य**—तात्पर्य यह है कि 'लिहेत्' तथा 'पिबेत्' पर ध्यान रखना चाहिये। यदि औषध को चाटने का निर्देश हो तो दूना लें। यदि औषध द्रव्य को किसी द्रव पदार्थ के साथ पीना हो तो चौगुना द्रव ग्रहण करना चाहिये।

### चूर्ण का अनुपान

**चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम्।**
**वातपित्तकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमाहरेत्।। 4।।**

वात, पित्त तथा कफ के रोगों में चूर्ण, अवलेह गुटिका तथा कल्कों का अनुपान क्रमशः तीन, दो तथा एक पल (4 तोला) होना चाहिये।

**वक्तव्य**—चूर्ण आदि पदार्थ खाकर उसके तत्काल बाद जो उष्ण जल आदि पिया जाता है उसे 'अनुपान' कहा जाता है। अनुपान से औषध निगलने में बहुत सरलता होती है। उसकी कड़ुवाहट आदि का कष्टकर अनुभव भी नहीं होता और वह भीतर जाकर शीघ्र घुल-मिलकर अपना प्रभाव दिखलाने लगती है।

### अनुपान का फल

**यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति।**
**अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम्।। 5।।**

जैसे पानी पर गिरायी हुई तेल की बूँद क्षण भर में फैल जाती है, वैसे ही अनुपान के बल से औषधद्रव्य शरीर में फैल (व्याप्त हो) जाता है।

**वक्तव्य**—प्रत्येक ठोस पदार्थ के साथ जो द्रव पदार्थ का

सेवन किया जाता है वह 'अनुपान' कहलाता है। इस (अनुपान) की सहायता से उक्त पदार्थों (औषध) का रस पतला तैयार होता है, जिससे वह सरलतापूर्वक अँतड़ियों (पाचक-संस्थान) में आचूषित होकर रस तथा रक्त में पहुँच जाता है और आवश्यक स्थान पर जाकर अपना प्रभाव डालता है।

### चूर्ण-भावना-विधि

**द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्।**
**भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः।।6।।**

जितने द्रव पदार्थ (नीबूरस आदि) से समस्त चूर्ण भली प्रकार भीग जायें, इतना द्रव पदार्थ चूर्णों की भावना में प्रयुक्त करना चाहिये। यह विद्वान् चिकित्सकों का कथन है।

**वक्तव्य**—चूर्णों को किसी द्रव्य पदार्थ अर्थात् नीबू के रस आदि से भिगोकर सुखा लिया जाता है। इस क्रिया को 'भावना' कहा जाता है। भावना शीतकाल तथा उष्णकाल में देनी चाहिये ताकि चूर्ण निर्विघ्न सूख सके। वर्षाकाल में धूप न मिलने एवं वायु के आर्द्र होने के कारण उसमें सड़न उत्पन्न हो जाती है और चूर्ण खराब हो जाता है।

### आमलकादि चूर्ण

**आमलं चित्रक पथ्या पिप्पली सैन्धवस्तथा।**
**चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः।।7।।**
**भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः।**

आँवला, चित्ता, हरड़, पीपल तथा सेंधा नमक का चूर्ण सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है। यह दस्तावर है, रुचि को बढ़ाता है, कफ को जीतता है, दीपन और पाचन है।

**वक्तव्य**—यह 'आमलक्यादिगण' सु० सू० अ० 38 का है, किन्तु आचार्य शार्ङ्गधर ने इसमें 'सैन्धवलवण' मिलाकर 'सोने में सुगन्ध' वाली कहावत को चरितार्थ कर दिया है।

### पिप्पली चूर्ण

**मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत् कासज्वरापहम्।।8।।**
**हिक्काश्वासहरं कण्ठ्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम्।**

पीपल का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर चाटने से कास तथा ज्वर को नष्ट करता है, हिचकी और श्वास को हरता है, कण्ठ को साफ करता है और प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि का नाश करता है। यह चूर्ण बालकों के उक्त रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है।

### त्रिफला चूर्ण

**एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ।। 9।।**
**चत्वार्यामलकान्येवं त्रिफलैषा प्रकीर्तिता।**
**त्रिफला मेहशोथघ्नी नाथयेद् विषमज्वरान्।। 10।।**
**दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहन्त्री रसायनी।**
**संयुक्ता सर्पिर्मधुभ्यां सैव नेत्रामयाञ्जयेत्।। 11।।**

एक हरड़, दो बहेड़ा तथा चार आँवला इस प्रकार मिलाने से 'त्रिफला' कहा जाता है। उक्त त्रिफला चूर्ण प्रमेह और सूजन को तथा विषम ज्वरों को नष्ट करता है। जठराग्नि को बढ़ाता है, कफ तथा पित्त को नष्ट करता है, कुष्ठ (कोढ़) को हरता है तथा रसायन है। घी और शहद के साथ मिलाकर सेवन करने से नेत्र-रोगों को जीतता है।

**वक्तव्य**—त्रिकटु तथा त्र्यूषण शब्द का तात्पर्य है—'त्रीणि ऊषणानि कटुद्रव्याणि यस्मिन् तत् त्र्यूषणम्'। अर्थात् इसमें सोंठ, मरिच, पीपल मिलाया जाता है। इसकी मात्रा दो-तीन माशा पर्याप्त होती है।

### त्र्यूषण चूर्ण

**पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते।**
**दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम्।। 12।।**
**जयेदरोचकं सामं मेहगुल्मगलामयान्।**

पिप्पली, मरिच, सोंठ इन तीन द्रव्यों को त्र्यूषण कहा जाता है। यह दीपन है, कफ तथा मेदोदोष को नाश करता है। कुष्ठ, पीनस (जुकाम), अरुचि, आमदोष, प्रमेह, गुल्म (वायुगोला) तथा गले के रोगों को जीतता है।

**वक्तव्य**—त्रिकटु या त्र्यूषण दोनों शब्द समानार्थक हैं, अतएव पर्यायवाची हैं। तात्पर्य यह है कि इसमें तीन द्रव्य कटुरस-प्रधान अथवा दाहकारक होते हैं, जिनके नाम ऊपर दिये गये हैं। त्रिकटु चूर्ण की मात्रा 1-2 माशा स्वीकार की जाती है।

### पञ्चकोल चूर्ण

**पिप्पलीचव्यविश्वाह्वापिप्पलीमूलचित्रकैः ।। 13।।**
**पञ्चकोलमिति ख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम्।**
**आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम्।। 14।।**

पीपल, चव्य, सोंठ, पिप्पलामूल तथा चीता—इन पाँच द्रव्यों का सम्मिलित नाम 'पञ्चकोल' है। यह रुचिकर, दीपन तथा पाचन है। आनाह (आमाशय तथा पक्वाशय की गति

का निरोध) प्लीहा वृद्धि तथा गुल्म को नष्ट करता है। शूल, कफविकार तथा उदररोगों को हरता है।

**वक्तव्य**—पञ्चकोल में यदि मरिच मिला दी जाये तो उसे 'षड्ूषण' कहा जाता है। देखें-'पञ्चकोलं स मरिचं षड्ूषणमुदाहृतम्' (भा० नि०)।

### त्रिगन्ध-चतुर्जात चूर्ण

**त्रिगन्धमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातं सकेशरैः।**
**त्रिगन्धं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघु पित्तकृत्।। 15।।**
**वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं विषश्लेष्मामयाञ्जयेत्।**

इलायची, दालचीनी तथा तेजपत्ता-इन तीनों का नाम 'त्रिगन्ध' है और इसी में 'नागकेसर' मिला देने से 'चतुर्जात' कहलाता है। त्रिगन्ध तथा चतुर्जात रूक्ष, उष्ण (गर्म), लघु, पित्तकर, वर्ण के लिए हितकर, रुचिकर तथा तीक्ष्ण है। यह विष तथा कफ के रोगों को जीत लेता है।

**वक्तव्य**—त्रिगन्ध को त्रिजात भी कहा जाता है। इसमें 'एला' के नाम से बड़ी इलायची डाली जाती है, किन्तु कुछ लोग इसमें छोटी इलायची डालने की भी सम्मति देते हैं।

### कृष्णादि चूर्ण

**(कृष्णारुणामुस्तकशृङ्गिकाणां**
**तुल्येन चूर्णेन समाक्षिकेण।। 16।।**
**ज्वरातिसारः प्रशमं प्रयाति,**
**सश्वासकासः सवमिः शिशूनाम्।)**

पीपल, अतीस, नागरमोथा, काकड़ासिंगी-इन चारों द्रव्यों को समान भाग में लेकर चूर्ण बना लें। इसे मधु मिलाकर चटाने से ज्वर, अतिसार, श्वास, कास तथा वमन रोग दूर हो जाते हैं।

### जीवनीयगण चूर्ण

**काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा।। 17।।**
**मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकं तथा।**
**मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम्।। 18।।**
**जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसन्धानकृद्गुरुः।**
**स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः।। 19।।**
**रक्तपित्तं क्षतं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत्।**

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवन्ती, मुलेठी, मुद्गपर्णी (वनमूँग) तथा माषपर्णी (मुगवन या वन उड़द)-इन सबको 'जीवनीयगण' कहा जाता है। यह जीवनीयगण स्वादिष्ट होता है। गर्भसन्धानकारक (गर्भस्राव तथा गर्भपात को रोकता अथवा गर्भाधान का हेतु) है, गुरु है, दूध को बढ़ाता है, धातुओं को तथा वीर्य को बढ़ाता है, स्निग्ध है, शीत है, तृष्णा को हरता है, रक्तपित्त, क्षय (यक्ष्मा), शोष (धातुओं का सूखना), ज्वर, दाह तथा वातरोगों को जीत लेता है।

### अष्टवर्ग चूर्ण

**द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा।। 20।।**
**ऋद्धिवृद्धी च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः।**
**अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः।। 21।।**

दोनों मेदा (मेदा तथा महामेदा), दोनों काकोली (काकोली तथा क्षीरकाकोली), जीवक, ऋषभक, ऋद्धि तथा वृद्धि इन सबको 'अष्टवर्ग' कहा जाता है। विद्वानों का कथन है, कि अष्टवर्ग के गुण जीवनीयगण के समान ही हैं।

**वक्तव्य**—उक्त अष्टवर्ग कई शताब्दियों से सन्देह में पड़ा है। आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व भावमिश्र ने इनके प्रतिनिधि रूप में निम्न चार द्रव्य निश्चित किये हैं। यथा-'मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि चासति। वरीविदार्यश्वगन्धा वाराही च क्रमात् क्षिपेत्।।' (भा० प्र० नि० ह० वर्ग)। अर्थात् मेदा-महामेदा के अभाव में शतावरी, जीवक-ऋषभक के अभाव में विदारीकन्द, काकोली-क्षीरकाकोली के अभाव में असगन्ध तथा ऋद्धि-वृद्धि के अभाव में वाराहीकन्द लेना चाहिये। इन्हीं का प्रयोग किया भी जाता है। प्रसन्नता की बात है कि इधर वास्तविक (असली) अष्टवर्ग का अन्वेषण भी कुछ परिश्रमी सज्जनों ने किया है, उसका भी यत्र-तत्र प्रयोग होने लगा है। परन्तु प्रामाणिकता का निर्णय फलप्राप्ति पर ही हो सकेगा।

### लवणपञ्चक चूर्ण

**सिन्धुसौवर्चलं चैव विडं सामुद्रिकं गडम्।**
**एकद्वित्रिचतुष्पञ्च लवणानि क्रमाद् विदुः।। 22।।**
**तेषु मुख्यं सैन्धवं स्यादनुक्ते तत्प्रयोजयेत्।**
**सैन्धवाद्यं रोमकान्तं ज्ञेयं लवणपञ्चकम्।। 23।।**
**मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं बलापहम्।**
**वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्धनम्।। 24।।**

सिन्धु (सेंधा नमक), सौवर्चल (काला नमक), विड़नमक, सामुद्रिक (समुद्र नमक) तथा गड लवण (साँभर नमक), ये क्रमशः एक लवण (केवल सेंधा नमक), द्विलवण (सेंधा और सोंचर), त्रिलवण (सेंधा, सोंचर तथा विड़),

चतुर्लवण (सेंधा, सोंचर, विड तथा समुद्र नमक) और पञ्चलवण (सेंधा, सोंचर, विड, समुद्र तथा साँभर नमक) कहे जाते हैं। इन सभी में सेंधा नमक प्रधान माना जाता है। अतः जहाँ पर केवल 'लवण' शब्द का प्रयोग हो वहाँ सेंधा नमक का प्रयोग करना चाहिये। सैन्धव से रोमक या साँभर नमक पर्यन्त लवणों का नाम 'लवणपञ्चक' है। उक्त लवण मधुर (स्वादिष्ट या रुचिकर) होते हैं, मल तथा मूत्र को निकालने वाला स्निग्ध और सूक्ष्म है, बलनाशक है, उष्ण (गर्म) है, दीपन है, तीक्ष्ण है तथा कफ और पित्त को बढ़ाता है।

**वक्तव्य**–सैन्धव लवण खान से, सोंचर नमक मण्डी नामक पहाड़ से, समुद्र लवण समुद्र के जल से, गडनमक (साँभर) राजपूताना की साम्भर झील से निकाला जाता है और विड नमक गंधप्रसारणी नामक लता का क्षार है। भारत में लवण मूलतः चार स्रोतों से प्राप्त होता है–1. सैन्धव (Rock Salt), 2. सामुद्र (Sea water), 3. ताड़ाग (Brine) तथा 4. भौम (Saline efflorescence)। इनमें सामुद्र लवण का ही अधिक उपयोग होता है। लवण भोजन का एक उपयोगी पदार्थ है, किन्तु इसका अधिक प्रयोग हानिकर होता है। देखें–च० वि० अ० 1।

### क्षारद्वय चूर्ण

**स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम्।**
**ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ।।25।।**
**क्षाराश्चान्येऽपि गुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदः सराः।**
**पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः।।26।।**

सज्जीखार तथा जौखार इन दोनों को 'क्षारयुग्म' या 'क्षारद्वय' कहा जाता है। उक्त दोनों क्षार अग्नि के समान (दाहक तथा पाचक) होते हैं और दूसरे क्षार (पलाशक्षार तथा अर्कक्षार आदि) भी वायुगोला, बवासीर, ग्रहणी रोग, शर्करा तथा अश्मरी (पथरी) को नष्ट करते हैं।

**वक्तव्य**–मोरवा, पलाश, मदार एवं सेहुण्ड (थूहर) आदि को जलाकर भस्म बना ली जाती है और भस्म को पानी में घोलकर रख लिया जाता है। जब पानी नितर जाता है, तो उसे (पानी को) धीरे-धीरे दूसरे पात्र में नितार दिया जाता है। इस जल को वाष्पीकरण द्वारा उड़ा देने पर क्षार प्राप्त होता है। विशेष जानकारी के लिए देखें–सु० सू० अ० 11.11।

### सुदर्शन चूर्ण

**त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शठी।**
**त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः।।27।।**
**कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च बालकम्।**
**निम्बः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम्।।28।।**
**यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा।**
**वचा त्वक्पद्मकोशीरचन्दनातिविषाबलाः।।29।।**
**शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी विडङ्गं तगरं तथा।**
**चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम्।।30।।**
**जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशलोचना।**
**पुण्डरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम्।।31।।**
**तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत्।**
**सर्वचूर्णस्य चार्धांशं कैरातं निक्षिपेत् सुधीः।।32।।**
**एतत् सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम्।**
**ज्वरांश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा।।33।।**
**पृथग्द्वन्द्वागन्तुजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान्।**
**सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत्।।34।।**
**शीतज्वरैकाहिकादीन् मोहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम्।**
**श्वासं कासं च पाण्डुं च हृद्रोगं हन्ति कामलाम्।।35।।**
**त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम्।**
**शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वज्वरनिवृत्तये।।36।।**
**सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम्।**
**तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं प्रणाशनम्।।37।।**

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, बनभण्टा, कण्टकारी, कचूर, त्रिकटु, पीपलामूल, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा, नेत्रबाला, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुलेठी, कुरैया की छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहिजन के बीज, फुलाई हुई फिटकिरी, वच, दालचीनी, पद्मकाठ, खस, श्वेतचन्दन, अतीस, बरियारा, शालपर्णी, पिठवन, वायविडंग, तगर, चीता की जड़, देवदारु, चव्य (चाव), परवल की पत्ती, जीवक तथा ऋषभक (या विदारीकन्द दो भाग), लौंग, वंशलोचन, कमल, काकोली (अभाव में असगन्ध), तेजपत्ता, जावित्री अथवा चमेली के पत्ते तथा तालीस के पत्ते–इन सब द्रव्यों को समान भाग में लेकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण में उक्त द्रव्यों का आधा भाग चिरायता का चूर्ण मिला दें। इस चूर्ण का नाम 'सुदर्शन चूर्ण' है। यह वात आदि तीनों दोषों को शान्त करता है और सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। पृथक्-पृथक्

दोषों से तथा दो-दो दोषों से तथा आगन्तुज कारणों से उत्पन्न हुये ज्वरों को, रसादि धातुओं में पहुँचे हुये ज्वरों को तथा विषमज्वरों (मौसमी बुखार या मलेरिया, तिजारी, चौथिया आदि) को और सन्निपात से उत्पन्न हुये तथा मानसिक ज्वरों को, शीतपूर्वक ज्वर तथा एकाहिक आदि (रोजाना होने वाले) ज्वरों, तन्द्रा, भ्रम, प्यास, श्वास, कास, पाण्डुरोग, हृद्रोग तथा कामला (पीलिया) को नष्ट करता है। त्रिकस्थान, पीठ, कमर, घुटने तथा पसली के शूल (दर्द) को दूर करता है। सभी ज्वरों को दूर करने के लिए इस चूर्ण का शीतल जल के साथ सेवन करना चाहिये। जैसे भगवान् सुदर्शनचक्र से दानवों (दुष्टों) का विनाश करते हैं, ठीक उसी प्रकार यह चूर्ण सभी ज्वरों का विनाश करता है।

**वक्तव्य**—सचमुच यह चूर्ण आयुर्वेद का एक उत्तम रत्न है। अन्यान्य रोगों के अतिरिक्त भूतावेश में भी इसके अद्भुत प्रभाव को देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।

### त्रिफलापिप्पली चूर्ण

**कासश्वासज्वरहरा त्रिफला पिप्पलीयुता।**
**चूर्णिता मधुना लीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी।। 38।।**

त्रिफला तथा पीपल का चूर्ण शहद के साथ मिलाकर चाटने से कास, श्वास तथा ज्वर को हरता है। यह दस्तावर है तथा पाचक अग्नि को भी बढ़ाता है।

### कट्फलादि चूर्ण

**कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शठी शृङ्गी च पौष्करम्।**
**चूर्णमेषां च मधुना शृङ्गबेररसेन वा।। 39।।**
**लिहेज्ज्वरहरं कण्ठ्यं कासश्वासारुचीर्जयेत्।**
**वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयञ्चैव व्यपोहति।। 40।।**

कायफल, नागरमोथा, कुटकी, कचूर, काकड़ासिंगी तथा पोहकरमूल का चूर्ण शहद एवं अदरख के रस के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। यह 'कट्फलादि चूर्ण' ज्वर को हरता है, कण्ठ के विकारों को दूर करता है तथा कास, श्वास एवं अरुचि को जीत लेता है। वायु के शूल, कै तथा क्षय (यक्ष्मा) रोग को नष्ट करता है।

### बृहत्कट्फलादि चूर्ण

**कट्फलं पौष्करं शृङ्गी मुस्ता त्रिकटुकं शठी।**
**समस्तान्येकशो वापि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।। 41।।**
**आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात् कफविनाशनम्।**
**शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ।। 42।।**



कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, त्रिकटु (सोंठ, मरिच, और पीपल) तथा कचूर-इन सब द्रव्यों का अथवा एक-एक द्रव्य का सूक्ष्म (कपड़छन) चूर्ण बना लें। इसे अदरक के रस तथा मधु के साथ चाटने से यह कफजनित विकारों को नष्ट करता है और शूल, वात-विकार, अरुचि, कै, कास, श्वास तथा क्षय को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—उक्त चूर्ण ऊर्ध्वजत्रु (गर्दन के ऊपरी अंगों) के विकारों में बहुत लाभदायक हैं और शिरोरोग की उत्तम औषध है।

### तृतीय कट्फलादि लेह

**कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृङ्गी च मधुना सह।**
**श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत्।। 43।।**

कायफल, पोहकरमूल, पीपल तथा काकड़ासिंगी का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर चाटने से श्वास, कास तथा ज्वर को हरता है और इसका अवलेह (मधु में मिलाकर चाटने योग्य बनाया हुआ) कफ को शान्त करने के लिए उत्तम औषध माना गया है।

### शृंग्यादि चूर्ण

**शृङ्गीं प्रतिविषां कृष्णां चूर्णितां मधुना लिहेत्।**
**शिशोः कासज्वरच्छर्दिशान्त्यै वा केवलां विषाम्।। 44।।**

काकड़ासिंगी, अतीस तथा पीपल का चूर्ण बनाकर तथा मधु मिलाकर चटनी जैसा बना लें। इसे बच्चों के कास, ज्वर तथा कै (वमन) की शान्ति के लिए प्रयोग करें, अथवा केवल अतीस का चूर्ण मधु के साथ उक्त रोगों में प्रयुक्त करे।

### यवक्षारादि चूर्ण

**(यवक्षारविषाशृङ्गीमागधीपौष्करोद्भवम् ।**
**चूर्णं क्षौद्रयुतं लीढं पञ्च कासाञ्जयेच्छिशोः।। 45।।)**

जौखार, अतीस, काकड़ासिंगी, पीपल तथा पोहकरमूल का चूर्ण मधु के साथ चाटने से बच्चों के पाँच प्रकार के कासों (खाँसी) को जीत लेता है।

### शुण्ठ्यादि चूर्ण

**शुण्ठीप्रतिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः ।**
**चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम्।। 46।।**

सोंठ, अतीस, घी में भुनी हुई हींग, नागरमोथा, कुरैया की छाल तथा चीता की जड़ का चूर्ण गुनगुने जल के साथ पीने से आमातिसार या पेचिस को नष्ट करता है।

## हरीतक्यादि चूर्ण

**हरीतकी प्रतिविषा सिन्धु सौवर्चलं वचा।**
**हिङ्गु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा।। 47।।**
**आमातीसारशमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम्।**

हरड़, अतीस, सेंधा नमक, सोंचर नमक, वच तथा हींग का बनाया हुआ चूर्ण उष्ण जल के साथ पीयें। यह चूर्ण आमातिसार को शान्त कर जठराग्नि को प्रज्वलित करता है।

## लघुगङ्गाधर चूर्ण

**मुस्तमिन्द्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा।। 48।।**
**धातकीं चूर्णयेत् तक्रगुडाभ्यां पाययेत् सुधीः।**
**सर्वातीसारशमनं निरुणद्धि प्रवाहिकाम्।। 49।।**
**लघुगङ्गाधरं नाम चूर्णं सङ्ग्राहकं परम्।**

नागरमोथा, इन्द्रजौ, बेलगिरि, लोध, मोचरस तथा धाय के फूल का चूर्ण बना लें और इसे तक्र (मट्ठा) तथा गुड़ के साथ मिलाकर पिलायें। यह सब अतिसारों को शान्त करता है और प्रवाहिका (पेचिस) को रोकता है। इस चूर्ण का नाम 'लघुगङ्गाधर' है। यह बहुत अच्छा संग्राहक या दस्तों को रोकने वाला है।

## वृद्धगङ्गाधर चूर्ण

**मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः ।। 50।।**
**बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः।**
**आम्रबीजं प्रतिविषा लज्जालुरिति चूर्णितम्।। 51।।**
**क्षौद्रतण्डुलपानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका।**
**सर्वातिसारा ग्रहणी प्रशमं याति वेगतः।। 52।।**
**वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगस्य रोधकम्।**

नागरमोथा, टेंटू की छाल, सोंठ, धाय के फूल, लोध, नेत्रबाला, बेलगिरी, मोचरस, पाठा, इन्द्रजौ, कुरैया की छाल, आम की गुठली, अतीस तथा लज्जावन्ती–इन सब द्रव्यों का चूर्ण मधु तथा चावलों के धोवन के साथ पीने से प्रवाहिका (पेचिस) दूर हो जाती है, सभी प्रकार के दस्त तथा ग्रहणी रोग शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। इस चूर्ण का नाम 'वृद्धगङ्गाधर' है। यह अपने प्रभाव से नदी के वेग (प्रवाह) को भी रोक देता है।

**वक्तव्य**–यह अतिशयोक्तिपूर्ण फलश्रुति मात्र इसके विशिष्ट प्रभाव के प्रति रोगी तथा चिकित्सक दोनों को अपने गुणों की ओर आकृष्ट करती है।

## अजमोदादि चूर्ण

**अजमोदा मोचरसं सशृङ्गबेरं सधातकी कुसुमम्।। 53।।**
**गोदधिमथितयुक्तं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात्।**

अजमोदा, मोचरस, सोंठ तथा धाय के फूल का चूर्ण गाय के दही अथवा मट्ठा में मिलाकर पीने से बहती हुई गङ्गा को भी रोक देता है, अतिसार की तो बात ही क्या है?

## मरिचादि चूर्ण

**तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसम्भवम्।। 54।।**
**चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणी तस्य नश्यति।**
**उदरप्लीहमन्दाग्निगुल्मार्शो नाशनं भवेत्।। 55।।**

जो मनुष्य मरिच, चीता की जड़ तथा सोंचर नमक का चूर्ण मट्ठा के साथ प्रतिदिन पीता है, उसका ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है और उदर रोग, प्लीहा-वृद्धि, मन्दाग्नि, वायुगोला तथा बवासीर का विनाश हो जाता है।

## कपित्थाष्टक चूर्ण

**अष्टौ भागाः कपित्थस्य षड्भागा शर्करा मता।**
**दाडिमं तिन्तिडीकं च श्रीफलं धातकी तथा।। 56।।**
**अजमोदा च पिप्पल्यः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः।**
**मरिचं जीरकं धान्यं ग्रन्थिकं बालकं तथा।। 57।।**
**सौवर्चलं यवानी च चातुर्जातं सचित्रकम्।**
**नागरं चैकभागाः स्युः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम्।। 58।।**
**कपित्थाष्टकसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतद्गलायमान्।**
**अतीसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च व्यपोहति।। 59।।**

कैथ के फल का सूखा गूदा आठ भाग (8 तोला), चीनी 4 भाग (4 तोला), अनारदाना (खट्टे अनार के बीज), जिरिष्क, बेलगिरी, धाय के फूल, अजमोदा तथा पीपल प्रत्येक तीन-तीन भाग (3-3 तोला), मरिच, जीरा (सफेद भुना हुआ), धनियाँ, पीपलामूल, नेत्रबाला, सोंचरनमक, अजवायन, चतुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता तथा नागकेसर), चीता की जड़ तथा सोंठ प्रत्येक एक-एक भाग (1-1 तोला), इन सबका चूर्ण 'कपित्थाष्टक' कहलाता है। यह चूर्ण गलरोगों, अतिसार, क्षय, गुल्म (वायुगोला) तथा ग्रहणी रोग को नष्ट करता है।

## दाडिमाष्टक चूर्ण

**दाडिमी द्विपला ग्राह्या खण्डाद्दशपलानि च।**
**त्रिगन्धस्य पलं चैकं त्रिकटु स्यात् पलत्रयम्।। 60।।**
**एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद् दाडिमाष्टकम्।**
**रुचिकृद्दीपनं कण्ठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम्।। 61।।**

अनारदाना (खट्टा) दो पल (8 तोला), खाँड (चीनी) दस पल (40 तोला), त्रिगन्ध (दालचीनी, बड़ी इलायची तथा तेजपत्ता) एक पल (4 तोला) तथा त्रिकटु (सोंठ, मरिच तथा पीपल) तीन पल (12 तोला), इन सबका चूर्ण 'दाडिमाष्टक चूर्ण' कहलाता है। उक्त चूर्ण रुचिकारक है, दीपन (अग्निवर्द्धक) है, कण्ठ के रोगों को हरता है, ग्राही (मलरोधक) है, कास तथा ज्वर को नष्ट करता है।

### बृहद् दाडिमाष्टक चूर्ण

**दाडिमस्य पलान्यष्टौ शर्करायाः पलाष्टकम्।**
**पिप्पली पिप्पलीमूलं यवानी मरिचं तथा।। 62।।**
**धान्यकं जीरकं शुण्ठी प्रत्येकं पलसम्मितम्।**
**कर्षमात्रा तुगाक्षीरी त्वक्पत्रैलाश्च केशरम्।। 63।।**
**प्रत्येकं कोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णं दाडिमाष्टकम्।**
**अतीसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च गलग्रहम्।। 64।।**
**मन्दाग्निं पीनसं कासं चूर्णमेतद् व्यपोहति।**

अनारदाना (खट्टा) 8 पल (32 तोला), चीनी 8 पल (32 तोला), पीपल, पीपलामूल, अजवायन, मरिच, धनियाँ, सफेद जीरा तथा सोंठ प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल (4-4 तोला), वंशलोचन एक कर्ष (1 तोला), दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची तथा नागकेसर प्रत्येक एक-एक कोल (6-6 माशा)। इसका नाम भी 'दाडिमाष्टक चूर्ण' है। यह चूर्ण अतिसार, क्षय, गुल्म, ग्रहणीरोग, गलग्रह (गले की रुकावट), मन्दाग्नि, पीनस (जुकाम) तथा कास को नष्ट करता है।

### पिप्पल्यादि चूर्ण

**(पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिङ्गकाः।। 65।।**
**चित्रकं सारिवा पाठा शठी लवणपञ्चकम्।**
**तच्चूर्णं पाययेद् दध्ना सुरयोष्णाम्बुनापि वा।। 66।।**
**मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम्।)**

पीपल, बनभण्टा, कण्टकारी, जौखार, इन्द्रजौ, चीता की जड़, सारिवा, पाठा, कचूर तथा लवणपञ्चक (पाँचों नमक), इनका चूर्ण दही के साथ अथवा सुरा (मद्य या आसव-अरिष्टों) के साथ अथवा उष्ण जल के साथ पिलाना चाहिये। यह चूर्ण वातजनित ग्रहणी दोष को शान्त करने वाली उत्तम औषध है।

### लवङ्गादि चूर्ण

**लवङ्गं शुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम्।। 67।।**
**जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम्।**
**कृष्णागरुस्तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा।। 68।।**
**चन्दनं तगरं बालं कङ्कोलं चेति चूर्णयेत्।**
**समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योऽर्धा सिता भवेत्।। 69।।**
**लवङ्गाद्यमिदं चूर्णं राजार्हं वह्निदीपनम्।**
**रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम्।। 70।।**
**हृद्रोगं कण्ठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम्।**
**यक्ष्माणं तमकं श्वासमतीसारमुरःक्षतम्।। 71।।**
**प्रमेहारुचिगुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत्।**

लौंग, शुद्ध कपूर (देशी कपूर), बड़ी इलायची, दालचीनी, नागकेसर, जायफल, खस, सोंठ, काला जीरा, काला अगुरु, वंशलोचन, जटामांसी, नीला कमल, पीपल, सफेद चन्दन, तगर, नेत्रबाला तथा शीतलचीनी-इन द्रव्यों को समान भाग में लेकर चूर्ण बनायें और समस्त चूर्ण से आधी चीनी मिला दें। यह चूर्ण 'लवङ्गादि चूर्ण' कहलाता है। यह चूर्ण राजाओं के योग्य अर्थात् बहुत उत्तम है, जठराग्नि को बढ़ाता है, रोपण (यदि व्रण रोगी को खिलाया जाये तो व्रण भर जाता) है, तर्पण (तृप्तिकारक या धातुवर्द्धक) है, त्रिदोषशामक, बलवर्द्धक तथा हृदयरोग, कण्ठरोग, कास, हिचकी, पीनस (जुकाम), यक्ष्मा, तमकश्वास (प्रायः सभी श्वास रोगी इसी श्वास रोग से पीड़ित रहते हैं), अतिसार, उरःक्षत (वक्षःस्थल का भीतरी घाव), प्रमेह, अरुचि, गुल्म आदि रोगों और ग्रहणी रोग को भी नष्ट करता है।

### जातीफलादि चूर्ण

**जातीफललवङ्गैलापत्रत्वङ्नागकेशरैः।। 72।।**
**कर्पूरचन्दनतिलैस्त्वक्क्षीरीतगरामलैः।**
**तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः।। 73।।**
**शुण्ठीविडङ्गमरिचैः समभागविचूर्णितैः।**
**यावन्त्येतानि सर्वाणि कुर्यादभङ्गां च तावतीम्।। 74।।**
**सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः।**
**कर्षमात्रं ततः खादेन्मधुना प्लावितं सुधीः।। 75।।**
**अस्य प्रभावाद् ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः।**
**वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यान्ति वेगतः।। 76।।**

जायफल, लौंग, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेसर, देशी कपूर, सफेद चन्दन, काला तिल, वंशलोचन, तगर, आँवला, तालीसपत्र, पीपल, बड़ी हरड़, सफेद जीरा, चीता, सोंठ, वायविडंग तथा मरिच-इन सबका समान चूर्ण बनायें; जितना यह चूर्ण हो उतनी ही भाँग पीसकर मिला दें और इस समस्त चूर्ण के समान भाग चीनी (खाँड) मिलानी चाहिये।

इस चूर्ण का नाम 'जातीफलादि चूर्ण' है। इस चूर्ण की एक कर्ष (1 तोला) की मात्रा मधु के साथ मिलाकर खानी चाहिये। इसके प्रभाव से ग्रहणी रोग, कास, श्वास, अरुचि (खाने की इच्छा न होना), क्षय (यक्ष्मा) तथा वातकफजनित प्रतिश्याय (बिगड़े हुये जुकाम) शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

### महाखाण्डव चूर्ण

**मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च।**
**प्रत्येकमेकभागाः स्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः।। 77।।**
**त्वक्कणा तिन्तिडीकं च जीरकं च द्विभागिकम्।**
**धान्याम्लवेतसौ विश्वं भद्रैला बदराणि च।। 78।।**
**अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः।**
**सर्वौषधिचतुर्थांशं दाडिमस्य फलं भवेत्।। 79।।**
**द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सिता देयार्धमात्रया।**
**महाखाण्डवसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतत् सुरोचनम्।। 80।।**
**अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कासातीसारनाशनम्।**
**हृद्रोगकण्ठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ।। 81।।**
**विषूचिकां तथाध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि।**
**छर्दिं पञ्चविधां श्वासं चूर्णमेतद् व्यपोहति।। 82।।**

मरिच, नागकेसर, तालीसपत्र तथा लवणपञ्चक (सेंधा, सोंचर, विरिया, सामुद्र तथा साँभर नमक) प्रत्येक एक-एक भाग (एक-एक तोला); पीपलामूल, चीता की जड़, दालचीनी, पीपल, जिरिष्क तथा सफेद जीरा, प्रत्येक दो-दो भाग (2-2 तोला); धनियाँ, अम्लवेत, सोंठ, बड़ी इलायची, बेर (खट्टे बेरों का चूर्ण), अजमोदा (इसमें देशी अजवायन डाली जाये तो अच्छा है) तथा नागरमोथा प्रत्येक तीन-तीन भाग (3-3 तोला), उक्त सब औषधियों के चूर्ण की अपेक्षा चौथाई भाग अनारदाना लेना चाहिये और इस समस्त चूर्ण से आधी चीनी डालनी चाहिये। इस चूर्ण का नाम 'महाखाण्डव' है। यह अत्यन्त स्वादिष्ट चूर्ण है। अग्नि को दीप्त करता है, हृदय को शक्ति देता है, कास और अतिसार को नष्ट करता है, हृदय, कण्ठ, उदर एवं मुख के रोगों का नाश करता है, विसूची (हैजा), अफारा, बवासीर, गुल्म, कृमि, पाँच प्रकार की कै और श्वास रोग को नष्ट करता है।

### नारायण चूर्ण

**चित्रकं त्रिफलां व्योषं जीरकं हपुषा वचा।**
**यवानी पिप्पलीमूलं शतपुष्पाऽजगन्धिका।। 83।।**
**अजमोदा शठी धान्यं विडङ्गं स्थूलजीरकम्।**
**हेमाह्वा पौष्करं मूलं क्षारौ लवणपञ्चकम्।। 84।।**
**कुष्ठं चेति समांशानि विशालां स्याद् द्विभागिका।**
**त्रिवृत् त्रिभागा विज्ञेया दन्त्या भागत्रयं भवेत्।। 85।।**
**चतुर्भागा शीतला स्यात् सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।**
**पाचनस्नेहनाद्यैश्च स्निग्धकोष्ठस्य रोगिणः।। 86।।**
**दद्याच्चूर्णं विरेकाय सर्वरोगप्रणाशनम्।**
**हृद्रोगे पाण्डुरोगे च कासे श्वासे भगन्दरे।। 87।।**
**मन्देऽग्नौ च ज्वरे कुष्ठे ग्रहण्यां च गलग्रहे।**
**दद्याद् युक्तानुपानेन तथाध्माने सुरादिभिः।। 88।।**
**गुल्मे बदरनीरेण विड्भेदे दधिमस्तुना।**
**उष्णाम्बुभिरजीर्णे च वृक्षाम्लैः परिकर्तिषु।। 89।।**
**उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषु तथा तक्रेण वा गवाम्।**
**प्रसन्नया वातरोगे दाडिमाम्भोभिरर्शसि।। 90।।**
**द्विविधे च विषे दद्याद् घृतेन विषनाशनम्।**
**चूर्णं नारायणं नाम दुष्टरोगगणापहम्।। 91।।**

चीता की जड़, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), व्योष (सोंठ, मरिच, पीपल), जीरा सफेद (भुना हुआ), हाऊबेर, वच, अजवायन, पीपलामूल, सौंफ, वनतुलसी (पत्र अथवा बीज), अजमोदा, कचूर, धनियाँ, वायविडंग, कलौंजी, चोक (सत्यनाशी की जड़), पोहकरमूल, जौखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, साँभर नमक, विड़ नमक, समुद्र नमक एवं कूठ ये सब द्रव्य समान भाग (1-1 तोला), इन्द्रायण (जड़ अथवा फल) दो भाग (2 तोला), निसोत सफेद तीन भाग (3 तोला), दन्ती (जमालगोटा की जड़) तीन भाग (3 तोला) एवं सातला (सतवन नामक सेहुण्ड भेद) चार भाग (4 तोला), इन सबका चूर्ण बनाकर एक में मिला दें। पाचन, स्नेहन एवं स्वेदन कर्म द्वारा स्निग्ध किया गया है उदर जिसका, ऐसे रोगी को इस विरेचन चूर्ण का (दस्त होने के लिए) प्रयोग करें। यह सभी रोगों का विनाश करता है, हृदय रोग में, पाण्डुरोग में, कास में, श्वास में, भगन्दर में, मन्दाग्नि में, ज्वर में, कुष्ठ में, ग्रहणीरोग में एवं गलग्रह (गले की रुकावट) में यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयुक्त करना चाहिये। अफारा में मद्य (आसव, अरिष्ट) के साथ, वायुगोला में बेरी की छाल के क्वाथ के साथ, मलभेद (दस्तों) में दही के पानी के साथ, अजीर्ण (अपच) में उष्ण जल के साथ, परिकर्त्तिका (गुद-वलियों में कैंची से काटने की-सी पीड़ा) में विषांविल के क्वाथ से, उदर रोगों में ऊँटनी के दूध से अथवा गाय के मट्ठा के साथ, वातव्याधियों में प्रसन्ना (उच्च श्रेणी की शराब) के साथ, बादी बवासीर (खूनी में बहुत हानि करता है) में

अनार के रस अथवा अनार के छिलके के क्वाथ के साथ देना चाहिये तथा स्थावर एवं जंगम विष में घी के साथ मिलाकर प्रयुक्त करे। इसका नाम 'नारायण चूर्ण' है। यह दुष्ट रोगों के समूह को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–शोधन अर्थात् वमन एवं विरेचन के पूर्व सभी शोधनीय मनुष्यों को विशेष रूप से क्रूर कोष्ठ (कड़े कोठे) वालों में पाचनक्रिया, स्नेहनक्रिया तथा स्वेदनक्रिया (देखें– शा० उ० खं० 1-2) का प्रयोग किया जाता है, ताकि आमदोष पककर अपना स्थान छोड़ दें, कोष्ठ चिकना हो जाये और शरीर भर के या सम्पूर्ण धातुओं के दोष कोष्ठ में आ जायें। इन क्रियाओं से लाभ यह होता है कि दोषों या दूषित पदार्थों या दूषक पदार्थों के निकलने में कठिनाई नहीं होती अर्थात् वमन तथा विरेचन सुखपूर्वक हो जाते हैं। उक्त चूर्ण एक उत्तम विरेचन चूर्ण है। अतएव उक्त क्रियाएँ कराकर ही इसका सेवन कराना चाहिये।

### हपुषादि चूर्ण

**हपुषा त्रिफला चैव त्रायमाणा च पिप्पली।**
**हेमक्षीरी त्रिवृच्चैव शातला कटुका वचा।। 92।।**
**नीलिनी सैन्धवं कृष्णं लवणं चेति चूर्णयेत्।**
**उष्णोदकेन मूत्रेण दाडिमत्रिफलारसैः।। 93।।**
**तथा मांसरसेनापि यथायोग्यं पिबेन्नरः।**
**अजीर्णे प्लीह्नि गुल्मेषु शोफार्शोविषमाग्निषु।। 94।।**
**हलीमकामलापाण्डुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि ।**

हाऊबेर, त्रिफला, त्रायमाणा, पिप्पली, चोक (सत्यानाशी की जड़), सफेद निसोत, सतवन, कुटकी, वच, नीम की पत्ती अथवा जड़, सेंधा नमक अथवा काला नमक–इनका चूर्ण बना लें। इसका नाम 'हपुषादि चूर्ण' है। इसको आवश्यकतानुसार उष्ण जल के साथ अथवा गोमूत्र के साथ, अनार के रस के साथ, त्रिफला के रस के साथ अथवा मांसरस के साथ अजीर्ण (अपच या बदहजमी) प्लीहा रोग, गुल्म, सूजन, बवासीर, विषमाग्नि, हलीमक (कालाजार), कामला (पीलिया), पाण्डुरोग, कुष्ठ, अफारा एवं उदर रोगों में पीना चाहिये।

### पञ्चसम चूर्ण

**शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा।। 95।।**
**समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।**
**ज्ञेयं पञ्चसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम्।। 96।।**
**आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम्।**

सोंठ, बड़ी हरड़, पीपल, सफेद निसोत एवं सोंचर नमक– इन सब द्रव्यों को समान भाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसका नाम 'पञ्चसम चूर्ण' है। यह चूर्ण शूल अफारा, उदर रोग एवं बवासीर को नष्ट करता है और आमवात (गठिया) को हरता है।

### नाराच चूर्ण

**कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता।। 97।।**
**खण्डात्पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत्।**
**कर्षोन्मितं लिहेदेतत् क्षौद्रेणाध्माननाशनम्।। 98।।**
**गाढविट्कोदरकफान् पित्तशूलं च नाशयेत्।**

पीपल एक कर्ष (तोला), निसोत एक पल (4 तोला) तथा खाँड एक पल (4 तोला), पहले दो वस्तुओं को पीसकर, चीनी मिलाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को एक कर्ष परिमाण में लेकर मधु के साथ मिलाकर चाट लें। इससे अफारा का नाश होता है, गाढ़ विट्कता (कब्जियत), उदर रोग, कफ के विकार एवं पित्तजनित शूल का नाश होता है। इस चूर्ण का नाम 'नाराच चूर्ण' है। इस चूर्ण के सेवन से विरेचन होता है।

### लवणत्रितयादि चूर्ण

**लवणत्रितयं क्षारौ शतपुष्पाद्वयं वचा।। 99।।**
**अजमोदाऽजगन्धा च हपुषा जीरकद्वयम्।**
**मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली।। 100।।**
**हिङ्गुश्च हिङ्गुपत्री च शठी पाठोपकुञ्चिका।**
**शुण्ठी चित्रकचव्यानि विडङ्गं चाम्लवेतसम्।। 101।।**
**दाडिमं तिन्तिडीकं च त्रिवृद्दन्ती शतावरी।**
**इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारु यवानिका।। 102।।**
**कुस्तुम्बुरुस्तुम्बुरूणि पौष्करं बदराणि च।**
**शिवा चेति समांशानां चूर्णमेकत्र कारयेत्।। 103।।**
**भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा ।**
**तत्पिबेत् सर्पिषा जीर्णे मद्येनोष्णोदकेन वा।। 104।।**
**कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनौष्ट्रेण मस्तुना।**
**यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ।। 105।।**
**अर्शोविष्टम्भमन्दाग्निगुल्मप्लीहोदराणि च।**
**हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्न संशयः।। 106।।**
**एतैरेवौषधैः सम्यग् घृतं वा साधयेद्भिषक्।**

लवणत्रय (सेंधा, सोंचर एवं विड), दोनों क्षार (जौखार

एवं सज्जीखार), सौंफ, सोया, वच, अजमोदा, वनतुलसी के बीज या पत्ते, हाऊबेर, सफेद जीरा, काला जीरा, मरिच, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, हींग (घी में भुनी हुई), हिंगुपुत्री (डिकेमाली), कचूर, पाठा, कलौंजी, सोंठ, चीता की जड़, चव्य, वायविडंग, अम्लवेत, अनारदाना, जिरिष्क, निसोत, दन्ती की जड़, शतावर, इन्द्रायण की जड़ अथवा फल, भारंगी, देवदारु, अजवायन, धनियाँ, तुम्बुल, पोहकरमूल, खट्टे बेर एवं बडी हरड़, इन सब द्रव्यों का चूर्ण समान भाग में लेकर एक में मिला दें, फिर इसे अदरख के रस तथा नीबू के रस की भावना दें, अर्थात् उक्त रसों में भली-भाँति सानकर सुखा लें। इस चूर्ण को अधिक मात्रा में लेकर, पुरानी मद्य (आसव-अरिष्ट), उष्ण जल, बेर का क्वाथ, मट्ठा, ऊँटनी का दूध अथवा दही का पानी, इनमें से किसी एक अनुपान के साथ पीयें। यह चूर्ण यकृत्-विकार, कटिशूल (कमर का दर्द), गुदरोग (तूनी-प्रतितूनी आदि अथवा मलाशय के रोग), कुक्षिरोग (आमाशय के रोग) एवं हृदय के रोग, बवासीर, विष्टम्भ (अन्त्र आदि की रुकावट), मन्दाग्नि, गुल्म, प्लीहा-वृद्धि, उदर रोग, हिचकी, अफारा, श्वास एवं कास को जीतता है; इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। अथवा विद्वान् (स्नेहपाक को भली-भाँति जानने वाला) चिकित्सक इन्हीं औषधियों का कल्क एवं क्वाथ डालकर घृत भी तैयार कर सकता है।

**वक्तव्य**—घृतपाक की विधि इसी खण्ड के ९वें अध्याय में देखें।

### तुम्बुर्वादि चूर्ण

**तुम्बुरूणि त्रिलवणं यवानी पुष्कराह्वयम्।। 107।।**
**यवक्षाराभयाहिङ्गुविडङ्गानि समानि च।**
**त्रिवृत् त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।। 108।।**
**पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्वाथेन वा पिबेत्।**
**जयेत्सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च।। 109।।**

तुम्बुरु (तुम्बुल), सेंधा नमक, सोंचर नमक, विरिया नमक, देशी अजवायन, पोहकरमूल, जौखार, बड़ी हरड़, हींग (घृत भृष्ट) एवं वायविडंग, इन सब द्रव्यों को समान भाग (एक-एक तोला) में लें और निसोत (सफेद) तीन भाग (3 तोला) लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को गरम जल के साथ अथवा इन्द्रजौ के क्वाथ के साथ पीयें। यह चूर्ण सभी प्रकार के शूल को, गुल्म को, आध्मान (अफारा) एवं उदर रोग को जीतता है।

### चित्रकादि चूर्ण

**चित्रकं नागरं हिङ्गु पिप्पली पिप्पलीजटा।**
**चव्याजमोदा मरिचं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।। 110।।**
**स्वर्जिका च यवक्षारः सिन्धुः सौवर्चलं विडम्।**
**सामुद्रकं रोमकं च कोलमात्राणि कारयेत्।। 111।।**
**एकीकृत्याखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुङ्गजैः।**
**रसैर्दाडिमजैर्वापि शोषयेदातपेन च।। 112।।**
**एतच्चूर्णं जयेद् गुल्मं ग्रहणीमामजां रुजम्।**
**अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिकृत् कफनाशनम्।। 113।।**

चीता की जड़, सोंठ, भुनी हींग, पीपल, पीपलामूल, चव्य (चाव), अजमोदा तथा मरिच प्रत्येक एक-एक कर्ष (1-1 तोला), सज्जीखार, जौखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विरिया नमक, सामुद्र नमक तथा साँभर नमक प्रत्येक एक-एक कोल (आधा-आधा तोला), इन सबका चूर्ण करें। यह चूर्ण गुल्म, ग्रहणीरोग एवं आमजनित पीड़ा को जीतता है और अग्नि को दीप्त करता है। यह रुचिकारक है एवं कफ को नष्ट करता है।

### वडवानल चूर्ण

**सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकम्।**
**शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्धानि चूर्णयेत्।। 114।।**
**वडवानलनामैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम्।**

सेंधा नमक, पीपलामूल, पीपल, चव्य, चीता, सोंठ तथा हरड़ को क्रमशः 1-2-3-4-5-6-7 भाग में लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का नाम 'वडवानल' है और यह जठराग्नि को दीप्त करता है।

### अजमोदादि चूर्ण

**अजमोदा विडङ्गानि सैन्धवं देवदारु च।। 115।।**
**चित्रकः पिप्पलीमूलं शतपुष्पा च पिप्पली।**
**मरिचं चेति कर्षांशं प्रत्येकं कारयेद् बुधः।। 116।।**
**कर्षास्तु पञ्च पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारुकात्।**
**नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।। 117।।**
**पिबेत् कोष्णजलेनैव चूर्णं श्वयथुनाशनम्।**
**आमवातरुजं हन्ति सन्धिपीडां च गृध्रसीम्।। 118।।**
**कटिपृष्ठगुदस्थां च जङ्घयोश्च रुजं जयेत्।**
**तूनीप्रतूनीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत् ।। 119।।**
**समेन वा गुडेनास्य वटकान् कारयेद्भिषक्।**

अजमोदा, वायविडंग, सेंधा नमक, देवदारु, चीता की

जड़, पीपलामूल, सौंफ, पीपल तथा मरिच–प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण 1-1 तोला, बड़ी हरड़ का चूर्ण 5 तोला, विधारा का चूर्ण दस तोला लेकर सबको एकत्र कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को उष्ण जल के साथ सेवन करें। यह चूर्ण शोथ (सूजन) को नष्ट करता है, आमवात की पीड़ा को, सन्धियों की पीड़ा को एवं गृध्रसी रोग को नष्ट करता है। कमर, पीठ, गुद एवं जंघाओं (टांगों) की पीड़ा को जीतता है और तूनी (मलाशय एवं मूत्राशय में उत्पन्न होकर गुद तथा लिंग की ओर जाने वाली पीड़ा), प्रतितूनी (तूनी के विपरीत जाने वाली पीड़ा), विश्वाची (बाहु की जकड़न) तथा कफजनित एवं वातजनित रोगों को जीतता है। इस चूर्ण में समान भाग गुड़ डालकर बटक (बड़ी गोलियाँ) भी बनायी जाती हैं। इस योग का नाम 'अजमोदादि बटक' है।

**वक्तव्य**–यह चूर्ण आमवात आदि विकारों की उत्तम औषध है। इसका चूर्ण रूप में तो प्रयोग होता ही है, किन्तु कुछ चिकित्सक गुड़ की चासनी बनाकर उसमें चूर्ण मिलाकर इसकी गोलियाँ भी बना लेते हैं।

### शुण्ठ्यादि चूर्ण

**(शुण्ठी सौवर्चलं हिङ्गु दाडिमं चाम्लवेतसम्।। 120।।**
**चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये।)**

सोंठ, सोंचर नमक, घी में भुनी हींग, अनारदाना और अम्लवेतस इनका समान भाग चूर्ण बनाकर उष्ण जल के साथ पीना चाहिये। इससे श्वास एवं हृदयरोग शान्त हो जाते हैं। इस चूर्ण का नाम 'शुण्ठ्यादि चूर्ण' है।

**वक्तव्य**–यह एक उत्तम स्वादिष्ट चूर्ण है।

### हिंग्वादि चूर्ण

**हिङ्गु पाठाऽभया धान्यं दाडिमं चित्रकः शठी।। 121।।**
**अजमोदा त्रिकटुकं हपुषा चाम्लवेतसम्।**
**अजगन्धा तिन्तिडीकं जीरकं पौष्करं वचा।। 122।।**
**चव्यं क्षारद्वयं पञ्च लवणानि विचूर्णयेत्।**
**प्राग्भोजनस्य मध्ये वा चूर्णमेतत् प्रयोजयेत्।। 123।।**
**पिबेद् वा जीर्णमद्येन तक्रेणोष्णोदकेन वा।**
**गुल्मे वातकफोद्भूते हृद्ग्रहेऽष्ठीलिकासु च।। 124।।**
**हृद्वस्तिपार्श्वशूलेषु शूले च गुदयोनिजे।**
**मूत्रकृच्छ्रे तथानाहे पाण्डुरोगेऽरुचौ तथा।। 125।।**
**हिक्कायां यकृति प्लीह्नि श्वासे कासे गलग्रहे।**
**ग्रहण्यर्शोविकारेषु चूर्णमेतत् प्रशस्यते।। 126।।**
**भावितं मातुलुङ्गस्य बहुशः स्वरसेन वा।**
**कुर्याच्च गुटिका बह्वीर्वातश्लेष्मामयापहाः।। 127।।**

घी में भुनी हींग, पाठा, बड़ी हरड़, धनियाँ, अनारदाना, चीता की जड़, कचूर, अजमोदा, सोंठ, मरिच, पीपल, हाऊबेर, अम्लवेत, वनतुलसी के बीज या पत्ते, जिरिष्क, भुना हुआ जीरा, पोहकरमूल, वच, चाव, सज्जीखार, जौखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विरिया नमक, समुद्र नमक एवं साँभर नमक–इनका चूर्ण बना लें। भोजन के पूर्व अथवा मध्य में (प्रत्येक ग्रास में अथवा भोजन में मिलाकर) इस चूर्ण का प्रयोग करें अथवा पुराना मद्य (आसव आदि) के साथ अथवा मट्ठा के साथ अथवा उष्ण जल के साथ प्रयोग करें। वात एवं कफ से उत्पन्न हुये गुल्म, हृदय की जकड़न, अष्ठीला (वातव्याधि-विशेष), हृदय, वस्ति (मूत्राशय) एवं पसली के शूल, गुद तथा योनि (गर्भाशय) के शूल, मूत्रकृच्छ्र, आनाह (अन्त्रगति-निरोध), पाण्डुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृत् एवं प्लीहा के विकारों, श्वास, कास, गले की रुकावट, ग्रहणी एवं अर्श के विकारों में यह चूर्ण उत्तम माना जाता है। अथवा बिजौरा नींबू के स्वरस से कई बार भावना देकर इस चूर्ण की गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ वातज एवं कफज रोगों को नष्ट करती हैं।

**वक्तव्य**–यह सुप्रसिद्ध 'हिंग्वादि चूर्ण' है। बिजौरा नींबू के स्थान में 'कागजी नींबू' का भी प्रयोग किया जा सकता है।

### यवानीखाण्डव चूर्ण

**यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसौ।**
**बदराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च।। 128।।**
**सार्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका।**
**त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकं द्विद्विशाणकम्।। 129।।**
**चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत्।**
**चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखाण्डवाभिधम्।। 130।।**
**चूर्णं जयेत् पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीं ज्वरम्।**
**छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम्।। 131।।**
**अरुचिं शूलमन्दाग्निमर्शोजिह्वागलामयान्।**

अजवायन, अनारदाना, सोंठ, तिन्तिडीक (जिरिष्क), अम्लवेत तथा बेर का चूरा 4-4 शाण, मरिच 2½ शाण, पिप्पली 10 शाण, दालचीनी, कालानमक, धनियाँ तथा जीरा 2-2 शाण एवं शर्करा 64 शाण, सबको पीसकर चूर्ण बना लें। इसका नाम 'यवानीखाण्डव' है। यह पाण्डुरोग, हृदयरोग,

ग्रहणीरोग, ज्वर, उलटी, शोष, अतिसार, प्लीहा, आनाह, मलबन्ध, अरुचि, शूल, मन्दाग्नि, अर्श तथा जीभ एवं गले के रोगों को जीतता है।

### तालीसादि चूर्ण

**तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचनम्।। 132।।**
**एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत्।**
**एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमाचरेत्।। 133।।**
**द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः।**
**तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम्।। 134।।**
**कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम्।**
**शोषाध्मानहरं प्लीहाग्रहणीपाण्डुरोगजित्।। 135।।**
**पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत् स्याद् गुटिका ततः।**

तालीसपत्र एक तोला, मरिच दो तोला, सोंठ तीन तोला, पिप्पली चार तोला एवं वंशलोचन पाँच तोला लें और इलायची (छोटी) तथा दालचीनी प्रत्येक आधा-आधा तोला लें और इसमें बत्तीस तोला चीनी मिला दें। इस चूर्ण का नाम 'तालीसादि चूर्ण' है। यह चूर्ण रुचिकर एवं पाचन है। कास, श्वास, ज्वर, छर्दि (कै, वमन, उल्टी) तथा अतिसार को नष्ट करता है, शोष (यक्ष्मा) तथा अफारा को हरता है और प्लीहारोग, ग्रहणीरोग एवं पाण्डुरोग को जीतता है। अथवा उक्त बत्तीस तोला चीनी की चासनी बनाकर और उसमें चूर्ण मिलाकर गोलियाँ बना लें।

**वक्तव्य**—चीनी अथवा गुड़ की चासनी में जो चूर्ण डाले जायें, उन्हें अत्यन्त बारीक कर लेना चाहिये, अन्यथा गोलियाँ उत्तम नहीं बनेंगी।

### सितोपलादि चूर्ण

**सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना।। 136।।**
**पिप्पली स्याच्चतुष्कर्षा स्यादेला च द्विकार्षिकी।**
**एकः कर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत् सर्वमेकतः।। 137।।**
**सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत्।**
**श्वासकासक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित्।। 138।।**
**मन्दाग्निं सुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम्।**
**ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तं पित्तमाशु व्यपोहति।। 139।।**

सितोपला (मिश्री) सोलह तोला, वंशलोचन आठ तोला, पीपल चार तोला, छोटी इलायची दो तोला एवं दालचीनी एक तोला, इन सब द्रव्यों का चूर्ण करके एक में मिला लें। इस चूर्ण का नाम 'सितोपलादि' है। इसे घी तथा मधु के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। यह चूर्ण श्वास, कास एवं क्षय (यक्ष्मा) को हरता है; हाथ, पाँव एवं शरीर के किसी भी अवयव के दाह को जीतता है; मन्दाग्नि, जीभ की सुप्तता (शून्यता या रसग्रहण की असमर्थता), पसली के शूल, अरुचि, ज्वर एवं ऊपर के स्रोतों (नाक, मुख आदि) द्वारा निकलने वाले रक्तपित्त को शीघ्र ही शान्त करता है।

**वक्तव्य**—उक्त चूर्ण आयुर्वेद का एक सुप्रसिद्ध योग है। इसने अपने अद्‌भुत गुणों की धाक प्रत्येक वैद्य के हृदय पर जमा रखी है। इस चूर्ण को घृत-मधु दोनों के साथ मिलाकर खाना चाहिये। इसमें साधारणतया एक तोला घी तथा नौ माशा मधु लेना चाहिये।

### लवणभास्कर चूर्ण

**सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः।**
**पञ्च सौवर्चलं ग्राह्यं बिडं सैन्धवधान्यकात्।। 140।।**
**पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजीरकपत्रकम्।**
**नागकेशरतालीसमम्लवेतसकं तथा।। 141।।**
**द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः।**
**मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम्।। 142।।**
**दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेला चार्धकार्षिकी।**
**एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम्।। 143।।**
**शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः।**
**वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम्।। 144।।**
**अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम्।**
**शोफं शूलं श्वासकासावामवातं च हृद्रुजम्।। 145।।**
**मन्दाग्निं नाशयेदेतद् दीपनं पाचनं परम्।**
**सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा।। 146।।**

सामुद्र नमक आठ तोला, सोंचर नमक पाँच तोला, विरिया नमक, सेंधा नमक, धनियाँ, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, तेजपत्ता, नागकेसर, तालीसपत्र और अम्लवेत ये प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोला, मरिच, सफेद जीरा (भुना) एवं सोंठ (एक-एक तोला), अनारदाना चार तोला, दालचीनी और इलायची प्रत्येक आधा तोला, इन सबका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का नाम 'लवणभास्कर' है। इसकी एक मात्रा एक शाण (3 माशा) है। इसे मस्तु (दही का पानी), तक्र (मट्ठा), सुरा (मद्य) एवं आसव (कुमार्यासव आदि किसी आसव) के साथ देना चाहिये। यह चूर्ण वात-कफजनित गुल्म, प्लीहा-विकार, उदररोग, क्षय (यक्ष्मा), बवासीर, ग्रहणीरोग, कुष्ठ (कोढ़),

विबन्ध (मलबन्ध), भगन्दर, सूजन, शूल, श्वास, कास, आमवात, हृदयशूल एवं मन्दाग्नि को नष्ट करता है। यह अत्यन्त दीपन तथा पाचन है। प्राचीनकाल में श्रीभास्कराचार्य ने सभी लोगों की भलाई के लिए इस चूर्ण का निर्माण किया था।

### एलादि चूर्ण

**एलाप्रियङ्गुमुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली।**
**श्रीचन्दनं तथा लाजा लवङ्गं नागकेशरम्।। 147।।**
**एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सिताक्षौद्रयुतं लिहेत्।**
**वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिं हन्त्यतिवेगतः।। 148।।**

छोटी इलायची, प्रियंगु (फूलप्रियंगु), नागरमोथा, बेर की मींगी (गिरी), पीपल, लालचन्दन, लावा (खील), लौंग एवं नागकेसर, इन सबका चूर्ण बनाकर चीनी तथा शहद के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। यह चूर्ण वात, पित्त एवं कफ से उत्पन्न छर्दि (कै या उल्टी) को शीघ्र ही रोकता है।

### व्याघ्री चूर्ण

**(व्याघ्रीजीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत्।**
**ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात्।। 149।।)**

कण्टकारी की जड़, सफेद जीरा एवं आँवला का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। इसके सेवन से रोगी ऊर्ध्ववात (उद्गार या डकार), महाश्वास एवं तमकश्वास से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

### पञ्चनिम्ब चूर्ण

**मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वचं निम्बात् समाहरेत्।**
**सूक्ष्मचूर्णमिदं कुर्यात् पलैः पञ्चदशोन्मितैः।। 150।।**
**लोहभस्महरीतक्यौ चक्रमर्दकचित्रकौ।**
**भल्लातकं विडङ्गानि शर्करामलकं निशा।। 151।।**
**पिप्पली मरिचं शुण्ठी बाकुची कृतमालकः।**
**गोक्षुरश्च पलोन्मानमेकैकं कारयेद् बुधः।। 152।।**
**सर्वमेकीकृतं चूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्।**
**अष्टभागावशिष्टेन खदिरासनवारिणा।। 153।।**
**भावयित्वा च संशुष्कं कर्षमात्रं ततः पिबेत्।**
**खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाऽथवा।। 154।।**
**मासेन सर्वकुष्ठानि विनिहन्ति रसायनम्।**
**पञ्चनिम्बमिदं चूर्णं सर्वरोगप्रणाशनम्।। 155।।**

नीम के जड़ की छाल, पत्ते, फल (फल की मींगी), फूल एवं तने की छाल, इन सबका अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) चूर्ण पन्द्रह पल (छः तोला) लोहभस्म, बड़ी हरड़, चकवड़ (बनाड़ या पनवाड़) के बीज, चीता की जड़, शुद्ध भिलावा, वायविडंग, चीनी, आँवला, हल्दी, पीपल, मरिच, सोंठ, बावची, अमलतास की गुद्दी तथा गोखरू, इनका चूर्ण चार-चार तोला बनवा लें और सबको एक में मिलाकर भाँगरा के स्वरस से भावना दें, फिर खैरसार तथा विजयसार के आठवाँ अंश शेष रहे हुये क्वाथ से भावना देकर भली-भाँति सुखा लें, तत्पश्चात् एक तोला चूर्ण को खैरसार और विजयसार के क्वाथ के साथ अथवा घी के साथ अथवा जल के साथ सेवन करे। एक मास तक सेवन करने से यह सभी प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करता है। यह रसायन (जराव्याधिनाशक) है तथा सब रोगों को नष्ट करता है। इसका नाम 'पञ्चनिम्ब चूर्ण' है।

**वक्तव्य**–भिलावा तथा अमलतास की गुद्दी को पृथक् ही भाँगरा के रस में भली-भाँति पीस लेना चाहिये, क्योंकि ये द्रव्य कपड़छन नहीं किये जा सकते।

### शतावर्यादि चूर्ण

**शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम्।**
**गाङ्गेरुकी चातिबला बीजमिक्षुरकोद्भवम्।। 156।।**
**चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि।**
**न तृप्तिं याति नारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः।। 157।।**

शतावर, गोखरू, किवाँच के बीज, गंगेरन (गुलसकरी) के बीज, बरियारा के बीज एवं तालमखाना के बीज, इन सबका समान भाग में चूर्ण बनाकर एक में मिला दें और इसे एक तोला लेकर रात्रि में गोदुग्ध के साथ सेवन करे। इस चूर्ण के प्रभाव से मनुष्य स्त्रियों के सहवास से तृप्ति को प्राप्त नहीं होता।

### अश्वगन्धादि चूर्ण

**अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्धदारुकः।**
**चूर्णीकृत्योभयं विद्वान् घृतभाण्डे निधापयेत्।। 158।।**
**कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति।**
**अगत्वा प्रमदां भूयाद् वलीपलितवर्जितः।। 159।।**

नागौरी असगन्ध चलीस तोला, विधारा चालीस तोला, इन दोनों का चूर्ण बनाकर विद्वान् मनुष्य घी के पात्र में रख दें। इसमें से एक तोला की एक मात्रा लेकर गाय के दूध के साथ पीकर स्त्रियों से (मैथुन में) तृप्त नहीं होता। यदि स्त्री संसर्ग न करे, अर्थात् ब्रह्मचारी बना रहे तो वली (झुर्रियाँ) एवं पलित (जवानी में बालों का सफेद होना रोग) से मुक्त हो जाता है।

### मुसल्यादि चूर्ण

(मुसलीकन्दचूर्णं तु गुडूचीसत्त्वसंयुतम्।
वानरीगोक्षुराभ्यां च शाल्मलीशर्करामलैः।। 160।।
आलोड्य घृतदुग्धेन पाययेत् कामवर्धनम्।)

सफेद मुसली, सतगिलोय, किवाँच के बीज, गोखरू, सेमल की मुसली, चीनी एवं आँवला, इन सबका चूर्ण घी और दूध में मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे मैथुनेच्छा बढ़ती है।

**वक्तव्य**–उक्त तीनों योग वीर्यवर्धक तथा बलवर्धक हैं। अत: कृशता, शुक्रहीनता तथा दुर्बलता में इनका प्रयोग करना चाहिये।

### नवायस चूर्ण

चित्रकस्त्रिफला मुस्तं विडङ्गं त्र्यूषणानि च।। 161।।
समभागानि कार्याणि नव भागा हतायसः।
एतदेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत्।। 162।।
गोमूत्रमथवा तक्रमनुपाने प्रशस्यते।
पाण्डुरोगं जयत्युग्रं हृद्रोगं च भगन्दरम्।। 163।।
शोथकुष्ठोदरार्शांसि मन्दाग्निमरुचिं कृमीन्।

चीता की जड़, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडंग, सोंठ, मरिच तथा पीपल ये सब द्रव्य समान भाग (1-1 तोला) और लौह भस्म नौ भाग (9 तोला), इन सबका एक में मिलाया हुआ चूर्ण मात्रानुसार घी तथा शहद के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। अनुपान में गोमूत्र अथवा तक्र (मट्ठा) अच्छा माना जाता है। यह चूर्ण भीषण पाण्डुरोग, हृदयरोग, भगन्दर, शोथ (सूजन), कुष्ठ (कोढ़), उदररोग एक बवासीर, मन्दाग्नि, अरुचि तथा क्रिमियों को जीतता है। इसका नाम 'नवायास चूर्ण' है।

**वक्तव्य**–यह योग पाण्डु कामला तथा इनके उपद्रवों की परमोत्तम औषध है। पाण्डुरोग में इसके साथ अधिक से अधिक तक्र या अर्ध-विलोड़ित दही पिलाना चाहिये। इसमें लोहभस्म उत्तम से उत्तम डालनी चाहिये।

### आकारकरभादि चूर्ण

आकारकरभः शुण्ठी कङ्कोलं कुङ्कुमं कणा।। 164।।
जातीफलं लवङ्गं च चन्दनं चेति कार्षिकान्।
चूर्णानि मानतः कुर्यादहिफेनं पलोन्मितम्।। 165।।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं माषैकं मधुना लिहेत्।
शुक्रस्तम्भकरं चूर्णं पुंसामानन्दकारकम्।। 166।।
नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः।

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे चूर्णकल्पना नाम षष्ठोऽध्यायः।। 6।।**

अकरकरा, सोंठ, शीतलचीनी, केशर, पीपल, जायफल, लौंग तथा सफेद चन्दन, इन सबका 1-1 तोला चूर्ण और अफीम एक पल (4 तोला), सबको एक में मिलाकर रख लें। इसमें से एक माशा चूर्ण मधु के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। यह चूर्ण मैथुन काल में शुक्र को रोकता और पुरुषों को आनन्द (मैथुन-सम्बन्धी आनन्द) देता है तथा स्त्रियों में प्रेम उत्पन्न करता है। अतएव कामी मनुष्य रात्रि में इस चूर्ण का सेवन करे।

**वक्तव्य**–जिन लोगों का शुक्र शीघ्र स्खलित हो जाता है, उन्हीं लोगों को इस चूर्ण का सेवन करना चाहिये और जो लोग आवश्यकता के बिना ही केवल मैथुनानन्द की लालसा के वशीभूत होकर स्तम्भन औषधियों का प्रयोग करते हैं, उन्हें भयानक हानि उठानी पड़ती है।

**पञ्चवल्कल चूर्ण**–जब शीतला के दानों से पंछा बहने लगे तब उन पर पंचवल्कल (बड़, पीपल, पाकर, गूलर और पारस पीपल) की छाल का चूर्ण अथवा उपलों की भस्म अथवा गोबर का चूर्ण का बुरकना चाहिये।

**माषादि चूर्ण**–उड़द का चूर्ण (भुना हुआ), मुलेठी, विदारीकन्द, मधु की चीनी का चूर्ण दूध के साथ पिलाना चाहिये। यह सोमरोग का उत्तम औषध है।

**बकुलत्वक् चूर्ण**–मौलसिरी की छाल का चूर्ण दाँतों पर मलना चाहिये। इससे हिलते हुये दाँत भी वज्र के समान दृढ़ हो जाते हैं।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का छठा अध्याय समाप्त।। 6।।

# सप्तमोऽध्यायः

# वटककल्पना

### बटी के पर्याय नाम

**वटकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी।**
**मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्तिस्तथोच्यते।। 1।।**

चूर्णों का वर्णन करने के पश्चात् अब यहाँ से बटक कहे जा रहे हैं। उनको गुटिका, बटी, वटिका, मोदक, पिण्डी, गुड़ एवं वर्ति भी कहा जाता है।

**वक्तव्य**–औषधियों की गोलियाँ बनाकर सेवन करने तथा कराने में रोगी तथा चिकित्सक दोनों को सुविधा रहती है। उक्त सब गोलियों के ही नामान्तर हैं।

### बटी-निर्माण की विधि

**लेहवत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराथवा।**
**गुग्गुलुर्वा क्षिपेत् तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी।। 2।।**

गुड़ अथवा चीनी अथवा गूगल को अग्नि पर चढ़ाकर लेह (अवलेह या लेई) के समान तैयार किया जाता है और उनमें चूर्ण डालकर गोलियाँ बना ली जाती हैं।

### बटी-निर्माण की दूसरी विधि

**कुर्यादवह्निसिद्धेन क्वचिद् गुग्गुलुना वटीम्।**
**द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद् बुधः।। 3।।**

कभी-कभी गूगल को अग्नि द्वारा पकाये बिना ही, उससे गोलियाँ बना ली जाती हैं। विद्वान् चिकित्सक किसी द्रव (तरल पदार्थ) के संयोग से अथवा मधु के संयोग से भी गोलियाँ बना सकते हैं।

### बटी में सिता आदि का मान

**सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः।**
**चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम्।। 4।।**
**द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः।**
**कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते।। 5।।**

गोलियों में चूर्ण द्रव्यों की अपेक्षा चीनी चौगुनी ली जाती है और गुड़ दुगुना तथा गूगल एवं मधु समान भाग लिया जाता है। बुद्धिमान् चिकित्सक गोलियों में द्रव पदार्थ दुगुना डालते हैं। गोलियों की मात्रा साधारणतया एक कर्ष (1 तोला) मानी जाती है। किन्तु रोग, रोगी एवं औषधियों के बल को देखकर मात्रा की व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

**वक्तव्य**–मात्रा का उक्त निर्देश (1 तोला) सामान्य रूप से किया गया है, क्योंकि इस अध्याय में ऐसे भी योग हैं, जिनकी मात्रा एक रत्ती की है, यथा–सञ्जीवनी बटी। इसीलिए **'बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते'** कहा गया है।

### बाहुशाल गुड़

**इन्द्रवारुणिका मुस्तं शुण्ठी दन्ती हरीतकी।**
**त्रिवृच्छठी विडङ्गानि गोक्षुरश्चित्रकस्तथा।। 6।।**
**तेजोह्वा च द्विकर्षाणि पृथग् द्रव्याणि कारयेत्।**
**सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारु चतुष्पलम्।। 7।।**
**चतुष्पलं स्याद् भल्लातः क्वाथयेत् सर्वमेकतः।**
**जलद्रोणे चतुर्थांशं गृह्णीयात् क्वाथमुत्तमम्।। 8।।**
**क्वाथ्यद्रव्यात् त्रिगुणितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत्।**
**सम्यक् पक्वं च विज्ञाय चूर्णमेतत् प्रदापयेत्।। 9।।**
**चित्रकत्रिवृतादन्तीतेजोह्वाः पलिकाः पृथक्।**
**पृथक्त्रिपलिकाः कार्या व्योषैलामलकत्वचः।। 10।।**
**निक्षिपेन्मधु शीते च तस्मिन् प्रस्थप्रमाणतः।**
**एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान् बाहुशालगुडः शुभः।। 11।।**
**जयेदर्शांसि सर्वाणि गुल्मं वातोदरं तथा।**
**आमवातप्रतिश्यायग्रहणीक्षयपीनसान् ।। 12।।**
**हलीमकं पाण्डुरोगं प्रमेहं च विनाशयेत्।**

इन्द्रायण की जड़, नागरमोथा, सोंठ, दन्ती (जमालगोय) की जड़, बड़ी हरड़, निसोत सफेद, कचूर, वायविडंग, गोखरू,

चीता का जड़ एवं तेजबल (तिमूर) की छाल-ये सब द्रव्य दो-दो तोला, सूरण (सूखा जिमीकन्द) 32 तोला, विधारा 16 तोला एवं शुद्ध भिलावा 16 तोला। इन सब द्रव्यों को जौकुट करके एक द्रोण (19 सेर 3 पाव 4 तोला) जल में डालकर पकायें, चौथाई भाग शेष रहने पर छानकर क्वाथ ले लें। फिर इस क्वाथ में क्वाथ्य द्रव्यों (इन्द्रायण से भिलावा-पर्यन्त) से तिगुना (3 सेर 3 छटाँक 3 तोला) गुड़ डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकायें। जब यह जान लें कि गुड़ का पाक भली प्रकार हो गया है तो उसमें चीता का जड़, निसोत, दन्ती एवं तेजबल प्रत्येक का (12-12 तोला) कपड़छन चूर्ण मिला दें और तत्काल नीचे उतार लें, तत्पश्चात् शीतल हो जाने पर 64 तोला उत्तम मधु डालकर मिला दें। इस प्रकार तैयार किया हुआ यह योग 'श्रीमान् बाहुशाल गुड़' कहलाता है। यह गुड़ सभी प्रकार की बवासीर, गुल्म, वातजनित उदररोग, आमवात या आढ्यवात, प्रतिश्याय, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पाण्डुरोग तथा प्रमेह को जीतता है।

**वक्तव्य**-सूरण को छोटे-छोटे टुकड़े करके सुखा लिया जाता है। इसका अनुपान रोगों के अनुकूल चुन लेना चाहिये। यह गुड़ बवासीर का उत्तम औषध है।

### मरिचादि गुटिका

**मरिचं कर्षमात्रं स्यात् पिप्पली कर्षसम्मिता।। 13।।**
**अर्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम्।**
**एतच्चूर्णीकृतं युञ्ज्यादष्टकर्षगुडेन हि।। 14।।**
**शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत्।**
**अस्याः प्रभावात् सर्वेऽपि कासा यान्त्येव सङ्क्षयम्।। 15।।**

मरिच का चूर्ण 1 तोला, पीपल का चूर्ण 1 तोला, जौखार आधा तोला तथा अनार के छिलकों का चूर्ण दो तोला लेकर आठ तोला गुड़ की चासनी बनाकर, उसमें चूर्ण को मिलाकर एक शाण (1.4 तोला) भर की गोलियाँ बनाकर सुखा लें। इनमें से एक गोली को मुख में रखकर चूसते रहें। इसके प्रभाव से सब प्रकार के कास विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। ये गोलियाँ 'मरिचादि गुटिका' नाम से प्रसिद्ध हैं।

**वक्तव्य**-गुड़ की चासनी कुछ कड़ी बना लेनी चाहिये, जिससे गोलियाँ भली-भाँति चूसी जा सकें। इसमें अनार का छिलका कुछ भूनकर डालना चाहिये। यह अकेला भी खाँसी में बहुत लाभ करता है।

### गुडादि गुटिका

**गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्गुटिका धारयेन्मुखे।**
**श्वासकासेषु सर्वेषु बिभीतं वापि केवलम्।। 16।।**

गुड़, सोंठ, बड़ी हरड़ तथा नागरमोथा की गोलियाँ बनाकर श्वासरोग तथा कास रोगों में मुख में रखकर चूसना चाहिये अथवा केवल बहेड़ा का छिलका उक्त रोगों (श्वास-कास) में चूसना चाहिये।

**वक्तव्य**-इस योग में शुण्ठी आदि के चूर्ण की अपेक्षा गुड़ दुगुना लेकर कड़ी चासनी बना लेनी चाहिये-'वटीषु द्विगुणो गुडः' ताकि गोलियाँ कड़ी तैयार हो सकें। चूर्ण को चासनी में मिलाकर तत्काल गोलियाँ बना लेनी चाहिये, अन्यथा चासनी ठंडी हो जायेगी फिर गोलियाँ नहीं बन सकेंगी।

### आमलक्यादि गुटिका

**आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकः।**
**एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे।। 17।।**
**तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषं च दारुणम्।**

आँवला, कमल, मीठाकूठ, धान का लावा (खील) और वट-प्ररोह (बरगद की जटा या वरोह) इन सबका चूर्ण बनाकर समान भाग मधु के साथ गोलियाँ बनाकर मुख में रखकर चूसते रहें। यह गोली बढ़ी हुई प्यास को तथा भीषण मुखशोष को नष्ट करती है।

**वक्तव्य**-मधु की चासनी बनाकर गोलियाँ बनायी जाती हैं और बनाना चाहिये, अन्यथा मुख में रखी नहीं जा सकतीं। यद्यपि भारतीय वैद्य समाज **'हन्यान्मधूष्णम्'** (चरकसंहिता सू० अ० 27) तथा **'उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु। उष्णार्तमुष्णैरुष्णे वा तन्निहन्ति यथा विषम्'**।। (सु० सू० अ० 45.144)-दोनों सहिताओं का तात्पर्य यह है कि गरम किया हुआ मधु मार डालता है और उष्ण पदार्थों के साथ मधु का योग विरुद्ध होता है, क्योंकि उसमें विष का सम्बन्ध होता है या विषैली मक्खियाँ उसका संचय करती हैं और गर्मी से पीड़ित मनुष्य को उष्ण पदार्थों के साथ उष्णकाल में विष के समान यह मार डालता है-इत्यदि वचनों के आधार पर मधु को गरम करना उचित नहीं समझते, किन्तु यूनानी पद्धति के चिकित्सक मधु की चासनी में सैकड़ों योग बनाते हैं और प्रतिदिन उनका प्रयोग करते हैं। अतः हमारा विचार है कि चरक तथा सुश्रुत के उपर्युक्त वाक्य केवल 'पौत्तिक' मधु से सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि **'विशेषात्पौत्तिकं तेषु रूक्षोष्णं**

**सविषान्वयात्**' (सु० सू० अ० 45.134) इस वाक्य द्वारा केवल 'पौत्तिक' मधु को ही विष का सम्बन्ध होने के कारण रूक्ष अथवा उष्ण कहा गया है। दूसरे प्रकार के सब मधु शीतल माने गये हैं। देखें-चरक तथा सुश्रुत के उक्त अध्यायों को। पर्वतीय प्रदेशों में मधु को अग्नि में तपाकर साफ करते हैं और रख देते हैं और उसकी मिठाइयाँ भी बनाते हैं।

### सञ्जीवनी बटी

**विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकम्।। 18।।**
**वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत्।**
**एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत्।। 19।।**
**गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकजै रसैः।**
**एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां प्रदापयेत्।। 20।।**
**तिस्त्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्त्रः सान्निपातके।**
**वटी सञ्जीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम्।। 21।।**

वायविडंग, सोंठ, पीपल, बड़ी हरड़, आँवला बहेड़ा, वच, गिलोय, शुद्ध भिलावा तथा शुद्ध विष (मीठा तेलिया) इन सबका चूर्ण समान भाग में लेकर गोमूत्र के साथ भली-भाँति पीसना चाहिये और रत्ती भर की गोलियाँ बनानी चाहिये। इनका प्रयोग अदरख के रस के साथ करना चाहिये। अजीर्ण (बदहजमी) तथा गुल्म में एक गोली, विसूची (हैजा या कालरा) में दो गोलियाँ, सर्पदंष्ट (साँप के काटे हुये) मनुष्य को तीन गोलियाँ और सन्निपात में चार गोलियाँ एक मात्रा में देनी चाहिये। इस गोली का नाम 'सञ्जीवनी' है और यह मरते हुये प्राणी को भी जीवित कर देती है।

**वक्तव्य**-उक्त वटी सचमुच 'यथा नाम तथा गुणः' कहावत को चरितार्थ करती है। जब रोगी मुमूर्षु हो जाता है अर्थात् शरीर ठण्डा एवं नाड़ी छूटने लगती है, बोली बन्द हो जाती है, आँखें चढ़ जाती हैं, तब भी यह अपने अद्भुत गुणों का परिचय देती है। रोगी मृत्यु के मुख से छुटकारा पा जाता है। उक्त रोगों के अतिरिक्त ज्वर, प्लेग एवं शिरोरोग आदि रोगों में भी यह अपना आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाती है।

### व्योषादि बटी

**व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकं तथा।**
**जीरकं तिन्तिडीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम्।। 22।।**
**त्रिसुगन्धं त्रिशाणं स्याद् गुडः स्यात्कर्षविंशतिः।**
**व्योषादिगुटिका सामपीनसश्वासकासजित्।। 23।।**
**रुचिस्वरकरी ख्याता प्रतिश्यायप्रणाशिनी।**

सोंठ, मरिच, पीपल, अम्लवेत, चव्य, तालीसपत्र, चीता की जड़, सफेद जीरा तथा जिरिष्क प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण 1-1 तोला, दालचीनी, बड़ी इलायची तथा तेजपत्ता प्रत्येक पौन-पौन तोला और गुड़ बीस तोला लें। गुड़ की चासनी बनाकर उक्त द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर गोलियाँ बना लेनी चाहिये। यह 'व्योषादिगुटिका' आमदोष युक्त पीनस (जुकाम), श्वास तथा कास को जीतती है, रुचि को बढ़ाती है तथा स्वर (आवाज) को खोलती है और प्रतिश्याय को नष्ट करने में प्रसिद्ध है।

### गुड़ के चार योग

**आमेषु सगुडां शुण्ठीमजीर्णे गुडपिप्पलीम्।। 24।।**
**कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शःसु सगुडाभयाम्।**

आम के विकारों में गुड़ तथा सोंठ की गोली, अजीर्ण में गुड़ और पीपल का गोली, मूत्रकृच्छ्र में सफेद जीरा तथा गुड़ की गोली और बवासीर में गुड़ और हरड़ का गोली प्रयुक्त करनी चाहिये।

**वक्तव्य**-उक्त श्लोक में चार योगों का निर्देश किया गया है। सभी में गुड़ दुगुना लेना चाहिये।

### वृद्धदारुक मोदक

**वृद्धदारुकभल्लातशुण्ठीचूर्णेन योजितः।। 25।।**
**मोदकः सगुडो हन्यात् षड्विधार्शःकृतां रुजम्।**

विधारा, शुद्ध भिलावा तथा सोंठ का चूर्ण बनाकर गुड़ (दुगुना) में गोली बनाना चाहिये। यह छः प्रकार के बवासीर के कष्टों को नष्ट करती है।

### सूरण-पिण्डी

**शुष्कसूरणचूर्णस्य भागान् द्वात्रिंशदाहरेत्।। 26।।**
**भागान् षोडश चित्रस्य शुण्ठ्या भागचतुष्टयम्।**
**द्वौ भागौ मरिचस्यापि सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।। 27।।**
**गुडेन पिण्डिकां कुर्यादर्शसां नाशनीं पराम्।**

सूखे सूरण (जिमीकन्द) का चूर्ण बत्तीस तोला, चीता का चूर्ण सोलह तोला, सोंठ का चूर्ण चार तोला और मरिच का चूर्ण दो तोला, लेकर दूने गुड़ के साथ गोलियाँ बनायें। यह बवासीर को नष्ट करने में परमोत्तम है। इस योग का नाम 'सूरण-पिण्डी' है।

### सूरण-बटक

**सूरणो वृद्धदारुश्च भागैः षोडशभिः पृथक्।। 28।।**

मुशलीचित्रकौ ज्ञेयावष्टभागमितौ पृथक्।
शिवा बिभीतकी धात्री विडङ्गं नागरं कणा।। 29।।
भल्लातः पिप्पलीमूलं तालीसं च पृथक्पृथक्।
चतुर्भागप्रमाणानि त्वगेला मरिचं तथा।। 30।।
द्विभागमात्राणि पृथक् ततस्त्वेकत्र चूर्णयेत्।
द्विगुणेन गुडेनाथ वटकान् कारयेद् बुधः।। 31।।
प्रबलाग्निकरा एते तथार्शोनाशनाः पराः।
ग्रहणीं वातकफजां श्वासं कासं क्षयामयम्।। 32।।
प्लीहानं श्लीपदं शोथं हिक्कां मेहं भगन्दरम्।
निहन्युः पलितं वृष्यास्तथा मेध्या रसायनाः।। 33।।

सूखा सूरण तथा विधारा का चूर्ण पृथक्-पृथक् 16-16 तोला, सफेद मुसली तथा चीता का चूर्ण पृथक्-पृथक् 8-8 तोला, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वायविडंग, सोंठ, पीपल शुद्ध भिलावा, पीपलामूल तथा तालीसपत्र प्रत्येक का चूर्ण 4-4 तोला और दालचीनी, बड़ी इलायची तथा मरिच प्रत्येक का चूर्ण दो-दो तोला लेकर दुगुने गुड़ के साथ बटक (बड़ी-बड़ी गोलियाँ) बना लें। ये बटक अग्नि को प्रबल करते हैं, परमोत्तम अर्शोनाशक हैं, वातकफ-जनित ग्रहणी रोग, श्वास, कास, क्षयरोग, प्लीहा-विकार, शलीपद (फीलपाँव), शोथ, प्रमेह, भगन्दर तथा अकालपलित को नष्ट करते हैं, वृष्य (वीर्यवर्द्धक), मेध्य (बुद्धिवर्द्धक) तथा रसायन (जरा-व्याधिविनाशक) हैं। इस योग का नाम 'सूरण-बटक' है।

### मण्डूर-बटक

त्रिफला त्र्यूषणं चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ।
दारु माक्षिकधातुस्त्वग्दार्वी मुस्त विडङ्गकम्।। 34।।
प्रत्येकं कर्षमात्राणि सर्वं द्विगुणितं तथा।
मण्डूरं चूर्णयेत् सर्वं गोमूत्रेऽष्टगुणे क्षिपेत्।। 35।।
पक्त्वा च वटकान् कृत्वा दद्यात् तक्रानुपानतः।
कामलापाण्डुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ।। 36।।
ऊरुस्तम्भमजीर्णं च प्लीहानं नाशयेदपि।

हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, पीपलामूल, चीता की जड़, देवदारु, सोनामाखी की भस्म, दारुहल्दी, नागरमोथा तथा वायविडंग प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक-एक तोला तथा शुद्ध मण्डूर भस्म उक्त सब द्रव्यों की अपेक्षा दुगुना (दो-दो तोला) लेकर आठ गुने गोमूत्र में डालकर (कड़ाही में डाल) अग्नि पर चढ़ाकर मन्द आँच से पकाये और गाढ़ा होने पर बड़ी-बड़ी या झड़बेर की-सी गोलियाँ बनायें। तक्र (मट्ठा) के अनुपान से इनका सेवन करे। यह कामला (पीलिया), पाण्डुरोग, प्रमेह, बवासीर, शोथ, कुष्ठ, कफरोग, ऊरुस्तम्भ, अजीर्ण तथा प्लीहा को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**-इस योग का नाम 'मण्डूर-बटक' है। इसमें उत्तम से उत्तम मण्डूर भस्म डालना चाहिये। यह पाण्डुरोग की सर्वश्रेष्ठ औषध है। इसके साथ यथेष्ट मट्ठा पिलाना चाहिये और नमक छुड़ाकर चना-गेहूँ के आटा की रोटी घी के साथ खिलानी चाहिये।

### पिप्पली-मोदक

(क्षौद्राद् द्विगुणितं सर्पिर्घृताद् द्विगुणपिप्पली।। 37।।
सिता द्विगुणिता तस्याः क्षीरं देयं चतुर्गुणम्।
चातुर्जातं क्षौद्रतुल्यं पक्त्वा कुर्याच्च मोदकान्।। 38।।
धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् श्वासं कासं च पाण्डुताम्।
धातुक्षयं वह्निमान्द्यं पिप्पलीमोदको जयेत्।। 39।।)

मधु से दुगुना घी, घी से दुगुना पिप्पली चूर्ण, पिप्पली से दुगुनी चीनी, चीनी से दुगुना दूध और मधु के समान चतुर्जात (दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता और नागकेसर का सम्मिलित चूर्ण), इन्हें मिलाकर धीमी आँच से पकायें, जब गाढ़ा हो जाये तब लड्डू बना लें। ये लड्डू रस-रक्त आदि सब धातुओं में स्थित ज्वरों को, श्वास, कास, पाण्डुरोग, धातुक्षय (प्रमेह आदि में धातुओं का जाना) तथा मन्दाग्नि को जीतते हैं। इसका नाम 'पिप्पली-मोदक' है।

**वक्तव्य**-पहले दूध का खोया बनाकर घृत में भली-भाँति भून लेना चाहिये, अन्यथा बिगड़ जाने का भय बना रहता है फिर उसमें दूसरी वस्तुएँ मिलाकर मोदक बना लेने चाहिये। मात्रा-एक तोला, अनुपान यथोचित।

### चन्द्रप्रभा बटी

चन्द्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम्।
हरिद्रातिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ।। 40।।
धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली।
व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम्।। 41।।
एतानि शाणमात्राणि प्रत्येकं कारयेद् बुधः।
त्रिवृद्दन्तीपत्रकं च त्वगेला वंशरोचना।। 42।।
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान्।
द्विकर्षं हतलोहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत्।। 43।।
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः।
एभिरेकत्र सञ्चूर्णैः कर्तव्या गुटिका शुभा।। 44।।
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी।
प्रमेहान् विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाश्मरीम्।। 45।।

**विबन्धाऽऽनाहशूलानि मेहनं ग्रन्थिमर्बुदम्।**
**अन्त्रवृद्धिं कटीशूलं श्वास कासं विचर्चिकाम्।।46।।**
**अण्डवृद्धिं तथा पाण्डुं कामलां च हलीमकम्।**
**कुष्ठान्यर्शांसि कण्डूं च प्लीहोदरभगन्दरम्।।47।।**
**दन्तरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्तवजां रुजम्।**
**पुंसां शुक्रगतान् दोषान् मन्दाग्निमरुचिं तथा।।48।।**
**वायुं पित्तं कफं हन्याद् बल्या वृष्या रसायनी।**
**चन्द्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते।।49।।**

चन्द्रप्रभा (कचूर), वच, नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पिप्पलामूल, चीता की जड़, धनियाँ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, सोंठ, मरिच, पीपल, सोनामाखी का भस्म, सज्जीखार, जौखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक तथा विरिया नमक इन प्रत्येक द्रव्यों के चूर्णों को एक-एक शाण (चार-चार आना भर) लें; सफेद निसोत, दन्ती (जमालगोटा), तेजपत्ता, दालचीनी, बड़ी इलायची तथा वंशलोचन इन प्रत्येक द्रव्यों का चूर्ण एक-एक तोला, लोह भस्म दो तोला, चीनी चार तोला, शिलाजीत आठ तोला एवं शुद्ध गूगल आठ तोला, इन सबको भली-भाँति कूट-पीसकर सुरूप गोलियाँ बना लेना चाहिये। इस सुप्रसिद्ध योग का नाम 'चन्द्रप्रभा बटी' (या गुग्गुल) है। यह सर्वरोग विनाशक है। बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी (पथरी), विबन्ध (मलबन्ध), आनाह (आमाशय एवं पक्वाशय का गति-निरोध), शूल, उपदंश आदि लिंगरोग, ग्रन्थि (लसीका ग्रन्थियों के विकार), अर्बुद (रसौली), अन्त्रवृद्धि (आँत उतरना), कमर का दर्द, श्वास, कास, विचर्चिका, अण्डवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, कुष्ठ, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगन्दर, दन्तरोग, नेत्ररोग, स्त्रियों के मासिकधर्म-सम्बन्धी रोग, पुरुषों के शुक्र-सम्बन्धी-रोग, मन्दाग्नि, अरुचि, वातरोग, पित्तरोग, तथा कफरोगों को नष्ट करती है। यह बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन (जरा-व्याधि-विनाशक) है। इस चन्द्रप्रभा बटी में कर्ष (तोला) चार शाण का माना जाता है।

**वक्तव्य**—चन्द्रप्रभा बटी में 'चन्द्रप्रभा' नामक औषधि के सम्बन्ध में सदियों से मतभेद चल रहा है। शार्ङ्गधरसंहिता के सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीआढमल्ल अपनी 'दीपिका' नामक टीका में लिखते हैं—**'चन्द्रप्रभां कर्पूरः एके, चन्द्रप्रभाशब्देन शटीं शतावरीं वा कथयन्ति संज्ञाशब्दत्वात्'। किन्तु यह भी** सन्दिग्ध ही है और पं० काशीरामजी गूढार्थदीपिका में कर्पूर: अथवा 'कर्पूरभेद' कहते हैं। 'वैद्यकशब्दसिन्धु' में बाकुची एवं कचूर नामक द्रव्यों का नाम चन्द्रप्रभा माना गया है। 'रसेन्द्रसारसंग्रह' के अर्शोधिकार में ठीक यही योग और इसी नाम से लिखा गया है। उसमें चन्द्रप्रभा नाम का कोई द्रव्य नहीं है किन्तु 'शटी' है और सम्प्रदायानुसार भी चन्द्रप्रभा का नाम शटी ही पढ़ा या पढ़ाया जाता है। अब विचारणीय यह है कि 'चन्द्रप्रभा' नाम से किस द्रव्य का ग्रहण किया जाये? हमारे विचार से तो कचूर ही लेना चाहिये, क्योंकि बहुमत इसी के पक्ष में है। फिर भी 'बाकुची' के गुण-धर्मों तथा उसके प्रशंसापरक वचनों पर इस अवसर पर अवश्य ध्यान दें।

**'चन्द्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते'**—इसमें दिया गया यह पाठ भी विचारणीय है। मागधमान में चार शाण का ही कर्ष माना जाता है और यही मान बहुसम्मत भी है। हाँ, 'कालिंगमान' में अढ़ाई शाण का कर्ष माना गया है, किन्तु तदनुसार कार्य प्रायः किया ही नहीं जाता और दीपिकाकार इसे प्रक्षिप्त भी मानते हैं। 'रसेन्द्रसारसंग्रह' में जहाँ यह पाठ उद्धृत है, वहाँ इस विषय की कुछ चर्चा ही नहीं की गयी है। इस योग में एक छटाँक घी देकर सवा लाख चोट देकर खूब कुटाई करनी चाहिये। इससे भी अधिक जितना ही कूटा जायेगा, उतनी ही उत्तम गोलियाँ बनेंगी।

### कांकायन बटी

**यवानी जीरकं धान्यं मरिच गिरिकर्णिका।**
**अजमोदोपकुञ्ची च चतुःशाणाः पृथक् पृथक्।। 50।।**
**हिङ्गु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम्।**
**त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत् सुधीः।। 51।।**
**दन्ती शठी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा।**
**चित्रोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक्।। 52।।**
**बीजपूररसेनैषां गुटिकां कारयेद् बुधः।**
**घृतेन पयसा मद्यैरम्लैरुष्णोदकेन वा।। 53।।**
**पिबेत् काङ्कायनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनी।**
**मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम्।। 54।।**
**मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम्।**
**उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत्।। 55।।**
**हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत्।**

अजवायन, सफेद जीरा, धनियाँ, मरिच, गिरिकर्णिका, अजमोदा तथा काला जीरा प्रत्येक एक-एक तोला, घी में भुनी हुई हींग डेढ़ तोला, सज्जीखार, जौखार, सेंधा नमक,

सोंचर नमक, विरिया नमक, समुद्र नमक, साँभर नमक तथा सफेद निसोत प्रत्येक दो-दो तोला, दन्ती, कचूर, पोहकरमूल, वायविडंग, अनारदाना, हरड़, चीता की जड़, अम्लवेत तथा सोंठ प्रत्येक चार-चार तोला, इन सब द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर बिजौरा निम्बू अथवा कागजी निम्बू के रस के साथ घोटकर गोलियाँ बना लें और घी में मिलाकर दूध के साथ, मद्यों (आसव-अरिष्टों) के साथ अम्लपदार्थों (काञ्जी तथा शिकञ्जी आदि) के साथ अथवा उष्ण जल के साथ सेवन करे। महर्षि काङ्कायन की कही हुई यह गोली 'काङ्कायन बटी' कहलाती है। यह गरम जल के साथ गुल्म (वायुगोला) को, मठा के साथ वातज गुल्म को, गोदुग्ध के साथ पित्तज गुल्म को, गोमूत्र के साथ कफज गुल्म को, दशमूल के क्वाथ के साथ त्रिदोषज गुल्म को और ऊँटनी के दूध के साथ स्त्रियों के रक्तगुल्म को नष्ट करती है। यथोचित अनुपान के साथ हृदय रोग, ग्रहणी रोग, शूल, क्रिमि तथा बवासीर को नष्ट करती है।

### योगराज गुग्गुलु

**नागरं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकौ।।56।।**
**भृष्टं हिङ्ग्वजमोदा च सर्षपो जीरकद्वयम्।**
**रेणुकेन्द्रयवाः पाठा विडङ्गं गजपिप्पली।।57।।**
**कटुकातिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वे त्रिभागतः।**
**प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः।।58।।**
**द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत्।**
**एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयश्च गुग्गुलुः।।59।।**
**(वङ्गं रौप्यं च नागं च लोहसारस्तथाभ्रकम्।**
**मण्डूरं रससिन्दूरं प्रत्येकं पलसम्मितम्।।60।।**
**गुडपाकसमं कृत्वा दद्यादेतद् यथोचितम्।**
**एकपिण्डं ततः कृत्वा धारेयद् घृतभाजने।।61।।**
**गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः।**
**गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनः।।62।।**
**मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते।**
**सर्वान् वातामयान् कुष्ठानर्शांसि ग्रहणीगदम्।।63।।**
**प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगन्दरम्।**
**उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम्।।64।।**
**मन्दाग्निं श्वासकासांश्च नाशयेदरुचिं तथा।**
**रेतोदोषहरः पुंसा रजोदोषहरः स्त्रियाम्।।65।।**
**पुंसामपत्यजनको वन्ध्यानां गर्भदस्तथा।**
**रास्नादिक्वाथसंयुक्तो विविधं हन्ति मारुतम्।।66।।**
**काकोल्यादिशृतात् पित्तं कफमारग्वधादिना।**
**दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पाण्डुताम्।।67।।**
**मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठं निम्बशृतेन वा।**
**छिन्नाक्वाथेन वातास्रं शोथं शूलं कणाशृतात्।।68।।**
**पाटलाक्वाथसहितो विषं मूषकजं जयेत्।**
**त्रिफलाक्वाथसहितो नेत्रार्तिं हन्ति दारुणाम्।।69।।**
**पुनर्नवादिक्वाथेन हन्यात् सर्वोदराण्यपि।)**

सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चीता की जड़, भुनी हींग, अजमोदा, सरसों, जीरा, काला जीरा, रेणुका (मेवड़ी) के बीज, इन्द्रजौ, पाठा, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच तथा मरोड़फली ये बीस द्रव्य प्रत्येक एक-एक शाण (सब मिलाकर 5 तोला), इन सब द्रव्यों से दुगुना (10 तोला) त्रिफला का चूर्ण और इन सब द्रव्यों के समान (15 तोला) शुद्ध गूगल लें। वंगभस्म, रौप्य (चाँदी) की भस्म, नाग (सीसा) भस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म तथा रससिन्दूर ये प्रत्येक 4-4 तोला। सबसे पहले गूगल को जल में डालकर धीमी आँच द्वारा पिघलाकर उपर्युक्त सब द्रव्य कपड़छन करके मिला दें अथवा एक-एक शाण (चार-चार आना) भर की अथवा यथोचित (जितनी उचित समझें, अर्थात् एक-एक आना भर की अथवा इससे भी छोटी) सुरूप गोलियाँ बनाकर उन्हें सुखाकर रख लें। इस योग का नाम 'योगराज गुग्गुलु' है। यह त्रिदोषनाशक तथा रसायन योग है। इसके सेवन करते समय मैथुन तथा किसी भी प्रकार के आहार एवं पेय-पदार्थों का परहेज नहीं है। यह वायु के सब रोगों, अठारह प्रकार के कुष्ठों, सभी प्रकार के बवासीरों, ग्रहणीरोग, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त, क्षय, अपस्मार (मिरगी), उरोग्रह (हृदय तथा फुप्फुस की जकड़न), मन्दाग्नि, श्वास, कास तथा अरुचि को नष्ट करता है। पुरुषों के वीर्य दोषों को तथा स्त्रियों के रज-सम्बन्धी दोषों को हरता है। पुरुषों के शुक्र में सन्तानोत्पादक शक्ति और स्त्रियों को गर्भ ग्रहण की शक्ति देता है। रास्नादि क्वाथ (देखें-शा० सं० म० खं० 2) के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार के वातरोगों को, काकोल्यादि क्वाथ के साथ सेवन करने से पित्तरोगों को, आरग्वधादि क्वाथ के साथ सेवन करने से कफरोगों को, दारुहल्दी के क्वाथ से प्रमेहों को, गोमूत्र के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग को, जल में मधु मिलाकर सेवन करने से मेदोवृद्धि को, नीम की छाल के क्वाथ के साथ सेवन करने से कुष्ठ को, गिलोय के क्वाथ से वातरक्त को, पीपल के क्वाथ से शोथ

तथा शूल को तथा पाढल की छाल के क्वाथ के साथ सेवन करने से चूहे के विष (प्लेग) को (देखें-सु० क० अ० 7) जीतता है, त्रिफला के क्वाथ से आँख की भीषण पीड़ा को तथा पुनर्नवादि क्वाथ के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के उदररोगों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—उक्त योग आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध योग है। इसने अपने अद्भुत गुणों द्वारा मानव-समाज के हृदय में अपना घर बना लिया है और आयुर्वेद का सिर ऊँचा कर रखा है। ज्ञात होता है कि आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व जब भावमिश्र ने भावप्रकाश की रचना की थी, तब इसमें धातुओं का योग नहीं होता था। उसके बाद किसी चतुर चिकित्सक द्वारा उक्त सात द्रव्य (बंग आदि) मिलाने की प्रथा चला दी है, जिससे सोने में सुगन्धित का संयोग बन गया है। इसके द्रव्यों को विधिपूर्वक जुटाकर आवश्यकतानुसार घी डालकर सवा लाख चोटों से कूटना चाहिये और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये।

### कैशोर गुग्गुलु

**त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत्।।70।।**
**सङ्कुट्य लोहपात्रे तु सार्धद्रोणाम्बुना पचेत्।**
**जलमर्धशृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद् वस्त्रगालितम्।।71।।**
**ततः क्वाथे क्षिपेच्छुद्धं गुग्गुलुं प्रस्थसम्मितम्।**
**पुनः पचेदयःपात्रे दर्व्या सङ्घट्टयेन्मुहुः।।72।।**
**सान्द्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम्।**
**चूर्णीकृत्य ततस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत्।।73।।**
**त्रिफला द्विपला ज्ञेया गुडूची पलिका मता।**
**षडक्षं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडङ्गानां पलार्धकम्।।74।।**
**दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता।**
**ततः पिण्डीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिक्षिपेत्।।75।।**
**गुटिकाः शाणमात्रेण युञ्ज्याद् दोषाद्यपेक्षया।**
**अनुपाने भिषग्दद्यात् कोष्णं नीरं पयोऽथवा।।76।।**
**मञ्जिष्ठादिशृतं वापि युक्तियुक्तमतः परम्।**
**जयेत् सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम्।।77।।**
**सर्वव्रणानि गुल्मानि प्रमेहपिडिकास्तथा।**
**प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपाण्डुजान् ।।78।।**
**हन्ति सर्वामयान्नित्यमुपयुक्तो रसायनः।**
**कैशोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कान्तिकारकः।।79।।**
**वासादिना नेत्रगदान् गुल्मादीन् वरुणादिना।**
**क्वाथेन खदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत्।।80।।**
**अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम्।**
**मद्यं रोषं त्यजेत् सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः।।81।।**

त्रिफला (बीजरहित) तीन सेर, गिलोय एक सेर, दोनों को कूटकर लोहपात्र (कड़ाही) में डेढ़ द्रोण (चौबीस सेर) जल में मन्द अग्नि से पकायें। जब आधा जल रह जाये तो कपड़े से छानकर क्वाथ ले लें। तदनन्तर इस क्वाथ में शुद्ध गूगल एक प्रस्थ (सेर) डालकर करछुल से बार-बार हिलाते हुये धीमी आँच से पुनः पकायें। जब गुडपाक के समान गाढ़ा हो जाये तो इसमें निम्नलिखित द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण मिला दें-त्रिफला दो पल (दो छटाँक), गिलोय एक पल (एक छटाँक), त्रिकटु छः कर्ष (साढ़े सात तोला), वायविडंग आधी छटाँक (आधा पल), दन्ती एक कर्ष (डेढ़ तोला)। इसके पश्चात् सम्पूर्ण औषध का एक पिण्ड बनाकर घी के पात्र में रख लें अथवा एक-एक शाण की गोलियाँ बना लें। फिर दोष, देश एवं कालादि के अनुसार इन गोलियों का प्रयोग करें और अनुपान में उष्णजल, दूध, मञ्जिष्ठादि क्वाथ अथवा जो युक्तियुक्त समझें, प्रयोग करें। यह योग सभी प्रकार के कुष्ठों, त्रिदोषजनित वातरक्त, सभी प्रकार के व्रणों, गुल्म, प्रमेहपिडिकाओं, प्रमेह, उदररोग, मन्दाग्नि, कास-श्वास, शोथ, पाण्डुरोग तथा सब रोगों को नष्ट करता है। बहुत दिनों तक सेवन करने से यह रसायन अर्थात् जरा-व्याधि नाशक है। इस योग का नाम 'कैशोरगुग्गुल' है। यह कान्तिकारक अर्थात् भ्राजक पित्त को उत्तेजित करके शरीर को कान्तियुक्त बनाता है। वासादि क्वाथ के साथ सेवन करने से नेत्र रोगों को, वरुणादि क्वाथ से गुल्मादि रोगों को तथा खैरसार के क्वाथ से व्रण तथा कुष्ठों को नष्ट करता है।

**पथ्य**—कैशोर गुग्गुलु आदि योगों का सेवन करने वाला मनुष्य यदि उससे ठीक-ठीक लाभ उठाना चाहे तो अम्ल (खट्टे) पदार्थ, तीक्ष्ण (मरिचादि) पदार्थ, अजीर्ण (अनपच), व्यायाम (कसरत), श्रम (परिश्रम), धूप (घाम), मद्य तथा क्रोध का त्याग करे।

**वक्तव्य**—इस योग में हमने सरलता की दृष्टि से प्रस्थ को सेर, पल को छटाँक एवं अक्ष तथा कर्ष को सवा तोला लिखा है। इस योग की भी घी देकर खूब कुटाई करनी चाहिये, क्योंकि गूगल के योग जितने ही कूटे जाते हैं उतने ही गुणवान् होते हैं। ध्यान दें-**'मर्दनं गुणवर्धनम्'**।

### त्रिफला गुग्गुलु

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम्।
गुग्गुलुः पाञ्चपलिकः क्षोदयेत् सर्वमेकतः।। 82।।
ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुञ्ज्याद् वह्न्यपेक्षया।
भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत्।। 83।।

त्रिफला का चूर्ण तीन पल (12 तोला), पीपल का चूर्ण एक पल (4 तोला) और शुद्ध गूगल बीस तोला, इन सबको मिलाकर घी के योग से भली-भाँति कूटना चाहिये। तत्पश्चात् गोलियाँ बना तथा सुखाकर रख दें। पाचन-शक्ति का विचार करके इन गोलियों का प्रयोग रोगी को कराना चाहिये। यह योग भगन्दर, गुल्म, शोथ तथा अर्श को नष्ट करता है।

### गोक्षुरादि गुग्गुलु

अष्टाविंशतिसङ्ख्यानि पलान्यानीय गोक्षुरात्।
विपचेत् षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशेषितः।। 84।।
ततः पुनः पचेत् तत्र पुरं सप्तपलं क्षिपेत्।
गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिक्षिपेत्।। 85।।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितं पलसप्तकम्।
ततः पिण्डीकृतस्यास्य गुटिकामुपयोजयेत्।। 86।।
हन्यात् प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम्।
वातास्त्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाश्मरीम्।। 87।।

अट्ठाईस पल गोखरू को कूटकर छः गुने जल में पकायें, आधा जल शेष रहने पर छानकर क्वाथ ले लें। फिर इस क्वाथ में सात पल (28 तोला) शुद्ध गूगल डालकर पकायें, जब गुड़पाक के समान हो जाये तो निम्नलिखित द्रव्यों का सात पल कपड़छान चूर्ण डाल दें। ये द्रव्य हैं-सोंठ, मरिच, पीपल तीन पल (12 तोला), हरड़, बहेड़ा, आँवला तीन पल और नागरमोथा एक पल। फिर घी के योग से भली-भाँति कूटकर तथा गोलियाँ बनाकर प्रयोग करें। यह योग प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र (कष्ट के साथ मूत्र का आना), प्रदर, मूत्राघात (मूत्रबन्ध), वातरक्त, वातरोग, शुक्र-विकार तथा अश्मरी (पथरी) को नष्ट करता है।

### त्रिफला मोदक

त्रिफलाष्टपला कार्या भल्लातं च चतुष्पलम्।
बाकुची पञ्चपलिका विडङ्गानां चतुष्पलम्।। 88।।
हतलोहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु।
एकैकं पलमात्र स्यात् पलार्द्धं पौष्करं भवेत्।। 89।।
चित्रकस्य पलार्द्धं स्याद् द्विशाणं मरिचं भवेत्।
नागरं पिप्पली मुस्ता त्वगेलापत्रकुङ्कुमम्।। 90।।
शाणोन्मितं स्यादेकैकं चूर्णयेत् सर्वमेकतः।
ततस्तत् प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखण्डे च तत्समे।। 91।।
मोदकान् पलिकान् कृत्वा प्रयुञ्जीत यथोचितान्।
हन्यात् सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान्।। 92।।
भगन्दरप्लीहगुल्माञ्जिह्वातालुगलामयान् ।
शिरोऽक्षिभ्रूगतान् रोगान् हन्यात्पृष्ठगतानपि।। 93।।
प्राग्भोजनस्य देयं स्यादधःकायस्थिते गदे।
भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते।। 94।।
भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च।

त्रिफला चूर्ण आठ पल (बत्तीस तोला), शुद्ध भिलावा चार पल, बाकुची का चूर्ण पाँच पल, वायविडंग का चूर्ण चार पल, लोहभस्म, निसोत (सफेद) का चूर्ण, शुद्ध गूगल तथा शिलाजीत एक-एक पल, पोहकरमूल का चूर्ण आधा पल (दो तोला), चीता की जड़ का चूर्ण आधा पल, मरिच का चूर्ण दो शाण (आधा तोला), सोंठ, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता तथा केसर का चूर्ण एक-एक शाण (1.4 तोला) लें। फिर उक्त सभी द्रव्यों के चूर्ण के समान भाग चानी की चासनी में सब चूर्ण डालकर और मिलाकर एक-एक पल (चार तोला) के मोदक या लड्डू बना लें। इनका प्रयोग आवश्यकतानुसार करें। ये सब प्रकार के कुष्ठों, वात, पित्त तथा कफ के रोगों, भगन्दर, प्लीहा, गुल्म, जीभ, तालु, गले, शिर, आँख, भौंह के रोगों तथा पीठ के रोगों को नष्ट करता है। इसे शरीर के अधोभाग के रोगों में भोजन के पहले, मध्यभाग के रोगों में भोजन के मध्य में और ऊर्ध्वजत्रु के रोगों में भोजन के पश्चात् देना चाहिये।

### काञ्चनार गुग्गुलु

काञ्चनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधैः।। 95।।
त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात् पलत्रयम्।
पलैकं वरुणं कुर्यादेलात्वक्पत्रकं तथा।। 96।।
एकैकं कर्षमात्रं स्यात् सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः।। 97।।
सङ्कुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा च धारयेत्।
गुटिकाः शाणिकाः कार्याः प्रातर्ग्राह्या यथोचितम्।। 98।।
गण्डमालां जयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च।
ग्रन्थीन् व्रणांश्च गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम्।। 99।।
प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डतिकाभवः।
क्वाथः खदिरसारस्य पथ्याक्वाथोष्णकं जलम्।। 100।।

काँचनार की छाल दस पल (40 तोला), त्रिफला (बीजरहित) छः पल (24 तोला), त्रिकटु तीन पल (12 तोला), बरना की छाल एक पल (4 तोला), बड़ी इलायची, दालचीनी तथा तेजपत्ता एक-एक कर्ष-इन सबका एक साथ चूर्ण बना लें और जितना यह चूर्ण हो उतना ही शुद्ध गूगल लें, तत्पश्चात् गूगुल को जल में घोलकर उक्त चूर्ण मिला दें। फिर भली प्रकार कूटकर (थोड़ा-थोड़ा घी देकर) तथा एक पिण्ड-सा बनाकर रख दें अथवा एक-एक शाण की गोलियाँ बनाकर तथा सुखाकर रख दें। यह 'काञ्चनारगुग्गुलु' भयानक अपची को, अर्बुद (रसौली) को, ग्रथियों (लसीका-ग्रन्थियों के विकारों) को, व्रणों को, गुल्मों को, कुष्ठों तथा भगन्दर को जीतता है। इसके अनुपान के लिए गोरखमुण्डी का क्वाथ, खैरसार का क्वाथ अथवा उष्ण जल देना चाहिये।

**गूगल-शोधन-विधि**—उत्तम कोटि का भैंसिया गूगल आवश्यकतानुसार लेकर जिस रोग को नष्ट करने के लिए तैयार करना हो उस रोग को नष्ट करने वाली औषधियों के क्वाथ में अथवा गोमूत्र में पकाकर घुल जाने पर (यदि थोड़ा नहीं भी घुलता तो उसे घोलने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये) छानकर गुड़पाक के समान गाढ़ा होने पर चूल्हे से उतार और धूप में पूर्ण रूप से सुखाकर रख लेना चाहिये। यह गूगल शुद्ध हो गया। गूगल के योगों का निर्माण करने में आवश्यकतानुसार घी डाला जाता है और उसे अधिक से अधिक कूटा जाता है। इसमें 'सवा लाख' तक चोटें लगायी जाती हैं। जहाँ तक हो सके पीला चमकदार गूगल ही लेना चाहिये, क्योंकि यही उत्तम होता है।

### माषादि मोदक

**निस्तुषं माषचूर्णं स्यात् तथा गोधूमसम्भवम्।**
**निस्तुषं यवचूर्णं च शालितण्डुलजं तथा।। 101।।**
**सूक्ष्मं च पिप्पलीचूर्णं पलिकान्युपकल्पयेत्।**
**एतदेकीकृतं सर्वं भर्जयेद् गोघृतेन च।। 102।।**
**अर्धमात्रेण सर्वेभ्यस्ततः खण्डं समं क्षिपेत्।**
**जलं च द्विगुणं दत्त्वा पाचयेत शनैः शनैः।। 103।।**
**ततः पक्वं समुद्धृत्य वृत्तान् कुर्वीत मोदकान्।**
**भुक्त्वा सायं पलैकं च पिबेत् क्षीरं चतुर्गुणम्।। 104।।**
**वर्जनीयौ विशेषेण क्षाराम्लौ द्वौ रसावपि।**
**कृत्वैवं रमयेन्नारीर्बह्वीर्न क्षीयते नरः।। 105।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे वटककल्पना नाम सप्तमोऽध्यायः।। 7।।**

छिलके रहित जौ एवं चावलों का चूर्ण (आटा) तथा पीपल का चूर्ण एक-एक पल ले लें और सब चूर्णों को 2½ पल गोघृत में भून लें (जैसा कि हलुआ बनाने के लिए भुना जाता है) फिर सबके समान चीनी (साढ़े सात पल) डाले और दुगुना (15 पल) जल डालकर धीरे-धीरे पकाये। जब भली-भाँति पक जाये तो कुछ ठंडा होने पर गोल-गोल लड्डू बनाकर रख दें। इनमें से एक लड्डू सायंकाल खाकर साथ में चौगुना दूध पीयें। इसका सेवन करते समय क्षार (लवण) और खटाई को अवश्य त्याग दें। इनका सेवन करने पर मनुष्य बहुत-सी स्त्रियों से रमण कर सकता है और क्षीण (दुर्बल या कृश) नहीं होता।

**वक्तव्य**—इस योग को यदि उक्त रीति से बनायें तो केवल एक दिन के लिए बनायें, अन्यथा बिगड़ जायगा और यदि चीनी की चासनी में बनाया जाता है तो एक-दो सप्ताह टिक सकता है। यदि जल का योग किया ही न जाये तो बहुत दिनों तक भी नहीं बिगड़ता। इसमें घी आधा नहीं बल्कि समान भाग में लेना चाहिये।

**'उदर्दनाशकमोदक'** यहाँ हमने प्रस्तुत योग का संग्रह किया है। इसकी निर्माण-विधि इस प्रकार है-गुड़ दो भाग, अजवायन चूर्ण एक भाग, दोनों की गोलियाँ बनाकर खायें और पथ्य भोजन करें तो सात दिनों में सर्वशरीरव्यापी 'उदर्द' नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त।। 7।।

## अष्टमोऽध्यायः

# अवलेहकल्पना

### अवलेह-निर्माण-विधि

**क्वाथादीनां पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया।**
**सोऽवलेहश्च लेहः स्यात् तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता।। 1।।**

क्वाथ आदि अर्थात् स्वरस, फाण्ट तथा कल्क के दुबारा पाक करने से जो गाढ़ा पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे 'रसक्रिया' कहा जाता है। उसी को 'अवलेह' तथा 'लेह' भी कहा जाता है। उसकी मात्रा एक पल (4 तोला) होती है।

**वक्तव्य**–औषधद्रव्य का पहले क्वाथ आदि प्रस्तुत करके फिर उसे पकाकर गाढ़ा कर लेते हैं। यह रसवत बनाने की विधि है। यथा–दारुहल्दी का क्वाथ करके छान लिया जाता है और उस क्वाथ को पुन: पकाकर गाढ़ा कर लिया जाता है, यही 'रसवत' है। इसका पाक उतना ही किया जाता है, जितने से पदार्थ चाटने योग्य बन जाये। इसलिये इसका नाम अवलेह रखा गया है। इसकी एक पल मात्रा का उल्लेख भी सामान्य ही है। औषध के बलाबल का विचार कर मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिये। शर्बत बनफशा; शिकंजवी आदि भी 'अवलेह' की ही श्रेणी में आते हैं।

### अवलेह में सिता आदि का मान

**सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः।**
**द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः।। 2।।**

अवलेहों में चूर्ण (जिसका अवलेह बनाना हो) उससे चीनी चौगुनी, गुड़ दुगुना और द्रव पदार्थ चौगुना लिया जाता है। यह सभी अवलेहों के निर्माण करने की विधि है।

**वक्तव्य**–जिस द्रव्य का अवलेह बनाना हो उससे चौगुनी चीनी अथवा दुगुना गुड़ एवं चौगुना द्रव द्रव्य डालकर एक साथ पकाया जाता है। इस प्रकार अवलेह तैयार हो जाता है। इस विधि से बनाये गये अवलेह 'कण्टकारी अवलेह' आदि कहे जाते हैं। जो 'शर्बत अडूसा' आदि बनाये जाते हैं, उनकी भी विधि यही है; अन्तर केवल इतना है कि उक्त शर्बत अडूसा आदि द्रव्य का काढ़ा बनाकर एवं छानकर उसमें चीनी मिलाकर चासनी पकायी जाती है। शर्बत अनार एवं शर्बत निम्बू आदि में उक्त द्रव्यों के रस डालकर बनाये जाते हैं तथा शिकंजवी ईख का सिरका या नींबू के रस के मिश्रण से बनायी जाती है। तीन प्रकार के अवलेह–केवल द्रव्यों के, जिनमें चीनी आदि नहीं मिलाये जाते। जैसे–1. रसवत या रसाञ्जन, 2. द्रव्यों के चूर्ण से युक्त, यथा–च्यवनप्राश आदि और 3. द्रव्यों के क्वाथ या रस आदि के संयोग से निर्मित, यथा–शर्बत अडूसा आदि। पुनरपि ये दो प्रकार के माने जाते हैं–1. अग्निपक्व अवलेह, यथा–रसवत एवं शर्बत और 2. आतपपक्वावलेह, यथा–गुलाब का गुलकन्द, अडूसा के फूलों का गुलकन्द आदि; इसमें फूलों का कल्क बनाया जाता है और कड़ी धूप में रखकर पाक किया जाता है।

### अवलेह-सिद्धि का लक्षण

**सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति।**
**स्थिरत्वं पीडिते मुद्रागन्धवर्णरसोद्भवः।। 3।।**

उचित रूप से परिपाक होने पर अवलेह (शर्बत) में तन्तु (तार) पड़ने लगती है, वह अवलेह जल में डूब जाता है और कुछ अवलेहों में स्थिरता तथा अँगुली आदि से दबाने पर मुद्रा (निशान) पड़ना और गन्ध (उचित गन्ध), वर्ण (उचित वर्ण) तथा रस (उचित रस या स्वाद) की उत्पत्ति हो जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोक की पहली पंक्ति द्वारा शर्बतों के परिपाक का लक्षण बतलाया गया है और दूसरी पंक्ति द्वारा च्यवनप्राश आदि चूर्ण युक्त अवलेहों के परिपाक का लक्षण बतलाया गया है। जिन लोगों का विचार है कि शर्बत एवं गुलकन्द केवल यूनानी चिकित्सकों का ही आविष्कार है,

उनको उक्त श्लोकों पर ध्यान देना चाहिये। चरक क० अ० 3 श्लोक 16 में 'स्थिरत्वम्' को **'तोये पतितं च न शीर्यते'** वाक्य द्वारा स्पष्ट किया गया है।

### अवलेह के अनुपान

**दुग्धमिक्षुरसो यूषः पञ्चमूलकषायजम्।**
**वासाक्वाथो यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते।।4।।**

दूध, ईख का रस, यूष (मूँग आदि दालों का रस), पञ्चमूल (लघु पञ्चमूल) का क्वाथ तथा अडूसा का क्वाथ अथवा और जो कुछ उचित हो अवलेहों का अनुपान दिया जा सकता है।

**वक्तव्य**—चूर्ण, गुटिका एवं अवलेहों को खाकर कोई न कोई द्रव पदार्थ अवश्य पीना चाहिये, जिससे पेट में जाकर उक्त पदार्थ घुल जाये अथवा किसी न किसी द्रव में घोलकर पीना चाहिये। देखें—शा० सं म० खं० अ० 6 श्लोक 5।

### कण्टकारी अवलेह

**कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम्।**
**पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत्।।5।।**
**पृथक्पलानि चैतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः।**
**मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः।।6।।**
**भार्ङ्गी रास्ना शठी चैव शर्करा पलविंशतिः।**
**प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः।।7।।**
**पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधुपलाष्टकम्।**
**चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीनां चतुष्पलम्।।8।।**
**क्षिप्त्वा निदध्यात् सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे।**
**लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्तिश्वासकासानशेषतः।।9।।**

एक तुला (5 सेर) कण्टकारी (भटकटैया) के पञ्चांग को जौकुट करके एक द्रोण (12 सेर, 3 पाव, 4 तोला) जल में क्वाथ करे और चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर क्वाथ को ले लें। इस क्वाथ में निम्नलिखित द्रव्यों के कपड़छन चूर्ण एक-एक पल (4-4 तोला) डाल दें। वे द्रव्य ये हैं—गिलोय, चव्य, चीता की जड़, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, सोंठ, मरिच, पिप्पली, धमासा, भारंगी, रायसन, कचूर। चीनी या मिश्री बीस पल (80 तोला), घी तथा तेल (सरसों का तैल) प्रत्येक आठ-आठ पल (32-32 तोला) डालकर पकायें। जब लेह गाढ़ा हो जाये तो चूल्हे पर से उतार लें, तत्पश्चात् सर्वथा शीतल हो जाने पर, मधु आठ पल (32 तोला), वंशलोचन चूर्ण चार पल (16 तोला) तथा पिप्पली का चूर्ण चार पल (16 तोला) डालकर मिला दें और सुदृढ़ तथा साफ, सुन्दर मृत्तिका के पात्र में रख दें। यह अवलेह हिचकी, श्वास तथा कास को पूर्णरूप से नष्ट कर देता है।

**वक्तव्य**—इन सब अवलेहों को चीनी के मर्तबानों अथवा शीशे के पात्रों में रखना चाहिये।

### च्यवनप्राशावलेह

**पाटलाऽरणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः।**
**पर्ण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः शृङ्गी द्राक्षामृताभयाः।।10।।**
**बला भूम्यामली वासा ऋद्धिर्जीवन्तिका शठी।**
**जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका।।11।।**
**मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा।**
**काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागरुचन्दनम्।।12।।**
**एकैकं पलसम्मानं स्थूलचूर्णितमौषधम्।**
**एकीकृत्य बृहत्पात्रे पञ्चामलशतानि च।।13।।**
**पचेद् द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशशेषितम्।**
**ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा।।14।।**
**दृढहस्तेन सम्पीड्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम्।**
**पलसप्तमितं तानि किञ्चिद् भृष्ट्वाल्पवह्निना।।15।।**
**ततस्तत्र क्षिपेत् क्वाथ खण्डं चार्धतुलोन्मितम्।**
**लेहवत् साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत्।।16।।**
**पिप्पली द्विपला देया तुगाक्षीरी चतुष्पला।**
**प्रत्येकं च त्रिशाणं स्यात् त्वगेलापत्रकेशराः।।17।।**
**ततस्त्वेकीकृतं सर्वं क्षिपेत् क्षौद्रं च षट्पलम्।**
**इत्येतच्च्यवनप्रोक्तं च्यवनप्राशसंज्ञितम्।।18।।**
**लेहं वह्निबलं दृष्ट्वा खादेत् क्षीणो रसायनम्।**
**बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणाश्च शोषिणः।।19।।**
**हृद्रोगिणः स्वरक्षीणा ये नरास्तेषु युज्यते।**
**कासं श्वासं पिपासां च वातास्रमुरसो ग्रहम्।।20।।**
**वातपित्तं शुक्रदोषं मूत्रदोषं च नाशयेत्।**
**मेधा स्मृतिं स्त्रीषु हर्षं कान्तिं वर्णप्रसन्नताम्।।21।।**
**अस्य प्रयोगादाप्नोति नरो जीर्णविवर्जितः।**

पाढल, अरणी, गम्भार, बेल, टेण्टू (सोनापाठा), गोखरू, शालपर्णी, पिठवन, वनभण्टा, कण्टकारी (ये दशमूल के द्रव्य हैं), पीपल, काकड़ासिंगी, मुनक्का, गिलोय, हरड़, बरियारा, भुईं आँवला, अडूसा की पत्ती, ऋद्धि (अभाव में वाराहीकन्द द्विगुण), जीवन्ती, कचूर, जीवक तथा ऋषभक (अभाव में विदारीकन्द द्विगुण), नागरमोथा, पोहकरमूल, काकनासा, मुगवन, माषवन, विदारीकन्द, पुनर्नवा, काकोली तथा

क्षीरकाकोली (अभाव में नागौरी असगन्ध द्विगुण), कमल, मेदा तथा महामेदा (अभाव में शतावरी द्विगुण), छोटी इलायची, अगरु (अगर) तथा सफेद चन्दन। ये प्रत्येक द्रव्य 4-4 तोला लेकर दरदरा चूर्ण बना लें, फिर सबको कड़ाही में डालकर पाँच सौ आँवले (देशी) तथा एक द्रोण (12 सेर, 3 पाव, 4 तोला) जल डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकायें; आठवाँ भाग शेष रहने पर क्वाथ को छान लें। उन आँवलों की गुठली निकालकर हाथों से कपड़े में मलकर पीठी निकाल लें। फिर पीठी को सात पल (28 तोला) घी में डालकर मन्द अग्नि द्वारा कुछ भूनकर और उक्त क्वाथ डाल दें। तत्पश्चात् चीनी या मिश्री आधी तुला (ढाई सेर) डालकर अवलेह के समान तैयार कर लें, फिर उसमें पीपल का चूर्ण दो पल (आठ तोला), वंशलोचन का चूर्ण चार पल (16 तोला) और दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्ता तथा नागकेसर का चूर्ण प्रत्येक 3-3 शाण (पौन-पौन तोला या 12-12 आना भर) डालकर भली-भाँति मिला दें और सर्वथा शीतल होने पर मधु 6 पल (24 तोला) डालकर मिलाकर दें।

यह च्यवन नामक महर्षि के लिए कहा हुआ 'च्यवनप्राश' अवलेह है। इसको रोगी के अग्नि (पाचनशक्ति) बल को देखकर उचित मात्रा में सेवन करायें। क्षीण (जिसकी धातुओं का क्षय हो चुका है) मनुष्य के लिए यह रसायन है। बालक, वृद्ध, क्षत (घायल तथा उरःक्षत के रोगी), क्षीण, स्त्रीसेवन से (अति मैथुन करने से) क्षीण, शोषी (जिनके रस आदि धातु सूख गये), हृदय रोगी तथा जो स्वरभेद से पीड़ित हैं, उनमें इसका प्रयोग किया जाता है। यह अवलेह, कास, श्वास, प्यास, वातरक्त, उरोग्रह (फुप्फुस तथा हृदय की गति में रुकावट), वात, पित्त के विकार, शुक्रदोष (वीर्य-विकार) तथा मूत्रदोष (वृक्क आदि अवयवों की विकृति से होने वाले मूत्र-विकार) को नष्ट करता है। इसका (रसायन-विधिं से) सेवन करने से मनुष्य मेधा (बुद्धि), स्मृति (स्मरण-शक्ति), स्त्रियों में हर्ष (मैथुन-सामर्थ्य), कान्ति (छवि) तथा वर्ण (रंग) की प्रसन्नता (सफाई आदि का विनाश) को प्राप्त करता है और जरा (बुढ़ापा) से रहित हो जाता है।

**वक्तव्य**–च्यवनप्राश का निर्माण करने के लिए देशी आँवले लालिमायुक्त लेने चाहिये। ऐसे आँवले माघ के महीने में मिल सकते हैं। क्वाथ करते समय आँवलों को ढीली पोटली में बाँधकर पकाना चाहिये। इसके लिए लोहे का अथवा ताम्र का कलई किया हुआ पात्र होना चाहिये। क्वाथ द्रव्यों को आठ पहर तक भिगाकर रखना चाहिये। प्रक्षेप के द्रव्यों का चूर्ण कपड़छन कर लेना उचित है। इसके सेवन से प्रारम्भ में किसी-किसी को स्वप्नदोष हो जाया करता है, इससे घबड़ाकर औषध छोड़ देना भूल है, क्योंकि कुछ दिनों के पश्चात् उक्त दोष स्वयं शान्त हो जाता है। यह योग च० चि० अ० 1 का है। केवल पाठ में कुछ परिवर्तन किया गया है। जैसे तेल छः पल (24 तोला) निकाल दिया गया और घी छः के स्थान में सात पल कर दिया गया है। महर्षि चरक ने 'कुटीप्रावेशिक' विधि से इस रसायन का सेवन करने की आज्ञा दी है। देखें–च० चि० अ० 1।

### कूष्माण्डावलेह

**निष्कुलीकृत्य कूष्माण्डखण्डात् पलशतं पचेत्।। 22।।**
**निक्षिप्य द्वितुलं नीरमर्धशिष्टं च गृह्यते।**
**तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद् दृढवाससा।। 23।।**
**आतपे शोषयेत् किञ्चिच्छूलाग्रैर्बहुशो व्यधेत्।**
**क्षिप्त्वा ताम्रकटाहे च दद्यादष्टपलं घृतम्।। 24।।**
**तेन किञ्चिद्भर्जयित्वा पूर्वोक्तं तज्जल क्षिपेत्।**
**खण्डात् पलशतं दत्त्वा सर्वमेकत्र पाचयेत्।। 25।।**
**सुपक्वे पिप्पली शुण्ठी जीरकं द्विपलं पृथक्।**
**पृथक्पलार्द्धं धान्याकं पत्रैला मरिचं त्वचम्।। 26।।**
**चूर्णीकृत्य क्षिपेत् तत्र घृतार्धं क्षौद्रमावहेत्।**
**खादेदग्निबलं दृष्ट्वा रक्तपित्ती क्षयी ज्वरी।। 27।।**
**शोषतृष्णाभ्रमच्छर्दिश्वासकासक्षतातुरः ।**
**कूष्माण्डकावलेहोऽयं बालवृद्धेषु युज्यते।। 28।।**
**उरःसन्धानकृद् वृष्यो बृंहणो बलकृन्मतः।**

कूष्माण्ड (सफेद पेठा) को बीज रहित करके, छिलका निकालकर टुकड़े-टुकड़े काटकर सौ पल (5 सेर) लें और दुगुना जल डालकर पकायें, आधा जल शेष रहने पर उतार लें, फिर उन टुकड़ों को मोटे तथा मजबूत कपड़े में रखकर निचोड़ लें और धूप में थोड़ा सुखाकर सुइयों के अग्रभागों से भली-भाँति कूँचना चाहिये, फिर इनको कलई की हुई ताँबे की कढ़ाई में आठ पल (32 तोला) घी डालकर थोड़ा भून लेना चाहिये। तत्पश्चात् इनमें उस जल को, जिसमें कूष्माण्ड खण्ड पकाये गये थे, डाल दें और सौ पल (5 सेर) चीनी डालकर अवलेह की विधि से पकायें। जब पक जाये तो उतारकर उसमें पीपल, सोंठ तथा भुना हुआ सफेद जीरा का

चूर्ण प्रत्येक दो-दो पल (8-8 तोला), धनियाँ, तेजपत्ता, इलायची छोटी, मरिच तथा दालचीनी का चूर्ण प्रत्येक आधा-आधा पल (2-2 तोला) दें। सर्वथा शीतल होने पर घी से आधा (चार पल=16 तोला) मधु डालकर मिला दें। अग्नि का बल देखकर (जितने से भूख न रुके) रक्तपित्त, क्षय, ज्वर का रोगी, शोष, तृष्णा, भ्रम, छर्दि श्वास, कास तथा उर:क्षत से पीड़ित रोगी इस अवलेह का सेवन करे। यह 'कूष्माण्डावलेह' नामक योग बालकों तथा वृद्धों में प्रयुक्त किया जाता है। यह उरस् (फुफ्फुस तथा हृदय) के घावों को भरता है, वीर्य को बढ़ाता है, धातुओं को बढ़ाता है तथा बलवर्द्धक माना जाता है।

**वक्तव्य**—कूष्माण्डावलेह कोहड़ापाक या पेठापाक दो प्रकार से बनाया जाता है। 1. टुकड़े काटकर एवं कोचनी से कोचकर (जैसा ऊपर बतलाया गया है) और 2. कद्दूकस द्वारा घिसकर। दोनों की निर्माण-विधि एक ही है। यह अवलेह औषध भी है और इसकी मिठाई भी रक्तपित्त की उत्तम औषध है। मात्रा-2 से 5 तोला तक। अनुपान की व्यवस्था चिकित्सक पर निर्भर है।

### सूरणावलेह

**युक्त्या कूष्माण्डखण्डस्य सूरणं विपचेत् सुधीः।। 29।।**
**अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां च युज्यते।**

विद्वान् चिकित्सक कूष्माण्डावलेह की विधि से सूरण (जिमीकन्द) का भी अवलेह बनाते हैं। यह अवलेह बवासीर के रोगियों को, उदावर्त तथा मन्दाग्नि के रोगियों को दिया जाता है।

**वक्तव्य**—उत्तर भारत में जो काँटेदार सूरण मिलता है, वह मुख तथा गले के अवयवों के लिए कष्टदायक होता है और दक्षिण भारत एवं गुजरात प्रान्त में काँटे रहित सूरण होता है। काँटेदार सूरण को थोड़ा उबाल लेना चाहिये और घी में अच्छी तरह भून लेना चाहिये, अन्यथा खाने के बाद कष्ट का अनुभव होता है।

### अगस्त्यहरीतकी अवलेह

**हरीतकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा।। 30।।**
**पलानि दशमूलस्य विंशतिं च नियोजयेत्।**
**चित्रकः पिप्पलीमूलमपामार्गः शठी तथा।। 31।।**
**कपिकच्छूः शङ्खपुष्पी भार्ङ्गी च गजपिप्पली।**
**बला पुष्करमूलं च पृथग् द्विपलमात्रया।। 32।।**
**पचेत् पञ्चाढके नीरे यवैः स्विन्नैः शृतं नयेत्।**
**तच्चाभयाशतं दद्यात् क्वाथे तस्मिन् विचक्षणः।। 33।।**
**सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षिपेद् गुडतुलां तथा।**
**पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धे शीते पृथक्पृथक्।। 34।।**
**क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात् कुडवमात्रया।**
**हरीतकीद्वयं खादेत् तेन लेहेन नित्यशः।। 35।।**
**क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्कार्शोऽरुचिपीनसान्।**
**ग्रहणीं नाशयेदेष वलीपलितनाशनः।। 36।।**
**बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम्।**
**विहितोऽगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः।। 37।।**

उत्तम बड़ी हरड़ें एक सौ, जौ एक आढ़क (3 सेर 16 तोला), दशमूल (सम्मिलित या प्रत्येक द्रव्य दो-दो पल अर्थात् बीस पल (80 तोला), चीता की जड़, पिप्पलामूल, अपामार्ग (चिरचिटा), कचूर, किवाँच के बीज, शंखपुष्पी (शंखाहुली), भारंगी, गजपीपल, बरियारा एवं पोहकरमूल प्रत्येक दो-दो पल (8-8 तोला), इन सब द्रव्यों (हरड़ एवं जौ को छोड़कर) को जौकुट करके पाँच आढ़क (16 सेर) जल में डालकर रात्रि भर पड़ा रहने दें, प्रातःकाल हरड़ (कपड़े में बाँधकर) एवं जौ डालकर पकायें, जब जौ गल जाये तो क्वाथ को छान लें (सब हरड़ों को चुनकर पृथक् कर लें), फिर इस क्वाथ में उन सौ हरड़ों को डाल दें और घी आठ पल (32 तोला), तैल आठ पल एवं गुड़ एक तुला (5 सेर) डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकायें, जब गाढ़ा हो जाये तो उतार लें। तत्पश्चात् सर्वथा शीत हो जाने पर मधु तथा पीपल (चूर्ण कपड़छन) एक-एक कुडव (16-16 तोला) डालकर भली-भाँति मिला दें। प्रतिदिन इस अवलेह के साथ दो हरड़ें खानी चाहिये। यह योग क्षय (यक्ष्मा), कास, ज्वर (जीर्ण ज्वर), श्वास, हिचकी, बवासीर, अरुचि, पीनस (जुकाम) एवं ग्रहणी रोग को नष्ट करता है तथा बली (झुर्रियाँ) एवं पलित (अकालपलित) को नष्ट करता है। यह मनुष्यों के बल, वर्ण को बढ़ाता है तथा रसायन है। प्रस्तुत अवलेह महर्षि अगस्त्य का कहा हुआ है। यह सर्वरोगनाशक है।

**वक्तव्य**—उबली हुई हरड़ों को घी तथा तैल में थोड़ा-थोड़ा भून लेना चाहिये, ताकि फूटने न पायें। यह हरड़ का मुरब्बा ही है। इसलिये यह कहना भूल है कि आयुर्वेद में मुरब्बों का विधान नहीं है।

### कुटजावलेह

**कुटजत्वक्तुलां द्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः।**
**कषायं पादशेषं च गृहीयाद् वस्त्रगालितम्।। 38।।**

त्रिंशत्पलं गुडस्यात्र दत्त्वा च विपचेत् पुनः।
सान्द्रत्वमागतं ज्ञात्वा चूर्णानीमानि दापयेत्।। 39।।
रसाञ्जनं मोचरसं त्रिकटु त्रिफलां तथा।
लज्जालुं चित्रकं पाठां बिल्वमिन्द्रयवं वचाम्।। 40।।
भल्लातकं प्रतिविषां विडङ्गानि च बालकम्।
प्रत्येकं पलसम्मानं घृतस्य कुडवं तथा।। 41।।
सिद्धशीते ततो दद्यान्मधुनः कुडवं तथा।
जयेदेषोऽवलेहस्तु सर्वाण्यर्शांसि वेगतः।। 42।।
दुर्नामप्रभवान् रोगानतीसारमरोचकम्।
ग्रहणीं पाण्डुरोगं च रक्तपित्तं च कामलाम्।। 43।।
अम्लपित्तं तथा शोषं कार्श्यं चैव प्रवाहिकाम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजं तक्रं पयोदधि।। 44।।
घृतं जलं वा जीर्णे च पथ्यभोजी भवेन्नरः।

कुरैया की छाल (जौकुट की हुई) एक तुला (5 सेर) लेकर एक द्रोण (12 सेर, 3 पाव, 4 तोला) जल में डालकर क्वाथ बनायें, चतुर्थांश शेष रहने पर कपड़े से काढ़ा छान लें, फिर इस काढ़े में तीस पल (डेढ़ सेर) गुड़ डालकर पकायें, जब वह गाढ़ा हो जाये तो निम्नलिखित द्रव्यों के कपड़छन चूर्ण डालकर मिला दें। रसवत्, मोचरस, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, लज्जवन्ती, चीता की जड़, पाठा, बेलगिरी, इन्द्रजौ, कुरैया की छाल, शुद्ध भिलावा, अतीस, वायविडंग एवं नेत्रबाला प्रत्येक एक-एक पल तथा घी एक कुडव (16 तोला) डालकर मिला दें। तत्पश्चात् सर्वथा शीत हो जाने पर उसमें मधु एक कुडव (16 तोला) डाल दें। यह अवलेह सभी प्रकार के अर्श (बवासीर) को तथा उसके उपद्रवों को शीघ्र ही जीत लेता है। अतिसार, अरुचि, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, कामला (पीलिया), अम्लपित्त, शोथ (सूजन), कृशता एवं प्रवाहिका (पेचिश) को जीतता है। इसके अनुपान में बकरी का दूध, उसके दूध की दही, उसके दूध का मट्ठा, उससे तैयार घी अथवा जल का प्रयोग करना चाहिये। अवलेह के पच जाने पर पथ्य (चिकित्सक के बतलाये हुये खान-पान) का सेवन करता रहे।

**वक्तव्य**—शुद्ध भिलावा को कल्क करके और रसवत् को घोलकर डालना चाहिये। इस योग का नाम 'कुटजावलेह' है। यह अर्श की परमोत्तम औषधि है।

### कुटजाष्टकावलेह

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे विपाचयेत्।। 45।।
पादशेषं श्रितं नीत्वा चूर्णान्येतानि दापयेत्।
लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा।। 46।।
मुस्तं प्रतिविषा चैव प्रत्येकं स्यात् पलं पलम्।
ततस्तु विपचेद् भूयो यावद् दर्वीप्रलेपनम्।। 47।।
जलेन छागदुग्धेन पीतो मण्डेन वा जयेत्।
सर्वातिसारान् घोरांस्तु नानावर्णान् सवेदनान्।। 48।।
असृग्दरं समस्तं च सर्वार्शांसि प्रवाहिकाम्।

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डेऽवलेहकल्पना नामाष्टमोऽध्यायः।। 8।।**

कुरैया की आर्द्र (हरी) छाल एक तुला (5 सेर) लेकर एक द्रोण (12 सेर, 3 पाव, 4 तोला) जल में डालकर पकायें। चौथाई जल शेष रहने पर छानकर क्वाथ ले लें, फिर इस क्वाथ में निम्नलिखित द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण डालकर पकायें-लज्जावन्ती, धाय का फूल, बेलगिरी, पाठा, मोचरस, नागरमोथा तथा अतीस प्रत्येक एक-एक पल (4-4 तोला)। इसे तब तक पकायें जब तक करछुल में लिपटने न लगे, तत्पश्चात् उतारकर शीतल होने पर पात्र में भरकर रख दें। यह अवलेह जल, बकरी के दूध अथवा माँड के साथ पीने से सब प्रकार के घोर, अनेक रंग के तथा पीड़ायुक्त अतिसारों को, प्रदरों को, अर्शविकारों को तथा प्रवाहिका को जीतता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त।। 8।।

# नवमोऽध्यायः

# घृततैलकल्पना

### स्नेहपाक की विधि

**कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा।**
**चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता।।1।।**

कल्क से चौगुना घी अथवा तेल को लेकर चौगुने द्रवपदार्थ में सिद्ध करना चाहिये। इसकी सामान्य मात्रा (पान करने की) एक पल (4 तोला) है।

**वक्तव्य**—रोगनाशक द्रव्यों को घी अथवा तेल में पकाने से उनके गुण घी तथा तेल में विलीन हो जाते हैं। यही कारण है कि घी तथा तेल के सेवन से वे ही गुण प्राप्त हो जाते हैं, जो उन द्रव्यों के सेवन से होते हैं। उक्त श्लोक का तात्पर्य यह है, कि जिन द्रव्यों के गुण घी अथवा तेल में विलीन करना अभीष्ट हो, उन द्रव्यों का भली प्रकार कल्क या चटनी बनाकर और कोई अभीष्ट द्रव पदार्थ डालकर तथा एक साथ तीनों द्रव मिलाकर पाक करना चाहिये। स्नेह से चौगुना द्रव एवं चौथाई कल्क होना चाहिये। **'स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कस्तदेकध्यं संसृज्य विपचेत्, इत्येषः स्नेहपाककल्पः'** (सु० चि० अ० 31.8)। ध्यान दें—पाक करने पर घृत एवं तैल प्रायः चार सेर के तीन सेर रह जाते हैं, क्योंकि उनका बहुत अंश वाष्प के साथ उड़ जाता है और कुछ कल्क में सटा रह जाता है।

### स्नेहपाकार्थ क्वाथ-विधि

**निक्षिप्य क्वाथयेत् तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम्।**
**पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनैव साधयेत्।।2।।**

क्वाथ्य द्रव्य (जिसका क्वाथ बनाना हो) से चौगुना जल डालकर क्वाथ बनाना चाहिये, जब चौथाई भाग शेष रह जाये तो छान लें। इसी से स्नेहपाक करना चाहिये।

### क्वाथ में जल का परिमाण

**चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्।**
**तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः।।3।।**
**अत्यन्तकठिने द्रव्यं नीरं षोडशिकं मतम्।**

क्वाथ-निर्माण में मृदु (शीघ्र गलने वाले) द्रव्य में चौगुना, कठिन में आठ गुना, मध्यम कोटि के द्रव्य में भी आठ गुना तथा अत्यन्त कठिन (कठोर) द्रव्य में सोलह गुना जल डालना चाहिये।

**वक्तव्य**—क्वाथ बनाने का प्रयोजन यह होता है कि द्रव्यों के गुण जल में विलीन हो जायें। जब तक द्रव्य गल न जाये तब तक उसके सम्पूर्ण गुण जल में नहीं आते। अतएव द्रव्यों की मृदुता एवं कठिनता आदि का विचार करके इतना जल डालना चाहिये, जितने से द्रव्य का पाक भली-भाँति हो जाये।

### अन्य प्रकार से जल का मान

**कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं जलम्।।4।।**
**तदूर्ध्वं कुडवं यावद् भवेदष्टगुणं पयः।**
**प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम्।।5।।**

एक कर्ष (1 तोला) से पल (4 तोला) भर तक परिमाण वाले द्रव्य में सोलह गुना जल, एक पल से कुडव (16 तोला) भर तक के द्रव्य में आठ गुना तथा एक प्रस्थ से खारी भर तक द्रव्य में चौगुना जल डालना चाहिये।

**वक्तव्य**—द्रव्यों का परिपाक होने में उनके परिमाण के अनुसार जल की आवश्यकता होती है। थोड़ा-सा द्रव्य जब कि सोलह गुने जल में पकता है तो बहुत-सा द्रव्य चौगुने ही जल में पक जाता है। इसीलिए थोड़े द्रव्य में सोलह गुना और अधिक द्रव्य में चौगुना जल डालने का विधान किया गया है।

### स्नेह में कल्क का परिमाण

**अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम्।**
**कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम्।।6।।**

**दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः।**
**कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम्।।7।।**

जिस योग में स्नेह का साधन (परिपाक) केवल जल से अर्थात् द्रवकार्य में केवल जल का विधान हो तो उसमें कल्क चतुर्थांश (चौथाई), क्वाथ से हो तो कल्क षष्ठांश (छठा भाग) तथा रस या स्वरस से हो तो अष्टमांश (आठवाँ भाग) कल्क लेना चाहिये। यदि दूध, दही, मांसरस, स्वरस अथवा तक्र से स्नेहपाक का विधान हो तो कल्क (स्नेह की अपेक्षा) अष्टमांश (आठवाँ भाग) डालना चाहिये और इसमें कल्क को भली-भाँति पकने के लिए चौगुना जल भी डालना चाहिये।

**वक्तव्य**–यद्यपि उक्त श्लोकों द्वारा कही हुई बातों का चरक एवं सुश्रुत के वचनों से विरोध होने के कारण इसका कविराज गंगाधर राय ने अनार्ष कहकर जोरों से खण्डन किया है, किन्तु हम इस आधार पर इनका आदर कर सकते हैं। सम्भव है कि पुरानी संहिताओं, जो आजकल प्राप्त नहीं हैं, में इस प्रकार के वचन हों और हमारा विश्वास है कि अवश्य होंगे, क्योंकि आचार्य शार्ङ्गधर ने कहीं न कहीं से इनको उद्धृत किया है, स्वयं नहीं रचा है। यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाये तो यही ज्ञात होता है कि **'कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य'** तथा **'कल्कस्यांशं तत्र दद्यात् चतुर्थं षष्ठमष्टमम्'** ये दोनों ही मत प्राचीन काल में प्रचलित थे। हो सकता है कि दो से अधिक मत भी प्रचलित रहे हों। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि ऐसे भी योग मिलते हैं, जिनमें अर्धांश कल्क डालने का विधान है। देखें–इसी अध्याय में 'क्षीरषट्पल' एवं 'मसूरघृत'।

### स्नेह में द्रवद्रव्यों का परिमाण

**द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि।**
**तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम्।।8।।**

जिन स्नेहों में पाँच से अधिक द्रव पदार्थों को डालने का विधान हो, उनमें प्रत्येक द्रव स्नेह के समान ही डाले जाते हैं या डालने चाहिये। पाँच से पूर्व (चार, तीन, दो अथवा एक) सब द्रव द्रव्य मिलाकर चौगुने डाले जाते हैं।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि द्रव पदार्थ स्नेह से चौगुना अवश्य होना चाहिये, इससे कम नहीं, अधिक भले ही हो।

### केवल क्वाथ से स्नेहपाक

**द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद् यदि।**
**तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम्।।9।।**

**क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित्।**
**क्वाथद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते।।10।।**

यदि कहीं केवल द्रव्य से ही स्नेहपाक का विधान हो तो वहाँ उस द्रव्य का जल के योग से कल्क बनाकर डालना चाहिये। इसमें चौगुना जल डाल देना चाहिये। यदि कहीं केवल क्वाथ से ही स्नेहपाक का विधान हो तो वहाँ पर क्वाथद्रव्य (जिससे क्वाथ बनाया गया हो) का कल्क भी स्नेह में प्रयुक्त किया जाता है।

**वक्तव्य**–तात्पर्य यह है कि स्नेहपाक में कल्क एवं द्रवपदार्थ दोनों ही होने चाहिये। देखें–'गौराद्यं घृतम्' तथा 'वज्रीतैलम्' इनमें पहला केवल द्रव्य से और दूसरा केवल द्रव से योग सिद्ध किया गया है। ऐसे ही स्थानों पर उक्त परिभाषा का प्रयोग होते देखा जाता है।

### कल्कहीन स्नेहपाक

**कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे।**

जिस स्नेह में कल्क का विधान न हो अथवा निषेध हो, उसे केवल द्रवपदार्थ में ही सिद्ध कर लेना चाहिये।

**वक्तव्य**–इसका तात्पर्य यही है कि कल्क के बिना भी स्नेहपाक किया जा सकता है।

### पुष्पकल्क से स्नेहपाक-विधि

**पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम्।।11।।**
**स्नेहे स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते।**

जिस स्नेह में पुष्पों का कल्क डाला जाता हो, उसमें चौगुना जल डालना चाहिये और पुष्पों का कल्क स्नेह से अष्टमांश (आठवाँ भाग) प्रयुक्त करनी चाहिये।

**वक्तव्य**–यदि गुलाब एवं चमेली आदि के सुगन्धित पुष्पों का तेल बनाना हो तो उक्त परिभाषा का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस विधि से तेल सुगन्धित न होकर दुर्गन्धित हो जाता है।

**पुष्पतैल-निर्माण-विधि**–पुष्पों को (कल्क किये बिना ही) तेल में डालकर और पात्र का मुख बन्द करके दो-तीन सप्ताह तक धूप में रखना चाहिये। इस प्रकार उनकी सुगन्धि तेल में आ जायेगी।

### स्नेहसिद्धि का लक्षण

**वर्तिवत् स्नेहकल्कः स्याद् यदाङ्गुल्या विमर्दितः।।12।।**
**शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत् तदा।**

यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि।। 13।।
गन्धवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत्।

जब स्नेह का कल्क अँगुली द्वारा मलने पर बत्ती के समान हो जाये और अग्नि में डालने पर चिड़चिड़ न करे, तो समझना चाहिये कि स्नेह का परिपाक हो गया है। स्नेहपाक का दूसरा लक्षण यह है–

जब तेल में फेन या झाग आने लगे और घी में झाग आकर शान्त हो जाये और उचित गन्ध, वर्ण तथा रस की उत्पत्ति हो जाये तो समझना चाहिये कि स्नेहपाक हो गया है।

### स्नेहपाक के प्रकार

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा।। 14।।
ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत्।
मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले।। 15।।
ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत् खरः।
तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद् दाहकृन्निष्प्रयोजनः।। 16।।
आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः।

स्नेहपाक तीन प्रकार का कहा गया है–1. मृदु, 2. मध्य तथा 3. खर। जिसमें कल्क कुछ रसयुक्त होता है, वह स्नेहपाक 'मृदुपाक' होता है; कल्क के रस से रहित, किन्तु कोमल रहने पर 'मध्यपाक' की सिद्धि मानी जाती है और जिसमें कल्क द्रव्य कुछ कड़ा हो जाता है, वह 'खरपाक' होता है। इससे ऊपर जो पाक होता है, वह 'दग्धपाक' होता है। यह स्नेह दाहकारक तथा प्रयोजनरहित होता है और 'आमपाक' भी शक्तिरहित, अग्नि को मन्द करने वाला तथा गुरु (शरीर में भारीपन उत्पन्न करने वाला) होता है।

**वक्तव्य**–आमपाक तथा दग्धपाक किसी काम के नहीं होते, अतएव उनको पाकों में नहीं गिना जाता। महर्षि सुश्रुत ने कहा है–'अत ऊर्ध्वं दग्धस्नेहो भवति तं पुनः साधु साधयेत्'। (सु० चि० 31.11)। अर्थात् खरपाक के पश्चात् 'स्नेह' दग्ध हो जाता है। इसका फिर से कल्कद्रव्य डालकर पाक कर लेना चाहिये।

### मृदुपाक आदि के गुण

नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु।। 17।।
अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम्।

नस्य के लिए 'मुदुपाक', शेष सब काया (पान, वस्ति) के लिए 'मध्यमपाक' तथा अभ्यंग (मालिश) के लिए खरपाक का प्रयोग करना चाहिये, अथवा चिकित्सक जब जहाँ जो उचित समझे।

**वक्तव्य**–'यथोचितम्' कहकर यह सूचित किया है, कि 'तत्र पानाभ्यवहारयोर्मृदुः, नस्याभ्यङ्गयोर्मध्यमः, वस्ति-कर्णपूरणयोस्तु खर इति' (सु०चि० अ० 31.11)।

### घृतादि पाक में काल-निर्देश

घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे।। 18।।
प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसञ्चयम्।

घी, तेल, गुड़ तथा अवलेह आदि पदार्थों को एक ही दिन में सिद्ध नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये बासी होने से विशेषरूप से अपने में गुणों का सञ्चय करते हैं।

**वक्तव्य**–घृत तथा तेल में अधिक दिनों तक पड़े रहने से औषधियों के गुण तथा गन्ध आदि भली-भाँति विलीन हो जाते हैं। हमारा तो विचार है कि सुगन्धित द्रव्यों को पकाना ही नहीं चाहिये, तैलपाक होने और छान लेने पर उन्हें डालकर धूप में रख देना चाहिये। इस प्रकार तेल सुगन्धित भी हो जाते हैं और सुगन्धित औषधियों के अपने (निजी या स्वकीय) गुण भी सुरक्षित रहते हैं, जो पकाने से उड़ जाते हैं। हमारा यह विचार शास्त्रसम्मत न होने पर भी अनुभव करने पर अवश्य उत्तम प्रतीत होगा।

### पिप्पल्यादि घृत

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।।19।।
ससैन्धवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तद्घृतं प्लीहनाशनम्।। 20।।
विषमज्वरमन्दाग्निहरं रुचिकरं परम्।

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता की जड़, सोंठ तथा सेंधा नमक एक-एक पल (4-4 तोला) लेकर, कल्क बनाकर एक प्रस्थ (64 तोला) घी में डाल दें, घी से चौगुना दूध देकर इसे पकाना चाहिये (उचित परिपाक होने पर छानकर रख लें)। यह घृत प्लीहा को नष्ट करता है, विषमज्वर तथा मन्दाग्नि को हरता है। यह उत्तम रुचिकारक है।

**वक्तव्य**–2-4 पीपल डालकर पकाये हुये दुग्ध के साथ इस घृत का सेवन किया जाता है।

### चाङ्गेरी घृत

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली।। 21।।
श्वदंष्ट्रा नागरं धान्यं पाठा बिल्वं यवानिका।
द्रव्यैश्च पलिकैरेतैश्चतुःषष्टिपलं घृतम्।। 22।।
घृताच्चतुर्गुणं दद्याच्चाङ्गेरीस्वरसं बुधः।
तथा चतुर्गुणं दत्त्वा दधि सर्पिर्विपाचयेत्।। 23।।

**शनैः शनैर्विपक्तव्यं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम्।**
**तद्घृतं कफवातघ्नं ग्रहण्यर्शोविकारनुत्।।24।।**
**हन्त्यानाहं गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।**

पीपल, पीपलामूल, चीता की जड़, गजपीपल, गोखरू, सौंठ, धनियाँ, पाठा, बेलगिरी तथा अजवायन–इन द्रव्यों को एक-एक पल (4-4 तोला) लेकर कल्क बना लें। घी चौंसठ पल (3 सेर 16 तोला), घी से चौगुना (12 सेर 3 पाव 4 तोला) चाङ्गेरी (खट्टी चौपतिया), घी से चौगुना ही दही, इन सब वस्तुओं को एक साथ मिलाकर पकाना चाहिये। इस उत्तम 'चाङ्गेरी घृत' को मन्द-मन्द आँच से पकाना चाहिये। यह घृत कफ तथा वायु विकारों, ग्रहणीरोग तथा बवासीर के विकारों को नष्ट करता है और आनाह (आमाशय तथा अन्त्र की गति का निरोध), गुदभ्रंश (काँच निकलना), मूत्रकृच्छ्र तथा प्रवाहिका (पेचिस) को नष्ट करता है।

### मसूर घृत

**मसूराणां पलशतं नीरद्रोणे विपाचयेत्।।25।।**
**पादशेषं शृतं नीत्वा दत्त्वा बिल्वपलाष्टकम्।**
**घृतप्रस्थं पचेत् तेन सर्वातीसारनाशनम्।।26।।**
**ग्रहणीं भिन्नविट्कं च नाशयेच्च प्रवाहिकाम्।**

मसूर सौ पल (5 सेर) को एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल में पकायें, चतुर्थांश शेष रहने पर क्वाथ को लेकर, आठ पल (32 तोला) बेलगिरी का कल्क बनाकर घी एक प्रस्थ (3 पाव 4 तोला) लेकर सबको एक साथ पकाना चाहिये (जब परिपाक हो जाये तो छानकर रख लें)। यह घृत सभी प्रकार के अतिसार को नष्ट करता है और ग्रहणीरोग तथा प्रवाहिका (पेचिस) को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–साबूत मसूर लेनी चाहिये, दाल नहीं। इसे गलने तक पकाना चाहिये।

### कामदेव घृत

**अश्वगन्धा तुलैका स्यात्तदर्धं गोक्षुरं स्मृतम्।।27।।**
**बलाऽमृता शालिपर्णी विदारी च शतावरी।**
**पुनर्नवाश्वत्थशुण्ठीकाश्मर्यास्तु फलान्यपि।।28।।**
**पद्मबीजं माषबीजं दद्याद् दशपलं पृथक्।**
**चतुर्द्रोणेऽम्भसां पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत्।।29।।**
**जीवनीयगणः कुष्ठं पद्मकं रक्तचन्दनम्।**
**पत्रकं पिप्पली द्राक्षा कपिकच्छुफलं तथा।।30।।**
**नीलोत्पलं नागपुष्पं सारिवे द्वे बले तथा।**
**पृथक्कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम्।।31।।**
**रसश्च पौण्ड्रकेक्षूणामाढकैकं समाहरेत्।**
**घृतस्य चाढकं दत्त्वा पाचयेन्मृदुनाग्निना।।32।।**
**घृतमेतन्निहन्त्याशु रक्तपित्तमुरःक्षतम्।**
**हलीमकं पाण्डुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम्।।33।।**
**वातरक्तं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च कामलाम्।**
**शुक्रक्षयमुरोदाहं कार्श्यमोजःक्षयं तथा।।34।।**
**स्त्रीणां चैवाप्रजातानां गर्भदं शुक्रदं नृणाम्।**
**कामदेवघृतं नाम हृद्यं बल्यं रसायनम्।।35।।**
**ओजस्तेजस्करं हृद्यमायुष्यं प्राणवर्धनम्।**
**संवर्धयति शुक्रं हि पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम्।।36।।**
**सर्वरोगविनिमुक्तौ पयःसिक्तो यथा द्रुमः।**
**कामदेव इति ख्यातं सर्पिरुक्तं महागुणम्।।37।।**

असगन्ध सौ पल (1 तुला या 5 सेर), गोखरू पचास पल (2½ सेर), शतावर विदारीकन्द, शालपर्णी, बरियारा, गिलोय, पीपल के शुङ्ग, पद्मबीज (कमलगट्टा), पुनर्नवा, गम्भार के फल तथा उड़द प्रत्येक दस-दस पल (40-40 तोला) इन सबको चार द्रोण (51 सेर 16 तोला) जल में पकाना चाहिये। जब एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल अवशिष्ट रह जाये तो छानकर स्वाथ ले लें और क्वाथ में एक आढक (3 सेर 16 तोला) घी डालकर पकायें। मुनक्का, पद्मकाठ, कूठमीठा, पीपल, लालचन्दन, तेजपत्ता, नागकेसर, किवाँच के बीज, नीलकमल (नीलोफर), सारिवा कृष्णसारिवा तथा जीवनीयगण के द्रव्य (देखें–शा०सं०, म०खं०अ० 6) प्रत्येक एक-एक कर्ष (1-1 तोला), शर्करा (चीनी या खाँड) दो पल–इन सबका कल्क बनाकर घृत में डाल दें और पौंड्रक (पौंडा) नामक ईख का रस एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) तथा घी से चौगुना दूध इन सबको एक साथ मिलाकर यथाविधि पाक करें। यह घृत रक्तपित्त, उरःक्षत, पाण्डुरोग वर्णभेद (शरीर के वर्ण में परिवर्तन), स्वरक्षय (आवाज का बैठना), मूत्रकृच्छ्र, उरोदाह (छाती में जलन) तथा पार्श्वशूल (पसली की पीड़ा) का शीघ्र ही नष्ट करता है। इस घृत का उन लोगों को सेवन करना चाहिये, जिनको अधिक समय तक अन्तःपुर में रहना होता है और उन स्त्रियों को जिनको सन्तान नहीं होती तथा दुर्बल (कमजोर) व्यक्तियों को यह कामदेव घृत उत्तम बल बृद्धिकारक, कान्तिवर्द्धक, हृदय को शक्ति देने वाला, पुष्टिकारक तथा रसायन है। यह ओजस् को बढ़ाने वाला, हृदय की गति को व्यवस्थित करने वाला, आयु को बढ़ाने वाला तथा प्राण की गति को व्यवस्थित करने

वाला है। इसके सेवन से शुक्र की वृद्धि होती है और दुर्बल इन्द्रियों वाले मनुष्य का उचित रूप से पोषण होता है। इसके सेवन से मनुष्य सब रोगों से रहित हो जाता है और ऐसा पुष्ट होता है जैसा जल से सींचा हुआ वृक्ष। इस घृत का नाम 'कामदेव' है, जो अत्यन्त गुणवान् है।

**वक्तव्य**–इस पाठ में–'पचेच्चैव घृताढकम्' तथा 'घृताढकं विपाचयेत्' दो बार कहा गया है। इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं, घृत एक ही आढ़क डालना चाहिये। यह योग चक्रदत्त रक्तपित्ताधिकार में भी है, जिसको देखने से आपके सन्देह की निवृत्ति हो जायेगी।

### पानीयकल्याणक घृत

**त्रिफला द्वे निशे कौन्ती सारिवे द्वे प्रियङ्गुका।**
**शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी देवदार्व्येलवालुकम्।। 38।।**
**नतं विशाला दन्ती च दाडिमं नागकेशरम्।**
**नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा विडङ्गं कुष्ठपद्मकम्।। 39।।**
**जातिपुष्पं चन्दनं च तालीसं बृहती तथा।**
**एतैः कर्षसमैः कल्कैर्जलं दत्त्वा चतुर्गुणम्।। 40।।**
**घृतप्रस्थं पचेद्धीमानपस्मारे ज्वरे क्षये।**
**उन्मादे वातरक्ते च कासे मन्दानले तथा।। 41।।**
**प्रतिश्याये कटीशूले तृतीयक-चतुर्थके।**
**मूत्रकृच्छ्रे विसर्पे च कण्डूपाण्ड्वामये तथा।। 42।।**
**विषद्वये प्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यते।**
**वन्ध्यानां पुत्रदं भूतयक्षरक्षोहरं स्मृतम्।। 43।।**

हरड़, बहेड़ा, आँवला, दारुहल्दी, हल्दी, सम्भालू के बीज अथवा पत्ते, सारिवा, कृष्णसारिवा, प्रियंगु, शालपर्णी, पिठवन, देवदारु, एलुवा (सुगन्धित द्रव्य), तगर, इन्द्रायण की जड़, दन्ती, अनारदाना, नागकेसर, नीलकमल, इलायची, मजीठ, वायविडंग, कूठ, पद्मकाठ, जाती (चमेली) के फूल, सफेद चन्दन, तालीस पत्र तथा बनभण्टा की जड़ इन सबको एक-एक तोला लेकर तथा कल्क बनाकर एक प्रस्थ (तीन पाव चार तोला) घृत में डाल दें और घी से चौगुना जल डालकर विधिपूर्वक पाक करे। तैयार होने पर इसका प्रयोग अपस्मार (मिरगी), ज्वर (जीर्णज्वर), क्षय (यक्ष्मा), उन्माद, वातरक्त, कास, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, कमर की पीड़ा, तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, खुजली, पाण्डुरोग स्थावर तथा जंगम विष और प्रमेहों में किया जाता है। यह घृत बन्ध्याओं को पुत्र देता है और भूत, यक्ष तथा राक्षसों को हरता है।

**वक्तव्य**–भूत, यक्ष तथा राक्षसों के आवेश से जो उन्माद आदि रोग हो जाते हैं, उनमें इसका प्रयोग करना चाहिये। बन्ध्याओं के गर्भाशय तथा डिम्ब के विकारों को दूर करके यह गर्भाधान शक्ति देता है।

### अमृता घृत

**अमृताक्वाथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचद् घृतम्।**
**वातरक्तं जयत्याशु कुष्ठं जयति दुस्तरम्।। 44।।**

गिलोय का क्वाथ तथा कल्क करके दुग्ध सहित घृत का परिपाक कर लें। यह घृत वातरक्त तथा दुःसाध्य कुष्ठ को जीतता है।

**वक्तव्य**–इस घृत में द्रव्यों के परिमाण का उल्लेख नहीं किया गया है, अतः इसका पाक इस प्रकार करना चाहिये–घृत एक सेर गुडूची कल्क एक पाव, गुडूची क्वाथ तीन सेर और दुग्ध एक सेर। यहाँ चरक तथा सुश्रुत का भी मत है।

### महापञ्चतिक्त घृत

**सप्तच्छदः प्रतिविषा शम्याकः कटुरोहिणी।**
**पाठा मुस्तमुशीरं च त्रिफला पर्पटस्तथा।। 45।।**
**पटोलनिम्बमञ्जिष्ठाः पिप्पली पद्मकं शठी।**
**चन्दनं धन्वयासश्च विशाले द्वे निशे तथा।। 46।।**
**गुडूची सारिवे द्वे च मूर्वा वासा शतावरी।**
**त्रायन्तीन्द्रयवा यष्टी भूनिम्बश्चाक्षभागिकाः।। 47।।**
**घृतं चतुर्गुणं दद्याद् घृतादामलकीरसः।**
**द्विगुणः सर्पिषश्चात्र जलमष्टगुणं भवेत्।। 48।।**
**तत्सिद्धं पाययेत् सर्पिर्वातरक्तेषु सर्वथा।**
**कुष्ठानि रक्तपित्तं च रक्तार्शांसि च पाण्डुताम्।। 49।।**
**हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरं गण्डमालिकाम्।**
**क्षुद्ररोगान् ज्वरांश्चैव महातिक्तमिदं जयेत्।। 50।।**

छतिवन, अतीस, अमलतास की गुद्दी, कुटकी, पाठा, नागरमोथा, खस, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पित्तपापड़ा, परवल की पत्ती, नीम की छाल, मजीठ, पीपल, पद्मकाठ, कचूर, सफेद चन्दन, धमासा, इन्द्रायण का जड़, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, सारिवा, कृष्णसारिवा, मरोड़फली, अडूसा, शतावर, त्रायमाणा, इन्द्रजौ, मुलहठी तथा चिरायता–ये सब द्रव्य 1-1 तोला, सभी द्रव्यों से चौगुना (1 सेर 9 छटाँक 3 तोला) घृत, घी से दुगुना आँवला का स्वरस और घी से आठ गुना जल। औषधियों का कल्क बनाकर सब वस्तुओं को एक साथ मिलाकर परिपाक करे, तैयार होने पर छानकर रख लें। इस

घृत को वातरक्त में अवश्य पिलाना चाहिये। यह घृत कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तार्श (खूनी बवासीर), पाण्डुरोग, हृद्रोग, गुल्म, विसर्प, प्रदर, गण्डमाला, क्षुद्ररोग (शीतला आदि रोगों) तथा ज्वरों (जीर्णज्वरों) को जीतता है। इसका नाम 'महापञ्चतिक्त घृत' है।

**वक्तव्य**–उक्त योग का वर्णन चरक चि० अ० 7 में है। वहाँ 'आमलकी रसः' के स्थान में 'अमृतबलानाम्' पाठ दिया है।

### कासीसादि घृत

**कासीसं द्वे निशे मुस्तं हरितालं मनःशिलाम्।**
**कम्पिल्लकं गन्धकं च विडङ्गं गुग्गुलुं तथा।।51।।**
**सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं गौरसर्षपान्।**
**रसाञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासं रक्तचन्दनम्।।52।।**
**इरिमेदं निम्बपत्रं करञ्जं सारिवां वचाम्।**
**मञ्जिष्ठां मधुकं मांसीं शिरीषं लोध्रपद्मकम्।।53।।**
**हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णयेत् कार्षिकान् पृथक्।**
**ततस्तच्चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते।।54।।**
**स्थापयेत् ताम्रपात्रे च घर्मे सप्तदिनावधि।**
**अस्याभ्यङ्गेन कुष्ठानि ददूपामाविचर्चिकाः।।55।।**
**शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फोटा वातरक्तजाः।**
**शिरःस्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च।।56।।**
**शोथो भगन्दरश्चैव लूताः शाम्यन्ति देहिनाम्।**
**शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं घृतम्।।57।।**

हीरा, कासीस, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, हरिताल, मैनसिल, कवीला, गन्धक, वायविडंग, मोम, मरिच, कडुवा कूठ, तूतिया, सफेद सरसों, रसवत, सिन्दूर, राल, लालचन्दन, खैरसार, (कत्था), नीम के पत्ते (सूखे), करञ्ज के पत्ते या बीज, सारिवा, वच, मजीठ, लोध्र, पद्मकाठ, हरड़ तथा चक्रमर्द (चकवड़ या बनाड़) के बीज प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण (1½ सेर) घृत में मिलाकर और ताम्रपात्र में डालकर सात दिनों तक धूप में रखना चाहिये। इसके अभ्यंग (मालिश) से कुष्ठ, दाद, पामा खुजली, विचर्चिका, शूकदोष, विसर्प, वातरक्त-जनित विस्फोट (फफोले या फुन्सियाँ), शिर के फोड़े, उपदंश, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, शोथ (फोड़ों के आसपास का), भगन्दर तथा लूता (मकड़ी) के विकार शान्त हो जाते हैं। यह घृत शोधन (व्रण को शुद्ध करने वाला), रोपण (घाव को भरने वाला) तथा त्वचा के दागों को मिटाने वाला है।

**वक्तव्य**–यह 'कासीसादि घृत' एक उत्तम मलहम है। उक्त द्रव्यों का अत्यन्त बारीक चूर्ण कर लेना चाहिये। कासीस, हरताल, मैनसिल, गन्धक, तथा तूतिया को पृथक्-पृथक् भली-भाँति पीसना चाहिये। रसवत तथा गूगल को जल में विलीन करके काष्ठ औषधियों के चूर्ण में मिला या मसलकर धूप में सुखा लेना चाहिये। मोम को पोटली में बाँधकर घी में पिघला लिया जाता है। फिर सब द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर धूप में रख देना चाहिये। व्रणों के शोधन में तो इसी प्रकार लगाना ही चाहिये, किन्तु व्रण-रोपण के समय इसमें समान भाग घृत और मिलाकर थोड़ा कपूर मिलाकर लगाना चाहिये। यह वस्तुतः लेखन या शोधन मलहम है, अतएव लगता भी है। कभी-कभी तो इतना लगता है कि रोगी सहन भी नहीं कर सकता। इसलिये इसमें और घी तथा कपूर मिला लेना चाहिये। इसमें मिलाने के लिए करञ्ज के बीजों को भूनकर उनका चूर्ण बनाना चाहिये। इस घृत का केवल बाहरी प्रयोग ही किया जाता है।

### जात्यादि घृत

**जातीनिम्बपटोलं च द्वे निशे कटुरोहिणी।**
**मञ्जिष्ठा मधुकं सिक्थं करञ्जोशीरसारिवाः।।58।।**
**तुत्थं च विपचेत् सम्यक्कल्कैरेभिर्घृतं बुधः।**
**अस्य लेपात् प्ररोहन्ति सूक्ष्मनाडीव्रणा अपि।।59।।**
**मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गम्भीराः सरुजो व्रणाः।**

चमेली, नीम एवं परवल के पत्ते, दारुहल्दी, हल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलेठी, मोम, करञ्ज के पत्ते अथवा बीज, खस, सारिवा, एवं तूतिया–इन सब द्रव्यों का मोम को छोड़कर कल्क बनाकर तथा कल्क से चौगुने घृत में डालकर, घृत से चौगुना जल डालकर पाक करे। जब पाक सिद्ध हो जाये तो इसमें मोम डाल दें। मोम के पिघल जाने पर उसे गरम-गरम छान लें। इस घृत के लेप से सूक्ष्म नासूर भी भर जाते हैं और मर्मस्थानों में आश्रित, सड़े हुये, गहरे एवं पीड़ायुक्त व्रण (घाव) भी शान्त हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–इस मलहम में भिगोई हुई बत्ती नासूर के घाव में चढ़ायी जाती है। अन्य व्रणों में यह कपड़े पर चुपड़ कर लगा दी जाती है।

### षड्बिन्दु घृत

**चित्रकः शङ्खिनी पथ्या कम्पिल्लस्त्रिवृतायुगम्।।60।।**
**वृद्धदारश्च शम्याको दन्ती दन्तीफलं तथा।**

कोशातकी देवदाली नीलिनी गिरिकार्णिका।।61।।
सातला पिप्पलीमूलं विडङ्गं कटुकी तथा।
हेमक्षीरी च विपचेत् कल्कैरेभिः पिचून्मितैः।।62।।
घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरं षट्पले तु पलद्वयम्।
अर्कक्षीरस्य मतिमांस्तत्सिद्धं गुल्मकुष्ठहृत्।।63।।
हन्ति शूलमुदावर्तं शोथाध्मानं भगन्दरम्।
शमयत्युदराण्यष्टौ निपीतं बिन्दुसङ्ख्यया।।64।।
गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेन कौलत्थेन शृतेन वा।
उष्णोदकेन वा पीत्वा बिन्दुवेगैर्विरेचयेत्।।65।।
एतद् बिन्दुघृतं नाम नाभिलेपाद् विरेचयेत्।

चीता की जड़, शंखपुष्पी (शंखाहुली), हरड़, कबीला, सफेद निसोत, कालीनिसोत, विधारा, अमलतास, दन्ती, जमालगोटा, कड़वी तोरई, वन्दाल, नील के पत्ते, गिरिकर्णिका (इसपन्द), सतवन, पीपलामूल, वायविडंग, कुटकी एवं चोक (सत्यानाशी की जड़)–इन सब द्रव्यों को एक-एक कर्ष (1-1 तोला) लेकर कल्क बनायें। घृत एक प्रस्थ (3 पाव 4 तोला), सेहुण्ड (थूहर) का दूध छः पल (24 तोला) और मदार (आक) का दूध दो पल (8 तोला), इन सबको एक साथ मिलाकर पाक करना चाहिये। जब पाक सिद्ध हो जाये तो छानकर रख लें। यह घृत वायुगोला एवं कुष्ठ को हरता है, शूल, उदावर्त, शोथ, अफरा, भगन्दर एवं आठ प्रकार के उदररोगों को शान्त करता है। इसकी मात्रा बूँदों को गिनकर निर्धारित की जाती है। गाय का दूध, ऊँटनी का दूध, कुलथी का क्वाथ एवं उष्ण जल में डालकर पीने से बिन्दुओं की संख्या (गिनती) के अनुसार विरेचन (दस्त) होते हैं, अतएव इसका नाम 'बिन्दुघृत' है और यह उदर पर लेप करने से भी विरेचन करता है।

**वक्तव्य**–इस 'षड्बिन्दु घृत' में सभी द्रव्य दस्तावर हैं। अतः यह घृत उच्चकोटि का विरेचक है। इसकी मात्रा बिन्दु या बूँद के परिमाण में दी जाती है। यद्यपि कहा गया है कि जितने बिन्दु पीयें जायें उतने दस्त होते हैं, किन्तु दस्तों की-संख्या कोष्ठ की मृदुता तथा क्रूरता पर निर्भर करती है। एरण्ड के तेल की भाँति यह भी उदर पर लगाने से विरेचन कराता है। एक बात का भली-भाँति स्मरण रखना चाहिये कि औषधियाँ शरीर में किसी भी मार्ग से प्रविष्ट होकर उसी अवयव पर अपना प्रभाव डालती हैं, जहाँ पर आवश्यकता होती है। देखने में आता है कि सेर दो सेर जमालगोटा को शुद्ध करते समय निरन्तर दो-तीन दिन तक छीलने वाले व्यक्ति को दस्त लग जाते हैं, मूत्रल पदार्थों का पेट पर लेप करने से मूत्रबन्ध खुल जाता है, इत्यादि। तात्पर्य यह है कि उस स्थान का जहाँ पर औषधि का प्रयोग किया जाता है, उस स्थान से जहाँ पर रोग है भले ही सीधा सम्बन्ध न हो, तथापि औषधि का प्रभाव उसी स्थान पर होता है, जहाँ पर रोग होता है।

### त्रिफला घृत

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम्।।66।।
भृङ्गराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम्।
दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक्।।67।।
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैन्धवं बला।
काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम्।।68।।
शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा।
निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरेभिर्विपाचयेत्।।69।।
नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च।
नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं काचकं जयेत्।।70।।
अन्येऽपि प्रशमं यान्ति नेत्ररोगाः सुदारुणाः।
त्रैफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादिषूचितम्।।71।।

त्रिफला का रस या क्वाथ एक प्रस्थ (64 तोला), अड़ूसा का रस एक प्रस्थ, भाँगरा का रस एक प्रस्थ, बकरी का दूध एक प्रस्थ, इन सब द्रवों में एक प्रस्थ घृत डालकर निम्नलिखित द्रव्यों का कल्क डालकर परिपाक करना चाहिये। वे द्रव्य हैं–हरड़, बहेड़ा, आँवला, पिप्पली, मुनक्का, सफेद चन्दन, सेंधा नमक, बरियारा, काकोली, क्षीरकाकोली (अभाव में अश्वगन्धा दो कर्ष), मेदा (शतावरी), मरिच, सोंठ, खाँड, नीलकमल, पुनर्नवा, दारुहल्दी एवं हल्दी प्रत्येक द्रव्य 1-1 तोला। इस घृत का सेवन करने से नक्तान्ध्य (रतौन्धी), नकुलान्ध्य (नेवला के समान आँखें चमकती हैं और दिखलायी नहीं पड़ता), आँख की खुजली, पिल्ल (नामक नेत्ररोग देखें–वा० उ० अ० 16), नेत्रस्राव (उलका), पटलगत रोग, तिमिर (धुन्ध) एवं काच (मोतिया) नामक रोग को जीतता है। इसके सेवन से और भी भयानक नेत्ररोग शान्त हो जाते हैं। इसका नाम 'त्रिफला घृत' है। इसका प्रयोग पीने, नस्य, नेत्र-तर्पण आदि में किया जाता है।

### गौराद्य घृत

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम्।
मधुपर्णी च मधुकं पद्मकेशरपद्मकैः।।72।।

उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापञ्चवल्कलैः ।
कल्कैः कर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।। 73।।
विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम् ।
गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिर्विषहरं परम्।। 74।।

हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, सारिवा, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, गिलोय, मुलेठी, कमलकेसर, पद्मकाठ, रक्तकमल, खस, मेदा (अभाव में शतावरी), हरड़, बहेड़ा, आँवला, पञ्चवल्कल (वट, गूलर, पाकर, पीपल एवं वेतस की छाल) प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष लेकर एवं कल्क बनाकर एक प्रस्थ घृत (64 तोला) तथा घृत से चौगुना जल डालकर परिपाक करना चाहिये। यह घृत विसर्प, लूता, विस्फोट (बड़ी माता), कीट विष (कीड़ों के काटने पर) एवं व्रणों को नष्ट करता है। इसका नाम 'गौराद्य घृत' है। यह उत्तम विषनाशक है।

**वक्तव्य**–गौराद्य घृत का पाठ चक्रदत्त के व्रणशोथाधिकार में भी है, किन्तु द्रव्यों में कुछ हेर-फेर है। इस घृत का प्रायः बाहरी प्रयोग किया जाता है।

### मयूर घृत

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ।
पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोणनीरेण पाचयेत्।। 75।।
मयूरं पक्षपित्तान्त्रयकृत्पादास्यवर्जितम्।
पादशेषं शृतं नीत्वा क्षीर दत्त्वा च तत्समम्।। 76।।
घृतप्रस्थं पचेत् सम्यग्जीवनीयैः पिचून्मितैः।
तत्सिद्धं शिरसः पीडां मन्यापृष्ठग्रहं तथा।। 77।।
अर्दितं कर्णनासाक्षिजिह्वागलरुजो जयेत्।
पाने नस्ये तथाभ्यङ्गे कर्णपूरेषु युज्यते।। 78।।
हेमन्तकालशिशिरवसन्तेषु च शस्यते।

बरियारा, मुलेठी, रास्ना, दशमूल एवं त्रिफला प्रत्येक द्रव्य (8-8 तोला) लेकर जौकुट करके एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल में डालकर रख दें। प्रातःकाल इसमें पंख, पित्ताशय, अँतड़ी, यकृत्, पाँव एवं मुखरहित मोर (अर्थात् मोर के मांस) को डालकर क्वाथ करे। जब चतुर्थांश अवशिष्ट रह जाये तो छान लें, तत्पश्चात् इस स्वाथ के समान भाग अर्थात् एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) दूध डालकर और जीवनीयगण के प्रत्येक द्रव्य को एक-एक कर्ष लेकर और कल्क बनाकर तथा एक प्रस्थ (3 पाव 4 तोला) घृत लेकर सबको एक साथ मिलाकर परिपाक करना चाहिये। जब सिद्ध हो जाये तो छानकर रख लेना चाहिये। यह घृत शिर की पीड़ा को, मन्याग्रह (वातव्याधि), पृष्ठग्रह (पीठ की जकड़न), अर्दित (लकवा) तथा कान, नाक, आँख, जीभ एवं केश सम्बन्धी रोगों को जीतता है। पीने में, नस्य में, अभ्यंग (मालिश) में एवं कर्णपूरण (कान में डालने) में इस घृत का प्रयोग किया जाता है। हेमन्त (मार्गशिर एवं पौष), शिशिर (माघ एवं फाल्गुन) तथा वसन्त (चैत्र एवं वैशाख) ऋतु में इस घृत का सेवन करना उत्तम है।

### फल घृत

त्रिफला मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी।। 79।।
विडङ्गं पिप्पली मुस्ता विशाला कट्फलं वचा।
द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियङ्गुका।। 80।।
शतपुष्पा हिङ्गु रास्ना चन्दनं रक्तचन्दनम्।
जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा।। 81।।
अजमोदा च दन्ती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः।
जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतप्रस्थं च गोः क्षिपेत्।। 82।।
चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्यगोमयैः।
सुतिथौ पुष्यनक्षत्रे मृद्भाण्डे ताम्रजे तथा।। 83।।
ततः पिबेच्छुभदिने नारी वा पुरुषोऽथवा।
एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते।। 84।।
पुत्रानुत्पादयेद्धीमान् वन्ध्यापि लभते सुतम्।
अनायुषं या जनयेद् या च सूता पुनः स्थिता।। 85।।
पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमन्तं शतायुषम्।
एतत्फलघृतं नाम भारद्वाजेन भाषितम्।। 86।।
अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपेत् तत्र चिकित्सकः।

हरड़, बहेड़ा, आँवला, मुलेठी, कूठ-मीठा, दारुहल्दी, हल्दी, कुटकी, वायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायण की जड़, कायफल, वच, मेदा, महामेदा (अभाव में शतावरी दूनी), काकोली, क्षीरकाकोली (अभाव में दूनी अश्वगन्धा), सारिवा, कृष्णसारिवा, फूलप्रियंगु, सौंफ, हींग, रास्ना, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चमेली के फूल, वंशलोचन, कमल, चीनी, अजमोदा तथा दन्ती (जमालगोटा) प्रत्येक द्रव्य को एक-एक कर्ष लेकर कल्क बना लें। जीवित बछड़े वाली एक वर्ण की गाय का घृत एक प्रस्थ (3 पाव 4 तोला) तथा घृत से चौगुना दूध लेकर इन सब वस्तुओं को एक साथ मिलाकर जंगली उपलों (कण्डों या गोहरों) की अग्नि द्वारा उत्तम तिथियों (नन्दा, भद्रा, जया तथा पूर्णा तिथियाँ) में पुष्यनक्षत्र के दिन मिट्टी अथवा ताम्र के पात्र में परिपाक करना आरम्भ करें। जब तैयार हो जाये तो किसी शुभ दिन में

स्त्री अथवा पुरुष इस घृत का सेवन करना प्रारम्भ करें। इस घी को पीकर कुछ सप्ताहों तक मनुष्य प्रतिरात्रि स्त्रियों में वृष के समान मैथुन सामर्थ्य प्राप्त कर पुत्रों को उत्पन्न कर सकता है। इस घृत को पीकर बन्ध्या स्त्री भी पुत्र को जन्म दे सकती है। जो स्त्री अल्पायु (छोटी ही आयु में मर जाने वाली) सन्तान को उत्पन्न करती है अथवा जो स्त्री एक ही सन्तान पैदाकर पुन: गर्भवती नहीं होती है, वह भी बुद्धिमान् शतायु (सौ वर्ष जीने वाले) पुत्र को जनती है। इस घृत का नाम 'फल घृत' है। इसका उपदेश सर्वप्रथम महर्षि भारद्वाज ने किया। यद्यपि इसमें कहा नहीं है, तथापि चिकित्सक का कर्तव्य है कि इस घी में 'लक्ष्मणा' नामक औषधि की जड़ का प्रयोग अवश्य करें।

**वक्तव्य**–उक्त घृत पुरुषों के शुक्रदोषों को तथा स्त्रियों के योनिरोगों (गर्भाशय, आर्तव आदि) को दूर करता है। लक्ष्मणा को कल्क द्रव्यों के साथ ही पीस डालना चाहिये। खेद है कि लक्ष्मणा जैसी दिव्य औषधि आज सन्देह में पड़ गयी है। कुछ लोगों का कथन है कि 'पुत्रक या पुतली या गुड़िया के आकार वाले लाल-लाल तथा छोटे-छोटे बिन्दुओं से युक्त पत्रों तथा बकरे की-सी गन्ध वाली एक औषधि का नाम लक्ष्मणा है। श्रीभावमिश्र ने अपने भावप्रकाश, निघण्टु में दोनों का ही उल्लेख किया है।

### दूसरा फल घृत

**त्रिफलां द्वे सहचरे गुडूचीं सपुनर्नवाम्।। 87।।**
**शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्।**
**कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे।। 88।।**
**तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिशूलनिपीडिताम्।**
**पीडिता चलिता या च निःसृता विवृता च या।। 89।।**
**पित्तयोनिश्च विभ्रान्ता षण्ढयोनिश्च या स्मृता।**
**प्रपद्यन्ते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत्।। 90।।**
**एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम्।**

हरड़, बहेड़ा, आँवला, कटसरैया (लाल पुष्प वाली), पियावांसा (पीतपुष्पका), गिलोय, पुनर्नवा, सोनापाठा, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा एवं शतावर–इन सब द्रव्यों को (4 पल या 16 तोला) लेकर कल्क बना लें फिर एक प्रस्थ (64 तोला) घी तथा घी से चौगुना दूध लेकर और सबको एक साथ मिलाकर विधिपूर्वक पाक करें। जब पाक सिद्ध हो जाये तो यह घृत योनिशूल से पीड़ित स्त्री को पिलाना चाहिये। पीड़िता (विलुप्ता) अर्थात् जिस योनि में सर्वदा पीड़ा होती रहती है, चलिता (प्रस्रंसिनी) अर्थात् जो अपने स्थान से खिसक जाती है, निःसृता अर्थात् भग-प्रदेश से बाहर निकल आयी हो, विवृता (महायोनि) अर्थात् जिसके मुख में संकोचन शक्ति न रह जाये। पित्तदोष से होने वाले पाँच योनि-विकार, विभ्रान्ता (योनि के मुख का घूम जाना) तथा षण्ढयोनि, जिससे स्त्री को न आर्तव ही होता है और न स्तन-वृद्धि ही होती है इस प्रकार की जो योनियाँ (गर्भाशय) होती हैं, वे अपने स्थान को प्राप्त हो जाती हैं अर्थात् उक्त विकारों से रहित हो जाती हैं और बार-बार गर्भ को धारण करती हैं। इस घृत का नाम भी 'फल घृत' है और यह सभी प्रकार के योनिदोषों को हरता है।

**वक्तव्य**–इस योग में भी जीवित बछड़े तथा एकवर्ण वाली गाय का घी तथा दूध लेना चाहिये। इसे पकाने के लिए वनकण्डों का ही उपयोग करना चाहिये। यहाँ योनि का अभिप्राय गर्भाशय से है। इस योनि में कल्क के परिमाण का उल्लेख नहीं है, अत: परिभाषा के अनुसार स्नेह से चतुर्थांश कल्क लेना चाहिये।

### पञ्चतिक्त घृत

**वृषनिम्बामृताव्याघ्रीपटोलानां शृतेन च।। 91।।**
**कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद् विषमज्वरान्।**
**पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनर्शांसि नाशयेत्।। 92।।**

अडूसा, नीम की छाल, गिलोय, कण्टकारी तथा परवल की पत्ती के क्वाथ तथा कल्क के साथ मिलाकर पकाया हुआ घृत सेवन करने से विषमज्वरों को नष्ट करता है और पाण्डुरोग, कुष्ठ, विसर्प, कृमि तथा अर्श को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–परिभाषा में कही गयी विधि के अनुसार ही इस घृत को बनाना चाहिये। यहाँ तक घृतों के निर्माण का वर्णन किया गया है। इससे आगे तैलों का निर्माण बतलाया जायेगा। यदि आप तैलों को सुन्दर तथा रक्तवर्ण का बनाना चाहें तो तैयार हो जाने पर अथवा पकते समय थोड़ी 'रतनजोत' डाल दें।

### लाक्षादि तैल

**लाक्षाढकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकैः।**
**चतुर्थांशं शृतं नीत्वा तैलप्रस्थे विनिक्षिपेत्।। 93।।**
**मस्त्वाढकं च गोदध्नस्तत्रैव विनियोजयेत्।**
**शतपुष्पामश्वगन्धां हरिद्रां देवदारु च।। 94।।**
**कटुकीं रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम्।**
**चन्दनं मुस्तकं रास्नां पृथक् कर्षप्रमाणतः।। 95।।**

चूर्णयेत् तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना।
अस्याभ्यङ्गात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषमज्वराः।। 96।।
कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा ।
वातं पित्तमपस्मारमुन्मादं यक्षराक्षसान्।। 97।।
कण्डूं शूलं च दौर्गन्ध्यं गात्राणां स्फुरणं जयेत्।
पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यङ्गतो भृशम्।। 98।।

एक आढ़क (3 सेर 3 पाव 4 तोला) पीपल या बेर (बेरी की लाही = लाख) को चार आढ़क जल में क्वथित करे, चौथायी शेष रहने पर छानकर क्वाथ को एक प्रस्थ (64 तोला) तिल के तैल में डाल दें और इसी में गाय के दही का जल एक आढ़क मिला दें, फिर सौंफ, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, कुटकी, सम्भालू के बीज, मरोड़फली, कूठ, मुलेठी, सफेदचन्दन, नागरमोथा तथा रास्ना प्रत्येक द्रव्य 1-1 तोला परिमाण में लेकर पीसकर कल्क बना लें। फिर सबको एक साथ मिलाकर मन्दाग्नि द्वारा विधिपूर्वक परिपाक करें। इस तेल के अभ्यंग (मालिश) से सब प्रकार के विषमज्वर तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) तथा कमर और पीठ की जकड़न आदि शान्त हो जाते हैं। इस तैल (मालिश करने) से वात-विकार, पित्त-विकार, अपस्मार (मिरगी), उन्माद (पागलपन), यक्ष तथा राक्षस के आवेश (भूतबाधा), कण्डू (खुजली), शूल (उदर की पीड़ा या हड्डियों की पीड़ा), शरीर की दुर्गन्धि (बगलगन्ध आदि) तथा अंगों के स्फुरण (फड़कना) को जीतता है और इसके निरन्तर अभ्यंग (मालिश) करने से गर्भिणी का गर्भ पुष्ट होता है।

**वक्तव्य**—लाही या लाख का क्वाथ बहुत बड़े बरतन (कड़ाही) में करना चाहिये और बराबर हिलाते या चलाते रहना चाहिये अन्यथा लाही नीचे लगकर जल जायेगी। यह स्मरण रखना चाहिये कि लाख काष्ठ औषधियों के समान नहीं पकती, अपितु वह पिघल जाती है।

### अङ्गारक तैल

(मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी।। 99।।
आरनालाढके तत्र तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम्।। 100।।)

मरोड़फली, लाही (लाख), दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, इन्द्रायण की जड़, बनभण्टा, सेंधा नमक, कूठ, रास्ना, जटामांसी तथा शतावर-इन सब द्रव्यों का कल्क (एक कुडव या 16 तोला) बना लें। आरनाल (काँजी) एक आढक (3 सेर या 16 तोला) और तिलतैल एक प्रस्थ (64 तोला), इन सबको एक साथ मिलाकर अच्छी तरह परिपाक करें। इस तैल का नाम 'अंगारक तैल' है। इसकी मालिश करने से सभी प्रकार के ज्वरों से मुक्ति मिलती है।

**वक्तव्य**—काँजी कई प्रकार से बनायी जाती है, किन्तु गुण सबका प्रायः समान ही होता है, क्योंकि सबका सन्धान एक ही प्रकार से किया जाता है। आरनाल नामक काँजी के निर्माण की विधि यह है-'अरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषैः कृतैः। पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः'।। अर्थात् कच्चे अथवा पके गेहूँ की काँजी को 'आरनाल' कहा जाता है। किसी द्रव्य (पकोड़े, मूली, गाजर, राई, नमक, मिरच आदि) को जल में डालकर दो तीन दिन तक रख देने से एक विशेष प्रकार की गन्ध और रस की उत्पत्ति हो जाने पर 'काँजी' तैयार हो जाती है।

### नारायण तैल

अश्वगन्धां बलां बिल्वं पाटलां बृहतीद्वयम्।
श्वदंष्ट्राऽतिबला निम्बं स्योनाकं च पुनर्नवा।। 101।।
प्रसारिणीमग्निमन्थं कुर्याद् दशपलं पृथक्।
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत्।। 102।।
तैलाढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम्।
क्षिपेत् तत्र च गोक्षीरं तैलात् तस्माच्चतुर्गुणम्।। 103।।
शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्द्विपलिकैः पृथक्।
कुष्ठैला चन्दनं मूर्वा वचामांसी ससैन्धवैः।। 104।।
अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः ।
पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण च साधयेत्।। 105।।
तत्तैलं नावनऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत्।
पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्।। 106।।
खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभङ्गं कटिग्रहम्।
गात्रशोषेन्द्रियध्वंसावसृक्शुक्रज्वरक्षयान् ।। 107।।
अन्त्रवृद्धिं कुरण्डं च दन्तरोगं शिरोग्रहम्।
पार्श्वशूलं च पाङ्गुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम्।। 108।।
अन्यांश्च विषमान् वाताञ्जयेत् सर्वाङ्गसंश्रयान्।
अस्य प्रभावाद् वन्ध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते।। 109।।
मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलादस्मात् सुखी भवेत्।
यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः।। 110।।
तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम्।

असगन्ध, बरियारा, बेल की गुद्दी, पाढल, बनभण्टा, कण्टकारी, गोखरू, कंघी, नीम की छाल, सोनापाठा, पुनर्नवा, गन्धप्रसारिणी एवं अरणी प्रत्येक द्रव्य दस-दस पल (40-40 तोला) परिमित लेकर एवं जौकुट कर (आठ पहर तक भिगा दें) चार द्रोण (51 सेर 16 तोला) जल में डालकर क्वाथ करें। जब चतुर्थांश शेष रह जाये तो छानकर उस क्वाथ को ले लें, फिर इस क्वाथ को एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) तिलतैल में मिला दें और उसमें शतावरी का स्वरस एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) डाल दें और तेल से चौगुना गाय का दूध डालकर धीरे-धीरे पाक करें। तैयार होने पर उसमें कूठ, इलायची, सफेद चन्दन, बरियारा, जटामांसी, छरीला, सैंधव नमक, असगन्ध, वच, रास्ना, सौंफ, देवदारु, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी एवं तगर प्रत्येक द्रव्य दो-दो पल (8-8 तोला) लेकर एवं कल्क बनाकर और उक्त तैल में डालकर अत्यन्त मन्द आँच से उसका पाक करें। इस तैल को नस्य, अभ्यङ्ग (मालिश), पीने एवं वस्ति (पिचकारी) में प्रयुक्त करना चाहिये। यह तैल पक्षाघात (अर्द्धांग), हनुस्तम्भ (मुख का खुला या बन्द रह जाना), मन्यास्तम्भ (गर्दन की जकड़न), गलग्रह (गले की रुकावट), खल्ली (हाथ-पाँव की ऐंठन), बधिरता (बहिरापन), गतिभंग (खञ्ज एवं कलायखञ्ज का होना), कटिग्रह (कमर की जकड़न), गात्रशोष (अंगों का सूखना), इन्द्रियध्वस (ज्ञानेन्द्रियों का दुर्बल हो जाना), रक्तगत एवं शुक्रगत वातविकार, जीर्णज्वर, क्षय, अन्त्रवृद्धि (आँत उतरना), अण्डवृद्धि, दन्तरोग, शिरोरोग, पार्श्वशूल (पसली का दर्द), पंगुता, बुद्धि का ह्रास, गृध्रसी एवं अन्यान्य भयानक एवं समस्त शरीर में होने वाले वायु के रोगों को जीतता है। इसके प्रभाव से बन्ध्या (बाँझ) स्त्री भी पुत्र उत्पन्न करती है। वातरोग से पीड़ित मनुष्य, हाथी एवं घोड़ा भी इस तैल से सुखी हो जाता है। जैसे भगवान् नारायण दुष्ट दैत्यों का विनाश करते हैं, वैसे ही यह उत्तम 'नारायण तैल' वातरोगों का विनाश करता है।

**वक्तव्य**—यह नारायण तैल आयुर्वेद का सर्वश्रेष्ठ अतएव सुप्रसिद्ध योग है। कल्क द्रव्यों में से सुगन्धित द्रव्यों को अलग भी रख लिया जाता है और परिपाक हो जाने पर छानने के पश्चात् पीसकर डाल दिया जाता है। दो-तीन सप्ताह में तैल सुगन्धित हो जाता है अथवा सुगन्धि के लिए निम्नलिखित द्रव्यों का प्रयोग भी किया जाता है।

**सुगन्धितद्रव्य प्रयोग-विधि**—'समङ्गानखकङ्कोल-नलिकाजातिकोषकम्। त्वक्कुन्दुरुष्ककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवास-कम्। स्पृक्काकुङ्कुमकस्तूरीं दद्यादत्रावतारिते'।। अर्थात् मजीठ अथवा नेत्रबाला, नाखूना, शीतलचीनी, नलिका (नालुका नामक सुगन्धित द्रव्य) इनका वेदनायुक्त अंग पर लेप करने से बहुत लाभ होता है। जावित्री, दालचीनी, कुन्दरुष्क, कर्पूर, तुरुष्क, श्रीनिवास, असवर्ग, केशर एवं कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य पकाकर उतारे हुये तैल में डालना चाहिये।

**वक्तव्य**—तेलों को लाल रंग देने के लिये 'रतनजोत' डाली जाती है। रतनजोत पाँच तोला को 20 तोला तैल में पकाकर रख लेना चाहिये। इस प्रकार तैल का रंग तैयार हो जाता है। इसे आवश्यकतानुसार तैल को रंगीन करने के लिए काम में लाना चाहिये।

### वारुणी तैल

**(वारुण्या औत्तरं मूलं कुट्टितं तु पलत्रयम्।। 111।।**
**पलद्वादशकं तैलं क्षणं वह्नौ विपाचितम्।**
**निष्कत्रयं भक्तयुक्तं सेवेतास्माद् विनश्यति।। 112।।**
**हस्तकम्पः शिरःकम्पः कम्पो मन्याशिराभवः।)**

इन्द्रायण की उत्तम (जो घुनी न हो) जड़ का चूर्ण तीन पल (12 तोला), तैल बारह पल (48 तोला) दोनों को मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर थोड़ी देर तक पकायें, जब चूर्ण तैल पर तैरने लगे और लाल-सा हो जाये तो उतार कर छानकर रख लें (इस तैल की मात्रा तीन निष्क या शाण या बारह आना भर है)। इसे भात के (एक-दो ग्रास में मिलाना चाहिये, अन्यथा सब भात कडुवा हो जायेगा) साथ मिलाकर खाना चाहिये। इससे हाथ का, शिर का और मन्या एवं शिराओं का काँपना या फड़कना नष्ट हो जाता है।

**वक्तव्य**—इसका प्रभाव वातव्याधि के रूप में हुये कम्पन को ठीक करते देखा जाता है, किन्तु वृद्धावस्था के कारण उत्पन्न कम्पन में नहीं।

### बलादि तैल

**बलामूलकषायेण दशमूलशृतेन च।। 113।।**
**कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा।**
**अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम्।। 114।।**
**गणेन जीवनीयेन शतावर्येन्द्रदारुणा।**
**मञ्जिष्ठाकुष्ठशैलेयतगरागरुसैन्धवैः।। 115।।**

वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः ।
शतपुष्पाश्वगन्धाभ्यामेलया च विपाचयेत्।। 116।।
गर्भार्थिनीनां नारीणां नराणां क्षीणरेतसाम्।
व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते।। 117।।
राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः।
बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम्।। 118।।

बरियारा की जड़ का क्वाथ 8 सेर, दशमूल का क्वाथ 8 सेर, कुलथी, जौ एवं बेरी की छाल का क्वाथ 8-8 सेर, दूध (गाय का) 8 सेर, तिल का तैल 1 सेर और जीवनीयगण (जीवन्ती, माषपर्णी, मुद्‌गपर्णी, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा और मुलेठी) के द्रव्य, शतावर, देवदारु, मजीठ, कूठ, छड़ीला, तगर, अगुरु, सेंधा नमक, वच, पुनर्नवा, जटामांसी, सारिवा, अनन्तमूल, तेजपत्ता सौंफ, असगन्ध एवं छोटी इलायची इन सब द्रव्यों का कल्क 1 पाव अर्थात् तैल से चतुर्थांश। उक्त सब क्वाथ दूध, तैल एवं कल्क को एक साथ मिलाकर विधिपूर्वक पाक करना चाहिये। गर्भाधान की अभिलाषिणी स्त्रियों को, क्षीणशुक्र पुरुषों को, अति व्यायाम से शुष्क शरीर वालों को एवं प्रसूता स्त्रियों को इस तैल का सेवन (खाने एवं लगाने में) करना चाहिये। यह तैल राजाओं तथा सुखी मनुष्यों के सेवन करने योग्य है। इसका नाम 'बलादि तैल' है। यह उक्त सभी रोगों को नष्ट करता है।

### प्रसारिणी तैल

प्रसारणीपलशतं जलद्रोणेन पाचयेत्।
पादशिष्टः शृतो ग्राह्यस्तैलं दधि च तत्समम्।। 119।।
काञ्जिकं च समं तैलात् क्षीरं तैलाच्चतुर्गुणम्।
तैलात् तथाष्टमांशेन सर्वकल्कानि योजयेत्।। 120।।
मधुकं पिप्पलीमूलं चित्रकः सैन्धवं वचा।
प्रसारिणी देवदारु रास्ना च गजपिप्पली।। 121।।
भल्लातः शतपुष्पा च मांसी चैभिर्विपाचयेत्।
एतत् तैलं वरं पक्वं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत्।। 122।।
कौब्जं पङ्गुत्वखञ्जत्वे गृध्रसीमर्दितं तथा।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तम्भान् विनाशयेत्।। 123।।
अन्यांश्च विषमान् वातान् सर्वानाशु व्यपोहति।

प्रसारिणी सौ पल (पल को छटाँक भर भी मान लिया जाये तो 6¼ सेर) को जौकुट करके एक द्रोण (अब द्रोण को 16 सेर मान लीजिये) जल में डालकर क्वाथ करें, चतुर्थांश शेष रहने पर क्वाथ ले लें। क्वाथ के समान तेल (4 सेर), उतना ही दही, उतनी ही काँजी और तैल से चौगुना दूध (16 सेर) तथा तेल से अष्टमांश (आधा सेर) निम्नलिखित सब द्रव्यों का कल्क। कल्क द्रव्य ये हैं-मुलेठी, पीपलामूल, चीता की जड़, सेंधा नमक, वच, प्रसारिणी, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, भिलावा, सौंफ एवं जटामांसी। उक्त सब पदार्थों को एक साथ मिलाकर विधिपूर्वक पाक करें। यह उत्तम तैल वात तथा कफ रोगों को जीतता है और कुब्जता (कुबड़ापन), पंगुपन, लंगड़ापन, गृध्रसी, अर्दित (लकवा) तथा हनु (जबड़े), पीठ, शिर, गर्दन एवं कमर की जकड़न को नष्ट करता है और अन्यान्य कष्टसाध्य सभी प्रकार के वातरोगों को दूर करता है।

**वक्तव्य**-इस तैल के लगाने से भिलावे के कारण किसी-किसी को रक्त वर्ण का शोथ हो जाता है, परन्तु घबराना नहीं चाहिये। दो-तीन दिन में वह शोथ स्वयं शान्त हो जाता है।

### माषादि तैल

माषो यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः।। 124।।
गोकण्टक्षुण्टुकश्चैषां कुर्यात् सप्तपलं पृथक्।
चतुर्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत्।। 125।।
कार्पासास्थीनि बदरं शणबीजं कुलत्थकम्।
पृथक्चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत्।। 126।।
चतुर्थांशावशिष्टं च गृह्णीयात् क्वाथमुत्तमम्।
प्रस्थैकं छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले।। 127।।
निक्षिप्य पाचयेद्धीमान् पादशेषं शृतं नयेत्।
तैलप्रस्थे ततः सर्वान् क्वाथानेतान् विनिक्षिपेत्।। 128।।
कल्कैरेभिश्च विपचेदमृताकुष्ठनागरैः।
रास्नापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया।। 129।।
बलाप्रसारिणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा।
पृथगर्धपलैरेतैः साधयेन्मृदुवह्निना।। 130।।
हन्यात् तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तम्भापबाहुकौ।
अर्धाङ्गशोषमाक्षेपमूरुस्तम्भापतानकौ ।। 131।।
शाखाकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा।
माषादिकमिदं तैलं सर्ववातविकारनुत्।। 132।।

उड़द, जौ, तीसी (अलसी), कण्टकारी, किवाँच के बीज, कटसरैया, गोखरू एवं टेंटू प्रत्येक सात-सात पल (28-28 तोला) लेकर जौकुट कर (आठ पहर भिगोने के

पश्चात्) चौगुने जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ ले लें। कपास के बिनौले, बेर का फल, सन के बीज एवं कुलथी प्रत्येक 14-14 पल (56- 56 तोला) लेकर तथा जौकुट करके सब द्रव्यों से चौगुने जल में पकायें, चौथाई शेष रहने पर क्वाथ को छान लें और बकरे का मांस एक प्रस्थ (3 पाव 4 तोला) लेकर चौसठ पल (3 सेर 16 तोला) जल में पकायें, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर क्वाथ ले लें। फिर इन सब (तीनों) क्वाथों को एक प्रस्थ (3 पाव 4 तोला) तिल तेल में डाल दें और गिलोय, कूठ, सोंठ, रास्ना, पुनर्नवा, एरण्ड की जड़, पीपल, सौंफ, बरियारा, गन्धप्रसारिणी, जटामांसी एवं कुटकी प्रत्येक आधा-आधा पल (2-2 तोला) लेकर कल्क बनाकर उक्त क्वाथ-मिश्रित तेल में डालकर मन्द-मन्द आँच से सिद्ध करें। यह तेल ग्रीवास्तम्भ एवं अपबाहुक, अर्द्धांगशोष (पक्षाघात), आक्षेपक, ऊरुस्तम्भ एवं अपतानक (हिस्टीरिया), शाखाओं (टाँगों एवं बाहों) के कम्पन, शिर के कम्पन, विश्वाची, अर्दित (लकवा) तथा वायु के सभी रोगों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। इसका नाम 'माषादि तैल' है।

### शतावरी तैल

**शतावरी बलायुग्मं पर्ण्यौ गन्धर्वहस्तकः।**
**अश्वगन्धा श्वदंष्ट्रश्च बिल्वः काशः कुरण्टकः।। 133।।**
**एतान् सार्धपलान्भागान् कल्कयेच्च विपाचयेत्।**
**चतुर्गुणेन नीरेण पादशेषं भृतं नयेत्।। 134।।**
**नियोज्य तैलप्रस्थे च क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत्।**
**शतावरीरसप्रस्थं जलप्रस्थं च योजयेत्।। 135।।**
**शतावरीदेवदारुमांसीतगरचन्दनम् ।**
**शतपुष्पा बला कुष्ठमेला शैलेयमुत्पलम्।। 136।।**
**ऋद्धिर्मेदा च मधुकं काकोली जीवकस्तथा।**
**एषां कर्षसमैः कल्कैस्तैलं गोमयवह्निना।। 137।।**
**पचेत् तेनैव तैलेन नरः स्त्रीषु वृषायते।**
**नारी च लभ्यते पुत्रं योनिशूलं च नश्यति।। 138।।**
**अङ्गशूलं शिरःशूलं कामलां पाण्डुतां गरम्।**
**गृध्रसीप्लीहशोषांश्च मेहान् दण्डापतानकम्।। 139।।**
**सदाहं वातरक्तं च वातपित्तगदार्दितम्।**
**असृग्दरं तथाध्मानं रक्तपित्तं च नश्यति।। 140।।**
**शतावरीतैलमिदं कृष्णात्रेयेण भाषितम्।**
**ॐ नारायण्यै स्वाहा।**
**उत्तराभिमुखो भूत्वा खनेत् खदिरशङ्कुना।। 141।।**
**ॐ सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा। इत्युत्पाटनमन्त्रः।**
**ॐ कुमारजीविन्यै स्वाहा। इति पाचनमन्त्रः।**

शतावर, बरियारा, अतिबला (कंघी), शालपर्णी, पिठवन, एरण्ड की जड़, असगन्ध, गोखरू, बेलगिरी, कास (काही) की जड़ तथा कटसरैया प्रत्येक द्रव्य को डेढ़-डेढ़ पल (6-6 तोला) लेकर भली-भाँति पीसकर सब द्रव्यों की अपेक्षा चौगुने (6-6 पल) जल में डालकर क्वाथ करें, जब चतुर्थांश शेष रह जाये तो क्वाथ को छानकर ले लें, फिर इस क्वाथ को एक प्रस्थ तिलतैल (64 तोला) में मिलाकर एक प्रस्थ (64 तोला) गाय का दूध मिला दें, शतावर का रस एक प्रस्थ (64 तोला), एक प्रस्थ (64 तोला) जल भी उसी में मिला दें और शतावर, देवदारु, जटामांसी, तगर, श्वेतचन्दन, सौंफ, वरियारा, कूठ, बड़ी इलायची, छड़ीला, कमल, ऋद्धि (अभाव में बाराहीकन्द), मेदा (अभाव में शतावर), मुलेठी, काकोली (अभाव में असगन्ध) तथा जीवक (अभाव में विदारीकन्द) प्रत्येक द्रव्य 1-1 तोला लेकर इनका कल्क बनाकर तैल में मिला दें, फिर इसका गोहरों का अग्नि से पाक करें। तैयार हो जाने पर छानकर रख लें। इस तैल को शिर पर लगाने से मनुष्य स्त्रियों में मैथुन-सामर्थ्य प्राप्त करता है, स्त्री पुत्र को प्राप्त करती है, उसका योनिशूल भी नष्ट हो जाता है। इस तैल के प्रयोग से अंगशूल, शिरःशूल, कामला (पीलिया), पाण्डुरोग, गरनामक विषविशेष, गृध्रसी, प्लीहाविकृति, शोष, प्रमेह, दण्डापतानक, दाहयुक्त वातरक्त, वात तथा पित्त के रोग, अर्दित (मुख का लकवा), आध्मान (अफारा) तथा रक्तपित्त नष्ट हो जाता है। इस तैल का नाम 'शतावरी तैल' है। यह महर्षि कृष्णात्रेय का कहा हुआ है। इस तैल का पाक करते समय 'ॐ नारायण्यै स्वाहा' इस मन्त्र का पाठ करना चाहिये। शतावरी को अथवा सभी औषधियों को उत्तर दिशा की ओर मुख करके खैर की लकड़ी के शंकु (कीले) से, (लोह आदि के शस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये) 'ॐ सर्वव्याधिविनाशिन्यै स्वाहा' इस मन्त्र का जप करते हुये उखाड़ना चाहिये। इसे पीते समय 'ॐ कुमारजीविन्यै स्वाहा' इस मन्त्र का पाठ करना चाहिये।

**वक्तव्य**—हमारा विचार है कि मन्त्रों का दिव्य प्रभाव औषधियों और उनके सेवकों पर पड़ता है। कहा भी है **'सिद्धवैद्यस्तु मान्त्रिकः'** अर्थात् मन्त्र का ज्ञाता सिद्धवैद्य होता है। अनेक रोगों को मन्त्रों द्वारा अच्छा होते भी देखा ही जाता है।

### कासीसादि तैल

**कासीसं लाङ्गली कुष्ठं शुण्ठी कृष्णा च सैन्धवम्।**
**मनःशिलाश्वमारश्च विडङ्गं चित्रको द्रुमः।। 142।।**
**दन्ती कोशातकीबीजं हेमाह्वा हरितालकम्।**
**कल्कैः कर्षमितैरेतैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्।। 143।।**
**स्नुह्यर्कपयसी दद्यात् पृथग् द्विपलसम्मिते।**
**चतुर्गुणं गवां मूत्रं दत्त्वा सम्यक् प्रसाधयेत्।। 144।।**
**कथितं खरनादेन तैलमर्शोविनाशनम्।**
**क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यङ्गतो भृशम्।। 145।।**
**वलीर्न दूषयत्येतत् क्षारकर्मकरं स्मृतम्।**

हीराकसीस, कलिहारी, कूठ, सोंठ, पीपल, सेंधा नमक, मैनसिल, कनेर की जड़ अथवा पत्ते, वायविडंग, चीता की जड़, कुरैया की छाल, दन्ती, कड़ुई तोरई के बीज, सत्यानाशी की जड़, हरिताल प्रत्येक द्रव्य एक कर्ष लेकर कल्क बना लें। तिलतैल एक प्रस्थ (64 तोला), सेहुण्ड (थूहर) तथा आक का दूध दो-दो पल (8-8 तोला) और तैल की अपेक्षा चौगुना (4 प्रस्थ या 3 सेर 16 तोला) गोमूत्र-इन सबको एक साथ मिलाकर भली-भाँति पाक करना चाहिये। यह तैल महर्षि खरनाद का कहा हुआ है और अर्श (बवासीर के मस्सों) को नष्ट करता है। बार-बार अभ्यंग (मालिश) करने से बवासीर के मस्सों को क्षार के समान गिरा देता है और वलियों (गुदवलियों, जिनमें मस्से या मासांकुर होते हैं) को दूषित या खराब भी नहीं करता है, तथापि क्षार का कार्य तो करता ही है।

**वक्तव्य**–अर्श की चिकित्सा के चार उपाय हैं–1. भेषज (खाने की औषधियाँ), 2. क्षार (मस्सों पर क्षार लगाना), 3. अग्नि (मस्सों को अग्नि से जला देना) और 4 शस्त्र द्वारा ऑपरेशन करना या काट देना। उक्त तैल के लगाने से मांसांकुर सूखकर झड़ जाते हैं और क्षार, अग्नि तथा शस्त्रक्रिया की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। महर्षि खरनाद की संहिता आज दुर्भाग्य से अप्राप्य है। यह योग उसी संहिता का है। यह भी एक मलहम है।

### पिण्ड तैल

**मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैः पलोन्मितैः।। 146।।**
**पिण्डाख्यं साधयेत्तैलमैरण्डं वातरक्तनुत्।**

मजीठ, सारिवा, राल, मुलेठी तथा मोम प्रत्येक एक-एक पल लेकर एरण्ड तैल 20 पल सिद्ध करें। इस तैल का नाम 'पिण्ड तैल' है। इस तेल को लगाने से वातरक्त को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–मोम के बिना प्रत्येक द्रव्य का कपड़छन चूर्ण बना लें और मोम को तैल में पिघलाकर सब द्रव्य मिला दें, एक प्रकार की 'मलहम' तैयार हो जायेगी। अर्थात् अन्यान्य तैलों के समान इस तैल का कल्क पृथक् नहीं किया जाता। अतएव उसका नाम 'पिण्ड तैल' है।

### अर्क तैल

**अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम्।। 147।।**
**नाशयेत् सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम्।**

हल्दी के कल्क से युक्त तथा आक के पत्तों के रस में पका हुआ सरसों का तैल पामा (खुजली), कच्छू (अण्डकोष की खुजली और पामा का ही भयानक रूप) तथा विचर्चिका को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त तैल परिभाषानुसार बना लेना चाहिये। सरसों का तैल 1 सेर, हल्दी का कल्क 1 पाव और आम के पत्तों का रस 4 सेर।

### मरिचादि तैल

**मरिचं हरिताल च त्रिवृतं रक्तचन्दनम्।। 148।।**
**मुस्तं मनःशिला मांसी द्वे निशे देवदारु च।**
**विशाला करवीरं च कुष्ठमर्कपयस्तथा।। 149।।**
**तथैव गोमयरसं कुर्याति कर्षमितान् पृथक्।**
**विषं चार्धपलं देयं प्रस्थं च कटुतैलकम्।। 150।।**
**गोमूत्रं द्विगुणं दद्याज्वलं च द्विगुणं भवेत्।**
**मरिचाद्यमिदं तैलं सिद्धं कुष्ठहरं परम्।। 151।।**
**जयेत्कुष्ठानि सर्वाणि पुण्डरीकं विचर्चिकाम्।**
**पामां श्वित्राणि रक्तं च कण्डूं कच्छूं प्रणाशयेत्।। 152।।**

मरिच, हरिताल, निसोत, लालचन्दन, नागरमोथा, मैनसिल, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, इन्द्रायण की जड़, कनेर के पत्र, कूठ, मदार (आक) का दूध तथा गोबर का रस प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष तथा आवेष (मीठा तेलिया) 2 कर्ष लेकर कल्क बनायें तथा सरसों का तैल एक प्रस्थ (64 तोला), गोमूत्र दो प्रस्थ तथा जल दो प्रस्थ, सबको एक साथ मिलाकर विधिपूर्वक परिपाक करें। इस तैल का नाम 'मरिचादि तैल' है। इस तैल को लगाने से कुष्ठ के घावों को नष्ट कर सब प्रकार के कुष्ठों को जीतता है तथा पुण्डरीक नामक कुष्ठ, विचर्चिका स्राव युक्त खुजली, पामा, श्वेत दाग (फुलबहरी), रक्तविकार, खुजली तथा कच्छू को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–'मरिचादि तैल' का निर्माण सरसों के तैल से ही किया जाता है।

### त्रिफलादि तैल

**त्रिफलारिष्टभूनिम्बं द्वे निशे रक्तचन्दनम्।**
**एतै सिद्धमरूंषीणां तैलमभ्यञ्जने हितम्।। 153।।**

त्रिफला, नीम के पत्र, चिरायता, दारुहल्दी, हल्दी तथा लालचन्दन–इन द्रव्यों के कल्क तथा क्वाथ से पकाया हुआ सरसों का तैल मालिश करने से अरूंषिका (शिर के फोड़ों) को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–उक्त तैल केवल कल्क द्वारा भी सिद्ध किया जाता है। इसे मीठी आँच पर पकाना चाहिये। अरूंषिका नामक फुन्सियाँ शिर में होती हैं, जिनका पीला-पीला तथा दुर्गन्धियुक्त मवाद (पीब) निकल कर वहीं पर जम जाता है।

### निम्बबीज तैल

**भावयेन्निम्बबीजानि भृङ्गराजरसेन हि।**
**तथासनस्य तोयेन तत्तैलं हन्ति नस्यतः।। 154।।**
**अकालपलितं सद्यः पुंसां दुग्धान्नभोजिनाम्।**

नीम के बीजों को भाँगरा के रस की तथा विजयसार के क्वाथ की भावना दें और इसके पश्चात् उन बीजों का तैल निकाल लें। इस तैल की नस्य लेने से दूध-भात खाने वाले मनुष्यों का अकाल पलित (जवानी में ही बालों का सफेद हो जाना) शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

**वक्तव्य**–नीम के बीजों का तैल दो प्रकार से निकाला जाता है–1. बादामरोगन निकालने की विधि से भली-भाँति पीसकर धूप में रख देने से तैल निकल आता है और 2. कोल्हू द्वारा जैसे सरसों तथा तिल आदि का तैल निकाला जाता है। इसकी नस्य का प्रयोग प्रतिदिन वर्षों तक करना चाहिये। इसमें नमक का सर्वथा त्याग करके केवल दूध के साथ भात तथा रोटी का सेवन करना चाहिये।

### यष्टीमधुक तैल

**यष्टीमधुकक्षीराभ्यां नवधात्रीफलैः शृतम्।। 155।।**
**तैलं नस्यकृतं कुर्यात् केशाञ्श्मश्रूणि सङ्घशः।**

मुलेठी, गाय का दूध तथा नवीन या ताजे आँवले, इन द्रव्यों के साथ विधिपूर्वक पकाये हुये तैल के (नस्य) प्रयोग से केश तथा श्मश्रु (दाढ़ी तथा मोंछ) सघन (घने) हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–इस तैल का पाक यथाविधि करना चाहिये। यह तैल इन्द्रलुप्त (दाढ़ी-मोंछों के बालों का गिरना), खालित्य (शिर के बालों का उखड़ जाना) और शरीर के किसी भी स्थान के बालों के उखड़ जाने पर मालिश करने पर भी बहुत लाभ करता है। मुलेठी और आवलों का कल्क 1 सेर, तिल तैल चार सेर तथा गाय का दूध सोलह सेर मिलाकर पाक करें। इस प्रकार 'आँवले का तेल' तैयार किया जाता है।

### करञ्ज तैल

**करञ्जश्चित्रको जाती वरवीरश्च पाचितम्।। 156।।**
**तैलमेभिर्द्रुतं हन्यादभ्यङ्गादिन्द्रलुप्तकम्।**

करञ्ज के पत्र, चीता के पत्र, चमेली के पुष्प एवं कनेर के पत्र–इन द्रव्यों से पकाया हुआ तैल अभ्यंग (मालिश) करने से शीघ्र ही 'इन्द्रलुप्त' को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–करञ्ज, चीता तथा कनेर के पत्रों के कल्क को तैल में डालकर यथाविधि मन्द-मन्द अग्नि से पाक करें, पाक हो जाने पर उसमें चमेली के फूल डालकर एक सप्ताह धूप में रख देने से उक्त सुगन्धित तेल तैयार हो जाता है।

### नीलिकादि तैल

**नीलिका केतकीकन्दं भृङ्गराजः कुरण्टकः।। 157।।**
**तथार्जुनस्य पुष्पाणि बीजकात् कुसुमान्यपि।**
**कृष्णास्तिलाश्च तगरं समूलं कमलं तथा।। 158।।**
**अयोरजः प्रियङ्गुश्च दाडिमत्वग्गुडूचिका।**
**त्रिफला पद्मपङ्कश्च कल्कैरेभिः पृथक्पृथक्।। 159।।**
**कर्षमात्रैः पचेत् तैलं त्रिफलाक्वाथसंयुतम्।**
**भृङ्गराजरसेनैव सिद्धं केशस्थिरीकृतम्।। 160।।**
**अकालपलितं हन्ति दारुणं चोपजिह्विकाम्।**

नील के पत्र, केवड़े का कन्द, भाँगरा, कुरैया के पत्र, अर्जुन वृक्ष के फूल, विजयसार के फूल, काले तिल, तगर, कमल, कमल की जड़, लोहे का चूर्ण, प्रियंगु, देशी अनार का छिलका, गिलोय, त्रिफला एवं पद्मपङ्क (कमलों की जड़ का कीचड़) प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष (तोला) लेकर कल्क बना लें। तिल तैल (72 तोला), त्रिफला का क्वाथ (तैल की अपेक्षा दुगुना) एवं भाँगरा का स्वरस (तैल से दुगुना)–इन द्रव्यों को एक साथ मिलाकर पाक करें। यह तैल मालिश करने से केशों को स्थिर करता (उखड़ने नहीं देता) है, अकालपलित, दारुणक (रूसी) और उपजिह्विका नामक रोग को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—यह एक प्रकार का 'कल्प' है। इसके सेवन से (कुछ महीनों तक निरन्तर लगाने से) बाल जड़ से काल हो जाते हैं।

भृङ्गराज तैल

**भृङ्गराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम्।। 161।।**
**सारिवां च पचेत् कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम्।**
**अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत्।। 162।।**

भाँगरा का रस (4 सेर), लोहकिट्ट (मण्डूर का चूर्ण अथवा लोहचूर्ण), त्रिफला एवं सारिवा (इनका कल्क 1 पाव) और तिल का तैल (1 सेर) सबको एक साथ मिलाकर विधिपूर्वक पाक करें। यह तैल दारुण (रूसी), अकालपलित, शिर की खुजली एवं इन्द्रलुप्त रोग को नष्ट करता है।

इरिमेदादि तैल

**इरिमेदत्वचं क्षुण्णा पचेच्छतपलोन्मिताम्।**
**जलद्रोणे ततः क्वाथं गृह्णीयात् पादशेषितम्।। 163।।**
**तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत्।**
**इरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागरुपद्मकैः।। 164।।**
**मञ्जिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः ।**
**त्वग्जातीफलकर्पूरकङ्कोलखदिरैस्तथा ।। 165।।**
**पतङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः ।**
**कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत्।। 166।।**
**प्रदुष्टमांसं पलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम्।**
**श्यावदन्तं प्रहर्षं च विद्रधिं कृमिदन्तकम्।। 167।।**
**दन्तस्फुरणदौर्गन्ध्यं जिह्वाताल्वोष्ठजां रुजम्।**

खैर की छाल का चूर्ण सौ पल (5 सेर) लेकर एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल में डालकर क्वाथ करें, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर क्वाथ ले लें। फिर इस क्वाथ में तिल का तेल एक आढ़क (3 सेर 16 तोला), खैर की छाल, लौंग, गेरू, अगरचन्दन, पद्मकाठ, मजीठ, लोध, मुलेठी, लाही (लाख), बड़ की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कपूर, शीतलचीनी, खैरसार (कत्थ), पतंग, धाय का फूल, छोटी इलायची, नागकेसर तथा कायफल' प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष (1-1 तोला) लेकर उसका कल्क बनाकर विधिपूर्वक पाक करें। यह तेल मुख के सभी रोगों को जीतता है। दुष्टमांस (मांस विकृति) से होने वाला ओष्ठरोग, चलित (दाँतों का हिलना), शीर्णदन्त (अकाल में दाँतों का गिरना), सौशिर (मसूड़ों का फूलना), श्यावदन्त (दाँत का काला होना), प्रहर्ष (दन्तहर्ष), विद्रधि (गलविद्रधि), कृमिदन्तक (दाँतों में कीड़ा लगना), दन्तस्फुरण (दाँतों की सुरसुराहट), दौर्गन्ध्य (दाँतों की दुर्गन्धि) तथा जीभ, तालु एवं ओठ के रोगों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—इरिमेद एक प्रकार का खैर ही है। इसे 'दुर्गन्धि' या 'विट्खदिर' कहा जाता है। उक्त तैल मुखरोगों की उत्तम तथा प्रसिद्ध औषधि है। इसमें भी सुगन्धित द्रव्यों को तैल सिद्ध होने के बाद डालना चाहिये।

जात्यादि तैल

**(जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः।। 168।।**
**सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी।**
**मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम्।। 169।।**
**तुत्थकं सारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत्।**
**एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्।। 170।।**
**नाडीव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु।**
**सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चैव हि।। 171।।**
**नखदन्तक्षते देहे व्रणे दुष्टे प्रशस्यते।)**

चमेली के पत्र, नीम के पत्र, परवल के पत्र, करञ्ज के पत्र, मोम, मुलेठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्मकाठ, लोध, हरड़, नीलोत्पल (नीलोफर), तूतिया, सारिवा तथा करञ्ज के बीज प्रत्येक द्रव्य को समान भाग (1-1 तोला) लेकर और कल्क बनाकर तैल (सबसे चौगुना अर्थात् 72 तोला) में पकायें। यह तैल नाड़ीव्रण (नासूर) में, स्फोटक (बड़ी माता के घावों) में, कच्छूरोग (भयानक खुजली) में, सद्यः शस्त्र-क्षत (तत्काल के घावों) में, दिग्धविद्ध (विष में बुझाये हुये बाण आदि के घावों) में, नाखून एवं दाँतों के घावों में तथा शरीर के दूषित व्रणों (घावों) में उत्तम माना जाता है।

**वक्तव्य**—यह तैल **नासूर** में अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि जहाँ पर नासूर के भीतर और पिण्डतैल आदि नहीं पहुँचाये जा सकते अथवा बहुत कठिनता से पहुँचाये जा सकते हैं, वहाँ पर यह तैल तरल होने के कारण सरलतापूर्वक पहुँचाया जा सकता है। इसके प्रभाव से भीतर से धाव धीरे-धीरे भर जाता है।

हिंग्वादि तैल

**हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठीभिः कटुतैलं विपाचयेत्।। 172।।**
**तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति।**

हींग, तुम्बुल तथा सोंठ का कल्क (1 पाव) बनाकर उसे 1 सेर कडुवा तैल में डालकर विधिपूर्वक पकायें। इस तैल को कान में डालने से कर्णशूल (कान का दुखना) नष्ट हो जाता है।

### बिल्व तैल

**बालबिल्वानि गोमूत्रे पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्।। 173।।**
**साजक्षीरं च नीरं च बाधिर्यं हन्ति पूरणात्।**

बेलगिरी (1 पाव) को गोमूत्र द्वारा पीसकर कल्क बना लें, 1 सेर कडुआ तेल और बकरी का दूध एवं जल दोनों मिलाकर 4 सेर, इन सबको एक साथ यथाविधि पकायें। यह तैल कान में डालने से बधिरता (बहरापन) को नष्ट करता है।

### क्षार तैल

**बालमूलकशिम्बीनां क्षारः क्षारयुगं तथा।। 174।।**
**लवणानि च पञ्चैव हिङ्गु शिग्रु महौषधम्।**
**देवदारु वचा कुष्ठं शतपुष्पा रसाञ्जनम्।। 175।।**
**ग्रन्थिकं भद्रमुस्तं च कल्कैः कर्षमितैः पृथक्।**
**तैलप्रस्थं च विपचेत् कदलीबीजपूरयोः।। 176।।**
**रसाभ्यां मधुशुक्तेन चातुर्गुण्यमितेन च।**
**पूयस्रावं कर्णनादं शूलं बधिरतां कृमीन्।। 177।।**
**अन्यांश्च कर्णजान् रोगान् मुखरोगांश्च नाशयेत्।**

कच्ची मूलियों के टुकड़ों का क्षार, जौखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, बिरिया नमक, समुद्र नमक, साँभर नमक, हींग, सहिजन की जड़ की छाल, सोंठ, देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, रसवत, पीपलामूल तथा नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य 1-1 तोला लेकर कल्क बनायें; सरसों का तेल एक प्रस्थ (64 तोला), केले की जड़ का रस, बिजौरा नींबू का रस तथा मधुशुक्त (तीनों द्रव पदार्थ तेल से चौगुने अर्थात् 4 प्रस्थ) मिलाकर विधिपूर्वक पाक करना चाहिये। यह तैल कान में डालने से पूयस्राव (कान में से पीब का जाना), कर्णनाद (विविध प्रकार की ध्वनियाँ सुनायी पड़ना), शूल (कान की पीड़ा), बधिरता, कृमि (कान में उत्पन्न हुये कृमि), अन्यान्य कर्णरोग तथा मुखरोगों को विनष्ट करता है।

### पाठादि तैल

**पाठा द्वे च निशे मूर्वा पिप्पलीजातिपल्लवैः।। 178।।**
**दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्याद् दुष्टपीनसे।**

पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, मरोड़फली, पिप्पली, चमेली के पत्र तथा दन्ती के कल्क से सिद्ध किये हुये कटुतैल की नस्य देने से दुष्ट पीनस (बिगड़े हुये जुकाम) का विनाश हो जाता है।

### व्याघ्री तैल

**व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैन्धवैः ।। 179।।**
**कल्कैश्च पाचनं तैलं पूतिनासागदापहम्।**

कण्टकारी, दन्ती, वच, सहिजन की छाल, तुलसी के पत्ते, सोंठ, मरिच, पीपल तथा सेंधा नमक इन सब द्रव्यों का कल्क (1 पाव), कटुतैल 1 सेर में डालकर पाक करें। यह तैल आमकफ का पाचन करता है, पूतिनास (नाक में से दुर्गन्ध आना) तथा नासास्राव (नाक से पानी जाना) को नष्ट करता है।

### कुष्ठादि तैल

**कुष्ठं बिल्वकणाशुण्ठीद्राक्षाकल्ककषायवत्।। 180।।**
**साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात् क्षवथुनाशनम्।**

कूठ, बेलगिरी, पीपल, सोंठ तथा मुनक्का के कल्क-रूपी कषाय के साथ सिद्ध किया हुआ तैल अथवा घी की नस्य लेने से क्षवथु (अधिक छींकें आना) रोग को नष्ट करता है।

### गृहधूम तैल

**गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।। 181।।**
**सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम्।**

गृहधूम (रसोई घर में जो जाले लगे रहते हैं), पीपल, देवदारु, जौखार, करञ्ज के पत्र सेंधा नमक तथा अपामार्ग (चिरचिटा) के बीज, इन द्रव्यों के कल्क से पकाया हुआ तैल नासार्श (नासिका की बवासीर) के लिए लाभदायक होता है।

**वक्तव्य**—उक्त चारों तैल केवल कल्क डालकर ही बनाये जाते हैं।

### वज्री तैल

**वज्रीक्षीरं रविक्षीरं द्रवं धत्तूरचित्रजम्।। 182।।**
**महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम्।**
**पचेत् तैलावशेषं च गोमूत्रेऽथ चतुर्गुणे।। 183।।**
**तैलावशेषं पक्त्वा च तत्तैलं प्रस्थमात्रकम्।**
**गन्धकाग्निशिलातालं विडङ्गातिविषाविषम्।। 184।।**
**तिक्तकोशातकीकुष्ठवचामांसीकटुत्रयम् ।**
**पीतदारु च यष्ट्याह्वं स्वर्जिकाक्षारजीरकम्।। 185।।**

**देवदारु च कर्षांशं चूर्णं तैले विनिक्षिपेत्।**
**वज्रतैलमिदं ख्यातमभ्यङ्गात् सर्वकुष्ठनुत्।। 186।।**

सेहुण्ड (थूहर) का दूध, आक (मदार) का दूध, धतूरे के पत्तों का रस, चीता के पत्तों का रस तथा भैंस के गोबर का रस (1-1 पाव लें) और सबके समान सरसों का तेल (1¼ सेर) मिलाकर पाक करें, तत्पश्चात् जब तेलमात्र शेष रह जाये तब उसमें चौगुना (5 सेर) गोमूत्र डालकर पाक करें। अन्त में गन्धक, चित्रक, मैनसिल, हरताल, वायविडंग, अतीस, विष (मीठा तेलिया), कड़वी तोरई, कूठ, वच, जटामांसी, सोंठ, पीपल, मरिच, दारुहल्दी, मुलेठी, सज्जीखार, सफेद जीरा तथा देवदारु प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण 1¼-1¼ तोला उक्त तैल में डालकर रख दें। इस तैल का नाम 'वज्री तैल' है। इसकी मालिश करने से सभी प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

**वक्तव्य**—उक्त तैल में डालने के पूर्व गन्धक आदि द्रव्यों का चूर्ण कपड़छन कर लेना चाहिये और इसे धूप में रख देना चाहिये। एक मास के पश्चात् दद्रु, पामा आदि पर लगाना चाहिये। उक्त तैल में 'प्रस्थ' का अर्थ 'सेर' और इसी के अनुसार 'कर्ष' का अर्थ 'सवा तोला' किया गया है। यह तैल-निर्माण का हमारा दृष्टिकोण है।

### करवीरादि तैल

**करवीरशिखादन्तीत्रिवृत्कोशातकीफलम् ।**
**रम्भाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम्।। 187।।**

कनेर के पत्ते, चीता की जड़, दन्ती, कड़वी तोरई के फल, इन द्रव्यों का कल्क (1 पाव) कदलीक्षार-मिश्रित जल 4 सेर और तेल 1 सेर-सबको मिलाकर विधिपूर्वक पाक करें। यह तैल उत्तम रोमशातन (बाल सफा करने वाला) है।

### चन्दनादि तैल

**(चन्दनाम्बुनखैर्याम्यं यष्टीशैलेयपद्मकम्।**
**मञ्जिष्ठा सरलं दारु सेव्यैलं पूतिकेसरम्।। 188।।**
**पत्रकैलं मुरा मांसी कङ्कोलं वनिताम्बुदम्।**
**हरिद्रा सारिवा तिक्ता लवङ्गागरुकुङ्कुमम्।। 189।।**
**त्वग्रेणुनलिका चेति तैलं मस्तु चतुर्गुणम्।**
**लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्धनम्।। 190।।**
**अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् ।**
**आयुःपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम्।। 191।।**
**विशेषात् क्षयरोगघ्नं रक्तपित्तहरं परम्।)**

श्वेतचन्दन, नेत्रबाला, नाखूना, कूठ, मुलेठी, छड़ीला, पद्मकाठ, मजीठ, सरल (चीड़) का बुरादा, देवदारु, खस, बड़ी इलायची, पूति (गन्धमार्जार का अण्डकोष जिसे जुन्दवेदस्तर कहा जाता है), नागकेसर, तेजपत्ता, छोटी इलायची, मरोड़फली, जटामांसी, शीतलचीनी, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, हल्दी, सारिवा, तिक्ता (कुटकी अथवा मुश्कदाना), लौंग, अगुरु, केशर, दालचीनी, रेणुं (मेवड़ी के बीज) तथा नालुका (दालचीनी का-सा गन्धद्रव्य), प्रत्येक द्रव्य 1-1 तोला लेकर कल्क बनायें। कल्क की अपेक्षा चौथाई तेल तथा तेल की अपेक्षा चौगुना दही का पानी और तेल के समान भाग लाक्षारस (लाही का क्वाथ) इन सबको एक साथ मिलाकर पाक करना चाहिये। यह तेल ग्रह (भूत-प्रेत बाधा) नाशक है, बलवर्द्धक है, मिरगी, ज्वर, उन्माद, कृत्या (मारण-मोहन आदि तान्त्रिक क्रिया) तथा अलक्ष्मी (अशोभा या बदसूरती) का विनाशक है, आयुर्वर्द्धक, पुष्टिकारक तथा उत्तम वशीकरण (सुगन्धित होने के कारण दूसरों को मोहित करने वाला) है। विशेषरूप से यह क्षयरोग को नष्ट करता है और रक्तपित्त को हरता है।

**वक्तव्य**—उक्त तेल अत्यन्त सुगन्धित होता है, परन्तु पकाने से सुगन्धि कुछ घट जाती है। अतः द्रवद्रव्यों में पहले तेल को पकाकर तत्पश्चात् सम्पूर्ण सुगन्धित द्रव्यों का चूर्ण डालकर अत्यन्त धीमी आँच से केवल इतना गर्म करना चाहिये जिससे सुगन्धि तेल में विलीन हो सके और पाक समाप्त होने के बाद भी उक्त द्रव्यों को तैल में ही पड़े रहने देना चाहिये, जिससे उनका सार तैल में घुलता रहे। दूसरे सुगन्धित तैल इसके सामने तुच्छ हैं, क्योंकि वे तैल प्रायः मिट्टी के तेल में बनाये जाते हैं और उन्हें सेण्ट डालकर सुगन्धित किया जाता है। इस तैल का प्रयोग नपुंसकता पर भी बहुत लाभदायक प्रमाणित हुआ है।

### वचा तैल

**(वचां शठीं हरिद्रे द्वे देवदारुमहौषधी।। 192।।**
**हरीतकीमतिविषामुस्तकेन्द्रयवान् समान्।**
**एतान् दशपलान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।। 193।।**
**चक्रमर्दरसैस्तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना।**
**पादशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत्।। 194।।**
**एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्।)**

वच, कचूर, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, सोंठ, हरड़,

अतीस, नागरमोथा तथा इन्द्रजौ इन सबको दस-दस पल (40-40 तोला) लेकर जौकुट करके चार द्रोण (51 सेर 16 तोला) जल में पकायें, चतुर्थांश शेष रहने पर कटुतैल (1 आढ़क या 3 सेर 16 तोला) तथा चक्रमर्द (पवाड़) का रस (1 आढ़क अर्थात् तैल के समान भाग) मिलाकर मन्द-मन्द अग्नि से विधिपूर्वक पाक करें और तेलमात्र शेष रह जाने पर छान लें। इस तेल में (तेल से चतुर्थांश) सिन्दूर डालकर थोड़ा पकायें। उसमें ज्योंही कालापन आ जाये त्योंही उतार लें। यह तेल भयानक गण्डमाला को शीघ्र ही नष्ट करता है।

### निर्गुण्डी लांगली तैल

**निर्गुण्डीस्वरसे तैलं लाङ्गलीमूलकल्कितम्।। 195।।**
**तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्।**

निर्गुण्डी (सम्भालू) का स्वरस (4 सेर), तेल (1 सेर) और कलिहारी का कल्क (9 पाव) इन सबको एक साथ मिलाकर विधिपूर्वक पाक करना चाहिये। यह तेल नस्य-विधि से प्रयोग करने से भयानक गण्डमाला को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

### चक्रमर्द तैल

**(चक्रमर्दक मूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत्।। 196।।**
**केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना।**
**पाकशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत्।। 197।।**
**एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्।)**

चकवड़ की जड़ का कल्क (1 पाव) बनाकर भाँगरा के रस (4 सेर) में कड़वा तेल (1 सेर) डालकर तीनों को एक साथ मन्द अग्नि में पाक करें। जब तेल मात्र अवशिष्ट रह जाये तो तेल को छान लें। इस तेल में चतुर्थांश सिन्दूर डालकर थोड़ा पकाकर उतार लें (यह काले रंग का मलहम तैयार हो जाता है)। यह तेल भयानक गण्डमाला को शीघ्र ही शान्त कर देता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार के छोटे-बड़े फोड़ों या घावों पर यह आश्चर्यजनक कार्य करता है। इसमें एक विशेषता यह है कि यह सूखा-सा रहता है और थोड़ा गर्म करने से ढीला हो जाता है, जिससे लगाने में सरलता होती है।

**वक्तव्य**—यह चक्रमर्द तेल अत्यन्त उपयोगी है। अतः हमने यहाँ इसे उद्धृत किया है।

### धत्तूर तैल

**(धत्तूररसमादाय हयमारान्तिकारसम्।। 198।।**
**भृङ्गराजरसश्चैव सारिणी निम्बपत्रकम्।**
**शोभाञ्जनश्चित्रकश्च अश्वगन्धा प्रसारिणी।। 199।।**
**शिरीषः कुटजोऽनन्ता शाल्मली नक्तपत्रकम्।**
**रविप्रियो महानिम्बो डिण्डिघोषा महेरणा।। 200।।**
**बला ज्योतिष्मती चैव श्यामाकश्चक्रमर्दकः।**
**एतैस्तु रसमादाय तैलतुल्यं च दीयते।। 201।।**
**देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम्।**
**मरिचं त्रिवृता दन्ती हरितालं मनःशिला।। 202।।**
**कम्पिल्लको गन्धकश्च खदिरः पिप्पली वचा।**
**रसाञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासो रक्तचन्दनम्।। 203।।**
**इरिमेदस्तथा तुम्बी मञ्जिष्ठा सिन्दुवारकः।**
**करवीरजटा रास्ना विश्वा श्रेष्ठा च पौष्करम्।। 204।।**
**शठी तालीसपत्रं न प्रियङ्गु रेणुका तथा।**
**चातुर्जातकमञ्जीरं कङ्कोलं जातिपत्रिका।। 205।।**
**ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्।**
**आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम्।। 206।।**
**मृत्पात्रे लोहपात्रे च शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।**
**मज्जाश्रितं त्वग्गतं च वातं चास्थिगतं तथा।। 207।।**
**ऊरुग्रहं चाढ्यवातं कृच्छ्रं दण्डापतानकम्।**
**कुब्जत्वं चाथ शोथं च पक्षाघातं तथार्दितम्।। 208।।**
**हनुस्तम्भं शिरःकम्पं मूर्च्छितं दृष्टिविभ्रमम्।**
**अपस्मारं तथोन्मादं तथा चैवाऽपतन्त्रकम्।। 209।।**
**आक्षेपकं चास्थिभग्नं सन्धिभग्नं च नाशयेत्।)**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे घृततैलकल्पना नाम नवमोऽध्यायः।। 9।।**

धतूरा के पत्तों का रस, कनेर के पत्तों का रस, भाँगरा का रस, रक्तवर्ण की पुनर्नवा, नीम के पत्ते, सहजन की छाल, चीता, असगन्ध, गन्धप्रसारिणी, सिरस, कुरैया, जवासा, सेमल, करञ्ज के पत्ते, लाल कमल, बकायन, ऐरण्ड की जड़, सलई वृक्ष की छाल, बरियारा, मालकंगुनी, काली निसोत तथा चक्रमर्द-इन द्रव्यों का रस तथा क्वाथ लेकर समान भाग तेल में मिला दें, फिर इसमें देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूठ, सफेद चन्दन, मरिच, निसोत, दन्ती, हरिताल, मैनसिल, कबीला, गन्धक, खैसार, पीपल, वच, रसवत, सिन्दूर,

गन्धाविरोजा, लालचन्दन, दुर्गन्धित खैर, कड़वी तुम्बी, मजीठ, सम्भालू के पत्ते, कनेर की जड़, रास्ना, सोंठ, हरड़, पोहकरमूल, कचूर, तालीसपत्र, फूलप्रियंगु, रेणुका, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेसर, अंजीर, शीतलचीनी, जावित्री तथा मालकंगुनी प्रत्येक एक-एक पल और विष (मीठा तेलिया) दो पल (8 तोला) लेकर कल्क बनायें। कटुतेल एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) और तेल की अपेक्षा चतुर्गुण गोमूत्र, इन सबको मिट्टी अथवा लोहे के पात्र में एक साथ मिलाकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि से पकाना चाहिये। यह तेल मज्जागत वायु, त्वचागत वायु, अस्थिगत वायु, ऊरुग्रह, आढ्यवात (आमवात), कष्टप्रद दण्डापतानक, कुबड़ापन, शोथ, पक्षाघात, अर्दित (मुख-प्रदेश का लकवा), हनुस्तम्भ (मुँह खुला अथवा बन्द रह जाना), शिरःकम्प, मूर्च्छा, दृष्टि की विकृति, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), आक्षेपक, अस्थिभग्न तथा सन्धिभग्न को नष्ट करता है।

**कटुतैल की मूर्च्छन-विधि**—बड़ी हरड़, हल्दी, नागरमोथा, कच्चे बेल की गुद्दी, दाड़िम, नागकेसर, कालाजीरा, नेत्रबाला, नालुका तथा बहेड़ा (1-1 तोला), मजीठ आठ कर्ष, जल एक आढक, कटुतेल एक प्रस्थ, सबको मिलाकर पकायें। इससे तेल का 'आमदोष' दूर हो जाता है। सभी तेलों को यथासम्भव उक्त विधि से शुद्ध कर लें, उसके बाद तेल पाक करना चाहिये।

**तेल की गन्धवृद्धि**—कूठ आदि गन्ध द्रव्य, हींग आदि निर्यास द्रव्य और चमेली आदि के फूल यदि तेल में गन्धवृद्धि के लिए डालने हों, तो तेल का पाक हो जाने के बाद ही इन्हें डालना चाहिये। यह प्रक्षेप **'पत्रकल्क'** कहा जाता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का नवाँ अध्याय समाप्त।। ९।।

## दशमोऽध्यायः

# आसवारिष्टकल्पना

### सन्धान-कल्पना

**द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत्।**
**आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम्।। 1।।**

जल आदि द्रवपदार्थ में गुड़, धाय के फूल आदि द्रव्यों के चिरकाल (जितने समय में सन्धान हो) तक पड़े रहने से सन्धान (विशेष प्रकार के रस एवं गन्ध आदि की उत्पत्ति) होने के कारण जो सन्धित द्रव प्रस्तुत होता है, उसके आसव, अरिष्ट, सीधु एवं सुरा आदि नाम हैं और ये द्रव औषधियों (जिनके योग से ये आसव-अरिष्ट आदि बनाये जाते हैं) के अनुसार कार्य करते हैं।

**वक्तव्य**–उक्त सभी द्रव मादक होने के कारण 'मद्य' कहे जाते हैं, क्योंकि सभी में मादक तत्त्व अवश्य होता है। आजकल उपलब्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इनके 'अर्क' निकालने की विधि का उल्लेख नहीं पाया जाता। केवल 'भैषज्यरत्नावली' नामक संग्रह-ग्रन्थ में 'मृतसञ्जीवनी सुरा' के निर्माण की विधि में '**मृन्मये मोचिकायन्त्रे मयूराख्येऽपि यन्त्रके**'। (ज्वराधिकार), कहकर अर्क निकालने का विधान किया गया है। मोचिकायन्त्र तथा मयूरयन्त्र वे ही यन्त्र हैं, जिनकी सहायता से अर्क निकाले जाते हैं। उपयोगी तथा आवश्यक द्रव्यों का सन्धान करके उक्त यन्त्रों द्वारा जो 'अर्क' या 'सारद्रव' निकाला जाता है, उसी को 'शराब' या 'मद्य' कहा जाता है। सन्धान कितने समय में हो जाता है, इसका निश्चित निर्देश नहीं किया जा सकता। अत: आचार्य शार्ङ्गधर ने केवल 'चिरकालस्थ' कहना ही उचित समझा, क्योंकि देश तथा काल के भेद से सन्धान का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। यथा–शीतदेश में यदि एक मास में सन्धान होता है, तो उष्ण देश में वही 15 दिनों में हो जाता है।

एलोपैथी तथा होमियोपैथी पद्धति के अनुसार 'मद्यसार' (स्प्रिट) में औषधियाँ डालकर और कुछ समय तक पड़ी रहने देकर औषध (टिंचर) तैयार किये जाते हैं और आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार औषधि तथा द्रव के संयोग से सन्धान करके अर्थात् मद्यसार उत्पन्न करके औषधियाँ (आसव, अरिष्ट आदि) तैयार कर ली जाती हैं। आसव, अरिष्ट तथा मद्य के योग से निर्मित औषध मद्यांश के कारण शीघ्र ही अपना प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। यथा–'**आशुत्वाच्चाशुकर्मकृत्**' देखें–सु० उ० अ० 47, श्लोक 5।

### आसव तथा अरिष्ट का भेद

**यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः।**
**अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात् तयोर्मानं पलोन्मितम्।। 2।।**

अपक्व (कच्चे) औषध एवं जल के योग से सन्धान करके जो मद्य तैयार किया जाता है, वह 'आसव' कहलाता है और औषध एवं जल का क्वाथ करके जो मद्य तैयार किया जाता है, वह 'अरिष्ट' कहलाता है। इन दोनों की साधारण मात्रा एक पल (4 तोला) है।

**वक्तव्य**–आसव एवं अरिष्ट के नामकरण सम्बन्धी उक्त परिभाषा की आज्ञा का पालन चरक तथा सुश्रुत में नहीं किया गया है। सम्भव है कि उक्त संहिताओं के निर्माताओं ने उस पर ध्यान न दिया हो, अस्तु! उक्त संहिताओं में इस परिभाषा के विरुद्ध बहुत से उदाहरण मिलते हैं। चरक तथा सुश्रुत में आसव एवं अरिष्टों के पान का समय तथा विधि वही है, जो मद्यपान की कही गयी है। देखें–च० चि० अ० 24।

### अरिष्टों में जल, गुड़ तथा मधु का मान

**अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलां गुडम्।**
**क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशकम्।। 3।।**

जिन अरिष्टों (आसव, सुरा आदि) में द्रव्यों के मान (तौल) का उल्लेख न हो, उनमें इस प्रकार द्रव्यों का योग

करना चाहिये। यथा–एक द्रोण (12 सेर, 3 पाव, 4 तोला) द्रव में एक तुला (5 सेर) गुड़, मधु आधा (2½ सेर) और प्रक्षेप द्रव्य द्रव की अपेक्षा दशमांश (1¼ सेर 2½ तोला)।

**वक्तव्य**–अरिष्ट क्वाथ रस द्वारा बनाये जाते हैं, इसलिये क्वाथ द्रव्यों के अतिरिक्त उसमें जो द्रव्य डाले जाते हैं, उनका मान दशमांश होना चाहिये, क्योंकि उन्हीं को 'प्रक्षेप' कहा जाता है। अरिष्ट को (**अरिष्टो द्रव्यसंयोगसंस्कारादधिको गुणैः**। सु०सू०अ० 45.194) उत्तम मानने का कारण भी यही है कि उसमें क्वाथ्य द्रव्य का सार बहुत अधिक रहता है। आसव तथा सुरा आदि में भी प्रधान द्रव्यों के अतिरिक्त प्रक्षेप द्रव्यों का मान द्रव का दसवाँ भाग ही होना चाहिये। प्रधान द्रव्य तो द्रव की अपेक्षा चतुर्थांश डालना चाहिये।

### सीधु का लक्षण

**ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः।**
**सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः॥4॥**

अपक्व (अग्नि से न पकाये हुये), मधुर (मीठे) द्रवों (ईख का रस आदि) के सन्धान से बना हुआ द्रव 'शीतरस सीधु' (कच्चा सिरका) कहलाता है और पकाये हुये मधुर द्रव्यों का सन्धित द्रव 'सीधु' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–ईख के रस तथा अंगूर आदि के रस को बर्तन में डालकर रख दिया जाता है। प्रत्येक दो-तीन सप्ताह के पश्चात् छानकर दूसरे बर्तन में रख लिया जाता है। इसी प्रकार बार-बार जाला पड़ने पर छान लेना चाहिये, जब जाला पड़ना बन्द हो जाये और द्रव इतना निर्मल हो जाये कि उसमें दर्शक का प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ने लगे, तो समझना चाहिये कि सिरका तैयार हो गया है। अब इसे धीरे से छानकर बोतलों में भरकर रख दें।

### सुरा आदि का लक्षण

**परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्नां सुरां जगुः।**
**सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात् ततः कादम्बरी घना॥5॥**
**तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद् घनः।**
**पक्वोऽसौ हृतसारः स्यात् सुराबीजं च किण्वकम्॥6॥**

परिपक्व (पके हुये) अन्न (चावल तथा जौ आदि) के सन्धान से (खमीर उठने से) बनी हुई मद्य को 'सुरा' कहा जाता है। सुरा के निम्नलिखित भेद हैं, यथा–1. सुरा का मण्ड (शत प्रतिशत मद्यांश) प्रसन्ना (स्प्रिट्) कहलाता है, 2. कादम्बरी प्रसन्ना की अपेक्षा घनी या गाढ़ी या जलीयांश युक्त होती है, इसमें मद्यांश कुछ कम होता है। 3. कादम्बरी की अपेक्षा निम्न श्रेणी के मद्य को 'जगल' कहा जाता है, 4. जगल से भी घन या गाढ़ी मद्य को 'मेदक' कहा जाता है। 5. जिसमें मद्य की थोड़ी गन्धमात्र रहती है और सुरा के बीज (जिनसे सुरा बनायी जाती है) को 'किण्वक' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–सुरा सामग्री का सन्धान हो जाने पर जब यन्त्र द्वारा मद्य निकाली जाती है, तो उसमें से पहले जो अर्क (सार द्रव) प्राप्त होता है, वह बहुत स्वच्छ होता है। अतएव उसे प्रसन्ना कहते हैं। इसमें जलीयांश बिल्कुल नहीं होता अथवा बहुत कम होता है, अतः इसमें जल मिलाकर पीया जाता है। कादम्बरी आदि में कुछ-कुछ जल का अंश रहता है, अतएव वे निम्न श्रेणी की सुरायें कही जाती हैं। प्राचीनकाल में भले ही सुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं मनुष्य इस उपद्रवकारिणी सुरा का आदर के साथ सेवन करते रहे हों (देखें–च० चि० अ० 24), किन्तु हम तो यही कहेंगे कि '**मद्यविक्रयसन्धान-दानादानानिनाचरेत्**' (वा०सू०अ० 2.40)। अर्थात् मद्य का बनाना, बेचना, देना और लेना नहीं करना चाहिये।

### वारुणी का लक्षण

**यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारुणी।**

जो मद्य ताल (ताड़) तथा खजूर के रस का सन्धान करके तैयार किया जाता है, उसे 'वारुणी' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–ताड़ तथा खजूर पर जहाँ हरे पत्र लगे रहते हैं, वहाँ एक पात्र लटका दिया जाता है वह रात भर में उक्त वृक्षों के रस से भर जाता है। इस रस को वारुणी कहा जाता है। वृक्ष से उतारते समय यह रस मीठा होता है और चार-पाँच प्रहर के पश्चात् खट्टा हो जाता है।

### शुक्त बनाने की विधि

**कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च॥7॥**
**यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते।**

कन्द (सूरण या जिमीकन्द), आदि मूल (मूली, गाजर, आलू आदि) तथा फल (लौकी, सेम, किवाँच) आदि पदार्थों को तथा स्नेह युक्त (राई तथा तेल के बड़े, पकौड़े आदि) तथा नमक को द्रव (जल तथा इक्षुरस आदि) में डालकर जो सन्धान किया जाता है, उसे 'शुक्त' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–यह शुक्त दो-तीन दिन में तैयार हो जाता है और इसे 'काञ्जी' कहा जाता है। जैसे–गाजर तथा आलू आदि की काञ्जी।

### विनष्ट तथा चुक्र लक्षण

**विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवम्।। 8।।**
**विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते।**

मद्य अथवा इक्षुरस आदि मधुर द्रव जब खट्टे हो जाते हैं तो उन्हें 'विनष्ट' (मर गया या बिगड़ गया) कहा जाता है, किन्तु यदि विनष्ट होने पर भी उसमें सन्धान (खमीर) हो जाये तो उसे 'चुक्र' कहा जाता है।

### मधुशुक्त बनाने की विधि

**जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम्।। 9।।**
**माक्षिकं तत्र दातव्यं पलैका पिप्पली स्मृता।**
**एतदेकीकृतं सर्वं मृद्भाण्डे च निधापयेत्।। 10।।**
**यवाम्भो मधुसंयुक्तं शृङ्गबेरगुडान्वितम्।**
**धान्यराशौ त्रिरात्रिस्थं मधुशुक्तमुदाहृतम्।। 11।।**

जम्बीरी नींबुओं का रस एक प्रस्थ (64 तोला), मधु एक कुडव (16 तोला) और पिप्पली एक पल (4 तोला) इन सब को मिट्टी के पात्र में भरकर तीन अथवा सात दिन तक रख दें। इस प्रकार 'मधुशुक्त' तैयार हो जाता है। जौ का क्वाथ (एक प्रस्थ-64 तोला), मधु (एक कुडव=16 तोला), शृंगबेर तथा गुड़ दोनों एक-एक पल (4-4 तोला) मिट्टी के पात्र में डालकर उसका मुख बन्द करके तीन दिन तक धान्यराशि (गेहूँ आदि के ढेर अथवा भूसी में) दबाकर रख दें। इसे भी 'मधुशुक्त' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–उक्त दोनों विधियों से 'मधुशुक्त' बनाया जाता है।

### गुड़शुक्त का लक्षण

**गुडाम्बुना सतैलेन कन्दमूलफलैस्तथा।**
**सन्धितं चाम्लतां यातं गुडशुक्तं तदुच्यते।। 12।।**

गुड़ (1 पाव), जल (2 सेर), तेल युक्त पदार्थ राई एवं बड़े आदि, कन्द (आलु, जिमीकन्द आदि) मूल (मूली, गाजर आदि) एवं फलों (लौकी आदि) के संयोग से जो सन्धान करके अम्लद्रव (खट्टा जल) तैयार किया जाता है, उसे 'गुड़शुक्त' कहा जाता है।

**वक्तव्य**–यह भी एक प्रकार की काञ्जी ही है। इसमें यद्यपि नमक डालने की चर्चा नहीं की गयी, फिर भी नमक अवश्य डालना चाहिये।

### शुक्त का लक्षण

**एवमेवेक्षुशुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा।**

इसी प्रकार ईख के रस, मुनक्का या अंगूर के रस का भी 'शुक्त' बनाया जाता है।

### तुषाम्बु तथा सौवीर का लक्षण

**तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः।। 13।।**
**यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं सन्धितं भवेत्।**

कच्चे एवं दले हुये जौ का सन्धान करने से जो द्रव तैयार किया जाता है उसे 'तुषाम्बु' कहा जाता है। तुष रहित (छड़े हुये) परिपक्व जो का सन्धान करने से जो द्रव तैयार किया जाता है, वह 'सौवीर' होता है।

**वक्तव्य**–'तुषाम्बु' तथा 'सौवीर' ये दोनों नाम जौ की मद्य के हैं। इसका प्रचार पर्वतीय प्रदेशों (नैनीताल, शिमला आदि) में बहुत अधिक देखने में आता है, किन्तु कुछ लोग इन्हें 'काञ्जी' का भेद मानते हैं। सुश्रुत ने कहा है–'**षड्रात्रात् सप्तरात्राद् वा ते च पेये प्रकीर्तिते**'। (सु० सू० अ० 44 श्लोक 45)। अर्थात् ये दोनों मद्य छः-सात दिन में पीने योग्य हो जाते हैं।

### काञ्जिक का लक्षण

**कुल्माषधान्यमण्डादि सन्धितं काञ्जिकं विदुः।। 14।।**
**सण्डाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः।**

कुल्माष (उबाले हुये गेहूँ तथा चना आदि) तथा धान्यों (चावल तथा जौ आदि) के माँड (राई, नमक, हल्दी आदि के सन्धान) से बना हुआ द्रव 'काञ्जिक' या 'काञ्जी' कहा जाता है। मूली तथा सरसों या राई आदि से बनायी हुई काञ्जी को 'सण्डाकी' जानना चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त द्रवों का सन्धान दो-चार दिन में ही हो जाता है। आसव से सण्डाकी तक के सम्बन्ध में अधिक परिचय प्राप्त करने के लिए देखें–च० सू० अ० 26, च० चि० अ० 24 एवं सु० सू० अ० 45।

**सुरा या मद्य**–योनि (जिन द्रव्यों से सुरा बनायी जाती है), संस्कार (जिन विधियों से तैयार की जाती है) और नाम (जिन संज्ञा) आदि भेदों के कारण सुरा बहुत प्रकार की होने पर भी एक ही प्रकार की कही जाती है, क्योंकि मद सबमें समान होता है।

होमियोपैथिक में औषध-निर्माण विधि-तत्-तत् रोगनाशक औषध द्रव्यों को उत्तम सुरा (स्प्रिट्) में डालकर रख दिया जाता है और कुछ समय के बाद छानकर उस सुरा का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का उल्लेख च० चि०

अ० 15 श्लोक 99 में मिलता है। जैसे '**देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाऽभयाः। वारुण्यामासुताः**'। अर्थात् देवदारु, बालवच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस एवं हरड़ का वारुणी (सुरा) में आसव बनायें। क्या उक्त चिकित्सापद्धति का मूल आधार यही तो नहीं है?

### उशीरासव निर्माण-विधि

**उशीरं बालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम्।**
**प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां धन्वयासकम्।। 15।।**
**पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुम्बरं शठीम्।**
**पर्पटं पुण्डरीकं च पटोलं काञ्चनारकम्।। 16।।**
**जम्बूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्मितान्।**
**भागान् सुचूर्णितान् कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम्।। 17।।**
**धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत्।**
**शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा।। 18।।**
**मासैकं स्थापयेद् भाण्डे मांसीमरिचधूपिते।**
**उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः।। 19।।**
**पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ।**

खस, नेत्रबाला, लाल कमल, गम्भार की छाल, नीलकमल (नीलोफर), फूल प्रियंगु, पद्मकाष्ठ, लोध, मजीठ, धमासा, पाठा, चिरायता, बरगद की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेदकमल, परबल की पत्ती, कचनार की छाल, जामुन की छाल तथा सेमल की गोंद (मोचरस) प्रत्येक द्रव्य का 4-4 तोला चूर्ण, द्राक्षा (मुनक्का) बीस पल (80 तोला या 1 सेर), धाय के फूल सोलह (64 तोला), जल दो द्रोण (25 सेर 2 पाव 8 तोला), शर्करा (खाँड़) एक तुला (5 सेर) तथा मधु आधी तुला (2½ सेर)-इन सब द्रव्यों को जटामांसी तथा मरिच से धूप दिये हुये पात्र में डालकर एक मास-पर्यन्त रख छोड़ना चाहिये (इसके पश्चात् निर्मल द्रव को छानकर बोतलों में भर दें)। इस औषध का नाम 'उशीरासव' है। यह रक्तपित्त का विनाश करता है और पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि तथा शोथ को हरता है।

### कुमार्यासव

**(सुपक्वरससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत्।। 20।।**
**यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृन्मये।**
**द्रोणे गुडतुलां दत्त्वा घृतभाण्डे निधापयेत्।। 21।।**
**माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नर्धतुलां क्षिपेत्।**
**कटुत्रिकं लवङ्गं च चतुर्जातकमेव च।। 22।।**
**चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं गजपिप्पली।**
**चविकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहिणी।। 23।।**
**मुस्ता फलत्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम्।**
**मूर्वा मधुरसा दन्ती मूलं पुष्करसम्भवम्।। 24।।**
**बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम्।**
**शतपुष्पा हिङ्गुपत्री आकल्लकमुटिङ्गणम्।। 25।।**
**पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुर्माक्षिकमेव च।**
**एषां चार्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम्।। 26।।**
**पलं चार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम्।**
**वपुर्वयःप्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम्।। 27।।**
**बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम्।**
**अष्टावुदरजान् रोगान् क्षयमुग्रं च नाशयेत्।। 28।।**
**विंशतिं मेहजान् रोगानुदावर्तमपस्मृतिम्।**
**मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम्।। 29।।**
**कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत् तु न संशयः।)**

घीकुआर के परिपक्व रसयुक्त तथा साफ सुथरे पत्तों का संग्रह करें, प्रयत्न के साथ उनका रस निकालकर पत्थर अथवा घृतलिप्त मृत्तिका पात्र में डाल दें। उक्त रस एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला), गुड़ एक तुला (5 सेर), मधु आधा तुला (2½ सेर), लोहभस्म आधी तुला (2½ सेर), सोंठ, मरिच, पीपल, लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेसर, चीता का जड़, पीपलामूल, वायविंड, गजपीपल, चाव, हाऊबेर, धनियाँ, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रासना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मरोड़फली, मुलेठी, दन्ती, पोहकरमूल, बरियारा, अतिबला, कंघी, किवाँच के बीज, गोखरू, सौफ, हिङ्गुपत्री, अकरकरा, उटंगण, पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, लोध, सोनामाखी की भस्म (भस्म-निर्माण-विधि शा० सं० म० खं० अ० 11 में देखें) प्रत्येक द्रव्य आधा-आधा पल (2-2 तोला) तथा धाय के फूल आठ पल (32 तोला) इन सब द्रव्यों को उक्त घीकुआर के रस में घोलकर और पात्र का मुख बन्द करके एक मास-पर्यन्त पड़ा रहने दें। जब तैयार हो जाये तो स्वच्छ द्रव छानकर बोतलों में भर दें। इसका नाम 'कुमार्यासव' है। इसकी मात्रा एक पल (4 तोला), आधा पल (2 तोला) अथवा दो पल (8 तोला) तक रोगी के शरीर और आयु को देखकर निश्चित की जाती है। यह आसव बल, वर्ण तथा अग्नि को बढ़ाता है, धातुवर्द्धक है, रुचिकर है, शुक्रवर्द्धक है, परिणामशूल का विनाशक है, आठ प्रकार के उदररोगों, भयानक क्षयरोग, बीस प्रकार के

प्रमेहों, उदावर्त, अपस्मृति (स्मरण-शक्ति की न्यूनता) मूत्रकृच्छ्र, मिरगी, शुक्रधातु के विकारों, पथरी, कृमिरोग तथा रक्तपित्त को विनष्ट करता है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

**वक्तव्य**–उक्त आसव में लोह-मिश्रण के विषय में दो मत हैं–(1) कुछ लोगों का कथन है कि इसमें अत्यन्त सूक्ष्म लोह-चूर्ण डालना चाहिये। एक मास में जितना आवश्यक होता है उसमें घुल जाता है और (2) दूसरे लोगों का कथन है कि इसमें लोहभस्म डालनी चाहिये। दोनों ही मत युक्तियुक्त हैं और प्रचलित भी हैं। सच बात यह है कि तेरह सेर द्रव में ढाई सेर लोह डाला जाता है और वह उतना ही या उससे कुछ कम पात्र का पैंदी में पड़ा हुआ मिल जाता है। भले ही भस्म डाली गयी हो अथवा लोहचूर्ण–इससे प्रमाणित होता है कि इतने द्रव में इतना लोह घुल नहीं सकता। कषायरस में लोह को अपने में विलीन करने की शक्ति होती है। अतः उक्त आसव में जितना कषायरस (त्रिफला आदि) होता है, उसके अनुसार उतना-सा लोह विलीन हो जाता है। उक्त आसव अपतन्त्रक या हिस्टीरिया रोग का परमोत्तम औषध है।

### पिप्पल्यासव

**पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः।। 30।।**
**विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम्।**
**उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा।। 31।।**
**मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियङ्गुर्नागकेशरम्।**
**एषामर्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्शुभान्।। 32।।**
**जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम्।**
**पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत्।। 33।।**
**एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत्।**
**ज्ञात्वाऽऽगतरसं तस्य पाययेदग्न्यपेक्षया।। 34।।**
**क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा।**
**अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम्।। 35।।**

पीपल, मरिच, चव्य, हल्दी, चीता की जड़, मोथा, वायविडंग, सुपारी, लोध, पाठा, आँवला, एलबालुक, खस, श्वेतचन्दन, कूठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, फूलप्रियंगु तथा नागकेशर प्रत्येक उत्तम द्रव्य आधा-आधा पल (2-2 तोला) लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को दो द्रोण (2½ सेर 8 तोला) जल में डाल दें और उसमें गुड़ तीन तुला (15 सेर), धाय के फूल दस पल (40 तोला) और द्राक्षा (दाख) साठ पल (3 सेर) इन सभी द्रव्यों को मिट्टी के एक पात्र में भर दें। जब आसव तैयार हो जाये तो उसे छानकर रख लें। इस आसव को रोगी की जठराग्नि का विचार करके पिलाना चाहिये। यह आसव क्षयरोग, गुल्म, उदर, कृशता, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, तथा बवासीर को शीघ्र ही नष्ट करता है। इसका नाम 'पिप्पल्यासव' है।

### लोहासव

**लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम्।**
**विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुःसङ्ख्यापलं पृथक्।। 36।।**
**धातकीकुसुमानां तु प्रक्षिपेत् पलविंशतिम्।**
**चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत्।। 37।।**
**दद्याद् गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा।**
**घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम्।। 38।।**
**लोहासवममुं मर्त्यः पिबेद् वह्निकरं परम्।**
**पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम्।। 39।।**
**कुष्ठं प्लीहामयं कण्डूं कासं श्वासं भगन्दरम्।**
**अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत्।। 40।।**

लोहचूर्ण, सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, बायविडंग, मोथा तथा चीता की जड़ प्रत्येक द्रव्य चार-चार पल (16-16 तोला) और धाय के फूल बीस पल (1 सेर) लेकर सबका चूर्ण बना लें। मधु साठ पल (3 सेर) गुड़ एक तुला (5 सेर) और जल दो द्रोण (25½ सेर 8 तोला), उक्त सब द्रव्यों को घृतलिप्त पात्र में डालकर एक मास-पर्यन्त सुरक्षित रखें। तैयार हो जाने पर छानकर बोतलों में भर दें। इस आसव का नाम 'लोहासव' है। इसका पान करने से जठराग्नि दीप्त होती है। यह आसव पाण्डुरोग, शोथ, गुल्म, उदररोग, अर्श की पीड़ा, कुष्ठ, प्लीहारोग, कण्डू (खुजली), कास, श्वास, भगन्दर, अरुचि, ग्रहणीरोग तथा हृद्रोग को विनष्ट करता है।

**वक्तव्य**–इस आसव में भी लौह चूर्ण अथवा भस्म डाली जाती है।

### मृद्वीकारिष्ट

**(मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।**
**द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन् प्रदापयेत्।। 41।।**
**तुले द्वे क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च।**
**कङ्कोलकं लवङ्गं च फलं जात्यास्तथैव च।। 42।।**
**पलांशकं च मरिचत्वगेलापत्रकेसरम्।**
**पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुके।। 43।।**

**घृतभाण्डे विनिक्षिप्य चन्दनागरुधूपिते।**
**कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहण्या दीपनः परः।।44।।**
**अर्शसां नाशने श्रेष्ठ उदावर्तस्य गुल्मनुत्।**
**जठरक्रिमिकुष्ठानि व्रणास्तु विविधास्तथा।।45।।**
**अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत्।)**

मुनक्का सौ पल (5 सेर) लेकर चार द्रोण जल में पकाना चाहिये, जब एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल अवशिष्ट रह जाये तो क्वाथ को छान लें और जब यह क्वाथ शीतल हो जाये तो इसमें मधु एक तुला (5 सेर), खाँड़ एक तुला (5 सेर) धाय के फूल 3 पाव 4 तोला और शीतलचीनी, लौंग, जायफल, मरिच, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, पीपल, चीता, चव्य, पीपलामूल तथा रेणुका प्रत्येक द्रव्य का एक-एक पल चूर्ण डालें। इन सब वस्तुओं को एक साथ घोलकर सफेद चन्दन तथा अगरु द्वारा सुधूपित पात्र में डालकर एक मास पर्यन्त मुख बन्द करके रख दें। तैयार हो जाने पर छानकर दूसरे पात्र में भर दें और उसमें दो तीन तोला शुद्ध देशी कर्पूर डाल दें। जब कपूर (एक सप्ताह के पश्चात्) घुल जाये और द्रव निर्मल हो जाये तो स्वच्छ वस्त्र से छानकर बोतलों में भर दें। यह अरिष्ट ग्रहणी (पाचकसंस्थान) की क्रिया का परम दीपक है। अर्श, उदावर्त, गुल्म, उदररोग, क्रिमिरोग, कुष्ठरोग, अनेक प्रकार के व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा गलरोगों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—स्मरण रहे कि कपूर जल में नहीं घुलता, किन्तु मद्य में घुल जाता है। इसलिये उक्त अरिष्ट में मद्यांश उत्पन्न होने पर अन्त में कपूर डाला जाता है जिससे मद्य में वह घुल सके।

### कुटजारिष्ट

**तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्धतुलां तथा।।46।।**
**मधूकपुष्पकाश्मर्यभागान् दशपलोन्मितान्।**
**चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा क्वाथे द्रोणावशेषिते।।47।।**
**धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत्।**
**मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसञ्ज्ञितः।।48।।**
**ज्वरान् प्रशमयेत् सर्वान् कुर्यात् तीक्ष्णं धनञ्जयम्।**

कुरैया के जड़ की छाल 1 तुला (5 सेर), मुनक्का आधी तुला (2½ सेर), महुए के फूल तथा गम्भार के फल दस-दस पल (40-40 तोला)-इन सब द्रव्यों को जौकुट करके चार द्रोण जल में डालकर क्वाथ करे, जब एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल शेष रह जाये तो क्वाथ को छानकर रख लें। फिर इस क्वाथ में धाय के फूल बीस पल (1 सेर) और गुड़ एक तुला (5 सेर) मिट्टी के घड़े में भरकर और उसका मुख बन्द करके एक मास-पर्यन्त रख दें। तैयार हो जाने पर छानकर रख लें। इसका नाम 'कुटजारिष्ट' है। यह सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है और अग्नि को दीप्त करता है।

### विडङ्गारिष्ट

**विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक्फलानि च।।49।।**
**पाठैलबालुकं धात्री भागान् पञ्चपलान् पृथक्।**
**अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद् द्रोणावशेषितम्।।50।।**
**पूते शीते क्षिपेत् तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम्।**
**धातकीं विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा।।51।।**
**प्रियङ्गुकाञ्चनाराणां सलोध्राणां पलं पलम्।**
**व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत्।।52।।**
**घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं निधापयेत्।**
**ततः पिबेद् यथार्हं तु जयेद् विद्रधिमुत्थितम्।।53।।**
**ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान् प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान्।**
**गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसञ्ज्ञकम्।।54।।**

वायविडंग, पीपलामूल, रास्ना, कुरैया का छाल एवं फल (इन्द्रजौ), पाठा, एलबालुक एवं आँवला, प्रत्येक द्रव्य 1-1 पाव लेकर और उनको जौकुट करके आठ द्रोण जल में डालकर क्वाथ करें। जब एक द्रोण जल शेष रह जाये तो छान लें और शीतल हो जाने पर उसमें तीन सौ पल (15 सेर) मधु डालकर घोल दें। फिर उसमें धाय के फूल बीस पल (1 सेर), दालचीनी, बड़ी इलायची एवं तेजपत्ता दो-दो पल (8-8 तोला), 3 फूलप्रियंगु, कचनार की छाल एवं पठानी लोध (4-4 तोला), त्रिकटु (तीनों द्रव्य मिलाकर) आठ पल (32 तोला) लेकर उनका चूर्ण बनाकर उपर्युक्त क्वाथ तथा मधु के घोल में मिलाकर घृतलिप्त मिट्टी के पात्र में डालकर उसके मुख को बन्दकर एक मास तक रख दें। तैयार होने पर छानकर रख लें। इसका उचित मात्रा में विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये। यह भयानक विद्रधि, ऊरुस्तम्भ, अश्मरी (पथरी) प्रमेहों, प्रत्यष्ठीला (वातव्याधि), भगन्दरों, गण्डमाला एवं हनुस्तम्भ को जीतता है। इसका नाम 'विडङ्गारिष्ट' है।

### देवदार्वादि अरिष्ट

**तुलार्धं देवदारोः स्याद् वासा च पलविंशतिः।**
**मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं रजनीद्वयम्।।55।।**

**रास्ना कृमिघ्नं मुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ।**
**भागान् दशपलान् दद्याद् यवान्या वत्सकस्य च।। 56।।**
**चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च।**
**भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्।। 57।।**
**द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत्।**
**धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम्।। 58।।**
**व्योषस्य द्विपलं दद्यात् त्रिजातस्य चतुष्पलम्।**
**चतुष्पलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम्।। 59।।**
**सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत्।**
**मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम्।। 60।।**
**वातरोगान् ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत्।**
**देवदार्वादिकोऽरिष्टः कण्डूकुष्ठविनाशनः।। 61।।**

देवदारु का बुरादा आधी तुला (2½ सेर), अडूसा की पत्ती बीस पल (1 सेर), मजीठ, इन्द्रजौ, दन्ती, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, वायविडंग, मोथा, सिरस की छाल, खैरसार तथा अर्जुनवृक्ष की छाल-प्रत्येक दस-दस पल (40-40 तोला), अजवायन, कुरैया की छाल, श्वेतचन्दन का बुरादा, गिलोय, कुटकी तथा चीता की जड़-प्रत्येक द्रव्य आठ-आठ पल (32-32 तोला) लेकर उनको जौकुट करके आठ द्रोण जल में डालकर क्वाथ करे। जब एक द्रोण जल अवशिष्ट रह जाये तो छान लें। शीतल होने पर उसमें धाय के फूल सोलह पल (64 तोला) मधु तीन तुला (15 सेर), सोंठ, मरिच तथा पीपल दो पल (सब मिलाकर 8 तोला), त्रिजात (दालचीनी, बडी इलायची तथा तेजपत्ता मिलाकर) चार पल (16 तोला), फूलप्रियंगु चार पल (16 तोला) तथा नागकेसर दो पल (8 तोला) इन सबका चूर्ण बनाकर उक्त क्वाथ में मिला दें और मधु को भली-भाँति घोल दें, फिर इस घोल को घृतलिप्त भांड में डालकर और उसका मुख कपड़मिट्टी से बन्द करके रख दें, एक मास के पश्चात् जब अरिष्ट तैयार हो जाये तो छान लें। यह आसव दु:साध्य प्रमेह, वातजनित रोगों, ग्रहणीरोग, अर्श तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। इसका नाम 'देवदार्वादि अरिष्ट' है। यह कण्डू (खुजली) तथा कुष्ठ रोग को भी नष्ट करता है।

### खदिरारिष्ट

**खदिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च तत्समम्।**
**बाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात् पलविंशतिः।। 62।।**
**त्रिफला विंशतिपला ह्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्।**
**कषाये द्रोणशेषे च पूते शीते विनिक्षिपेत्।। 63।।**
**तुलाद्वयं माक्षिकस्य तुलैका शर्करा मता।**
**धातक्या विंशतिपलं कङ्कोलं नागकेशरम्।। 64।।**
**जातीफलं लवङ्गैलात्वक्पत्राणि पृथक्-पृथक्।**
**पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात् पलचतुष्टयम्।। 65।।**
**घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेन्नरः।**
**महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदे तथा।। 66।।**
**गुल्मं ग्रन्थिं कृमीन् कासं श्वासप्लीहोदरं जयेत्।**
**एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः।। 67।।**

खैरसार आधी तुला (2½ सेर), देवदारु का बुरादा आधी तुला (2½ सेर), बाकुची बारह पल (48 तोला), दारुहल्दी बीस पल (1 सेर) तथा त्रिफला बीस पल (1 सेर)-इन सब द्रव्यों को जौकुट करके आठ द्रोण जल में क्वाथ करें और एक द्रोण जल शेष रह जाने पर छान लें और जब शीतल हो जाये तो इसमें मधु दो तुला (10 सेर) और चीनी एक तुला (5 सेर) डालकर घोल दें। धाय के फूल बीस पल (1 सेर), शीतलचीनी, नागकेसर, जायफल, लौंग, बड़ी इलायची, दालचीनी तथा तेजपत्ता प्रत्येक एक-एक पल (4-4 तोला) तथा पिप्पली चार पल (16 तोला)-इन द्रव्यों को जौकुट करके उक्त घोल में मिला दें और घृतलिप्त मृत्तिका-पात्र में डालकर उसका मुख बन्द करके रख दें। एक मास के पश्चात् तैयार हो जाने पर इसे छानकर पीना चाहिये। यह आसव सात प्रकार के महाकुष्ठों, हृद्रोग, पाण्डुरोग तथा अर्बुद (रसौली), गुल्म, ग्रन्थि (लसीका ग्रन्थि) की विकृति, क्रिमियों, कास, श्वास एवं प्लीहोदर को जीतता है। इसका नाम 'खदिरारिष्ट' है और यह सब प्रकार के कुष्ठों को भी नष्ट करता है।

### बब्बूलारिष्ट

**तुलाद्वयं तु बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत्।**
**द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य च तुलां क्षिपेत्।। 68।।**
**धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा।**
**जातीफलानि कङ्कोलमेलात्वक्पत्रकेशरम्।। 69।।**
**लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत्।**
**मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत्।। 70।।**
**क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहश्वासकासकम्।**

बबूल (कीकर) की छाल दो तुला (10 सेर) लेकर उसको जौकुट करके चार द्रोण जल में डालकर क्वाथ करें। जब एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) जल शेष रह जाये तो छान लें। शीतल हो जाने पर उसमें गुड़ एक तुला (5

सेर), डालकर घोल दें। धाय के फूल सोलह पल (64 तोला), पीपल दो पल (8 तोला), जायफल, शीतलचीनी, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपत्ता, नागकेसर, लौंग एवं मरिच प्रत्येक एक-एक पल (4-4 तोला) लेकर और उनका चूर्ण बनाकर उपर्युक्त घोल में मिला दें। तत्पश्चात् इसे घृतलिप्त मृत्तिकापात्र (घड़ा) में डालकर एक मास पर्यन्त पड़ा रहने दें और तैयार हो जाने पर छानकर रख लें। इसका नाम 'बब्बूलारिष्ट' है। यह क्षयरोग, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, श्वास एवं कास को जीतता है।

### द्राक्षारिष्ट

**द्राक्षातुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः।। 71।।**
**पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत्।**
**गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम्।। 72।।**
**प्रियङ्गुर्मरिचं कृष्णा विडङ्गं चेति चूर्णयेत्।**
**पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततो भाण्डे निधापयेत्।। 73।।**
**समन्ततो घट्टयित्वा पिबेज्जातरसं ततः।**
**उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासश्वासगलामयान्।। 74।।**
**द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः।**

द्राक्षा (दाख) आधी तुला (2½ सेर) लेकर और पीसकर दो द्रोण जल में डालकर क्वाथ करें और चतुर्थांश रहने पर छान लें। जब यह क्वाथ शीतल हो जाये तो इसमें गुड़ दो तुला (10 सेर) डालकर घोल दें और दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेसर, फूलप्रियंगु, मरिच, पीपल एवं वायविडंग प्रत्येक द्रव्य 4-4 तोला लेकर और इनका चूर्ण बनाकर उक्त घोल में मिला दें। तत्पश्चात् घृतलिप्त मृत्तिकापात्र में डालकर पात्र के मुख को बन्द करके सुरक्षित स्थान में रख दें। जब तैयार हो जाये तो उचित मात्रा में सेवन करें। यह अरिष्ट उरःक्षत (वक्षःस्थल के भीतरी घाव), क्षयरोग (यक्ष्मा), कास, श्वास एवं गले के रोगों को नष्ट करता है। इसका नाम 'द्राक्षारिष्ट' है। यहाँ बलकारक एवं मलशोधक है।

**वक्तव्य**-उक्त अरिष्ट में द्रव अर्थात् द्राक्षा क्वाथ बहुत कम कहा गया है, क्योंकि लगभल 6¼ सेर द्रव में दस सेर गुड़ बहुत अधिक हो जाता है। अतः चतुर्थांश शेष न करके आधा शेष रहने पर अर्थात् 12-13 सेर जल शेष रहे तभी उसमें गुड़ घोलकर मिला देना चाहिये।

### रोहीतकारिष्ट

**रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत्।। 75।।**
**पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम्।**
**दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता।। 76।।**
**पञ्चकोलं त्रिजातं च त्रिफलां च विनिक्षिपेत्।**
**चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्।। 77।।**
**मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यान्ति सङ्क्षयम्।**
**ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदराणि च।। 78।।**
**कुष्ठशोफारुचिहरो रोहितारिष्टसञ्ज्ञकः।**

रोहिड़ा की जड़ की छाल एक तुला (5 सेर) लेकर और उसको जौकुट करके चार द्रोण जल में पकायें जब एक द्रोण (12 सेर 3 पाव 4 तोला) शेष रह जाये तो छान लें। जब यह क्वाथ शीतल हो जाये तो इसमें गुड़ दो तुला (10 सेर) डालकर घोल दें और धाय के फूल सोलह पल (64 तोला), पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, हरड़, बहेड़ा तथा आँवला प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल (4-4 तोला) लेकर और उनका चूर्ण बनाकर उक्त घोल में मिला दें और उपर्युक्त सभी द्रव्यों के घोल को घृत से स्निग्ध मृतिकापात्र में डालकर रख दें। एक मास के पश्चात् निर्मल द्रव छान लें। इस अरिष्ट को पीने वाले रोगियों के गुदांकुर (अर्श के मस्से) समाप्त हो जाते हैं और ग्रहणीरोग, पाण्डुरोगों, हृद्रोग, प्लीहारोग, गुल्मरोग तथा उदररोग विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। यह अरिष्ट कुष्ठ, शोथ (सूजन) तथा अरुचि को भी हरता है। इसका नाम 'रोहीतकारिष्ट' है।

### दशमूलारिष्ट

**(पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः।। 79।।**
**पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते।)**
**दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक्।। 80।।**
**पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा।**
**कुर्याद् विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत्।। 81।।**
**पलैः षोडशभिर्धात्री रविसङ्ख्यैर्दुरालभा।**
**खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः।। 82।।**
**अष्टभिर्गणितैः कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च।**
**विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा।। 83।।**
**चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम्।**
**त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी।। 84।।**
**हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम्।**
**मुस्तमिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्षभकौ तथा।। 85।।**
**मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके।**
**कुर्यात् पृथक् द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले।। 86।।**

**चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत्।**
**चतुःषष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे।। 87।।**
**त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत्।**
**द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम्।। 88।।**
**त्रिंशत्पलानि धातक्याः कङ्कोलं जलचन्दनम्।**
**जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम्।। 89।।**
**पिप्पली चेति सञ्चूर्ण्य भारैर्द्विपलिकैः पृथक्।**
**शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्।। 90।।**
**भूमौ निखातयेद् भाण्डं ततो जातरसं पिबेत्।**
**कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्।। 91।।**
**ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम्।**
**वातव्याधिं क्षयः छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम्।। 92।।**
**कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च।**
**शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्।। 93।।**
**कृशानां पुष्टिजननो वन्ध्यानां गर्भदः परः।**
**अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः।। 94।।**

**इति श्रीदामोदरसुनूना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे आसवारिष्टकल्पना नाम दशमोऽध्यायः।। 10।।**

शालपर्णी, पृष्णिपर्णी, कंटकारी, बनभण्टा, गोखरू, बेलगिरी, अरणी, टेण्टू, पाढल तथा गम्भार इन सम्मिलित दस द्रव्यों को 'दशमूल' कहा जाता है। उक्त दस द्रव्यों को पृथक्-पृथक् पाँच-पाँच पल (20-20 तोला) लें; चीता की जड़ 25 पल (1¼ सेर), आँवला 16 पल (64 तोला), धमासा 12 पल (48 तोला), खैरसार, विजयसार तथा हरड़ प्रत्येक आठ-आठ पल (32-32 तोला), कूठ, मजीठ, देवदारु, वायविंडग, मुलेठी, भारंगी, कैथ का फल, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, फूलप्रियंगु, सारिवा, काला जीरा, निसोत, रेणुका, रास्ना, पिप्पली, सुपारी, कचूर, हल्दी, सौंफ, पद्मकाष्ठ, नागकेसर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि तथा वृद्धि प्रत्येक द्रव्य दो-दो पल (8-8 तोला) लेकर सभी द्रव्यों को जौकुट करके आठ गुने जल में डालकर क्वाथ करें और चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर छानकर क्वाथ को मृत्तिकापात्र में डालकर रख दें और साठ पल (3 सेर) द्राक्षा (दाख) को चौगुने जल में पकायें, जब तीन भाग (9 सेर) शेष रह जाये तो ठंडा हो जाने पर पहले बनाये गये क्वाथ में डाल दें और मधु तीस पल (1 सेर 8 तोला), गुड़ चार सौ पल (20 सेर) डालकर भली प्रकार मिला दें। धाय के फूल 30 पल (1½ सेर), शीतलचीनी, नेत्रवाला, श्वेतचन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागकेसर तथा पीपल प्रत्येक द्रव्य दो-दो पल (8-8 तोला) लेकर उनका चूर्ण बनाकर तथा कस्तूरी एक शाण (4 आना भर) को पीसकर उक्त घोल में मिला दें और इस घोल को भूमि में गाढ़े हुये मिट्टी के पात्र में डाल दें और उसका मुख बन्द करके मिट्टी से ढक दें। एक मास के बाद जब तैयार हो जाये तो निर्मली के फलों का चूर्ण डालकर द्रव के निर्मल बना लें। यह अरिष्ट ग्रहणीरोग, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातव्याधि, क्षयरोग, छर्दि (कै) रोग, पाण्डुरोग, कामलारोग, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा (मूत्ररोग), अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा धातुक्षय को जीतता है और कृशों को पुष्टि, वन्ध्याओं को गर्भ तथा सबको तेज, शुक्र तथा बल देता है। इसका नाम 'दशमूलारिष्ट' है।

**वक्तव्य**–उक्त अरिष्ट प्रसुति रोग एवं प्रसूता स्त्री के लिए उत्तम औषध है। निर्मली द्वारा दूसरे आसव, अरिष्टों को भी स्वच्छ कर लेना चाहिये। इसमें कस्तूरी भी डाली जाती है। इसका प्रयोग अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) में भी किया जाता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का दसवाँ अध्याय समाप्त।। 10।।

## एकादशोऽध्यायः

# धातुशोधनमारणकल्पना

### धातुओं की संख्या

**स्वर्णताराारताम्राणि नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम्।**
**धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्तान् शोधयेद् बुधः।।1।।**

स्वर्ण (सोना), तार (चाँदी), आर (पीतल), ताम्र (ताँबा), नाग (सीसा), वंग (राँगा) तथा तीक्ष्णक (लोह, फौलाद एवं उसके अन्यान्य भेद) ये सात पदार्थ 'धातु' कहे जाते हैं। विद्वान् वैद्य को औषधार्थ प्रयोग करने के लिए इनका शोधन करना चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त धातुओं को सभी जानते हैं, किन्तु 'आर' की सभी टीकाकारों ने पीतल लिखा है। आप ध्यान दें–पीतल को धातु नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह एक भाग ताँबा तथा दो भाग यशद इन दो धातुओं के योग से बनाया जाता है। यथा–'**रीतिरप्युपधातुः स्यात् ताम्रस्य यशदस्य च। पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा बुधैः**।।' (आयुर्वेद-प्रकाश अ० 4)। यही बात श्री भावमिश्र ने भी स्वीकार की है। देखें–भा० नि० धातुवर्ग। उक्त दोनों ग्रन्थकारों ने पीतल को उपधातु माना है, यही उचित भी है। यदि इसको धातु मान भी लिया जाये तो कांस्य आदि अन्यान्य मिश्रित पदार्थों को भी धातु मानना पड़ेगा, जो कदापि उचित नहीं है। प्रामाणिक वचन देखें–'**सुवर्णं रूप्यकं ताम्रं वङ्गं जसदसीसके। लोहं चैते मताः सप्त धातवो गिरिसम्भवाः**।।' (आ०प्र०अ० 3) तथा–'**स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं जसदमेव च। सीसं लोहं च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः**'।। (भा०प्र०नि० धातुवर्ग)। सात धातुओं में जसद अर्थात् जस्ता को धातु माना है, जो उचित है। इसलिये आर को धातु मानना चाहिये अथवा नहीं, इसका निर्णय बुद्धिमान् स्वयं कर सकते हैं। यदि कोई दुराग्रही मनुष्य कहे कि पीतल में यशद होता है, अतः उसे धातु मानने में कोई हानि नहीं है, वे भली-भाँति विचार करें।

### धातुओं के शोधन की विधि

**स्वर्णताराारताम्रायः पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत्।**
**निषिञ्चेत् तप्तप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके।।2।।**
**गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा।**
**एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः सम्प्रजायते।।3।।**
**नागवङ्गौ प्रतप्तौ च गालितौ तौ निषेचयेत्।**
**त्रिधा त्रिधा विशुद्धः स्याद् रविदुग्धेन च त्रिधा।।4।।**

सोना, चाँदी तथा लोह के पत्रों को अग्नि में तपायें और उनको गर्म-गर्म ही तिलतेल में तक्र (मट्ठा) में, काञ्जी में, गोमूत्र में तथा कुलथी के क्वाथ में तीन-तीन बार बुझायें, इस प्रकार स्वर्ण आदि लोहों (धातुओं) की शुद्धि हो जाती है। नाग (सीसा) तथा वंग (राँगा) को तपाकर (गलाकर) उक्त तेल आदि द्रवों में तीन बार तथा आक के दूध में तीन बार बुझायें। इस प्रकार नाग तथा वंग भी शुद्ध हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–सुवर्ण आदि धातुओं के पत्र तो तपाये जा सकते हैं, किन्तु नाग तथा वंग तपते ही पिघल जाते हैं, अतएव इनको पिघलाने का विधान किया गया है। इन्हें पिघलाकर द्रवों में डालते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है, अन्यथा वे उछलकर शोधनकर्त्ता के शरीर पर पड़कर हानि पहुँचा सकते हैं, अतः उनका द्रव एक चौड़े मुखवाले पात्र में डाल दें और उसके मुख पर एक ऐसा ढकना रखें, जिसमें कनिष्ठिका अंगुली जाने योग्य छिद्र हो, फिर लोहे की कड़छुल में वंग अथवा सीसा को डालकर अग्नि द्वारा पिघला कर उक्त छिद्र में से धीर-धीरे द्रव में बुझायें। जिस किसी धातु की भस्म बनानी हो उसे उक्त विधि से अवश्य शुद्ध कर लेना चाहिये।

### सुवर्ण भस्म की विधि

**स्वर्णाच्च द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत्।**
**तद्गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम्।।5।।**

**गोलकं च ततो रुन्ध्याच्छरावदृढसम्पुटे।**
**त्रिंशद् वनोपलैर्दद्यात् पुटान्येवं चतुर्दश।।6।।**
**निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः।**

शुद्ध सुवर्ण से दुगुना पारद लेकर दोनों को नींबू का रस डालकर घोटना चाहिये, घुटते-घुटते जब गोला बन जाये तो इस गोले के समान भाग शुद्ध गन्धक को पीसकर आधी गन्धक एक सिकोरे में रख दें, फिर दूसरे सिकोरे में बिछाकर रख दें, तदनन्तर गोला रखकर ऊपर से अवशिष्ट गन्धक रख दें, फिर दूसरे सिकोरे से ढाँककर कपड़मिट्टी से सम्पुट बनाकर सुखा लें, तत्पश्चात् तीस उपलों की अग्नि में पुट दें। इस प्रकार चौदह पुटें देने से सुवर्ण की 'निरुत्थ भस्म' हो जाती है और गन्धक हर एक पुट में बार-बार डालनी चाहिये।

**वक्तव्य**–1 तोला सुवर्ण के पत्रों को उक्त विधि से शुद्ध करके चावलों के से टुकड़ों में काट लिया जाता है। फिर जब उन्हें पारद में डालकर घोटा जाता है, तो पीठी-सी बन जाती है। इस पीठी का गोला नहीं, अपितु टिकिया बनानी चाहिये, जिससे गन्धक चूर्ण से भली प्रकार ढाँकी जा सके। और **'गन्धोदेयः पुनः पुनः'** इस कथन के अनुसार बार-बार गन्धक ही नहीं पारद भी देना चाहिये तथा सुवर्ण तथा पारद की पिष्टि तैयार हो जाने पर गन्धक को भी उसके साथ पीस देना चाहिये। तीस उपलों या कण्डों की संख्या का निर्देश सम्भवतः 1 से 4 तोला तक सुवर्ण की भस्म बनाने के लिए है। एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि चौदह पुटों के पश्चात् भी कभी-कभी सुवर्ण के कण चमकते हुये दिखलायी पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में और भी पुटें देनी चाहिये। इस विधि से बनी हुई 'सुवर्णभस्म' बादामी रंग की या धूसर वर्ण की होती है।

**निरुत्थभस्म**–भस्मीभूत धातु फिर किसी प्रकार भी जीवित न हो, अर्थात् अपने रूप को धारण न कर सके, किन्तु देखा गया है कि उक्त विधि से बनी हुई सुवर्ण भस्म को सुहागा तथा नौसादर के संयोग से तपाने पर पुनरपि सुवर्ण बन जाता है। अतः श्रीआढमल्ल ने कहा है–**'निरुत्थता-ऽत्रात्यर्थं मूर्च्छना कथ्यते ननु स्वर्णस्य मृतिर्भवति'** अर्थात् निरुत्थ शब्द का अर्थ है-अत्यन्त मूर्च्छित होना, स्वरूपतः सुवर्ण कहलाने योग्य न रह जाना। क्योंकि सुवर्ण की मृत्यु (सदेव के लिए स्वरूप का परित्याग) नहीं होती। यह कथन विश्वसनीय है। कुछ लोगों का कथन है कि 'सुवर्ण एवं चाँदी के बरक या तबक का प्रयोग भारतीय नहीं है, वे ध्यान दें- महर्षि सुश्रुत ने बालक को सुवर्ण चूर्ण चटाने की आज्ञा दी है।

यथा-**'सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा।'** देखें-सु० शा० अ० 10। और-**'अपक्वं हेमसङ्घृष्टं शिलायां जलयोगतः। द्रवरूपं तु तत्पेयं मधुना गुणदायकम्।। यद्वापि तवकारव्यं तु स्वर्णपत्रविचूर्णितम्। मधुना सङ्गृहीतं चेत् सद्यो हन्ति विषादिकम्।।** देखें-आ० प्र० अ० 3। अर्थात् सुवर्ण को जलयोग से घिसकर मधु के साथ चाटना चाहिये। इसके सेवन करने से विष आदि के विकार नष्ट हो जाते हैं।

### सुवर्ण भस्म की दूसरी विधि

**काञ्चने गालिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत्।।7।।**
**चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा च गोलकम्।**
**गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम्।।8।।**
**शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः।**
**एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते।।9।।**

सुवर्ण को गलाकर उसमें सोलहवाँ भाग शुद्ध सीसा डाल दें। जब दोनों पिघलकर मिल जाये तो अग्नि पर से उतार कर शीतल हो जाने पर फिर इसका चूर्ण बनाकर नींबू के रस के साथ तब तक घोटें, जब तक कि काला पानी निकलता रहे, तत्पश्चात् गोला या टिकिया बना लें। अब उक्त गोलक के समान भाग गन्धक का चूर्ण सिकोरे में गोलक के नीचे तथा ऊपर रखकर और दूसरे सिकोरे से ढाँककर तथा कपड़मिट्टी से सम्पुट बना लें और सूख जाने पर तीस वनोपलों (वनकण्डों) में रखकर पुट दें। इस प्रकार सात पुटें देने से सुवर्ग की निरुत्थभस्म बन जाती है।

**वक्तव्य**-सोना 4 तोला, सीसा 4 आना भर तथा गन्धक 11 तोला लेना चाहिये।

### तीसरी विधि

**काञ्चनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगन्धयोः।**
**कज्जल्या हेमपत्राणि लेपयेत् सममात्रया।। 10।।**
**काञ्चनारत्वचः कल्कैर्मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्।**
**धृत्वा तत्सम्पुटे गोलं मृन्मूषासम्पुटे पचेत्।। 11।।**
**निधाय सन्धिरोधं च कृत्वा संशोष्य कोकिलैः।**
**वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दद्यात् पुटत्रयम्।। 12।।**
**निरुत्थं जायते भस्म सर्वकार्येषु योजयेत्।**

समान भाग पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर कचनार की छाल के रस अथवा क्वाथ के साथ घोंटें। जब लेई-सी हों

जाये तो समान भाग सुवर्ण के पत्रों पर उसका लेप कर दें और कचनार की छाल का कल्क (चटनी) बनाकर उसकी दो मूषा (सिकोरा) बनाकर सुखा लें। फिर इनमें उक्त सुवर्ण-पत्रों के गोलक को दूसरे दो मिट्टी के सिकोरों में रखकर कपड़मिट्टी से भली-भाँति सन्धि-बन्ध करके सुखा लें और बबूल के कोयलों की तीव्र अग्नि में रखकर पुट दें, इसी प्रकार तीन पुटें देनी चाहिये। इस विधि से सुवर्ण की निरुत्थ भस्म बन जाती है। इसे सभी कार्यों में प्रयुक्त करना चाहिये।

**चौथी विधि**

**काञ्चनारप्रकारेण लाङ्गली हन्ति काञ्चनम्।। 13।।**
**ज्वालामुखी यथा हन्यात् तथा हन्ति मनःशिला।**

जिस प्रकार उपर्युक्त विधि से कचनार के संयोग से सुवर्ण की भस्म की जाती है, ठीक उसी विधि से लांगली (कलिहारी) भी सुवर्ण को मारती है और उसी विधि से ज्वालामुखी द्वारा भी भस्म बनायी जाती है और उसी विधि से मैनसिल भी सुवर्ण को मारती (भस्म करती) है।

**वक्तव्य**–आज ज्वालामुखी नामक औषधि का परिचय सन्देह में पड़ गया है। सुवर्णपत्रों पर उक्त द्रवों का लेप प्रथम बार ही किया जा सकता है। दूसरी, तीसरी बार में उन रसों के साथ ही पीसना पड़ता है।

**पाँचवीं विधि**

**शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः।। 14।।**
**सप्तैव भावना दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः।**
**ततस्तु गालिते हेमि कल्कोऽयं दीयते समः।। 15।।**
**पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते।**
**एवं वेलात्रयं दद्यात् कल्कं हेममृतिर्भवेत्।। 16।।**

समान भाग (4-4 तोला) मैनसिल तथा रससिन्दूर को आक के दूध की सात भावनायें देकर सुखा लें। इसके पश्चात् कड़छुल में सुवर्ण (4 तोला) गलाकर उसमें उपर्युक्त मैनसिल तथा रससिन्दूर का चूर्ण डाल दें। जब ये आपस में मिल जायें तो धौंकनी से अत्यन्त तीव्र अग्नि करके उस चूर्ण को विलीन कर दें। इसी प्रकार तीन बार चूर्ण को विलीन करने से सुवर्ण की भस्म तैयार हो जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से मैनसिल तो उड़ जाता है, किन्तु सिन्दूर जो कि सीसक-निर्मित पदार्थ है, नहीं उड़ता। अतः सुवर्ण में ही रह जाता है और तपाने से वह सीसक सुवर्ण भस्म से पृथक् हो जाता है और सुवर्ण भस्म पृथक् हो जाती है।

**छठी विधि**

**पारावतमलैर्लिम्पेदथवा कुक्कुटोद्भवैः।**
**हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादन्तरान्तरम्।। 17।।**
**गन्धचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुग्मसम्पुटे।**
**प्रदद्यात् कुक्कुटपुटं पञ्चभिर्गोमयोपलैः।। 18।।**
**एवं नवपुटान् दद्याद् दशमं च महापुटम्।**
**त्रिंशद् वनोपलैर्देयं जायते हेमभस्मकम्।। 19।।**

शुद्ध सुवर्ण के पत्रों पर कबूतर की अथवा मुरगा की बीट (जल में सानकर) का लेप करे और उनके बीच-बीच में सुवर्ण के समान भाग गन्धक का चूर्ण देकर तथा दो सिकोरों के सम्पुट में रखकर पाँच उपलों का कुक्कुट पुट दें और इसी प्रकार नौ पुटें दें और दसवीं महापुट तीस उपलों की देनी चाहिये। इस विधि से सुवर्ण की भस्म बन जाती है।

**वक्तव्य**–कुक्कुटपुट का लक्षण–'**वितस्तिमात्रे गर्त्ते यत् पुटयेत् तत्तु कौक्कुटम्**। अर्थात् एक बालिस्त चौकोर गड्ढे में जो पुट दी जाती है उसे 'कुक्कुटपुट' कहा जाता है।

और-'**घने वेदास्त्रके गर्त्ते हस्ते द्वितयमात्रके। पुटं यद् दीयते प्राज्ञैस्तद्धि प्रोक्तं महापुटम्**'।। अर्थात् दो हाथ गहरे तथा चौड़े चौकोर गड्ढे में जो पुट दी जाती है, उसे महापुट कहा जाता है।

**सुवर्ण भस्म के गुण**

**(सुवर्णं च भवेत् स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु।**
**बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम्।। 20।।)**

सुवर्ण स्वादु (मधुर) है, अनुरस से तिक्त है, स्निग्ध, हिम (शीत), गुरु, बुद्धि, विद्या तथा स्मरणशक्ति को बढ़ाता है, विष को हरता है और रसायन है।

**वक्तव्य**–सुवर्ण आकरों (खानों) एवं नदियों की बालू में से प्राप्त किया जाता है। इसके पत्र अन्य सभी धातुओं के पत्रों की अपेक्षा अधिक पतले बनाये जा सकते हैं। इसका गुरुत्व जल की अपेक्षा लगभग 19¼ गुना भारी है और इसका द्रवणांक $1064^0$ से० है।

**रजत भस्म की विधि**

**भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित्।**
**तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत्।। 21।।**
**धृत्वा मूषापटे रुद्ध्वा पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः।**
**समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्।। 22।।**
**एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते।**

एक भाग (4 तोला) हरिताल को आसी भी अम्लद्रव (नींबू आदि के रस) के साथ एक प्रहर-पर्यन्त पीसना चाहिये, तत्पश्चात् जब लेई-सी हो जाये तो तीन भाग (12 तोला) तार अर्थात् चाँदी के पत्तों पर उसका लेप करना चाहिये। फिर इन पत्रों को दो सिकोरों के सम्पुट में रखकर तीस वनोपलों की अग्नि में पुट देना चाहिये। सर्वथा शीतल हो जाने पर इसे संपुट से निकालकर और एक भाग शुद्ध हरिताल डालकर किसी खटाई से पीटकर तथा सम्पुट में बन्द कर पुट दें। इसी प्रकार क्रमशः चौदह पुटें देने से चाँदी की भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से चाँदी की भस्म आसमानी रंग की बनती है। इसमें से हरिताल उड़ जाता है, अतः चाँदी भस्म की तौल भी नहीं बढ़ती है।

### रजत भस्म की दूसरी विधि

**स्नुहीक्षीरेण सम्पिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत्।। 23।।**
**तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान्।**
**पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते।। 24।।**

चार तोला स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी) को सेहुण्ड (थूहर) के दूध के साथ पीसकर उपर्युक्त हरिताल की विधि से बारह तोला शुद्ध चाँदी के पत्रों पर लेप करें और पुट दें। इसी प्रकार चौदह पुटें देने से चौदी की भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से बनायी गयी भस्म में स्वर्णमाक्षिक की भस्म भी मिली रहती है, अतः उसकी तोल बढ़ जाती है। चाँदी भस्म के गुण–'**रूप्यं शीतकषायाम्लं स्वादु पाकरसं सरम्। वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्**'।। अर्थात् चाँदी शीतल, कषाय एवं अम्ल है; पाक में स्वादु है, सर (विसरणशील) है, आयु को स्थायी रखने वाली है, स्निग्ध है, लेखन है एवं वात, पित्त को जीतती है। खानों में उक्त धातु ताम्र एवं सीसक के साथ मिला हुआ पाया जाता है और कहीं-कहीं पृथक् भी पाया जाता है। इसका गुरुत्व 10.4 है तथा द्रवणांक $960^0$ से० है।

### आर भस्म की विधि

**अर्कक्षीरेण सम्पिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत्।**
**समेनारस्य पत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः।। 25।।**
**ततो मूषापुटे धृत्वा पुटेद् गजपुटेन च।**
**एवं पुटद्वयेनैव भस्मारं भवति ध्रुवम्।। 26।।**
**आरवत् कांस्यमप्येवं भस्मतां याति निश्चितम्।**

आक के दूध के साथ गन्धक (10 तोला) को पीस लें और अम्लद्रव (काञ्जी आदि) में 3 अथवा 7 बार शुद्ध किये हुये पीतल के पत्रों पर उस (गन्धक) का लेप करें, तत्पश्चात् सम्पुट में रखकर गजपुट द्वारा पुट दें। इस प्रकार दो पुटें देने से आर (पीतल) की भस्म हो जाती है। आर की विधि से कांस्य (काँसा) की भी भस्म बनती है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से पीतल की भस्म बनाने का यत्न किया गया, किन्तु पीतल पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा अर्थात् सर्वथा कच्चा रह गया, भस्म नहीं बनी। फिर हरताल के योग से भस्म बन गयी, किन्तु उक्त विधि से कांस्य की भस्म बन गई। पीतल और काँसा दोनों ही प्रसिद्ध एवं मिश्रित पदार्थ हैं। यथा–'**अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागं कुटिल मतम्। एकत्र द्रावितं तत् स्यात् कांस्यं सौराष्ट्रजं शुभम्**।। (आ० प्र० अ० 4)।' अर्थात् आठ भाग तांबा तथा दो भाग वंग (रांगा) को एक साथ पिघलाने से 'कांस्य' नामक द्रव्य तैयार हो जाता है और '**रीतिरप्युपधातुः स्यात् ताम्रस्य यशदस्य च**।' (आ०प्र० अ० 4)। अर्थात् 12 भाग तांबा, एक भाग यशद (जस्ता) दोनों को एक साथ पिघलाने से पीतल तैयार हो जाता है। इनके गुण भी इनकी उपादान धातुओं के समान ही होते हैं। पीतल का गुरुत्व 8.05 है। पीतल एवं कांस्य के साथ 'भर्त्त' नामक पदार्थ को जानना भी आवश्यक है। उसकी भस्म भी बनायी जाती है। यथा–'**कांस्यं रीतिस्तथा ताम्रं नागो वङ्गश्च पञ्चमः। एकत्र द्रावितैरेतैः पञ्चलोहं प्रजायते।। पञ्चलोहे पञ्चरसं वर्तुलं भर्त्तमित्यपि। व्यञ्जनं सूपमन्यच्च तद्भाण्डे साधितं शुभम्**।। (आ० प्र० अ० 4.78-79) अर्थात्–कांसा, पीतल, तांबा, सीसा एवं रांगा को एक साथ पिघलाने से पञ्चलोह बनता है। उसके नाम ये हैं–पञ्चरस, वर्तुल एवं भर्त्त। इसके पात्र में शाक एवं दालें उत्तम तैयार होती हैं। यद्यपि वर्तमान शार्ङ्गधरसंहिता में यशद धातु का कोई भी उल्लेख नहीं है, तथापि हमारा विश्वास है कि आचार्य शार्ङ्गधर ने अपनी मूल पुस्तक में उसका अवश्य उल्लेख किया होगा। अतएव हमने यहाँ उसका उल्लेख कर दिया है। यथा–'**यशदं रङ्गसङ्काशं रीतिहेतुश्च तन्मतम्। यशदं गिरिजं तस्य दोषाः शोधनमारणे।। वङ्गस्येव हि बोद्धव्या गुणांस्तु प्रवदाम्यहम्। जशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्। चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासं च नाशयेत्**।।' (आ० प्र०अ० 3) अर्थात्–जस्ता रांगा जैसा होता है और वह पीतल का हेतु (कारण) है। यशद पर्वतों की खानों में उत्पन्न होता है। उसके दोष, शोधन एवं मारणं (भस्मीकरण) वंग के ही

समान मानने चाहिये। उसके गुण ये हैं-यशद धातु कसैला, तिक्त, शीतल, कफ एवं पित्त को हरता है, अत्यन्त चक्षुष्य (नेत्र के लिए हितकारक) है। प्रमेहों, पाण्डुरोगों तथा श्वासरोगों को नष्ट करता है। यशद एक अत्यन्त उपयोगी धातु है। इसी से बनाया हुआ 'जिंक' पदार्थ जल में अथवा गुलाब जल में घोलकर दुखती हुई आँखों (नेत्राभिष्यन्द) में डाला जाता है। इसकी अत्यन्त सफेद भस्म जो 'सफेदा' नाम से प्रसिद्ध है, वह रोहों की परमौषध है, अतएव इसे 'चक्षुष्यं परमम्' कहा गया है। खपरिया के सन्दिग्ध होने के कारण अथवा अलभ्य होने के कारण यह आयुर्वेद की परमोत्तम औषध 'वसन्तमालती' में शताब्दियों से प्रयुक्त किया जा रहा है। यक्ष्मा जैसे भीषण रोगों से पीड़ित रोगियों का अत्यन्त उपकार कर रहा है। इसका गुरुत्व 7.1 है और द्रवणांक 433 से० है।

### ताम्र, पीतल, कांस्य भस्म-विधि

**अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुण्डी क्षीरिका तथा।। 27।।**
**ताम्ररीतिध्वनिवधे समगन्धकयोगतः।**

आक के दूध में, बरगद के दूध में, सम्भालू (मेवड़ी) के पत्तों के कल्क में तथा क्षीरिका (चिरौंजी) के कल्क में पीसी हुई समान भाग गन्धक के संयोग से ताम्र (तांबा), रीति (पीपल) तथा ध्वनि (काँसा) की भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**-उक्त श्लोक की प्रथम पंक्ति का पाठभेद इस प्रकार उपलब्ध होता है-**'अर्कक्षीरवदाजं स्यात् क्षीर-निर्गुण्डिका तथा'**। इसका अर्थ होगा-मदार के दूध के बराबर बकरी का दूध तथा निर्गुण्डी (मेवड़ी) के रस से ....। प्रयोग कर देखें कि आपको कौन-सी विधि उत्तम लगती है।

### ताम्र भस्म की विधि

**सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद् बुधः।**
**वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेद्।। 28।।**
**पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत्।**
**तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद् द्विगुणेन च।। 29।।**
**गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्।**
**ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम्।। 30।।**
**तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदङ्गुलोन्मितम्।**
**धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत्।। 31।।**
**बालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः।**
**दत्त्वा भाण्डमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत्।। 32।।**
**क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्यावद् यामचतुष्टयम्।**
**स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत् सूरणद्रवैः।। 33।।**
**दिनैकं गोलकं कुर्यादर्धगन्धेन लेपयेत्।**
**सघृतेन ततो मूषां पुटे गजपुटे पचेत्।। 34।।**
**स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत्।**
**वान्तिं भ्रान्तिं क्लमं मूर्च्छां न करोति कदाचन।। 35।।**

ताँबा के अत्यन्त पतले पत्र बनवाकर और उनके चावलों जैसे टुकड़े बनाकर विद्वान् औषध-निर्माता तीन दिन तक अम्ल (काञ्जी) में डालकर दोलायन्त्र द्वारा स्वेदित करें, तत्पश्चात् उन ताम्रखण्डों को खरल में डाल दें, ताँबे का चौथाई पारद डालकर अम्ल (नींबू के रस) के साथ एक पहर तक इस प्रकार मर्दन करें, जिससे सम्पूर्ण पारदताम्र खण्डों पर चढ़ जाये। इसके पश्चात् ताम्रपत्रों को नींबू के रस में पीसी हुई ताम्रपत्रों की अपेक्षा दुगुनी गन्धक मिलाकर उनका गोला या टिकिया बना लें तथा मीनाक्षी (मछेंछी) अथवा चांगेरी (खटकल) अथवा पुनर्नवा को पीस कर कल्क बनायें और इस कल्क का उक्त ताम्रगन्धक गोलक पर एक अंगुल मोटा लेप कर दें। फिर इस गोलक को बड़े मृत्पात्र के भीतर रखकर शराव (सकोरा) से ढँक दें और उस मृत्पात्र को बालू डालकर भर दें तथा पात्र के मुख पर ढँकना देकर राख 10 तोला तथा सेंधा नमक 4 तोला जल में सानकर इससे उस पात्र का मुख बन्द कर दें। फिर इसे चूल्हे पर चढ़ाकर एक पहर तक धीमी आँच देकर पाक करें, फिर क्रमशः अग्नि को तीव्र करते जायें। इस प्रकार चार प्रहर-पर्यन्त आँच दें। जब उक्त पात्र सर्वथा शीतल हो जाये तो उतार कर सावधानी के साथ पहले ढँकना उतारें और फिर धीरे-धारे बालू निकालकर तथा सिकोरा उतार कर ताम्रगोलक को निकाल लें, तदनन्तर उक्त ताम्रगोलक को सूरण (जिमीकन्द) के रस के साथ एक दिन तक पीस कर फिर गोला बना लें और उस पर घी में सानी हुई ताँबे की अपेक्षा अर्द्धभाग गन्धक का लेप कर दें, फिर उसे सम्पुट में रखकर गजपुट दें। सर्वांग शीतल हो जाने पर उसे पुट से निकालकर पीस लें। इस प्रकार ताम्र की उत्तम भस्म बन जाती है। इसका सेवन करने पर कभी भी वमन, चक्कर आना, सुस्ती तथा मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होती।

**वक्तव्य**-उक्त विधि से निर्मित 'ताम्र भस्म' आकाश के वर्ण से युक्त हो जाती है। भस्म बनाने के लिए 'नेपाली' ताम्र उत्तम होता है। उक्त विधि से बनी हुई ताम्रभस्म पूर्णरूप से वान्ति, भ्रान्तिरहित नहीं हो पाती, अतः सूरण के रस की दस-बीस पुटें और दे देनी चाहिये। इसका गुरुत्व 8.95 है और द्रवणांक 1057 से० है।

### नाग भस्म

**ताम्बूलीरससम्पिष्टशिलालेपात् पुनः पुनः।। 36।।**
**द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम्।**

बार-बार पान के रस से पीसी हुई तथा मैनसिल के संयोग से बत्तीस पुटें देने से नाग (सीसा) की निरुत्थ भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–प्रथम बार मैनसिल नाग के समान ही ली जाती है और फिर अष्टमांश। इस विधि से सीसा की भस्म आसमानी रंग की बनती है। इसको थोड़ी गोहरी की आँच देनी चाहिये, अन्यथा सीसा पिघलकर मण्डूर-सा बन जाता है। अन्त में इसे तौलकर देखिये, यदि तौल में कुछ भी बढ़ गया हो तो मैनसिल के बिना ही पान के अथवा अडूसा के रस में घोटकर तब तक पुटें देनी चाहिये जब तक तौल पूर्ववत् न हो जाये।

### नाग भस्म की विधि

**अश्वत्थचिञ्चात्वक् चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत्।। 37।।**
**मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्या प्रचालयेत्।**
**यामैकेन भवेद् भस्म तत्तुल्यां च मनःशिलाम्।। 38।।**
**काञ्जिकेन द्रवं पिष्ट्वा पचेद् दृढपुटेन च।**
**स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेन च।। 39।।**
**पुनः पुटेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः।**

मिट्टी के पात्र में पिघलाये हुये सीसक में पीपल वृक्ष तथा इमली वृक्ष की छाल का चौथाई चूर्ण डालकर लोहे की कड़छुली से हिलाता रहे, एक पहर में वह सीसक भस्म जैसा हो जाता है। इसके बाद उसे खरल में डालकर और उसमें समान भाग मैनसिल डालकर काँजी के साथ पीसना चाहिये। बाद में उसे दो सिकोरों में बन्द करके पुट दें देनी चाहिये। स्वांग शीतल होने पर फिर से मैनसिल (अष्टमांश) डालकर काँजी से पीसकर पुट दे दें। इस प्रकार साठ पुटें देने से सीसक की भस्म तैयार हो जाती है।

**वक्तव्य**–इसका गुरुत्व 11.3 है और द्रवणांक 328° से० है। यह प्रमेह की उत्तम औषध है।

### वंग भस्म की विधि

**मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचो रजः।। 40।।**
**क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत्।**
**ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते।। 41।।**
**अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन प्रमर्दयेत्।**
**ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत्।। 42।।**
**तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत्।**
**एवं दशपुटैः पक्वो वङ्गस्तु म्रियते ध्रुवम्।। 43।।**

मिट्टी के पात्र में पिघलाये हुये वंग (राँगा) में इमली तथा पीपल के वृक्ष की छाल का चतुर्थांश चूर्ण डालकर लोहे की कड़छुली से हिलाते रहें। इस प्रकार दो पहर (6 घंटे) में वंग भस्म-सा हो जाता है। इसके पश्चात् उसमें समान भाग हरिताल डालकर काँजी के साथ मर्दन करे और टिकिया बनाकर सुखाकर गजपुट में पुट दे दें। स्वांगशीतल हो जाने पर दशमांश हरिताल डालकर और काँजी से एक प्रहर-पर्यन्त पीसकर पुट दें। इसी प्रकार दस पुटों में पकाया गया वंग अवश्यमेव मर जाता है, अर्थात् उसकी भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से बनी हुई 'वंग भस्म' अत्यन्त गुणवान् होती है। यह भी प्रमेह की उत्तम औषधि है। विद्वानों का कथन है कि नाग को मैनसिल के योग से और वंग को हरिताल के योग से ही भस्म करना चाहिये। खानों में से वंग के मिश्रित स्फटिकाकार काले पत्थर मिलते हैं। इनको तपाकर वंग प्राप्त किया जाता है। वंग का गुरुत्व 12.4 तथा द्रवणांक 230° से० है।

### लोह भस्म की विधि

**शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः।**
**मर्दयित्वा पुटेद् वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम्।। 44।।**
**पुटत्रयं कुमार्या च कुठारच्छिन्निकारसैः।**
**पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत्।। 45।।**

पूर्वोक्त विधि से शुद्ध किये हुये लोहचूर्ण (तीक्ष्णलोह अर्थात् फौलाद के चूर्ण) को पातालगारुडी (जलजमनी) के रस में पीसकर गजपुट द्वारा पुट दें, इसी तरह तीन पुट दें, घीकुआर के रस की तीन पुट दें, कुठेरक की छाल तथा गिलोय के रस की (तीन-तीन अर्थात्) छः पुटें दें। इसी तरह बारह पुटें देने से तीक्ष्णलोह की भस्म हो जाती है।

### दूसरी विधि

**क्षिपेद् वा द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः।**
**मर्दयेत् कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत्।। 46।।**
**एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लोपचूर्णमवाप्नुयात्।**
**रसैः कुठारछिन्नायाः पातालगरुडीरसैः।। 47।।**
**स्तन्येन चार्कदुग्धेन तीक्ष्णस्यैवं मृतिर्भवेत्।**

तीक्ष्णलोह (फौलाद) के चूर्ण की अपेक्षा द्वादशांश दरद (शिंगरफ) डालकर घीकुआर के रस में भली-भाँति दो प्रहर

पर्यन्त मर्दन करे और टिकिया बनाकर उन्हें सुखाकर पुट दें। इस प्रकार सात पुटें देने से लोह की भस्म बन जाती है। अथवा कुठेरक, गिलोय, छिलहिण्टा, स्तन्य (स्त्री का दूध) तथा आक के दूध के साथ पीसकर पुटें देने से लोह की भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–शिंगरफ के संयोग से जो लोह भस्म बनायी जाती है, वह अत्यन्त रक्तवर्ण की होती है, किन्तु वारितर (पानी के ऊपर तैरने वाली) नहीं होती। अतः अन्यान्य औषधियों के रसों की 100 अथवा इससे भी अधिक पुटें देनी चाहिये, जिससे वह वारितर हो जाये, क्योंकि लोहभस्म का वारितर होना परमावश्यक है। लोहभस्म यकृत-विकार की एवं पाण्डुरोग की परमौषध है। तीक्ष्णलोह वही होता है, जिसके चाकू, उस्तरे एवं तलवार आदि तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र बनाये जाते हैं। भस्म बनाने के लिए यही लोहा सर्वोत्तम माना जाता है। लोह का गुरुत्व 7.5 और द्रवणांक 1550° से० है।

### तीसरी विधि

**सूतकाद् द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ।।48।।**
**द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः।**
**यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके।।49।।**
**घर्मे धृत्वा रुबूकस्य पत्रैराच्छादयेद् बुधः।**
**यामार्धेनोष्णतां भूयाद्धान्यराशौ न्यसेत् ततः।।50।।**
**दत्त्वोपरि शरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्।**
**पिष्ट्वा च गालयेद् वस्त्रादेवं वारितरं भवेत्।।51।।**
**एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत्।**
**शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः।।52।।**
**म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा।**

पारद से दुगुनी गन्धक लेकर दोनों की कज्जली बनायें, फिर दोनों (पारद तथा गन्धक) के समान भाग लोहचूर्ण मिलाकर घीकुआर के रस के साथ दो प्रहर (6 घंटों) पर्यन्त भली-भाँति मर्दन करें। तत्पश्चात् एक पिण्ड बनाकर और ताम्र के पात्र में रखकर, एरण्ड के पत्तों से ढाँककर धूप में रख दें। आधे पहर (1½ घण्टा) में जब उष्ण हो जाये तो ऊपर से दूसरे शराव (सकोरे) से ढाँककर धान्यराशि (गेहूँ आदि के ढेर) में दबा दें और तीन दिन के पश्चात् निकाल लें तथा पीसकर कपड़े से छान लें। इस प्रकार लोह भस्म वारितर तैयार हो जाती है। उक्त विधि से सुवर्ण आदि सभी लोहों अर्थात् धातुओं की भस्म बनायी जा सकती है और मैनसिल, गन्धक तथा आक के दूध में उपर्युक्त विधि से मिलायी हुई स्वर्ण आदि सभी धातुएँ बारह पुटों में मर जाती हैं, अर्थात् उनकी भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–हमारा विचार है कि उपर्युक्त विधि में पारदगन्धक की कज्जली में लोहचूर्ण नहीं अपितु दस-बीस पुटें जिस लोह भस्म में दी जा चुकी हों, उस लोह भस्म को डालें और इस प्रकार भस्म में कज्जली मिली रहती है, जो किसी प्रकार पृथक् नहीं की जा सकती। इस प्रकार बनायी गयी लोह भस्म उत्तम मानी जाती है।

### उपधातु संख्या

**माक्षिकं तुत्थकाभ्रे च नीलाञ्जनशिलालकाः।।53।।**
**रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः।**

माक्षिक, तुत्थक (तूतिया या नीला थोथा), अभ्रक, नीलाञ्जन (काला सुरमा), शिला (मैनसिल), आलक (हरिताल) तथा रसक ये सात द्रव्य उपधातु कहे जाते हैं।

**वक्तव्य**–उक्त सात पदार्थ यौगिक हैं, अर्थात् ये कई पदार्थों के मिश्रण से भूगर्भ में निर्मित होते हैं।

### स्वर्णमाक्षिक शोधन-विधि

**माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च।।54।।**
**मातुलुङ्गद्रवैर्वाथ जम्बीरोत्थद्रवैः पचेत्।**
**चालयेल्लोहजे पात्रे यावत् पात्रं सुलोहितम्।।55।।**
**भवेत् ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति।**

माक्षिक (सोनामाखी) तीन भाग (3 सेर) तथा सेंधा नमक एक भाग (1 सेर) दोनों को पीसकर बिजौरा नीबू, जम्बीरी नीबू या कागजी नीबू के रस में मिलाकर तथा लोहे की कड़ाही में डालकर तब तक पकायें और खुरचने से तब तक चलाते रहें, जब तक पात्र का तलभाग रक्तवर्ण का न हो जाय। इस प्रकार स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी) शुद्ध हो जाती है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से शुद्ध की हुई स्वर्णमाक्षिक का सेवन किया जा सकता है। स्वर्णमाक्षिक लोह ताम्र (इसमें ताम्र स्वल्पमात्रा में होता है) एवं गन्धक का यौगिक पदार्थ है, अत एव शुद्ध करते समय इसमें से जो धुआँ निकलता है, उसमें गन्धक की गन्ध होती है। यह गुजरात प्रान्त में बहने वाली 'ताप्ती' नदी के आसपास प्राप्त होती है, अतएव इसका नाम 'ताप्य' या 'तापीज' है। पीली चमकदार मक्खी के समान वर्णयुक्त होने के कारण इसे 'स्वर्णमाक्षिक' कहा जाता है। उक्त विधि से शोधित स्वर्णमाक्षिक का वर्ण अत्यन्त कृष्णाभ होता है।

### स्वर्णमाक्षिक मारण-विधि

**कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत्।। 56।।**
**तक्रेण वाजमूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम्।**

कुलथी के क्वाथ के साथ, एरण्ड के तैल के साथ, तक्र (मट्ठा) के साथ अथवा बकरी के मूत्र के साथ पीसकर पुट देने से स्वर्णमाक्षिक मर जाती है, अर्थात् उसकी उत्तम भस्म बन जाती है।

**वक्तव्य**–ध्यान रहे-एरण्ड तैल की पुट देने से स्वर्णमाक्षिक की काली एवं अन्य द्रवों की पुट देने से रक्त वर्ण का भस्म तैयार होती है।

### विमला शोधन विधि

**कर्कोटीमेषशृङ्ग्युत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् ।। 57।।**
**भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम्।**

बाँझककोड़ा (खेखसा), मेढासिंगी तथा जम्बीरी नीबू के रस के साथ मिलाकर धूप में सुखा लेने से ही 'विमला' अवश्य शुद्ध हो जाती है।

**वक्तव्य**–वर्ण-भेद से माक्षिक दो प्रकार की होती है–1. स्वर्णमाक्षिक और 2. विमला। यह विमला भी दो प्रकार की होती है–1. रजतमाक्षिक और 2. कांस्यमाक्षिक। इनमें पहली स्वर्णाभ अर्थात् चमकदार पीली-सी और दूसरी श्वेताभ अर्थात् काँसा के सदृश चमकदार सफेद होती है। विमला को रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) एवं कांस्यमाक्षिक (कांसामाखी) कहा जाता है। लोह, ताम्र एवं गन्धक का उचित परिमाण में मिश्रण होकर पार्थिव अग्नि द्वारा पृथ्वी के भीतर ही उचित परिपाक हो जाता है। अतएव विमलामाक्षिक को केवल भावना देकर ही शुद्ध करने का विधान किया गया है। इसी प्रकार स्वर्णमाक्षिक भी केवल नीबू के रस में अथवा गुलाबजल में पीसकर प्रयुक्त की जा सकती है, किन्तु ऐसे अवसरों पर शास्त्र की आज्ञा का पालन करना बहुत आवश्यक होता है।

### तुत्थ-शोधन-विधि

**विष्ठया मर्दयेत् तुत्थं मार्जारककपोतयो।। 58।।**
**दशांशं टङ्कणं दत्त्वा पचेन्मृदुपुटे ततः।**
**पुटं दध्ना पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये।। 59।।**

तूतिया (नीला थोथा) को समान भाग बिल्ली तथा कबूतर के पुरीष (वीट) के साथ मिलाकर पीसना चाहिये और तूतिया की अपेक्षा दशमांश टंकण डालकर तथा पीसकर मृदुपुट (कुक्कुटपुट) में पुट दें, तत्पश्चात् दही से पीसकर एक पुट तथा एक पुट मधु के साथ पीसकर देनी चाहिये। इस तरह तूतिया शुद्ध हो जाता है।

**वक्तव्य**–तूतिया ताम्र-गन्धक का यौगिक है और यह नीलवर्ण वाला पदार्थ होता है तथा शीघ्र कै कराने वाला है। मोर के गले के सदृश वर्ण वाला होने के कारण यह 'शिखिग्रीव' कहा जाता है। निम्नलिखित विधि से तूतिया में से ताम्र को पृथक् किया जा सकता है। यथा–**'तुत्थं टङ्कणसंयुक्तं निम्बूद्रवविमर्दितम्। अन्धमूषागतध्मातं सत्त्वं मुञ्चति ताम्रकम्।।** (आ० प्र० अ० 4.44)। अर्थात् तूतिया को टंकण (सोहागा) एवं नीबू के रस के साथ पीसकर एवं अन्धमूषा में रखकर तीव्र अग्नि देने से ताम्र का सत्त्व पृथक् हो जाता है।

### अभ्रक-शोधन-विधि

**कृष्णाभ्रकं धमेद् वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत्।**
**भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तण्डुलीयाम्लयोर्द्रवैः।। 60।।**
**भावयेदष्टयामं तदेवं शुद्ध्यति चाभ्रकम्।**

कृष्णाभ्रक (काले अभ्रक) को अग्नि में भली-भाँति तपाकर गाय के दूध में डाल दें और उसके पत्रों को अलग-अलग करके चौलाई तथा तिपतिया (खटकल) के रस में आठ प्रहर तक पड़ा रहने दें। इस प्रकार अभ्रक शुद्ध हो जाता है।

### अभ्रक मारण-विधि

**कृत्वा धान्याभ्रकं तत्तु शोषयित्वाथ मर्दयेत्।। 61।।**
**अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत्।**
**वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत्।। 62।।**
**पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारं प्रयत्नतः।**
**ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद् देयं पुटत्रयम्।। 63।।**
**म्रियते नात्र सन्देहः सर्वयोगेषु योजयेत्।**
**तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत्।। 64।।**
**घृते जीर्णे तदभ्रं तु सर्वयोगेषु योजयेत्।**
**मृतं त्वभ्रं हरेन्मृत्युं जरापलितनाशनम्।। 65।।**
**अनुपानैश्च संयुक्तं तत्तद् रोगहरं परम्।**

उक्त विधि से शुद्ध किये हुये अभ्रक को धान्याभ्रक बनाकर सुखा लें और खरल में डालकर आक के दूध के साथ एक दिन तक पीसकर टिकिया बना लें, तत्पश्चात् उन्हें मदार (आक) के पत्तों में लपेटकर (ऊपर से कपड़मिट्टी करके) गजपुट से पुट दें, फिर आक के दूध में पीसें और पूर्वोक्त विधि से पुट दें। इसी प्रकार प्रयत्न करके सात पुटें

देनी चाहिये और इसी प्रकार बरगद की जटा की छाल के क्वाथ में पीसकर भली-भाँति तीन पुटें दें। इस विधि से नि:सन्देह अभ्रक की भस्म हो जाती है। इसे सभी योगों में प्रयुक्त करना चाहिये। अथवा-अभ्रकभस्म को समान भाग घी में मिलाकर और लोहपात्र (कड़ाही) में डालकर पकाये, जब घी सर्वथा जीर्ण हो जाये अर्थात् जल जाये तब इस अभ्रक को सब कार्यों में प्रयुक्त करें। मरा हुआ (भस्मीभूत) अभ्रक मृत्यु (अकालमृत्यु) को हरता है, जरा (अकाल-वार्द्धक्य) तथा पलित (अकाल में बालों का पकना) को नष्ट करता है और उपयुक्त अनुपानों के साथ सेवन करने से सभी रोगों को हरता है।

**वक्तव्य**-अभ्रक को धान्याभ्रक बनाने की विधि इस प्रकार है-'**चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं बध्वा कम्बलके तथा। त्रिरात्रं काञ्जिके स्थाप्यं तत् क्लिन्नं मर्दयेद् दृढम्।। कम्बलाद् गालितं श्लक्ष्णं मारणादौ प्रशस्यते**'। अर्थात् अभ्रक को चूर्ण बनाकर तथा समान भाग चावल में मिलाकर कम्बल में बाँध दें (इसे ढीला बाँधना चाहिये) फिर इस पोटली को तीन दिन तक काञ्जी में रख दें। जब अभ्रकचूर्ण गीला या मृदु हो जाये तो जल से पूर्ण परात में रखकर मर्दन करे। इस क्रिया से अभ्रक का चूर्ण सूक्ष्म होकर कम्बल में से छनकर परात के जल में आ जाता है। जल को नितार कर उसे निकाल लिया जाता है और अभ्रकभस्म को बनाने के लिए उसका प्रयोग किया जाता है। उक्त विधि से यदि दस पुटों में अभ्रक भस्म निश्चन्द्र (चमकरहित) न हो तो और भी पुटें देनी चाहिये। भस्म-निर्माणार्थ जहाँ तक हो सके 'बज्राभ्रक' का संग्रह करना चाहिये और सोरा या कलमी सोरा तथा मूली के रस के योग से श्वेताभ्रक की भी भस्म बनायी जाती है।

### अभ्रक मारण-विधि

**शुद्धं धान्याभ्रकं मुस्तं शुण्ठीषड्भागयोजितम्।। 66।।**
**मर्दयेत् काञ्जिकेनैव दिनं चित्रकजै रसैः।**
**ततो गजपुटं दद्यात् तस्मादुद्धृत्य मर्दयेत्।। 67।।**
**त्रिफलावारिणा तद्वत् पुटेदेवं पुटैस्त्रिभिः।**
**बलागोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः ।। 68।।**
**मर्दितं पुटितं वह्नौ त्रिस्त्रिवेलं व्रजेन्मृतिम्।**

उक्त विधि से अभ्रक को शुद्ध करके और धान्याभ्रक बनाकर षष्ठांश (छठा भाग) नागरमोथा तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर काञ्जी के साथ एक दिन तक पीसना चाहिये और एक दिन चीता के रस से पीसकर टिकिया बना लें तत्पश्चात् उन्हें सुखाकर गजपुट से पुट दें। सर्वाङ्गशीतल हो जाने पर पुट में से निकाल कर त्रिफला के क्वाथ से मर्दन करे और उक्त विधि से पुट दें। इस प्रकार त्रिफला की तीन पुटें दें। इसके बाद वरियारा, गोमूत्र, सफेद मुसली, तुलसी तथा सूरण के रस में मर्दन कर प्रत्येक द्रव्य की तीन-तीन पुटें दें। इस प्रकार अभ्रक की भस्म हो जाती है।

### अभ्रक सत्त्व प्रकार

**धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टङ्कणस्य च।। 69।।**
**पिष्ट्वा तदन्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत्।**
**स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वयोगेषु योजयेत्।। 70।।**

धान्याभ्रक एक भाग (4 तोला) और टंकण (सुहागा) दो भाग (8 तोला) दोनों को पीसकर तथा अन्धमूषा में बन्द करके तीक्ष्ण अग्नि में पकायें। सर्वांग शीतल होने पर पीसकर सभी योगों में इसका प्रयोग करें।

**वक्तव्य**-उक्त विधि से निर्मित अभ्रकभस्म की बीस, पचास अथवा सौ पुटें उपयुक्त औषधियों के रस तथा क्वाथ की देनी चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि अभ्रक को जितनी ही अधिक पुटें दी जायेंगी, वह उतना ही गुणवान् हो जायेगा। सहस्रपुटी अभ्रक भस्म भी बनायी जाती है। पुट देने वाले द्रव्यों का चुनाव आप अपनी आवश्यकता के अनुसार करें।

### नीलाञ्जन-शुद्धि

**नीलाञ्जनं चूर्णयित्वा जम्बीरद्रवभावितम्।**
**दिनैकमातपे शुद्धं भवेत् कार्येषु योजयेत्।। 71।।**
**एवं गैरिककासीसटङ्कणानि वराटिका।**
**तौरी शङ्खं च कङ्कुष्ठं शुद्धिमायाति निश्चितम्।। 72।।**

नीलाञ्जन (काला सुरमा) को अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर जम्बीरी नींबू के रस की भावना देकर एक दिन धूप में सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार वह शुद्ध हो जाता है और उसको सब कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह गैरिक (गेरू), कसीस (हीराकसीस), टंकण (सोहागा), वराटिका (कौड़ी), तौरी (तुवरी या फिटकिरी), शंख तथा कंकुष्ठ को भी शुद्ध किया जाता है यह निश्चय है।

**वक्तव्य**-अञ्जन या सुरमा दो प्रकार का होता है-1. काला सुरमा और 2. सफेद सुरमा। दोनों ही परम चक्षुष्य हैं। इनके अनेक प्रयोग आयुर्वेदिक ग्रन्थों में दिये गये हैं-1.

काला सुरमा आँखों में प्रयुक्त करने के अतिरिक्त खिलाया भी जाता है और सफेद सुरमा या सौवीर को दही अथवा घीकुआर के रस में पीसकर तथा टिकिया बनाकर पाँच-सात पुटें देने से भस्म हो जाती है। यह भस्म रक्तपित्त, प्रदर तथा पूयमेह (सुजाक) में आश्चर्यजनक कार्य करती है। 2. गेरू दो प्रकार का होता है-(क) साधारण गेरू, (ख) सुवर्णगैरिक अर्थात् सोना गेरू जिसे हिरौञ्जी कहा जाता है। यह प्रथम गेरू की अपेक्षा अत्यन्त लाल (देखें-'**ततो रक्ततरं हि तत्**'। भा० प्र० नि० धा० व०) होता है। 3. कासीस अर्थात् हीराकासीस लोह तथा गन्धक का यौगिक है। इसका वर्ण हरापन लिये नीला होता है। एक लाल कासीस भी होता है जो भीषण वामक है। 4. टंकण दो प्रकार का होता है-(क) सुहागा और (ख) चौकिया सुहागा। प्रयोग दोनों का ही होता है। खाने के लिए इसे कड़ाही या तवा में डालकर आग की सहायता से फुला लिया जाता है। मलहमों में इसे कच्चा ही डाला जाता है। 5. वराटिका या कौड़ी कई प्रकार की होती हैं जो समुद्र से प्राप्त की जाती हैं। यह एक प्रकार के क्रिमि का कवच है, अथवा एक प्रकार की हड्डी ही है। इसको जलाते समय अस्थि की-सी गन्ध आती है। जो कौड़ी पीली तथा गाँठदार हो, वह उत्तम मानी जाती है। यथा-'**पीता गुल्मयुता पृष्ठे रसयोगेषु पूजिता**'। 6. तोरी या तुवरी अर्थात् फिटकिरी दो प्रकार की होती है-(क) सफेद स्फटिका और (ख) लाल स्फटिका, प्रयोग में दोनों ही आती हैं; किन्तु कुछ लोग लाल स्फटिका को उत्तम मानते हैं। टंकण के समान इसको भी फुलाकर खाने के कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। 7. शंख भी कई प्रकार का होता है। इसका वर्णन भी कौड़ी के ही समान है। सभी शंखों की भस्म घीकुआर के रस के संयोग से बनायी जाती है। 8. कंकुष्ठ के सम्बन्ध में अनेक मत हो जाने के कारण विद्वानों के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया है। अतः निर्णायक बुद्धि से आप स्वयं विचार करें।

### मनःशिला-शुद्धि

**पचेत् त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायन्त्रे मनःशिलाम्।**
**भावयेत् सप्तधा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति।। 73।।**

दोलायन्त्र द्वारा बकरी के मूत्र में मैनसिल को तीन दिन तक पकाये और बकरी के पित्त (जो पित्ताशय में रहता है) की सात भावना दें। इस तरह मैनसिल शुद्ध हो जाती है।

**वक्तव्य**-अदरख के रस की सात भावना देने से भी मैनसिल शुद्ध हो जाती है। '**शृङ्गवेररसैर्वापि विशुद्ध्यति मनःशिला**'।। मैनसिल तथा हरिताल एक ही जाति के दो पदार्थ हैं। यथा-'**तालकस्यैव भेदोऽस्ति मनोह्वा च तदन्तरम्। तालकं त्वतिपीतं स्याद् भवेद् रक्ता मनःशिला**'।। (आ०प्र०अ० 2)।

### हरिताल-शोधन

**तालकं कणशः कृत्वा सचूर्णं काञ्जिके क्षिपेत्।**
**दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजैर्द्रवैः।। 74।।**
**तिलतैले पचेद् यामं यामं च त्रिफलाजलैः।**
**एवं यन्त्रे चतुर्यामं पाच्यं शुद्ध्यति तालकम्।। 75।।**

हरिताल के कणों को अलग-अलग करके तथा चौपरत कपड़े की पोटली में बाँधकर अर्थात् दोलायन्त्र की विधि से लटकाकर चूना मिली हुई काञ्जी में डाल दें। एक प्रहर के पश्चात् उसमें से निकालकर कूष्माण्ड (कोहड़ा या पेठा) के जल में, तिलतैल में तथा त्रिफला के क्वाथ में एक-एक प्रहर-पर्यन्त पकायें। इस प्रकार दोलायन्त्र द्वारा चार प्रहर-पर्यन्त पकाने से हरिताल शुद्ध हो जाती है।

**वक्तव्य**-हरिताल दो प्रकार की होती हैं-1. वंशपत्री-'**स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत्**, और 2. पिण्डहरिताल-'**निष्पत्रं पिण्डसङ्काशम्**'। हरिताल नामक पदार्थ गन्धक- संखिया का यौगिक है। यह घोर विष है। हरिताल को चूना युक्त काञ्जी में केवल भिगोकर रखना चाहिये और तिलतैल में भी पकाना नहीं चाहिये, केवल स्वेदित करना चाहिये, क्योंकि उक्त दोनों द्रवों में पकाने से हरिताल घुल जाती है और पिघल जाती है। **दोलायन्त्र**-इसका विधान इस प्रकार है-'**द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरितार्धस्य तस्य च। मुखे तिर्यक् कृते दण्डे यद् द्रव्यं सूत्रलम्बितम्।। स्वेदयेत् तन्मध्यगतं दोलायन्त्रमिति स्मृतम्**।।' अर्थात् भाण्ड (पात्र) को द्रवद्रव्य द्वारा आधा भर दिया जाता है और उसके मुख पर एक लकड़ी का टुकड़ा तिरछा करके रख दिया जाता है और इस डंडे में द्रव्य की पोटली बाँधकर लटका दी जाती है। इसी को 'दोलायन्त्र' कहते हैं। इस यन्त्र द्वारा तीन क्रियाएँ की जाती हैं। यथा-1. वासन अर्थात् किसी द्रव पदार्थ में किसी द्रव्य को डुबाकर कुछ समय तक रख छोड़ना, 2. स्वेदन अर्थात् किसी द्रव का किसी द्रव्य को स्वेद पहुँचाना। इसमें द्रव्य को द्रव में डुबाया नहीं जाता, अपितु द्रव से द्रव्य को अंगुल दो अंगुल ऊँचा रखते हैं और 3. पाचन अर्थात् द्रव को द्रव्य में डुबाकर पकाया जाता है।

**रसक-शुद्धि**

**नृमूत्रे वाथ गोमूत्रे सप्ताहं रसकं पचेत्।**
**दोलायन्त्रेण शुद्धिः स्यात् ततः कार्येषु योजयेत्।। 76।।**

रसक (खपरिया) को पोटली में बाँधकर दोलायन्त्र द्वारा नरमूत्र या गोमूत्र में पकाना चाहिये। इस प्रकार यह शुद्ध हो जाता है और कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है।

**वक्तव्य**–यहाँ भी 'पचेत्' का अर्थ सम्भवत: 'स्वेदयेत्' ही है। यथा–'**सप्ताहात्' स्वेदितः शुद्धो रसको नरवारिणा**'। खपरिया दो प्रकार का होता है–1. दर्दुर और 2. कारवेल्लक। इनमें पहला मेंढक के वर्ण का होता है और दूसरा करेले के वर्ण का। जिन दिनों खपरिया को अलभ्य माना जाता था उन दिनों उसके स्थान में यशद भस्म का प्रयोग किया जाता था और आज भी बहुधा उसी का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'वसन्तमालती' में। खपरिया से ही यशद प्राप्त किया जाता है, जैसे तूतिया में से ताँबा।

**उपधातुओं से सत्त्व निकालने की विधि**

**लाक्षामीनपयश्छागं टङ्कणं मृगशृङ्गकम्।**
**पिण्याकं सर्षपाः शिग्रुर्गुञ्जोर्णागुडसैन्धवाः।। 77।।**
**यवास्तिक्ता घृतं क्षौद्रं यथालाभं विचूर्णयेत्।**
**एभिर्विमिश्रिताः सर्वे धातवो गाढवह्निना।। 78।।**
**मूषाध्माताः प्रजायन्ते मुक्तसत्त्वा न संशयः।**

लाही (लाख), छोटी-छोटी मछलियाँ, बकरी का दूध, सुहागा, हरिण की सींग, खली, सरसों, सहजन को छाल, गुंजाफल (घुँघची या रत्तियाँ), ऊन (भेड़ के रोम), गुड़, सेंधा नमक, जौ, कुटकी, गोघृत तथा मधु सबको समान भाग में लेकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण के समान भाग किस भी उपधातु को लेकर और एक साथ मिलाकर गोलियाँ बना लें तथा मूषायन्त्र में रखकर तीव्र अग्नि (बबूर के कोपलों) द्वारा भली-भाँति पकाये। इस तरह सभी उपधातुओं का सत्त्व अलग हो जाता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

**वक्तव्य**–उक्त विधि से माक्षिक में से लोह तथा ताम्र, तूतिया में से ताम्र, अभ्रक में से नीलाञ्जन, नीलाञ्जन में से अञ्जन नामक श्वेत स्फटिकाकार मृदु तत्त्व, मैनसिल तथा हरिताल में से संखिया तथा खर्पर (खपरिया) में से वङ्ग जैसा सत्त्व या तत्त्व या धातु प्राप्त किया जा सकता है। देखें–आ० प्र० अ० 2। इन सत्त्वों को स्वरूपत: सेवन नहीं किया जाता, अपितु उक्त धातुओं जिस प्रकार भस्म बनायी जाती है, उसी प्रकार भस्म बनाकर सेवन करना चाहिये। धातुओं का उपादान या खनिज द्रव्य, जिसमें धातु द्रव्यान्तर से संयुक्त रहता है, उसे उपधातु कहा जाता है। सत्त्वपातन-विधि से उपधातुओं में से धातुओं को पृथक् कर लिया जाता है।

**रत्नशोधन-विधि**

**कुलत्थकोद्रवक्वाथैर्दोलायन्त्रे विपाचयेत्।। 79।।**
**व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनं शुद्धिमृच्छति।**

वज्र (हीरा) को कण्टकारी की जड़ के कल्क में रखकर दोलायन्त्र द्वारा कुलथी तथा कोदों के क्वाथ में तीन दिन-पर्यन्त पकाना चाहिये। इस प्रकार वह (हीरा) शुद्ध हो जाता है

**वज्रभस्म की विधि**

**तप्तं तप्तं तु ततद् वज्रं खरमूत्रैर्निषेचयेत्।। 80।।**
**पुनस्तप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात् त्रिसप्तधा।**
**मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा यावद्भवति गोलकम्।। 81।।**
**तद्गोले निहितं वज्रं तद्गोलं वह्निना धमेत्।**
**सिञ्चयेदश्वमूत्रेण तद्गोले च क्षिपेत् पुनः।। 82।।**
**रुद्ध्वा ध्मातं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात् त्रिसप्तधा।**
**एवं च म्रियते वज्रं चूर्णं सर्वत्र योजयेत्।। 83।।**

हीरा को तपाकर गधे के मूत्र में बुझायें, बार-बार तपायें और बार-बार बुझायें। इस प्रकार इक्कीस बार करें। उत्तम तबकिया हरताल को खटमलों के साथ तब तक पीसें जब तक गोला न बन जाये, फिर इस गोला में शुद्ध वज्र (हीरा) को रख दें, उस वज्र युक्त गोला को अग्नि में धमायें तथा घोड़े के मूत्र में बुझा दें। पुनः हरिताल तथा खटमलों के गोला को फिर धमायें और घोड़े के मूत्र में बुझायें। इसी तरह इक्कीस बार करें। इस विधि से वज्र चूर्ण भस्मीभूत हो जाता है। इस वज्रभस्म को आवश्यक कार्यों में प्रयुक्त करना चाहिये।

**दूसरी विधि**

**हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत्।**
**तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भवेच्चूर्णं त्रिसप्तधा।। 84।।**

वज्र (हीरा) को तपाकर हींग तथा सैन्धव लवण से युक्त कुलथी के क्वाथ में इक्कीस बार बुझाना चाहिये। इस तरह उसकी भस्म हो जाती है।

**वक्तव्य**–कुछ विद्वानों का कथन है कि हींग तथा सैन्धव लवण के कल्क में लपेट कर हीरक को बुझाना चाहिये।

**तीसरी विधि**

**मण्डूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत् सुधीः।**
**स भीतो मूत्रयेत् तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत्।। 85।।**

**तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत्।**

बुद्धिमान् मनुष्य मण्डूक (मेंढक) को पकड़कर कांस्यपात्र में रखें। जब डरकर वह मूत दें, तो इस मूत्र में वज्र को कई बार तपाकर बुझाना चाहिये। इस प्रकार वज्र की मृत्यु (भस्म) हो जाती है।

**वक्तव्य**—वज्रभस्म सफेद होती है। यथा—'**भस्मी भवति तद् वज्रं शङ्खशीतांशुसुन्दरम्**। (आ०प्र०अ० 5)।

**वैक्रान्त-मारण**

**वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा।। 86।।**
**हयमूत्रेण तत्सेच्यं तप्तां तप्तं द्विसप्तधा।**
**ततस्तु मेषशृङ्ग्युक्तपञ्चाङ्गे गोलकं क्षिपेत्।। 87।।**
**पुटेन्मूषापुटे रुद्ध्वा कुर्यादेवं च सप्तधा।**
**वैक्रान्तं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत्।। 88।।**

वैक्रान्त नामक उपरत्न दो तरह का होता है—1. नीलवर्ण और 2 रक्तवर्ण। उसका शोधन वज्र के समान करना चाहिये। वैक्रान्त भस्म-निर्माण-विधि—वैक्रान्त को तपा-तपाकर चौदह बार घोड़े के मूत्र में बुझायें, इसके बाद मेढासिंगी के पञ्चांग (छाल, पत्र, पुष्प, फल तथा मूल) का कल्क बनायें और उसमें वैक्रान्त को भरकर तथा दो सिकोरों के सम्पुट में बाँध करके (कपड़मिट्टी द्वारा) पुट दें। इसी प्रकार सात पुटें देने से वैक्रान्त की भस्म हो जाती है। इसका प्रयोग वज्र के स्थान में अर्थात् उसके अभाव में करना चाहिये।

**वक्तव्य**-भूमि के गर्भ में जो हीरक खंड अपरिपक्व रह जाते हैं, उनका नाम 'वैक्रान्त' है। यथा—'**विकृता वज्रखण्डा ये वैक्रान्ताख्यां भजन्ति ते**' (आ० प्र० अ० 5)। हीरक आदि बहुमूल्य रत्नों की भस्म बनाने का शास्त्रों में निषेध पाया जाता है। अत: रत्नों को छीलन, जो मणि या नगीना बनाते समय उतरती है, उसे लेकर भस्म बनाना चाहिये। देखें०—आ प्र०अ० 5।

**रत्नों का शोधन-मारण**

**स्वेदयेद् दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च।। 89।।**
**मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत्।**
**कुमार्यास्तण्डुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत्।। 90।।**
**प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः।**
**मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः।। 91।।**
**क्षणाद् विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशयः।**
**उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानि च मारयेत्।। 92।।**
**वज्रवत् सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत् तथा।**

मणि (माणिक्य, पुखराज तथा नीलम आदि), मुक्ता (मोती) तथा प्रवाल (मूँगा) को दोलायन्त्र द्वारा जयन्ती (अरणी) के स्वरस अथवा क्वाथ में एक प्रहर तक स्वेदन करें, इस प्रकार वे शुद्ध हो जाते हैं। मोती प्रवाल तथा सम्पूर्ण रत्नों को तपा-तपाकर सात बार घीकुआर के रस में अथवा चौलाई के रस में अथवा स्त्री के दूध में बुझायें। इस प्रकार सरलता से उनकी भस्म हो जाती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अथवा सोनामाखी के समान मोती तथा प्रवाल की भस्म बना लेनी चाहिये और सब प्रकार के रत्नों की शुद्धि तथा भस्म वज्र (हीरा) के समान करनी चाहिये।

**वक्तव्य**—उक्त मोती, प्रवाल आदि पदार्थों की तौल भस्म होने पर घट जाती है। अत: भस्मकर्त्ताओं तथा पड़ोसियों पर चोरी का सन्देह नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार शंख, शुक्ति तथा कौड़ी की भस्म बनायी जाती है। इनकी तौल भी घट जाती है। उक्त पदार्थों को गुलाबजल में पीसकर भी प्रयोग में लाया जाता है।

**शिलाजतु शोधन-विधि**

**शिलाजतु समानीय ग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम्।। 93।।**
**गोदुग्धैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृङ्गद्रावैश्च मर्दयेत्।**
**आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत्।। 94।।**

ग्रीष्म ऋतु अर्थात् ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास में सूर्य की किरणों से सन्तप्त शिलाओं में से चूये हुये शिलाजीत को लेकर गोदुग्ध, त्रिफला क्वाथ तथा भाँगरा के रस के साथ एक-एक दिन मर्दन करें और धूप में सुखा लें। इस प्रकार शिलाजीत की शुद्धि हो जाती है।

**वक्तव्य**-इस प्रकार की शिलाजीत बहुत थोड़ी उपलब्ध होती है। इस कारण निम्नलिखित विधि से तैयार करके ग्राहकों की इच्छापूर्ति की जाती है। यद्यपि विन्ध्याचल की पर्वतमालाओं में भी शिलाजीत की उत्पत्ति होती है, तथापि पर्वतराज हिमालय को इस औषधरत्न की जन्मभूमि होने का श्रेय प्राप्त है।

**शिलाजतु निर्माण-विधि**

**मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डप्रकल्पिताम्।**
**निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत् सुधीः।। 95।।**
**मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद् वस्त्रगालितम्।**
**स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः।। 96।।**

**उपरिस्थं घनं यत्स्यात् तत्क्षिपेदन्यपात्रके।**
**धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत्।। 97।।**
**एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु।**
**भूयात् कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत्।। 98।।**
**निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत्।**
**अधःस्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत्।। 99।।**
**विमर्द्य धारयेद् घर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत्।**

शिलाजीत के पत्थरों को लेकर तथा कूटकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें और इसको अत्यन्त उष्ण जल में डालकर एक-एक प्रहर भर पड़ा रहने दें। इसके पश्चात् भली-भाँति मलकर वस्त्र में से छानकर शिलाजतु का घोल ले लें। इस जल को मिट्टी या चीनी मिट्टी के तसले अथवा कड़ाही में डालकर धूप में रख दें। जितना घन द्रव (गाढ़ा घोल) ऊपर आता जाये उसको दूसरे पात्र में डालकर धूप में रख दें, इस पर भी जो घन द्रव आता जाये उसको ले लें। इस प्रकार बार-बार लेकर दो मास में सम्पूर्ण शिलाजीत को उस घोल में से निकाल लें। यह शिलाजीत कार्य करने में समर्थ होती है और अग्नि पर रखने पर शिवलिंग या बतासा के समान हो जाती है। उसमें से धुआँ भी नहीं निकलता है। इस शुद्ध शिलाजीत को सब कामों में प्रयुक्त करना चाहिये। उक्त शिलाजीत की शिला का जो चूर्ण पात्र के तलभाग में शेष रह गया है, उसमें और उष्ण जल डालकर भली-भाँति मलकर धूप में रख दें और पूर्वोक्त विधि से शेष शिलाजीत को भी निकाल लें।

**वक्तव्य**-हरिद्वार आदि पर्वतीय नगरों के व्यापारी बद्रीनारायण की पहाड़ियों में से शिलाजीत के पाषाणों का संग्रह किया करते हैं और देश भर में भेजते हैं। इन पाषाणों में से शिलाजीत दो प्रकार से निकाली जाती है-1. उपर्युक्त विधि से इसे 'सूर्यतापी शिलाजीत' कहते हैं और 2. अग्नि-संयोग से, जिसे अग्नितापी कहते हैं। इसकी विधि यह है-शिलाजीत के पाषाणों को कूटकर तथा जल में डालकर पकाया जाता है और शिलाजीत जल में घुल जाती है, शेष पाषाण-चूर्ण पृथक् होकर नीचे बैठ जाते हैं। तत्पश्चात् उस घोल को लेकर तथा अग्नि पर चढ़ाकर गाढ़ा कर लिया जाता है। दोनों में अन्तर केवल यह है कि एक के निर्माण में सूर्य का और दूसरी के निर्माण में अग्नि का ताप दिया जाता है।

### मण्डूर भस्म-निर्माण-विधि

**अक्षाङ्गारैर्धमेत् किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः।। 100।।**
**सेचयेत् तप्ततप्तं तत्सप्तवारं पुनः पुनः।**
**चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः।। 101।।**
**आलोड्य भर्जयेद् वह्नौ मण्डूरं जायते वरम्।**

लोह के किट्ट अर्थात् मण्डूर को बहेड़े की लकड़ियों के कोयलों में तपा-तपाकर सात बार गोमूत्र में बुझायें, इसके पश्चात् उसका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर तथा द्विगुण त्रिफला के क्वाथ में मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर भून दें। इस प्रकार उत्तम मण्डूर भस्म बन जाता है।

**वक्तव्य**-मंडूर जितना ही पुराना हो उतना ही उत्तम समझा जाता है। उक्त विधि से बनायी हुई मण्डूर भस्म का वर्ण काला होता है और यदि इसको त्रिफला एवं गोमूत्र की दस-बीस पुटें दे दी जायें तो रक्तवर्ण की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। लोह को जब अधिक परिमाण में गलाया जाता है, तो उसकी जो मैल निकल कर पृथक् हो जाती है, उसे 'मण्डूर' कहते हैं। मण्डूर भस्म पाण्डुरोग की उत्तम औषध है।

### क्षार बनाने की विधि

**क्षीरवृक्षस्य काष्ठानि शुष्काण्यग्नौ प्रदीपयेत्।। 102।।**
**नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वा नीरे चतुर्गुणे।**
**विमर्द्य धारयेद् रात्रौ प्रातरच्छं जलं नयेत्।। 103।।**
**तन्नीरं क्वाथयेद् वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति।**
**ततः पात्रात् समुल्लिख्य क्षारो ग्राह्यः सितप्रभः।। 104।।**
**चूर्णाभः प्रतिसार्यः स्यात् पेयः स्यात् क्वाथवत् स्थितः।**
**इति क्षारद्वयं धीमान्युक्तकार्येषु योजयेत्।। 105।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे धातुशोधनमारणकल्पना नामैकादशोऽध्यायः।। 11।।**

क्षीरिवृक्ष (पलाश तथा आक आदि) की सूखी लकड़ियों को अग्नि द्वारा जला दें और उस भस्म को लेकर मिट्टी के पात्र में चौगुने जल में घोलकर रात भर पड़ा रहने दें और प्रातःकाल स्वच्छ जल (इस जल में क्षार घुला रहता है) को सावधानी के साथ ले लें। इस जल को अग्नि पर तब तक पकायें जब तक सम्पूर्ण जल सूख न जाये। इसके पश्चात् पात्र से खुरच कर सफेद वर्ण युक्त क्षार ग्रहण कर लें। क्षार दो प्रकार का होता है-1. चूर्ण जैसा, इसका नाम 'प्रतिसारणीय क्षार' है और 2. क्वाथ जैसा तरल क्षार इसका नाम 'पानीय क्षार' है। इन क्षारों को विद्वान् चिकित्सक योग्य कार्यों में प्रयुक्त करें।

**वक्तव्य**–आवश्यकतानुसार क्षार को चूर्ण रूप में प्रस्तुत कर लिया जाता है अथवा द्रव रूप में, इसका विस्तृत विवरण सु० सू० अ० 11 में देखें। क्षार की भस्म को जब जल में घोलकर रख दिया जाता है, तो क्षार भाग जल में घुल जाता है, राख नीचे बैठ जाती है और जल को वाष्पीकरण विधि से उड़ाकर क्षार प्राप्त कर लिया जाता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी के पुत्र डॉ० ब्रह्मानन्दत्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्यादि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।। 11।।

# द्वादशोऽध्यायः

# रसादिशोधनमारणकल्पना

### पारद के गुण

**पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः।**
**सुज्ञेन साधितः कुर्यात् संसिद्धिं देहलोहयोः।। 1।।**

पारद (पारा) सम्पूर्ण रोगों को जीतता है, शरीर को पुष्ट करता है और बुद्धिमान् कार्यकर्त्ता द्वारा सिद्ध (तैयार) किया हुआ शरीर एवं धातुओं पर सिद्धि या सफलता को प्रदान करता है।

**वक्तव्य**–पारद सुप्रसिद्ध खनिज द्रव्य है, इसे शिववीर्य भी कहते हैं। इसकी उपासना ईश्वर का उपासना के समान है। इटली, स्पेन तथा संयुक्तराज्य अमेरिका आदि देशों में अत्यन्त गहरे (2450 फीट तक के) पारद कूप हैं, उनमें से, पारद–मिश्रित खनिजों में से तथा हिंगुल (शिंगरफ) से पारद प्राप्त किया जाता है।

### पारद के नाम

**रसेन्द्रः पारदः सूतो हरजः सूतको रसः।**
**मुकन्दश्चेति नामानि ज्ञेयानि रसकर्मसु।। 2।।**

रसशास्त्र के विद्वान् पारद के निम्नलिखित नाम स्वीकार करते हैं–रसेन्द्र, पारद, सूत, हरज, सूतक एवं रस।

**वक्तव्य**–उक्त नामों के अतिरिक्त इसके और भी बहुत से नाम हैं, उनको निघण्टुओं में देखें।

### ग्रहानुसार धातु नाम

**ताम्रताराऽरनागाश्च हेमवङ्गौ च तीक्ष्णकम्।**
**कांस्यकं कान्तलोहं च धातवो नव ये स्मृताः।। 3।।**
**सूर्यादीनां ग्रहाणां ते कथिता नामभिः क्रमात्।**

1. ताम्र (ताँबा), 2. तार (चाँदी), 3. आर (पीतल), 4. नाग (सीसा), 5. हेम (सोना), 6. वंग (कली), 7. तीक्ष्णक (तीक्ष्णलोह या फौलाद), 8. कांस्यक (काँसा) एवं 9. कान्तलोह (चुम्बक)–ये नौ द्रव्य 'धातु' माने जाते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु इन नामों के क्रम से उक्त धातुओं के नाम कहे गये हैं।

### पारद की शोधन-विधि

**राजीरसोनमूषायां रसं क्षिप्त्वा विबन्धयेत्।। 4।।**
**वस्त्रेण दोलिकायन्त्रे स्वेदयेत् काञ्जिकैस्त्र्यहम्।**
**दिनैकं मर्दयेत् सूतं कुमारीसम्भवैर्द्रवैः।। 5।।**
**तथा चित्रकजैः क्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम्।**
**काकमाचीरसैस्तद्वद् दिनमेकं च मर्दयेत्।। 6।।**
**त्रिफलायास्तथा क्वाथै रसो मर्द्यः प्रयत्नतः।**
**ततस्तेभ्यः पृथक्कुर्यात् सूतं प्रक्षाल्य काञ्जिकैः।। 7।।**
**ततः क्षिप्त्वा रसं खल्वे रसादर्धं च सैन्धवम्।**
**मर्दयेन्निम्बुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ।। 8।।**
**ततो राजी रसोनश्च मुख्यश्च नवसादरः।**
**एतै रससमैस्तद्वत् सूतो मर्द्यस्तुषाम्बुना।। 9।।**
**ततः संशोष्य चक्राभं कृत्वा लिप्त्वा च हिङ्गुना।**
**द्विस्थालीसम्पुटे धृत्वा पूरयेल्लवणेन च।। 10।।**
**अधः स्थाल्यां ततो मुद्रां दद्याद् दृढतरां बुधः।**
**विशोष्याग्निं विधायाधो निषिञ्चेदम्बुनोपरि।। 11।।**
**ततस्तु कुर्यात् तीव्राग्निं तदधः प्रहरत्रयम्।**
**एवं निपातयेदूर्ध्वं रसो दोषविवर्जितः।। 12।।**
**अथोर्ध्वपिठरीमध्ये लग्नो ग्राह्यो रसोत्तमः।**

राई तथा लहसुन के कल्क का मूषायन्त्र बनायें, फिर इसमें पारद डालकर और कपड़े में बाँधकर दोलायन्त्र द्वारा काञ्जी में तीन दिन तक स्वेदन करें। तत्पश्चात् इसमें से पारद को निकालकर घीकुआर के रस में, चीता के रस में, मकोय के रस में और त्रिफला के रस में एक-एक दिन भली-भाँति मर्दन करें। इसके पश्चात् उक्त द्रवों में से पारद को पृथक् कर काञ्जी से धो दें और खरल में डालकर और पारद की अपेक्षा

अर्द्धभाग सेंधा नमक मिलाकर नींबू के रस के साथ एक दिन निरन्तर (लगातार) घोटते रहें, इसके पश्चात् पारद के समान भाग राई, लहसुन तथा नौसादर के साथ मिलाकर तुषाम्बु (जौ की काँजी, देखें-शा० सं० म० खं० अ० 10) से मर्दन करें। तत्पश्चात् उक्त सब (राई, लहसुन, नौसादर तथा पारद) द्रव्यों की टिकिया बनाकर और उस पर हींग का लेप करके सुखा लें। इस टिकिया को हँडिया के तलभाग में रख दें और ऊपर से पिसा हुआ सैन्धव लवण भर दें। इस हँडिया के मुख पर दूसरी हँडिया का मुख जोड़कर कपड़मिट्टी द्वारा अत्यन्त दृढ़ कर दें। इसे सुखाकर चूल्हे पर रखकर नीचे मन्द-मन्द अग्नि दें। ऊपर वाली हँडिया को शीतल जल से सींचते रहें (सूखने न दें) और अग्नि को तीक्ष्ण करते जायें। इस प्रकार तीन प्रहर की आँच देने से पारद का ऊद्ध्वपातन हो जाता है, अर्थात् पारद उड़कर ऊपर की हँडिया में लग जाता है और दोष-रहित हो जाता है। स्वांगशीतल होने पर ऊपर की हँडिया में लगा हुआ उत्तम पारद ग्रहण कर लें।

**वक्तव्य**-प्राय: इसी विधि से पारद का शोधन किया जाता है। ऊद्ध्वपातन के समान ही अध:पातन तथा तिर्यक्पातन का भी विधान है। पारद के विविध संस्कारों को रसरत्नसमुच्चय आदि रस-ग्रन्थों में देखें।

### गन्धक शोधन-विधि

**लोहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत्।। 13।।**
**तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद् गन्धकजं रज:।**
**विद्रुतं गन्धकं ज्ञात्वा दुग्धमध्ये विनि:क्षिपेत्।। 14।।**
**एवं गन्धकशुद्धि: स्यात् सर्वकार्येषु योजयेत्।**

लोहे के पात्र (बड़ा कड़छुल) में डालकर घी को तपायें। जब घी तप जाये या पिघल जाये तो समान भाग गन्धक का चूर्ण डाल दें और जब गन्धक पिघल जाये तो दूध में डाल दें। इस प्रकार गन्धक शुद्ध दो जाता है। इस (शुद्ध गन्धक) को सब कार्यों में प्रयुक्त करना चाहिये।

**वक्तव्य**-गन्धक को अत्यन्त मन्द अग्नि पर पिघलाना चाहिये, अन्यथा गन्धक विवर्ण हो ही जाती है। दूध को चौड़े मुख वाले पात्र में डालना चाहिये और उसके मुख पर कपड़ा बाँध देना चाहिये, ताकि इसमें से छनकर गन्धक दूध में जाये और कंकड़-पत्थर आदि पदार्थ अलग हो जायें। गन्धक को दूध में से निकालकर तथा उष्ण जल में अनेक बार धोकर सुखाकर रख लें।

### शिंगरफ शोधन-विधि

**मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम्।। 15।।**
**सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम्।**

दरद (शिंगरफ) को भेड़ के दूध की एवं नींबू के रस की सात-सात भावनायें देनी चहिये और भली-भाँति उसे पीसना चाहिये। इस प्रकार वह अवश्य शुद्ध हो जाता है।

**वक्तव्य**-शिंगरफ पारद तथा गन्धक का यौगिक द्रव्य है। यह दो प्रकार का होता है-1. खनिज (जो खानों में से प्राप्त होता है) और 2. कृत्रिम, जो पारद तथा गन्धक के संयोग से बनाया जाता है। आजकल रूमी या नरमा नाम की जो शिंगरफ आती है, वे सब कृत्रिम ही हैं। इनमें से एक सेर में 12-13 छटाँक पारद निकल जाता है।

### शिंगरफ से पारा निर्माण-विधि

**निम्बूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम्।। 16।।**
**पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वं च पातयेत् सूतयुक्तिवत्।**
**तत: शुद्धरसं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत्।। 17।।**

दरद (शिंगरफ) को नींबू के रस से अथवा नीम के पत्तों के रस से पीसकर और सुखाकर डमरू-यन्त्र द्वारा ऊर्ध्वपातन की विधि से पारद को उड़ा लें और स्वांग शीतल होने पर ऊपर के पात्र में से पारद को लेकर सभी कार्यों में प्रयुक्त करें।

**वक्तव्य**-यह पारद सर्वथा शुद्ध होता है। इसके अन्यान्य संस्कार करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। यदि संस्कार किये भी जायें तो अच्छा ही है।

**डमरू यन्त्र निर्माण विधि**-एक हँडिया में द्रव्य डाल दिया जाता है और उसके मुख पर दूसरी हँडिया का मुख मिलाकर कपड़मिट्टी करके जोड़ दिया जाता है, बस यही 'डमरूयन्त्र' है।

### पारद को बुभुक्षित करने की विधि

**कालकूटो वत्सनाभ: शृङ्गकश्च प्रदीपक:।**
**हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्र: सक्तुकस्तथा।। 18।।**
**सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव।**
**अर्कसेहुण्डधत्तूरलाङ्गलीकरवीरकम् ।। 19।।**
**गुञ्जाहिफेनावित्येता: सप्तोपविषजातय:।**
**एतैर्विमर्दित: सूतश्छिन्नपक्ष: प्रजायते।। 20।।**
**मुखं च जायते तस्य धातूंश्च ग्रसते क्षणात्।**

1. कालकूट, 2. वत्सनाभ (मीठा विष), 3. शृंगिक (सिंगिया), 4. प्रदीपक, 5. हालाहल, 6. ब्रह्मपुत्र, 7. हारिद्र, 8. सक्तुक तथा 9. सौराष्ट्रिक-ये नौ पदार्थ विष कहे जाते हैं।

आक, सेहुण्ड (थूहर), धत्तूरा, कलिहारी, कनेर, गुञ्जा की जड़ तथा अफीम–ये सात द्रव्य उपविष हैं। इन द्रव्यों के साथ मर्दन करने से पारद 'छिन्नपक्ष' हो जाता है और उसका मुख बन जाता है, जिससे वह धातुओं को क्षण भर में ग्रस (निगल) लेता है।

### दूसरी विधि

**अथवा त्रिकटु क्षारौ राजी लवणपञ्चकम्।। 21।।**
**रसोनो नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितैः।**
**समांशैः पारदादेतैर्जम्बीरेण द्रवेण वा।। 22।।**
**निम्बुतोयैः काञ्जिकैर्वा सोष्णखल्वे विमर्दयेत्।**
**अहोरात्रत्रयेण स्याद् रसे धातुचरं मुखम्।। 23।।**

अथवा त्रिकटु (सोंठ, मरिच तथा पीपल), दोनों क्षार (सज्जीखार तथा जौखार), राई, पाँचों नमक (सैन्धव, सोंचर, विड्, सामुद्र तथा साँभर), लहसुन, नौसादर तथा सहजन की छाल, इन सबका एक साथ चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के समान भाग पारद मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस से अथवा काञ्जी से 'उष्ण खल्ल' तीन अहोरात्र (निरन्तर 72 घंटों) तक मर्दन करे तो पारद में 'धातुचर' मुख हो जाता है।

**वक्तव्य**–एक गड्ढे में बकरी की मेंगन, तुष (धान को भूसी) तथा अग्नि इन तीनों को डाल दें। जब सब जलकर अग्नि हो जाये तो उस पर खरल रख दें और जब यह खरल तप जाता है तो इसे 'तप्त खल्ल' या 'उष्ण खल्ल' कहते हैं। इस प्रकार खरल गरम भी रहता है, पीसने वाले को गर्मी भी नहीं लगती तथा खरल के फूटने का भय भी नहीं रहता। रस-ग्रन्थों में खल्ल तथा खल्व दोनों शब्द मिलते हैं। ये दोनों शब्द एक ही पात्र के परिचायक हैं।

### तीसरी विधि

**अथवा बिन्दुलीकीटै रसो मर्द्यस्त्रिवासरम्।**
**लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुघस्मरम्।। 24।।**

अथवा बिन्दुलीकीटों के साथ तथा नमक या अम्ल (काँजी अथवा नींबूरस) के साथ पारद को तीन दिन तक मर्दन करें। इस प्रकार पारद में 'धातुघस्मर' (धातु को खाने वाला) मुख हो जाता है।

**वक्तव्य**–यद्यपि पारद में स्वर्ण आदि धातुओं को अपने में विलीन कर लेने की स्वाभाविक शक्ति विद्यमान है, तथापि उपर्युक्त तीन विधियों द्वारा घोटने पीसने से वह शक्ति और भी तीव्र हो जाती है। 'धातूंश्च ग्रसते क्षणात्', 'रसे धातुचरं मुखम्' तथा 'मुखं तस्य जायते धातुघस्मरम्' इन सभी का तात्पर्य यही है, कि वह धातुओं को क्षणभर में ग्रस लेता है अथवा खा जाता है, किन्तु यह मुख दिखलायी नहीं देता केवल उसके प्रयोग से ज्ञात होता है।

### गन्धक-जारण-विधि

**अथ कच्छपयन्त्रेण गन्धजारणमुच्यते।**
**मृत्कुण्डे निक्षिपेत् तोय तन्मध्ये च शरावकम्।। 25।।**
**महत्कुण्डपिधानाभं मध्ये मेखलया युतम्।**
**लिप्त्वा च मेखलामध्यं चूर्णेनात्र रसं क्षिपेत्।। 26।।**
**रसस्योपरि गन्धस्य रजो दद्यात् समांशकम्।**
**दत्त्वोपरि शरावं च भस्ममुद्रां प्रदापयेत्।। 27।।**
**तस्योपरि पुट दद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः।**
**एवं पुनः पुनर्गन्धं षड्गुणं जारयेद् बुधः।। 28।।**
**गन्धे जीर्णे भवेत् सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मसु।**

अब कच्छप-यन्त्र द्वारा पारद के साथ मिले हुये गन्धक के जारण (परिपाक) का विधान कहा जाता है–मिट्टी के कुण्ड में जल डालकर उसके मुख पर बड़ा-सा ढँकना रख दें (इसका तलभाग जल से लगा रहना चाहिये), इसके मध्यभाग में मेखला (थाला) बनाना चाहिये। चूना का लेप कर इसमें शुद्ध पारद डालना चाहिये। इस रस में समान भाग गन्धक का चूर्ण देना चाहिये तथा इस पर सिकोरा रखकर जल में मिलाकर राख की मुद्रा देनी चाहिये, अर्थात् राख (भस्म) में बन्द कर देना चाहिये। इसके ऊपर चार उपलों की पुट देनी चाहिये। इसी प्रकार छः गुनी गन्धक का जारण करना चाहिये। गन्धक जीर्ण होने पर पारद अत्यन्त तीक्ष्ण तथा सब कार्यों में प्रयुक्त करने के योग्य बन जाता है।

### पारद-मारण-विधि

**धूमसारं रसं तोरीं गन्धकं नवसादरम्।। 29।।**
**यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समांशकम्।**
**काचकूप्यां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रया।। 30।।**
**विलिप्य परितो वक्त्रे मुद्रां दत्त्वा च शोषयेत्।**
**अधःसच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत्।। 31।।**
**पिठरीं बालुकापूरैर्भृत्वा चाकूपिकागलम्।**
**निवेश्य चुल्ल्यां तदधः कुर्याद् वह्निं शनैः शनैः।। 32।।**
**तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वलयेत् क्रमात्।**
**एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते सूतकोत्तमः।। 33।।**
**स्फोटयेत् स्वाङ्गशीतं तमूर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत्।**
**अधःस्थं मृतसूतं च सर्वकर्मसु योजयेत्।। 34।।**

धूमसार (घर का धुआँ), रस (पारद), तोरी (फिटकरी), शुद्ध गन्धक तथा नौसादर सबको समान भाग में लेकर अम्ल (काँजी अथवा नींबू) के रस से एक प्रहर तक मर्दन करें। उसके बाद कपड़मिट्टी की हुई काचकूपी (आतशी शीशी) में डाल दें तथा उसके मुख पर मुद्रा (डाट) देकर सुखा लें। फिर एक नाँद या कुण्ड के तलभाग में एक रुपया भर का छेंद करें। इस छिद्र पर अभ्रक का टुकड़ा रख देना चाहिये। नाँद में कूपी के गले तक बालू भर दें। फिर उस नाँद को चूल्हे पर चढ़ाकर धीर-धीर अग्नि दें और फिर अग्नि को क्रमशः अधिक करते जायें, इस प्रकार बारह प्रहर (36 घंटे) में पारद मर जाता है। स्वांग शीतल हो जाने पर शीशी को धीरे से तोड़ दें और शीशी के ऊपरी भाग (गरदन) में लगी हुई गन्धक को छोड़कर अधोभाग में स्थित मृतपारद को लेकर सब कार्यों में प्रयुक्त करें।

**वक्तव्य**-उक्त विधि से 'रससिन्दूर' तैयार किया जाता है। पीसने पर उसका वर्ण लाल सिंगरफ जैसा होता है। पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर तब धूमसार आदि दूसरे द्रव्य इसमें मिलाने चाहिये। पिठरी (नाँद) के बाहर भी कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये। आतशी शीशी पर सात कपड़मिट्टी करके भली-भाँति सुखा लें। इस शीशी का मुख पहले ही बन्द नहीं करना चाहिये, अपितु जब सब द्रव्यों का पर्याप्त पाक हो जाये अर्थात् शीशी के भीतर लालिमा दिखलायी पड़ने लगे तब उसका मुख बन्द करना चाहिये, अन्यथा शीशी टूट जाने का भय रहता है। शीशी का मुख खड़िया मिट्टी के डाट से बन्द कर ऊपर से गुड़ चूना को जल में सानकर लेप कर दें। डाट लगाने के पूर्व शीशी के मुख में लोहे की मोटी छड़ को आग में तपाकर बार-बार डालते रहना चाहिये ताकि शीशी के गले में लगे हुये गन्धक आदि द्रव्य जलते रहें, अर्थात् शीशी का गला रुकने न पाये। छड़ डालते समय शीशी में से सीटी की-सी ध्वनि निकला करती है, उससे घबड़ाना नहीं चाहिये। कपड़मिट्टी के लिए निम्न वस्तुयें आवश्यक होती हैं-पोतनी (चिकनी) मिट्टी, बालू, कत्था तथा सेंधा नमक इन सब द्रव्यों को एक साथ घोल लेना चाहिये। कपड़ा पतला या मलमल का होना चाहिये। नाँद के छिद्र पर अभ्रक का टुकड़ा रखकर ऊपर नमक का चूर्ण बिछा देना चाहिये। इसमें बेर या बबूर की लकड़ी की आँच दें। उक्त सब पदार्थ आठ-आठ तोला लेने चाहिये। आतशी शीशी इतनी बड़ी हो कि उक्त द्रव्य उसके आधे भाग में आ जाये। इतने द्रव्यों का पाक 36 घंटे में हो जाता है। अधिक द्रव्यों के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है। कभी-कभी उबाल खाकर कुछ द्रव्य बाहर निकल जाता है और बालू पर गिरकर जम जाता है। इसको फिर शीशी में डाल देना चाहिये। उबाल आते ही अग्नि मन्द कर देनी चाहिये। कभी-कभी शीशी कूट भी जाती है। ऐसा हो जाने पर तत्काल अग्नि को बुझा दें और यदि शीशी में अग्नि जल रही हो तो बालू से बुझा दें। शीतल हो जाने पर उक्त द्रव्य को लेकर दूसरी शीशी में इसका पाक करें। यद्यपि आचार्य शार्ङ्गधर ने 'म्रियते सूतकोत्तमः' और 'अधःस्थं मृतसूतं' कहकर पारद का मारण लिखा है, तथापि इसे पारद का मूर्च्छन-संस्कार समझना चाहिये। स्मरण रहे कि सभी पारद-गन्धक के यौगिक रससिन्दूर तथा चन्द्रोदय आदि कूपीपक्वरसायन इसी विधि से बनाये जाते हैं। अन्तर केवल द्रव्यों तथा उनके परिमाण का होता है, रससिन्दूर में पारद से तिगुनी गन्धक दी जाती है और चन्द्रोदय में छः गुनी गन्धक तथा पारद से अष्टमांश सुवर्ण। चन्द्रोदय में सुवर्ण एक भाग विलीन हो जाता है और तीन भाग शीशी के तलभाग में भस्म रूप में पड़ा मिल जाता है। इसको टंकण तथा नौसादर के साथ तपाने से पुनः सुवर्ण बन जाता है।

### पारद-मारण-विधि

**अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्।**
**तत्सम्पुटे न्यसेत् सूतं मलयूद्गुधमिश्रितम्।। 35।।**
**द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडङ्गमिरिमेदकः।**
**एतच्चूर्णमधोर्ध्वं च दत्त्वा मुद्रां प्रदीयते।। 36।।**
**तं गोलं सन्धयेत् सम्यङ्मृन्मूषासम्पुटे सुधीः।**
**मुद्रां दत्त्वा शोधयित्वा ततो गजपुटे पचेत्।। 37।।**
**एकमेकपुटेनैव जायते भस्म सूतकम्।**

अपामार्ग (चिरचिटा) के बीजों का कल्क बनाकर दो मूषा (सिकोरा) बनायें और इनके सम्पुट में गूलर के दूध में पीसा हुआ पारद रख दें, किन्तु पारद के नीचे तथा ऊपर द्रोणपुष्पी (गूमा) के पुष्पों, वायविडंग तथा इरिमेदक (दुर्गन्धिखैर) का चूर्ण देकर (डाट) लगायें। फिर इसको मिट्टी के सिकोरों के सम्पुट में रखकर भली-भाँति सन्धि-बन्ध कर दें और कपड़मिट्टी कर सुखा लें तथा गजपुट में रखकर पुट दें। इस प्रकार एक ही पुट में पारद की भस्म हो जाती है।

### अन्य विधि

काष्ठोदुम्बरिकादुग्धै रसं किञ्चिद् विमर्दयेत्।। 38।।
तद्दुग्धघृष्टहिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्।
क्षिप्त्वा तत्सम्पुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रकल्पयेत्।। 39।।
धृत्वा तं गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासम्पुटेऽधिके।
पचेन्मृदुपुटेनैव सूतको याति भस्मताम्।। 40।।

पारद को कठगूलर के दूध में मर्दन करें और कठगूलर के दूध में पिसी हुई हींग की दो मूषा बनायें। तत्पश्चात् इनमें उक्त पारद को रखकर मुद्रा कर दें और फिर इसे मिट्टी के मूषा सम्पुट में रखकर भली-भाँति सन्धिरोध कर दें। सूख जाने पर मृदुपुट में पुट दें। इस प्रकार पारद की भस्म हो जाती है।

### अन्य विधि

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः।
मृन्मूषासम्पुटे पक्त्वा सूतो यात्येव भस्मताम्।। 41।।

पारद को पान के रस में पीसें, जब गोली बन जाये तो खेखसा की जड़ के कल्क में रख दें, फिर इसे मिट्टी के सम्पुट में रखकर पुट दें। इस प्रकार पारद की भस्म हो जाती है।

### ज्वराङ्कुश रस

खण्डितं मृगशृङ्गं च ज्वालामुख्या रसैः समम्।
रुद्ध्वा भाण्डे पचेच्चुल्ल्यां यामयुग्मं ततो नयेत्।। 43।।
अष्टांशं त्रिकटुं दद्यान्निष्कमात्रं च भक्षयेत्।
नागवल्लीरसैः सार्धं वातपित्तज्वरापहम्।। 43।।
अयं ज्वराङ्कुशो नाम रसः सर्वज्वरापहः।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं वा न संशयः।। 44।।

मृगशृंग (हरिण के सींग) के छोटे टुकड़ों को ज्वालामुखी (भिलावे) के रस के साथ भाण्ड (मिट्टी के बर्तन) में बन्द करके और चूल्हे पर चढ़ाकर दो पहर पर्यन्त पकायें, तत्पश्चात् स्वांगशीतल होने पर उसे पात्र में से निकालकर पीस लें। इसमें अष्टमांश त्रिकटु (सोंठ, मरिच, तथा पीपल) का चूर्ण मिलाकर रख लें, एक 'निष्क' (चार मासा) परिमित औषधि लेकर पान के रस के साथ सेवन करें तो वातपित्त ज्वर को नष्ट करता है। इसका नाम 'ज्वरांकुश रस'। यह सब ज्वरों का विनाशक है। यह ऐकाहिक, द्व्याहिक (चातुर्थक विपर्यय) एवं तृतीयक ज्वर को नष्ट करता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

**वक्तव्य**-मृगशृंग को उष्ण जल से धोकर तथा आरी से टुकड़े बनाकर ज्वालामुखी द्रव्य के सन्दिग्ध होने के कारण घीकुआर के रस में मिलाकर चूल्हे पर न पकाकर पुट द्वारा पाक कर दिया जाता है और भस्म बना ली जाती है। यदि एक पुट में मृदुभस्म न बने तो और पुटें दें देना भी उचित होता है।

### ज्वरारि रस

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धके।
सर्वमेतत् समं शुद्धं कारवेल्लीरसैर्दिनम्।। 45।।
मर्दयेल्लेपयेत् तेन ताम्रपात्रोदरं भिषक्।
अङ्गुल्यर्धप्रमाणेन ततो रुद्ध्वा च तन्मुखम्।। 46।।
पचेत् तं बालुकायन्त्रे क्षिप्त्वा धान्यानि तन्मुखे।
यदा स्फुटन्ति धान्यानि तदा सिद्धं विनिर्दिशेत्।। 47।।
ततो नयेत् स्वाङ्गशीतं ताम्रपात्रोदराद्भिषक्।
रसं ज्वरारिनामानं विचूर्ण्य मरिचैः समम्।। 48।।
माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम्।
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम्।। 49।।

शुद्ध हरिताल, शुद्ध तूतिया, शुद्ध टंकण (सोहागा) एवं शुद्ध गन्धक, इन सबको समान भाग लेकर करेले की पत्ती अथवा फल के रस के साथ एक दिन मर्दन करे और जब लेई-सी हो जाये तो इसका आधा अंगुल मोटा लेप ताम्रपात्र के उदर (भीतर) में कर दें और पात्र का मुख बन्द करके बालुकायन्त्र में पकायें (एक दूसरे पात्र में उक्त ताम्रपात्र को अधोमुख करके रख दें और ऊपर से बालु भर दें। यही बालुकायन्त्र है) बालु पर धान्य (जौ, चावल आदि) रख दें, जब धान्य स्फुटित हो जाये अर्थात् उसका लावा बन जाये तो समझ लें कि रस सिद्ध हो गया है। तत्पश्चात् स्वांगशीतल होने पर ताम्र पात्र के उदर में से औषध को निकाल लें और उसका चूर्ण बना लें। इसका नाम 'ज्वरारि रस' है। इसको समान भाग मरिच के साथ मिलाकर एक माशा औषध पान के पत्ते में रखकर खायें। यह तीन दिन में भीषण विषम ज्वर अर्थात् एकाहिक, द्वितीयक, तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**-पारद और गन्धक की कज्जली पहले ही बना लेनी चाहिये। इसमें दी गयी मात्रा आज की दृष्टि से अधिक है। अतः वैद्य विचार कर मात्रा निर्धारित करें।

### शीतारि रस

तालकं तुत्थकं ताम्रं रसं गन्धं मनःशिलाम्।
कर्षं कर्षं प्रयोक्तव्यं मर्दयेत् त्रिफलाम्बुभिः।। 50।।

**गोलं न्यसेत् सम्पुटके पुटं दद्यात् प्रयत्नतः।**
**ततो नीत्वाऽर्कदुग्धेन वज्रीदुग्धेन सप्तधा।। 51।।**
**क्वाथेन दन्त्याः श्यामाया भावयेत्सप्तधा पुनः।**
**माषमात्रं रसं दिव्यं पञ्चाशन्मरिचैर्युतम्।। 52।।**
**गुडं गद्याणकं चैव तुलसीदलयुग्मकम्।**
**भक्षयेत् त्रिदिनं भक्त्या शीतारिर्दुर्लभः परः।। 53।।**
**पथ्यं दुग्धौदनं देयं विषमं शीतपूर्वकम्।**
**दाहपूर्वं हरत्याशु तृतीयकचतुर्थकौ।। 54।।**
**द्व्याहिकं सततं चैव वैवर्ण्यं च नियच्छति।**

शुद्ध हरिताल, शुद्ध तूतिया, ताम्रभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक तथा शुद्ध मैनसिल प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष (1-1 तोला) लेकर त्रिफला (6 तोला) के क्वाथ से मर्दन करें, फिर गोला बनाकर सम्पुट में रख दें और मृदु-मृदु पुट दें। स्वांगशीतल हो जाने पर उसे सम्पुट में से निकालकर आक के दूध तथा थूहर के दूध की सात-सात भावना दें और दन्ती तथा काली निसोत के क्वाथ की सात-सात भावना दें, फिर इस उत्तम रस को पचास दाना मरिच, छः माशा गुड़ तथा दो पत्ते तुलसी के साथ लपेट कर तीन दिन तक भक्तिपूर्वक (श्रद्धा के साथ) सेवन करें। यह 'शीतारिरस' परम दुर्लभ है। इसकी मात्रा एक माशा है। इसमें दूध-भात का पथ्य देना चाहिये। यह रस शीतपूर्वक (जड़ैया) ज्वर को, दाहपूर्वक विषम ज्वर को तृतीयक तथा चतुर्थक ज्वर को शीघ्र ही नष्ट कर देता है और दो-दो दिन पर आने वाले तथा सतत (8 पहर में दो बार आने वाले) ज्वर को तथा विवर्णता को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**-सर्वप्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बना लें। इस रस में तूतिया तथा ताम्र के अतिरिक्त अन्य सभी द्रव्य उड़ने वाले हैं, अतः ऐसी पुट दें, जिससे उड़नशील द्रव्य उड़ न जाये केवल पिघल सके। इसकी मात्रा एक माशा नहीं अपितु आधी या चौथाई रत्ती देनी चाहिये।

### ज्वरघ्नी गुटिका

**भागैकः स्याद् रसाच्छुद्धादैलेयः पिप्पली शिवा।। 55।।**
**आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन शोधितः।**
**फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता अमी।। 56।।**
**एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिन्द्रवारुणिकारसैः।**
**माषोन्मितां गुटीं कृत्वा दद्यात् सर्वज्वरे बुधः।। 57।।**
**छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी गुटिका मता।**



पारद, एलुआ (मुसब्बर), पीपल, हरड़, अकरकरा तथा कटु (सरसों के) तेल द्वारा शुद्ध किया हुआ गन्धक प्रत्येक द्रव्य एक-एक भाग (1-1 तोला) और इन्द्रायण के सूखे फल चार भाग (5 तोला) सबको एक साथ पीसकर इन्द्रायण के फलों के रस के योग से एक माशा की गोली बनायें और गिलोय के रस के साथ सब प्रकार के ज्वरों में दें। इसका नाम 'ज्वरघ्नी गुटिका' है।

**वक्तव्य**-'एलेय' शब्द विवादग्रस्त है। कुछ लोग इसे एलुआ या मुसब्बर मानते हैं, तो कुल एलबालुक नामक सुगन्धिद्रव्य। वैद्यों का बहुमत 'मुसब्बर' की ओर ही है।

### लोकनाथ रस

**शुद्धो बुभुक्षितः सूतो भागद्वयमितो भवेत्।। 58।।**
**तथा गन्धस्य भागौ द्वौ कुर्यात्कज्जलिकां तयोः।**
**सूताच्चतुर्गुणेष्वेव कपर्देषु विनिक्षिपेत्।। 59।।**
**भागैकं टङ्कणं दत्त्वा गोक्षीरेण विमर्दयेत्।**
**(ततस्तेनकपर्दानां मुखान्यामुद्रयेद् भिषक्।। 60।।)**
**तथा शङ्खस्य खण्डानां भागानष्टौ प्रकल्पयेत्।**
**क्षिपेत् सर्वं पुटस्यान्तश्चूर्णलिप्तशरावयोः।। 61।।**
**गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पुटेद् गजपुटेन च।**
**स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पिष्ट्वा तत् सर्वमेकतः।। 62।।**
**षड्गुञ्जासम्मितं चूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः।**
**घृतेन वातजे दद्यान्नवनीतेन पित्तजे।। 63।।**
**क्षौद्रेण श्लेष्मजे दद्यादतीसारे क्षये तथा।**
**अरुचौ ग्रहणीरोगे कार्श्ये मन्दानले तथा।। 64।।**
**कासश्वासेषु गुल्मेषु लोकनाथरसो हितः।**
**तस्योपरि घृतान्नं च भुञ्जीत कवलत्रयम्।। 65।।**
**मञ्चे क्षणैकमुत्तानः शयीतानुपधानके।**
**अनम्लमन्नं सघृतं भुञ्जीत मधुरं दधि।। 66।।**
**प्रायेण जाङ्गलं मांसं प्रदेयं घृतपाचितम्।**
**सदुग्धभक्तं दद्याच्च जातेऽग्नौ सान्ध्यभोजने।। 67।।**
**सघृतान् मुद्गवटकान् व्यञ्जनेष्ववचारयेत्।**
**तिलामलककल्केन स्नापयेत् सर्पिषाऽथवा।। 68।।**
**अभ्यञ्जयेत् सर्पिषा च स्नानं कोष्णोदकेन च।**
**क्वचित्तैलं न गृह्णीयान्न बिल्वं कारवेल्लकम्।। 69।।**
**वार्ताकं शफरीं चिञ्चां त्यजेद् व्यायाममैथुने।**
**मद्यं सन्धानकं हिङ्गु शुण्ठीं माषान्मसूरकान्।। 70।।**
**कूष्माण्डं राजिकां कोपं काञ्जिकं चैव वर्जयेत्।**
**त्यजेदयुक्तनिद्रां च कांस्यपात्रे च भोजनम्।। 71।।**

ककारादियुतं सर्वं त्यजेच्छाकफलादिकम्।
पथ्योऽयं लोकनाथस्तु शुभनक्षत्रवासरे।। 72।।
पूर्णातिथौ सिते पक्षे जाते चन्द्रबले तथा।
पूजयित्वा लोकनाथं कुमारीं भोजयेत् ततः।। 73।।
दानं दत्त्वा द्विघटिकामध्ये ग्राह्यो रसोत्तमः।
रसाच्चेज्जायते तापस्तदा शर्करया युतम्।। 74।।
सत्त्वं गुडूच्या गृह्णीयाद् वंशरोचनया युतम्।
खर्जूरं दाडिमं द्राक्षामिक्षुखण्डानि चारयेत्।। 75।।
अरुचौ निस्तुषं धान्यं घृतभृष्टं सशर्करम्।
दद्यात् तथा ज्वरे धान्यगुडूचीक्वाथमाहरेत्।। 76।।
उशीरवासकक्वाथं दद्यात् समधुशर्करम्।
रक्तपित्ते कफे श्वासे कासे च स्वरसङ्क्षये।। 77।।
अग्निभृष्टजयाचूर्णं मधुना निशि दीयते।
निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां मन्दपावके।। 78।।
सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णोदकैः पिबेत्।
शूलेऽजीर्णे तथा कृष्णा मधुयुक्ता ज्वरे हिता।। 79।।
प्लीहोदरे वातरक्ते छर्द्यां चैव गुदाङ्कुरे।
नासिकादिषु रक्तेषु रसं दाडिमपुष्पजम्।। 80।।
दूर्वायाः स्वरसं नस्ये प्रदद्याच्छर्करायुतम्।
कोलमज्जा कणा बर्हिपक्षभस्म सशर्करम्।। 81।।
मधुना लेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्य शान्तये।
विधिरेष प्रयोज्यस्तु सर्वस्मिन् पोट्टलीरसे।। 82।।
मृगाङ्के हेमगर्भे च मौक्तिकाख्येऽपरेषु च।
इत्ययं लोकनाथाख्यो रसः सर्वरुजो जयेत्।। 83।।

शुद्ध तथा बुभुक्षित पारद दो भाग और शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर दोनों को कज्जली बना लें, तत्पश्चात् इस कज्जली को पारद से चौगुनी कौड़ियों में भर दें। फिर एक भाग टंकण (सोहागा) को गोदुग्ध से पीस लें और इससे कौड़ियों के मुख बन्द कर दें तथा शंख के टुकड़े आठ भाग ले, फिर इन दोनों को चूना से लिपे हुये दो सिकोरों के सम्पुट में डालकर कपड़मिट्टी कर दें। फिर इसको एक हाथ भर गहरे गड्ढे में अथवा गजपुट में रखकर पुट दें दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर सबको एक साथ पीसकर रख लें। उसमें से छः रत्ती की मात्रा उन्नतीस मिरचों के चूर्ण तथा घी के साथ मिलाकर वातरोगों में, नवनीत (मक्खन) के साथ पित्तरोगों में तथा मधु के साथ कफरोगों में दें। उपर्युक्त अनुपानों के साथ अतिसार, क्षय, अरुचि, ग्रहणीरोग, कृशता, मन्दाग्नि, कास, श्वास तथा गुल्म में यह लोकनाथ नामक रस लाभदायक होता है। इसका सेवन करते ही घृत-मिश्रित भात के तीन ग्रास खायें और तकिया रहित मंच (पलंग) पर एक क्षण भर (10-20 मिनट) उत्तान (चित्त) होकर शयन करें। अम्ल रहित तथा घृत युक्त अन्न तथा मीठी दही खायें। घी से पकाया हुआ जांगल देश के प्राणियों (हरिण आदि) का मांस तथा दूध-भात देना चाहिये। जब जठराग्नि बढ़ जाये अर्थात् पाचनशक्ति प्रबल हो जाये तो सायंकाल भोजन के समय घी में पकाये हुये मूँग के बड़े बनाकर खिलायें, आवश्यकतानुसार तिल तथा आँवलों के कल्क में घी मिलाकर उबटन करें, अथवा केवल घी (पुराना घी मिले तो और भी उत्तम) की मालिश करें, और उष्ण जल से स्नान करें। तेल का कहीं भी (खाने या लगाने में) प्रयोग न करें। बेल का शर्बत, मुरब्बा आदि, करेला, बैंगन, मछली, इमली, व्यायाम तथा मैथुन का सेवन न करें। सभी प्रकार के मद्य, सिरका, अचार आदि सन्धान, हींग, सोंठ, उड़द की दाल, मसूर की दाल, कोहड़ा, राई, क्रोध तथा काँजी का परित्याग करें। अनुचित निद्रा तथा काँसे के पात्र में भोजन न करें और सब ककारादि शाक तथा फल आदि (**'कूष्मण्डं कर्कटी चैव कलिङ्गं कारवेल्लकम्। कुसुम्भिका च कर्कोटी कलम्बी काकमाचिका। ककाराष्टकमेतद्धि वर्ययेद् रसभक्षकः।'**) का परित्याग करें। ये सभी लोकनाथ रस के सेवनकाल में पथ्य तथा अपथ्य है। शुभ नक्षत्र, बार, पूर्णातिथि (पञ्चमी, दशमी तथा पूर्णिमा) में, शुक्ल पक्ष में एवं चन्द्रमा के प्रबल होने पर भगवान् लोकनाथ की पूजा करके तथा कुमारी कन्याओं को भोजन कराकर और यथाशक्ति कुछ दान देकर इस रस अथवा सभी रसों का सेवन करें। यदि रस-सेवन के पश्चात् सन्ताप (गर्मी) हो तो चीनी मिलाकर गिलोय का सत्त्व अथवा वंशलोचन, खजूर, अनार, मुनक्का तथा इक्षुखण्ड (गंडेरी) का सेवन करें। लोकनाथ रस के अनुपान अरुचि में तुष (छिलका) रहित धान्य (चावल, जौ या धनियाँ) को घी में भूनकर तथा चीनी मिला कर दें। ज्वर में धनिया तथा गिलोय का क्वाथ दें। रक्तपित्त, कफविकार, श्वास, कास तथा स्वरभेद में खस तथा अडूसा की पत्ती का क्वाथ मधु और खाँड मिलाकर दें। निद्रानाश, अतिसार, ग्रहणीरोग तथा मन्दाग्नि में रात को सोते समय आग द्वारा भुनी हुई भाँग को मधु के साथ लेना चाहिये। शूल तथा अजीर्ण में काला नमक, हरड़ तथा पीपल का चूर्ण उष्ण जल के साथ पीना चाहिये। ज्वर (जीर्ण ज्वर) में पीपल के चूर्ण के साथ मधु मिलाकर खाना चाहिये।

प्लीहोदर, वातरक्त छर्दि, बवासीर तथा नासिका आदि द्वारा रक्तस्राव होने पर अनार के फूलों का रस खाँड मिलाकर देना चाहिये और सफेद दूब के रस की नस्य देनी चाहिये और छर्दि तथा हिचकी के कोप को शान्त करने के लिए बेर की गिरी, पीपल तथा मोर के पंख की भस्म को मधु मिलाकर देना चाहिये। यही विधि मृगांकपोट्टली, हेमगर्भपोट्टली, द्वितीय-हेमगर्भपोट्टली रस और सभी रसों में प्रयुक्त करनी चाहिये। यह 'लोकनाथ' नामक रस सभी रोगों को जीतता है।

**वक्तव्य**-कौड़ियाँ भारी, पीली तथा गठीली लेनी चाहिये। यथा-'**तुलनायां गुरुतरान्, पञ्चगुल्मान् दशद्विजान्। वराटान् स्थूलपीतांश्च रसकर्मणि योजयेत्।।**' उक्त रस के वर्णन में जो-जो पथ्य, अपथ्य एवं अनुपान कहे गये हैं, उन्हें भली-भाँति स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि इनका प्राय: सभी रसों में प्रयोग किया जा सकता है।

### लघु लोकनाथ रस

**(वराटभस्म मण्डूरं चूर्णयित्वा घृते पचेत्।**
**तत्समं मारिचं चूर्णं नागवल्ल्या विभावितम्।। 84।।**
**तच्चूर्णं मधुना लेह्यमथवा नवनीतकैः।**
**माषमात्रं क्षयं हन्ति यामे यामे च भक्षितम्।। 85।।**
**लोकनाथरसो ह्येष मण्डलाद् राजयक्ष्मनुत्।)**

वराटिका (कौड़ी की) भस्म एवं मण्डूर की भस्म को समान भाग में लेकर दोनों को समान भाग घी में पकायें। जब घी पक जाये या जीर्ण हो जाये तो चूल्हे पर से उतार कर पीस लें और इसमें समान भाग मरिच का कपड़छन चूर्ण मिलाकर पान के रस की भावना देकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को मधु अथवा मथन के साथ खाना चाहिये। इसकी एक-एक माशा की मात्रा एक-एक पहर में खाने से राजयक्ष्मा को नष्ट करती है। यह 'लघुलोकनाथ रस' है।

**वक्तव्य**-उक्त रस का सेवन एक दिन में 7-8 बार करना चाहिये। '**मण्डलात्**' शब्द का अर्थ याज्ञवल्क्यस्मृति 1.354 की मिताक्षरा टीका में चार, छः, आठा, बारह या इससे भी अधिक बार कहा गया है जो यहाँ प्रसंगोचित है।

### मृगाङ्कपोट्टली रस

**भूर्जवत् तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत्।। 86।।**
**तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत्।**
**काञ्चनाररसेनैव ज्वालामुखया रसेन वा।। 87।।**
**लाङ्गल्या वा रसैस्तावद् यावद्भवति पिष्टिका।**
**ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टङ्कणं तत्र निक्षिपेत्।। 88।।**
**पिष्टमौक्तिकचूर्णं च हेमद्विगुणमावपेत्।**
**तेषु सर्वसमं गन्धं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत्।। 89।।**
**तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत्।**
**पश्चान्मृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत्।। 90।।**
**शरावसम्पुटस्यान्तस्तत्र मुद्रां प्रदापयेत्।**
**लवणापूरिते भाण्डे धारयेत् तं च सम्पुटम्।। 91।।**
**मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयः पुटेत्।**
**ततः शीते समाहृत्य गन्धं सूतसमं क्षिपेत्।। 92।।**
**घृष्ट्वा च पूर्ववत् खल्वे पुटेद् गजपुटेन च।**
**स्वाङ्गशीतं ततो नीत्वा गुञ्जायुग्मं प्रयोजयेत्।। 93।।**
**अष्टभिर्मरिचैर्युक्तं कृष्णात्रययुतोऽथवा।**
**विलोक्य देयो दोषादीनेकैका रसरक्तिका।। 94।।**
**सर्पिषा मधुना वापि दद्याद् दोषाद्यपेक्षया।**
**लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात् स्वस्थमनाः शुचिः।। 95।।**
**श्लेष्माणं ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम्।**
**मृगाङ्कोऽयं रसो हन्यात् कृशत्वं बलहीनताम्।। 96।।**

सुवर्ण के भोजपत्र जैसे पतले-पतले पत्र बनवा लें और इसको समान भाग पारद के साथ खरल में डालकर कचनार के रस, ज्वालामुखी के रस अथवा कलिहारी के रस से तब तक मर्दन करें, जब तक सुवर्ण और पारद की पीठी-सी बन जाये। तत्पश्चात् सुवर्ण से चतुर्थांश टङ्कण (सोहागा) डाल दें और सुवर्ण से द्विगुण-मोती का पिसा हुआ चूर्ण मिला दें तथा सबके समान भाग शुद्ध गन्धक डालकर एक साथ भली-भाँति मर्दन करें। तत्पश्चात् उपर्युक्त रसों के योग से इनका गोला बनाकर कपड़ों से लपेट दें। तदनन्तर मिट्टी का मोटा लेप देकर और सुखा कर दो शरावों (सिकोरों) के सम्पुट में रख दें और भली-भाँति सन्धिरोध कर दें। तत्पश्चात् सम्पुट को नमक के चूर्ण से भरे हुये पात्र (लवण-यन्त्र) में दबाकर रख दें फिर इस पात्र का बन्द करके बहुत से उपलों की पुट दें। तत्पश्चात् स्वांगशीतल हो जाने पर निकाल कर पारद के समान भाग गन्धक डालकर खरल में मर्दन करके पूर्ववत् 1 गजपुट में पुट दे दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर रख लें। इसमें से दो रत्ती की मात्रा आठ मरिचों के चूर्ण के साथ अथवा तीन पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर देनी चाहिये, अथवा दोष, देश तथा रोगी की शारीरिक स्थिति को देखकर एक-एक रत्ती का मात्रा दें। दोष तथा रोग आदि का विचार करके घी तथा मधु के साथ भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

स्वस्थचित्त तथा पवित्र होकर लोकनाथ रस के समान ही पथ्यादि का सेवन करें। यह 'मृगाङ्करस' कफरोग, ग्रहणीरोग, कास, श्वास, क्षय, अरुचि, कृशता तथा दुर्बलता को नष्ट करता है।

**हेमगर्भपोट्टली रस**

**सूतात् पादप्रमाणेन हेम्नः पिष्टं प्रकल्पयेत्।**
**तयोः स्याद् द्विगुणो गन्धो मर्दयेत्काञ्चनारिणा।। 97।।**
**कृत्वा गोलं क्षिपेन्मूषासम्पुटे मुद्रयेत् ततः।**
**पचेद् भूधरयन्त्रेण वासरत्रितयं बुधः।। 98।।**
**तत उद्धृत्य तत्सर्वं दद्याद् गन्धं च तत्समम्।**
**मर्दयेदार्दकरसैश्चित्रकस्वरसेन च।। 99।।**
**स्थूलपीतवराटांश्च पूरयेत् तेन युक्तितः।**
**एतस्मादौषधात् कुर्यादष्टमांशेन टङ्कणम्।। 100।।**
**टङ्कणार्धं विषं दत्त्वा पिष्ट्वा सेहुण्डदुग्धकैः।**
**मुद्रयेत् तेन कल्केन वराटानां मुखानि च।। 101।।**
**भाण्डे चूर्णप्रलिप्ते च धृत्वा मुद्रां प्रदापयेत्।**
**गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पुटेद् गजपुटेन च।। 102।।**
**स्वाङ्गशीतं रसं ज्ञात्वा प्रदद्याल्लोकनाथवत्।**
**पथ्यं मृगाङ्कवज्ज्ञेयं त्रिदिनं लवणं त्यजेत्।। 103।।**
**यदा छर्दिर्भवेत् तस्य दद्याच्छिन्नाश्रृतं तदा।**
**मधुयुक्तं तथा श्लेष्मकोपे दद्याद् गुडार्द्रकम्।। 104।।**
**विरेके भर्जिता भङ्गा प्रदेया दधिसंयुता।**
**जयेत् कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमरुचिं तथा।। 105।।**
**अग्निं च कुरुते दीप्तं कफवातं नियच्छति।**
**हेमगर्भः परो ज्ञेयो रसः पोट्टलिकाभिधः।। 106।।**

पारद (4 तोला) से चतुर्थांश सुवर्ण (1 तोला) लेकर दोनों की पीठी बनायें, फिर दोनों से दुगुनी (10 तोला) शुद्ध गन्धक मिलाकर कचनार की छाल के क्वाथ से मर्दन करें। उसके बाद गोला बनाकर मूषासम्पुट में रखकर कपड़मिट्टी से सन्धिरोध कर दें। तत्पश्चात् भूधरयन्त्र द्वारा तीन दिन-पर्यन्त इस सम्पुट का पाक करके निकालकर सब द्रव्यों के समान भाग में शुद्ध गन्धक मिला दें और आर्द्रक (अदरख) तथा चित्रक के स्वरस से मर्दन करें। फिर इस औषधि को मोटी तथा पीली कौड़ियों में भर दें। इस औषध से अष्टमांश टंकण (सोहागा) और टंकण से आधा विष (मीठा तेलिया) लेकर दोनों को थूहर के दूध से पीसे और जब कल्क-सा हो जाये तब इस कल्क से कौड़ियों के मुख बन्द करके इन कौड़ियों को चूना से लिपे हुये पात्र में रखकर उसका मुख बन्द कर एक हाथ गहरे गड्ढे में रखकर पुट दें और स्वांगशीतल हो जाने पर निकाल लें। लोकनाथ रस की भाँति इसका भी प्रयोग करें। पथ्य लोकनाथ रस के समान देना चाहिये और तीन दिन पर्यन्त लवण का परित्याग कर दें। यदि रोगी को छर्दि या कै हो तो इसका प्रयोग गिलोय के रस के साथ करना चाहिये। कफरोगों में मधु और अदरख के रस के साथ देना चाहिये। अतिसार में भुनी हुई भाँग दही में मिलाकर देनी चाहिये। यह रस कास, श्वास, ग्रहणीरोग तथा अरुचि को जीतता है, जठराग्नि को दीप्त करता है तथा कफवात के विकारों को रोकता है। यह 'हेमगर्भपोट्टली' नामक रस बहुत उत्तम औषध है।

**वक्तव्य**–भूधरयन्त्र की विधि यह है–पृथ्वी में गड्ढा खोद लिया जाता है और उसमें औषधि का सम्पुट रखकर ऊपर थोड़ा बालू बिछा देते हैं और उपलों का पुट दे देते हैं। यथा–**'बालुकागूढसर्वाङ्गां गर्त्ते मूषां रसान्विताम्। दीप्तोपलैः संवृणुयाद् यन्त्रं तद् भूधराभिधम्'।।**

**दूसरा हेमगर्भपोट्टली रस**

**रसस्य भागाश्चत्वारस्तावन्तः कनकस्य च।**
**तयोश्च पिष्टिकां कृत्वा गन्धो द्वादशभागिकः।। 107।।**
**कुर्यात् कज्जलिकां तेषां मुक्ताभागाश्च षोडश।**
**चतुर्विंशच्च शङ्खस्य भागैकं टङ्कणस्य च।। 108।।**
**एकत्र मर्दयेत् सर्वं पक्वनिम्बूकजै रसैः।**
**कृत्वा तेषां ततो गोलं मूषासम्पुटके न्यसेत्।। 109।।**
**मुद्रां दत्त्वा ततो हस्तमात्रे गर्ते च गोमयैः।**
**पुटेद् गजपुटनैव स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।। 110।।**
**पिष्ट्वा गुञ्जाचतुर्मानं दद्याद् गव्याज्यसंयुतम्।**
**एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैः सह दीयते।। 111।।**
**राजते मृन्मये पात्रे काचजे वाऽवलेहयेत्।**
**लोकनाथसमं पथ्यं कुर्य्याच्च स्वस्थमानसः।। 112।।**
**कासे श्वासे क्षये वाते कफे ग्रहणिकागदे।**
**अतीसारे प्रयोक्तव्या पोट्टली हेमगर्भिका।। 113।।**

पारद चार भाग (4 तोला) और सुवर्ण चार भाग (4 तोला) दोनों को खरल में डालकर मर्दन करें और पीठी बना लें, फिर इसमें बारह भाग (12 तोला) शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली बना लें। मोतीभस्म 16 भाग (16 तोला), शंखभस्म 24 भाग (24 तोला) और टंकण भस्म 1 भाग (1 तोला) इन सबको एक साथ मिलाकर नींबू के रस से मर्दन करे। तत्पश्चात् गोला बनाकर मूषासम्पुट में भरकर कपड़मिट्टी द्वारा

सन्धिरोध कर दें। सूख जाने पर एक हाथ गहरे गड्ढे में अथवा गजपुटों में उपलों द्वारा पुट दे दें, स्वांगशीतल होने पर उसे निकाल लें। इसको पीसकर चार रत्ती की मात्रा लेकर घी मधु तथा उनतीस काली मीरच के चूर्ण के साथ मिलाकर दी जाती है। इसे चाँदी, मिट्टी, काँच अथवा सुवर्ण के पात्र (कटोरी) में मिलाकर चाटना चाहिये। इसके सेवन काल में स्वस्थचित्त होकर लोकनाथ रस के समान पथ्य करना चाहिये। यह 'हेमगर्भपोट्टली' कास, श्वास, क्षय, वातव्याधि, कफव्याधि, ग्रहणीरोग तथा अतिसार रोग में प्रयुक्त करनी चाहिये।

**वक्तव्य**–मृगाङ्कपोट्टली तथा द्वितीय हेमगर्भपोट्टली नामक रसों का निर्माण-प्रकार प्राय: समान ही है। इनके विषय में एक बात विचारणीय यह है कि कुछ चिकित्सकों तथा धनिकों के यहाँ हेमगर्भपोट्टली या हिरण्यगर्भपोट्टली नामक रस शिवलिङ्गाकार या गुटिकाकार या बड़े बेर के समान आकृति वाले देखे जाते हैं। उनका घिसकर प्रयोग किया जाता है और वह 'पोटली' नाम भी प्रमाणित करता है कि वह गुटिकाकार हो, किन्तु **'पुटेद् गजपुटेन च'** मृगाङ्कपोट्टली में और **'पुटेद् गजपुटेनैव'** द्वितीय हेमगर्भपोट्टली में गजपुट देने का विधान किया है। इतनी अधिक आँच देने पर औषधि चूर्ण के आकार की प्राप्त होती है। अत: इसमें गजपुट न देकर इतनी पुट देनी चाहिये जिससे गन्धक पूर्णरूप से जीर्ण न होने पाये, केवल पिघलकर गुटिकाकार बन जाये, यदि कभी अधिक सन्ताप के कारण गन्धक जीर्ण भी हो जाये तो दुबारा गन्धक डालकर गोला बनाकर, कपड़ा लपेटकर, मिट्टी से लीपकर, मूषा-सम्पुट में रखकर, लवणयन्त्र में दबाकर मृदु पुट दें, ऐसा करने से पुन: पोटली तैयार हो जायेगी। गन्धक जीर्ण होने पर हो सकता है कि पारद भी उड़ जाये। इस दशा में पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर मिलानी चाहिये। मृगाङ्कपोट्टली में पिसा हुआ मौक्तिक चूर्ण दिया जाता है। अत: उसका तौल भी एक तृतीयांश घट जाती है।

### द्वितीय ज्वरांकुश

**शुद्धसूतो विषं गन्धः प्रत्येकं शाणसम्मिताः।**
**धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात् सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत्।। 114।।**
**हेमाह्वा कारयेदेषां सूक्ष्मं चूर्णं प्रयत्नतः।**
**देयं जम्बीरमज्जाभिश्चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम्।। 115।।**
**आर्द्रकस्वरसैर्वापि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम्।**
**एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं वा चतुर्थकम्।। 116।।**
**विषमं च ज्वरं हन्याद् विख्यातोऽयं ज्वराङ्कुशः।**

शुद्ध पारद, शुद्ध विष (मीठा तेलिया) तथा शुद्ध गन्धक प्रत्येक द्रव्य एक-एक शाण (4-4 आना भर), धत्तूर के बीज (शुद्ध) तीन शाण (12 आना भर) और सबसे दुगुना (1½ तोला) सत्यानाशी (चोक) लें। इन सबका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसकी दो रत्ती की मात्रा जम्बीरी नींबू के बीजों की मज्जा (गिरी) के साथ अथवा अदरक के रस के साथ देनी चाहिये। यह त्रिदोषजनित ज्वर को नष्ट करता है और ऐकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक तथा चतुर्थक नामक विषम ज्वर को नष्ट करता है। यह औषष 'ज्वरांकुश' नाम से प्रसिद्ध है।

**धत्तूरबीज-शोधन**–धत्तूर के बीजों को गोमूत्र में चार पहर तक भिगोकर, फिर उन्हें कूट कर छिलका उतार कर उसकी गिरी को योगों में प्रयुक्त करें।

**वक्तव्य**–विष का शोधन इसी अध्याय के अन्त में देखें। सत्यानाशी अर्थात् बनभाण्ट की जड़ का नाम 'चोक' है। आवश्यकता पड़ने पर इसके जड़ की छाल लेनी चाहिये।

### आनन्दभैरव रस

**दरदं वत्सनाभं च मरिचं टङ्कणं कणाम्।। 117।।**
**चूर्णयेत् समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः।**
**गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत्।। 118।।**
**मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलं त्वचम्।**
**चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारजित्।। 119।।**
**दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं गवाज्यं तक्रमेव च।**
**पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि।। 120।।**

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध विष (वत्सनाभ), मरिच, भुना हुआ सोहागा तथा पीपल-इन सबको समान भाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस रस का नाम 'आनन्दभैरव' है। इसकी एक अथवा दो रत्ती को मात्रा रोगी का बल देखकर प्रयुक्त करनी चाहिये और मधु के साथ चटानी चाहिये। अनुपान में कुरैया के फल अर्थात् इन्द्रजौ अथवा उसकी छाल का चूर्ण एक कर्ष (1 तोला) भर लेकर मधु के साथ देना चाहिये। यह रस त्रिदोषज अतिसार को जीतता है। पथ्य में दही भात और गाय अथवा बकरी का तक्र (मट्ठा) देना चाहिये। प्यास में शीतल जल और रात्रि में सोते समय भाँग का चूर्ण देना चाहिये।

**वक्तव्य**-यह योग वैद्य समाज में प्रचलित सुप्रसिद्ध है। अनुपान-भेद से ज्वर आदि रोगों में भी प्रयुक्त किया जाता है।

### सूचिकाभरण रस

विषं पलमितं सूतः शाणिकश्चूर्णयेद् द्वयम्।
तच्चूर्णं समुटे क्षिप्त्वा काचलिप्तशरावयोः।। 121।।
मुद्रां दत्त्वा च संशोष्य ततश्चुल्यां निवेशयेत्।
वह्निं शनैः शनैः कुर्यात् प्रहरद्वयसङ्ख्यया।। 122।।
तत उद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थां शरावकात्।
संलग्नो यो भवेत्र सूतस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः।। 123।।
वायुस्पर्शो यथा न स्यात् तथा कुप्यां निवेशयेत्।
यावत्सूच्या मुखे लग्नं कुप्या निर्याति भेषजम्।। 124।।
तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि।
क्षुरेण प्रच्छिते मूर्ध्नि तत्राङ्गुल्या च घर्षयेत्।। 125।।
रक्तभेषजसम्पर्कान्मूर्च्छितोऽपि हि जीवति।
तथैव सर्पदष्टस्तु मृतावस्थोऽपि जीवति।। 126।।
यदा तापो भवेत् तस्य मधुरं तत्र दीयते।

विष (वत्सनाभ या मीठा तेलिया) एक पल (4 तोला) और शुद्ध पारद एक शाण (4 आना भर), इन दोनों को एक साथ भली-भाँति पीसना चाहिये। फिर इस चूर्ण को काँच-लिप्त (काँच के अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण को जल में पीसकर लेप करना चाहिये) दो सिकोरों के सम्पुट में रखकर कपड़मिट्टी से सन्धिरोध कर दें। फिर सुखा कर चूल्हे पर रख दें और दो पहर तक धीमी-धीमी आँच दें। स्वांगशीतल हो जाने पर सम्पुट को खोलकर ऊपर वाले सिकोरे में लगा हुआ जो पारद हो उसे धीरे-धीरे ले लें। जैसे वायु का स्पर्श न हो वैसे शीशी में डालकर रख दें। जितनी औषध शीशी में से सुई के अग्रभाग में लगकर निकले, उतनी ही मात्रा मूर्च्छित रोगी तथा सन्निपात रोगी में प्रयुक्त करनी चाहिये।

**प्रयोग-विधि**–रोगी के शिर के तालु-प्रदेश के बालों को उस्तरा से छील कर पच्छ लगायें, जब रक्त निकले तो उस स्थान पर औषधि रखकर अंगुलि से घर्षण करें। इस प्रकार औषध तथा रक्त का संयोग होने से मूर्च्छित रोगी भी होश में आ जाता है। इसी प्रकार प्रयोग करने से साँप द्वारा डँसा हुआ पुरुष, मृत जैसी दशा वाला भी जीवित हो जाता है। जब रोगी को सन्ताप (गर्मी) का अनुभव हो तब मधुर पदार्थ मुनक्का, अंगूर, अनार तथा शर्बत आदि का सेवन कराना चाहिये।

**वक्तव्य**–रक्त चल है, सर्वदा शरीर भर में चलता रहता है, अतः इस औषध को लेकर वह शरीर में चला जाता है। उसके साथ गयी हुई यह औषध शरीर पर अपना प्रभाव करती है, जिससे रोगी को आरोग्य लाभ होता है। खायी हुई औषध भी पचकर रस के साथ मिल जाती है और रक्त में पहुँचकर रोगी के शरीर पर प्रभाव करती है, दोनों प्रकार से एक ही कार्य होता है।

### जलबन्धु रस

सूतभस्मसमं गन्धं गन्धात्पादं मनःशिला।। 127।।
माक्षिकं पिप्पली व्योषं प्रत्येकं शिलया समम्।
चूर्णयेद् भावयेत् पित्तैर्मत्स्यमायूरसम्भवैः।। 128।।
सप्तधा भावयेच्छुष्कं देयं गुञ्जाद्वयं हितम्।
तालपर्णीरसश्चानु पञ्चकोलशृतोऽथवा।। 129।।
जलयोगश्च कर्तव्यस्तेन वीर्यं भवेद् रसे।
जलबन्धुरसो नाम सन्निपातं नियच्छति।। 130।।

पारदभस्म (रससिन्दूर) के समान भाग शुद्ध गन्धक (दोनों 4-4 तोला), गन्धक से चतुर्थांश शुद्ध मैनसिल (1 तोला) और सोनामाखी भस्म, पीपल तथा त्रिकटु (सम्मिलित) प्रत्येक मैनसिल के समान भाग (1-1 तोला) लेकर चूर्ण बना लें और मछली तथा मोर के पित्त से सात-सात भावना दें और सुखाकर दो रत्ती की मात्रा से प्रयुक्त करें। अनुपान में मूली का रस अथवा पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्ता तथा सोंठ) का क्वाथ देना चाहिये। इसका नाम 'जलबन्धुरस' है। यह सन्निपात को रोकता है। इस रस पर 'जलयोग' करना चाहिये, इससे रस की शक्ति बढ़ती है।

### पञ्चवक्त्र रस

शुद्धं सूतं विषं गन्धं मरिचं टङ्कणं कणाम्।
मर्दयेद् धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं च शोषयेत्।। 131।।
पञ्चवक्त्रो रसो नाम द्विगुञ्जः सन्निपातजित्।
अर्कमूलकषायं तु सत्र्यूषमनुपाययेत्।। 132।।
युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत्।
रसेनानेन शाम्यन्ति सक्षौद्रेण कफादयः।। 133।।
मध्वार्द्रकरसं चानु पिबेदग्निविवृद्धये।
यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः।। 134।।

शुद्ध पारद, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, मरिच, टंकण (सोहागा का लावा) तथा पीपल–इन सबको समान भाग में लेकर धत्तूरा के पत्र अथवा फलों के रस से एक दिन भली-भाँति मर्दन करे और सुखा कर रख लें। इसका नाम 'पञ्चवक्त्र' रस है। यह दो रत्ती की मात्रा से 'सन्निपात' को जीतता है। अनुपान में आक की जड़ का क्वाथ त्रिकटु मिलाकर

पीना चाहिये। पथ्य में दही-भात देना चाहिये और जलयोग कराना चाहिये। मधु के साथ रस का सेवन करने से कफ जनित रोग शान्त हो जाते हैं। जठराग्नि की वृद्धि के लिए मधु और अदरक के रस का अनुपान देना चाहिये और पथ्य में पर्याप्त घी तथा मांस का भक्षण करना चाहिये। इससें जठराग्नि बलवान् हो जाती है।

### उन्मत्त रस

**रसं गन्धकतुल्यांशं धत्तूरफलजद्रवैः।**
**मर्दयेद् दिनमेकं तु तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत्।। 135।।**
**उन्मत्ताख्यो रसो नाम्ना नस्ये स्यात् सन्निपातजित्।**

पारद और गन्धक को समान भाग में लेकर (कज्जली बनाकर) धत्तूरा के फल के रस से एक दिन तक मर्दन करें, तत्पश्चात् इसके समान भाग त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) का चूर्ण मिला दें। यह रस 'उन्मत्त' नाम से प्रसिद्ध है और नस्य देने से सन्निपात को जीतता है।

**वक्तव्य**–सन्निपात में आवश्यकतानुसार निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती हैं। यथा–'**लङ्घनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा। अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे।।**' अर्थात् सन्निपात ज्वर में सबसे पहले लंघन या उपवास, बालु द्वारा सफेद स्वेदन, किसी नस्य, निष्ठीवन या लार टपकाना, किसी अवलेह तथा अञ्जन का प्रयोग करना चाहिये।

### सन्निपाताञ्जन

**निस्त्वग्जैपालबीजं च दशनिष्कं विचूर्णयेत्।। 136।।**
**मरिचं पिप्पलीं सूतं प्रतिनिष्कं विमिश्रयेत्।**
**भाव्यो जम्बीरजैर्द्रावैः सप्ताहं सम्प्रयत्नतः।। 137।।**
**रसोऽयमञ्जने दत्तः सन्निपातं विनाशयेत्।**

छिला हुआ जमालगोटा का बीज दस निष्क (40 माशा) लेकर चूर्ण बनायें और मरिच, पीपल तथा रससिन्दूर प्रत्येक एक-एक निष्क (4-4 माशा) लेकर और पीसकर मिला दें। फिर नींबू के रस की सात भावनाएँ यत्नपूर्वक देनी चाहिये। यह अञ्जन आँख में लगाने से सन्निपात को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–सन्निपात से मूर्च्छित रोगी की आँख में उक्त औषध लगाने से मूर्च्छा दूर हो जाती है और चिकित्सा करने में सरलता हो जाती है।

### नाराच रस

**सूतं टङ्कणकं तुल्यं मरिचं सूततुल्यकम्।। 138।।**
**गन्धकं पिप्पलीं शुण्ठीं द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत्।**
**सर्वतुल्यं क्षिपेद् दन्तीबीजं निस्तुषितं भिषक्।। 139।।**
**द्विगुञ्जं रेचनं सिद्धं नाराचोऽयं महारसः।**
**आध्मानं मलविष्टम्भानुदावर्तं च नाशयेत्।। 140।।**

पारद तथा टंकण समान भाग और मरिच पारद के समान अर्थात् तीनों द्रव्य एक-एक भाग (1-1 तोला), गन्धक, पीपल तथा सोठ प्रत्येक दो-दो भाग (2-2 तोला) और तुषरहित जमालगोटा का बीज सबके समान (9 तोला) लेकर एक साथ चूर्ण बनायें। इसकी दो रत्ती की मात्रा से भली-भाँति विरेचन हो जाता है। इस उत्तम रस का नाम 'नाराच रस' है। यह आध्मान (अफरा), मलविष्टम्भ (मल की रुकावट या कब्जियत) तथा उदावर्त्त को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–जमालगोटा छिला हुआ ही नही, अपितु शुद्ध किया हुआ प्रयोग करना चाहिये। शोधन-विधि इसी अध्याय के अन्त में दी गयी है।

### इच्छाभेदी रस

**दरदं टङ्कणं शुण्ठी पिप्पली चैककार्षिकाः।**
**हेमाह्वा पलमात्रा स्याद् दन्तीबीजं च तत्समम्।। 141।।**
**विचूर्ण्यैकत्र सर्वाणि गोदुग्धेनैव पाययेत्।**
**त्रिगुञ्जं रेचनं दद्याद् विष्टम्भाध्मानरोगिषु।। 142।।**

शुद्ध शिंगरफ, टंकण (भुना सुहागा), सोंठ तथा पीपल प्रत्येक एक-एक कर्ष (1-1 तोला), चोक (सत्यानाशी की जड़) एक पल (4 तोला) तथा शुद्ध जयपाल (जमालगोटा) भी चोक के समान भाग (4 तोला) में लेकर सबको एक साथ पीसकर चतुर्गुण (64 तोला) गाय के दुग्ध के साथ सिद्ध करें। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाये तो तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना लें। एक गोली विरेचन के लिए विष्टम्भ (अँतड़ी को गति की रुकावट) तथा अफरा के रोगी को दें।

**वक्तव्य**–उक्त पाठ की व्याख्या श्रीआढमल्ल के अनुसार की गयी है, किन्तु ग्रन्थान्तर में '**साधयेत्**' के स्थान पर '**पाययेत्**' पाठ है। जिसका अर्थ होता है कि उक्त रस को गोदुग्ध के साथ पिलाना चाहिये। यही उचित भी प्रतीत होता है।

### वसन्तकुसुमाकर रस

**द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम्।**
**लोहभस्म त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मनः।। 143।।**

वङ्गभस्म त्रिभागं स्यात् सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
प्रवालं मौक्तिकं चैव रससाम्येन दापयेत्।। 144।।
भावना गव्यदुग्धेन रसैर्घष्ट्वाटरूषकैः।
हरिद्रावारिणा चैव मोचकन्दरसेन च।। 145।।
शतपत्ररसेनापि मालत्याः स्वरसेन च।
पश्चान्मृगमदश्चन्द्रतुलसीरसभावितः ।। 146।।
कुसुमाकर इत्येष वसन्तपदपूर्वकः।
गुञ्जाद्वयं ददीतास्य मधुना सर्वमेहनुत्।। 147।।
सिताचन्दनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित् ।

सुवर्णभस्म दो भाग (2 तोला), अभ्रकभस्म दो भाग (2 तोला) लोहभस्म तीन भाग (3 तोला), रससिन्दूर चार भाग (4 तोला), बंगभस्म तीन भाग (3 तोला), प्रवालभस्म (मूँगाभस्म) तथा मोतीभस्म (अथवा गुलाबजल में पिसा हुआ) चार-चार भाग (4-4 तोला) लेकर सबको एक साथ मर्दन करें और गोदुग्ध, अडूसा का पत्ती का रस, हल्दी का रस, सेमल की मुसली का रस, कमल अथवा गुलाब की पँखुड़ियों का रस तथा चमेली के फूलों का रस इन सबका पृथक्-पृथक् भावना दें। अन्त में कस्तूरी (2 तोला) तथा देशी कपूर (2 तोला) मिलाकर तुलसी के पत्तों के रस की भावना देकर 2-2 रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। यह रस 'वसन्तकुसुमाकर' नाम से प्रसिद्ध है। दो रत्ती की मात्रा मधु के साथ देने से सब प्रकार के प्रमेहों को जीतता है और खाँड तथा चन्दन (घिसा हुआ) के साथ देने से अम्लपित्त आदि रोगों को जीतता है।

**वक्तव्य**—इसमें मिलाने के लिए अभ्रक तथा लोह की भस्में शतपुटी अवश्य होनी चाहिये। इसकी मान्यता विलासी पुरुषों में बहुत अधिक है। मात्रा एक रत्ती ही पर्याप्त है।

### राजमृङ्गाक रस

सूतभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम्।। 148।।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलागन्धकतालकम्।
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत्।। 149।।
वराटान् पूरयेत् तेन छागीक्षीरेण टङ्कणम्।
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तन्निरोधयेत्।। 150।।
शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम्।
रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः।। 151।।
दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ।
सघृतं दापयेत् पथ्यं स्त्रीकोपाग्निश्रमाँस्त्यजेत्।। 152।।
पथ्यं वा लघुमांसानि राजरोगप्रशान्तये।

रससिन्दूर तीन भाग (3 तोला), सुवर्णभस्म एक भाग (1 तोला), ताम्रभस्म एक भाग (1 तोला), शुद्ध मैनसिल, शुद्ध गन्धक तथा शुद्ध हरिताल प्रत्येक दो-दो भाग (2-2 तोला) लेकर एक साथ खरल में डालकर चूर्ण करें और इस चूर्ण से कौड़ियाँ भर दें, तत्पश्चात् बकरी के दूध में पिसे हुये टंकण से कौड़ियों का मुख बन्द कर दें, फिर मिट्टी के पात्र में भरकर कपड़मिट्टी कर दें। सूखने पर गजपुट दें। स्वांगशीतल हो जाने पर पीसकर रख लें। इस रस का नाम 'राजमृगाङ्क' है। चार रत्ती की मात्रा से क्षय को नष्ट करता है। अनुपान में दस पीपल, मधु तथा उन्नतीस कालीमिरच देनी चाहिये। पथ्य में पर्याप्त घी देना चाहिये। मैथुन, क्रोध, अग्निसेवन (तापना) तथा परिश्रम का त्याग करना चाहिये। राजयक्ष्मा की शान्ति के लिए रोगी को हल्के (बकरा आदि के) मांसों का पथ्य देना चाहिये।

### स्वयमग्नि रस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात् खल्वेन कज्जलीम्।। 153।।
तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः।
द्वियामान्ते कृतं गोलं ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत्।। 154।।
आच्छाद्यैरण्डपत्रेण यामार्धेऽत्युष्णता भवेत्।
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादहोरात्रात् समुद्धरेत्।। 155।।
सञ्चूर्ण्यं गालयेद् वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत्।
(भावयेत् कन्यकाद्रावैः सप्तधा भृङ्गजैस्तथा।। 156।।
काकमाचीकुरण्टोत्थद्रवैर्मुण्ड्याः पुनर्नवैः।
सहदेव्यमृतानीलीनिर्गुण्डीचित्रजैस्तथा ।। 157।।
सप्तधा तु पृथग्द्रावैर्भाव्यं शोष्यं तथातपे।
सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां च मुखागतः।। 158।।
अनुभूतो मया सत्यं सर्वरोगगणापहः।
स्वर्णादीन् मारयेदेवं चूर्णीकृत्य तु लोहवत्।। 159।।)
त्रिफलामधुसंयुक्तः सर्वरोगेषु योजयेत्।
त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ।। 160।।
नवभागोन्मितैरेतैः समः पूर्वरसो भवेत्।
सञ्चूर्ण्य लोडयेत् क्षौद्रैर्भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम्।। 161।।
स्वयमग्निरसो नाम्ना क्षयकासनिकृन्तनः।

शुद्ध पारद एक भाग (4 तोला) और शुद्ध गन्धक दो भाग (8 तोला) दोनों को खरल में डालकर कज्जली बनायें। तत्पश्चात् दोनों के समान भाग (12 तोला) तीक्ष्ण लोह (फौलाद) का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर घीकुआर के रस के साथ मर्दन करें, दो पहर के अनन्तर गोला बनाकर ताम्र पात्र में

रखकर इस पात्र को एरण्ड के पत्तों में लपेट कर धूप में रख दें। आधे पहर (1½ घण्टा) के पश्चात् जब अत्यन्त उष्ण (गर्म) हो जाये तब धान्यराशि (गेहूँ के ढेर) में दबा दें और आठ पहर के पश्चात् निकाल लें फिर इसे कपड़े में से छान लें। यह कज्जली और लोह का मिश्रण अवश्य वारितर (जल पर तैरने वाला) हो जाता है। फिर इसे घीकुआर के रस की सात भावना दें तथा भाँगरा, मकोय, कटसरैया, मुण्डी, पुनर्नवा, सहदेवी, गिलोय, नील, सम्भालू और चीता के रस अथवा क्वाथ की पृथक्-पृथक् सात-सात भावनायें देकर और धूप में सुखाकर रख लेना चाहिये। यह सिद्धयोग रसशास्त्र को जानने वाले सिद्धयोगियों के मुख से सुना हुआ परम्परा से चला आया है। मैंने (श्रीशार्ङ्गधराचार्य) इसका अनुभव किया है। सचमुच यह योग सर्वरोगनाशक है। इसी लोह के समान ही स्वर्ण आदि धातुओं का भी चूर्ण बनाकर मारा जा सकता है। उक्त लोह को त्रिफला और मधु के साथ मिलाकर सब रोगों में प्रयुक्त करना चाहिये। त्रिकटु, त्रिफला, बड़ी इलायची, जायफल तथा लौंग इन नौ द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण बनायें तथा इसके समान भाग में उक्त रस को मिला दें और उसे मधु में मिलाकर रख दें। दो-दो निष्क (आठ-आठ आना भर) की मात्रा में इसे खाना चाहिये। यह रस स्वयं अग्निस्वरूप होने के कारण 'अग्निरस' नाम से विख्यात है और क्षय तथा कास का विनाशक है।

**वक्तव्य**—दो निष्क की मात्रा अधिक नहीं है, क्योंकि यह मात्रा सम्मिलित औषधियों की है जिसमें लोह का अंश बहुत ही थोड़ा होता है। उक्त विधि से एक प्रकार की भानुपाकी लोहभस्म तैयार होती है। लोहचूर्ण अत्यन्त सूक्ष्म होना चाहिये और यह ध्यान रखना चाहिये कि लोहकण पूर्णरूप से नष्ट हो जायें। आवश्यकतानुसार इसमें पहले त्रिफला, दही, जामुन का रस तथा गोमूत्र की भी भावना देनी चाहिये।

### अमृतार्णव रस

**पारदं गन्धकं शुद्धं मृतलोह च टङ्कणम्।। 162।।**
**रास्नाविडङ्गत्रिफला देवदारु कटुत्रयम्।**
**अमृता पद्मकं क्षौद्रं विश्वं तुल्यांशचूर्णितम्।। 163।।**
**त्रिगुञ्जं सर्वकासार्तः सेवयेदमृतार्णवम्।**

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, टंकण, रास्ना, वायविडंग, त्रिफला, देवदारु, त्रिकटु, गिलोय, पद्मकाठ तथा सोंठ सबको समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। इसकी तीन रत्ती की मात्रा मधु के साथ सब प्रकार के कास से पीड़ित रोगी को सेवन करानी चाहिये। इसका नाम 'अमृतार्णव रस' है।

### सूर्यावर्त रस

**सूतार्धो गन्धको मर्द्यो यामैकं कन्यकाद्रवैः।। 164।।**
**द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत्।**
**दिनैकं स्थालिकायन्त्रे पक्वमादाय चूर्णयेत्।। 165।।**
**सूर्यावर्तो रसो ह्येष द्विगुञ्जः श्वासजिद् भवेत्।**

पारद (4 तोला) से अर्द्धभाग (2 तोला) शुद्ध गन्धक लेकर एक पहर-पर्यन्त घीकुआर के रस से मर्दन करें और दोनों के समान भाग (6 तोला) शुद्ध ताम्र के अत्यन्त सूक्ष्म पत्रों पर उक्त कल्क का लेप कर दें तत्पश्चात् स्थालिकायन्त्र में एक दिन तक पाक करें और स्वांगशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण बना लें। यह 'सूर्यावर्त्त' नामक रस दो रत्ती की मात्रा से श्वास को जीतता है।

**वक्तव्य**—स्थालिकायन्त्र वही है जिससे ताम्रभस्म (शा० सं०, म०खं०अ० 11 में) बनायी गयी है। इसके सेवन से रोगी को वमन होता है, कफ निकल जाता है और श्वास रोग शान्त हो जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम स्नेहन तथा स्वेदन द्वारा रोगी के कफ को ढीला कर लेना चाहिये, जिससे वह सुखपूर्वक निकल सके।

### स्वच्छन्दभैरव रस

**शुद्धं सूतं मृतं लोह ताप्यं गन्धकतालके।। 166।।**
**पथ्याग्निमन्थं निर्गुण्डी त्र्यूषणं टङ्कणं विषम्।**
**तुल्यांशं मर्दयेत् खल्वे दिनं निर्गुण्डिकाद्रवैः।। 167।।**
**मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुञ्जं वटकीकृतम्।**
**भक्षयेद् वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवम्।। 168।।**
**रास्नामृतादेवदारुशुण्ठीवातारिजं शृतम्।**
**सगुग्गुलुं पिबेत् कोष्णमनुपानं सुखावहम्।। 169।।**

शुद्ध पारद, लोहभस्म, स्वर्णमण्डिक की भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरिताल, हरड़, अरणी, सम्भालू की जड़ का छाल, त्रिकटु, टंकण तथा शुद्ध विष सभी को समान भाग में लेकर खरल में डालकर सम्भालू के रस से एक दिन तक मर्दन करें और एक दिन गोरखमुण्डी के रस से मर्दन करें फिर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। इस रस का नाम 'स्वच्छन्दभैरव' है। इसको वातव्याधि से पीड़ित रोगी खाये और अनुपान में रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ तथा

एरण्ड की जड़ का क्वाथ शुद्ध गूगल डालकर गरम-गरम पीयें। इससे अवश्य आरोग्य-लाभ होता है।

### हंसपोट्टली रस

**दग्ध्वा कपर्दिकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टङ्कण विषम्।**
**गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्य जम्बीरजैर्द्रवैः।। 170।।**
**मर्दयेद् भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु।**
**निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम्।। 171।।**

कौड़ियों को जलाकर पीस लें। इस कपर्दिकाभस्म तथा त्रिकटु, टंकण, शुद्धविष, शुद्धगन्धक, शुद्धपारद को समान भाग लेकर जम्बीरी नींबू के रस में मर्दन करें और एक माशा भर खायें। अनुपान में कालामिरच का चूर्ण तथा घृत मिलाकर चाट लें। यह औषध ग्रहणीरोग को नष्ट करती है। पथ्य में मट्ठा और भात हितकर होता है।

### त्रिविक्रम रस

**मृतं ताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यैर्गतद्रवम्।**
**तत् ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम्।। 172।।**
**निर्गुण्डीस्वरसैर्मद्यं तद्गोलं सन्धयेद् दिनम्।**
**यामैकं बालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम्।। 173।।**
**बीजपूरकमूलं तु सजलं चानुपाययेत्।**
**रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत्।। 174।।**

ताम्रभस्म को समान भाग बकरी के दूध के साथ तब तक पकाना चाहिये जब तक दूध सूख न जाये। तत्पश्चात् उस ताम्रभस्म तथा शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक को समान भाग लेकर सम्भालू के पत्तों के स्वरस के साथ एक दिन तक मर्दन करे तदनन्तर गोला बनाकर और सम्पुट में रखकर बालुका-यन्त्र में एक पहर तक पाक करें। इस रस को दो रत्ती की मात्रा में सेवन करना चाहिये और अनुपान के लिए बिजौरा नींबू की जड़ जल में पीसकर देना चाहिये। यह 'त्रिविक्रम' नामक रस एक मास में अश्मरी को नष्ट करता है।

### महातालेश्वर रस

**तालं ताप्यं शिलां सूतं शुद्धं सैन्धवटङ्कणे।**
**समांशं चूर्णयेत् खल्वे सूताद् द्विगुणगन्धकम्।। 175।।**
**गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम्।**
**मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे सम्पुटोदरे।। 176।।**
**पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्य सर्वमेतत् तु षट्पलम्।**
**द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुष्पलम्।। 177।।**
**जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिन मर्द्यं पुटेल्लघु।**
**त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत्।। 178।।**
**माहिषाज्येन सम्मिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत् सदा।**
**मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु।। 179।।**
**सर्वकुष्ठानि हन्त्याशु महातालेश्वरो रसः।**

हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, मैनसिल, शुद्ध पारद, सेंधा नमक तथा टंकण (चौकिया सुहागा) को समान भाग लेकर खरल में पीसना चाहिये, फिर पारद से दुगुनी शुद्ध गन्धक और गन्धक के समान भाग ताम्रभस्म मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस के साथ पाँच दिन-पर्यन्त पीसना चाहिये तथा सम्पुट में रखकर 'भूधर-यन्त्र' में छः बार पाक करना चाहिये। प्रत्येक बार नींबू के रस के साथ पीसना चाहिये। इस प्रकार तैयार किया हुआ औषध 6 पल (24 तोला), ताम्र भस्म दो पल (8 तोला) तथा लोह भस्म चार पल (16 तोला) लेकर जम्बीरी नींबू के रस से एक दिन तक मर्दन कर लघु पुट दें, तत्पश्चात् इसमें तीसवाँ भाग शुद्ध विष (मीठा तेलिया) मिलाकर भली-भाँति पास लें। इसकी आधा निष्क (2 माशा) मात्रा लेकर भैंस के घी में मिलाकर प्रतिदिन खानी चाहिये और अनुपान में बाकुची का चूर्ण एक कर्ष (1 तोला) मधु तथा घृत में मिलाकर देना चाहिये। यह सब प्रकार के कुष्ठों को शीघ्र हा नष्ट करता है। इसका नाम 'महातालेश्वर' रस है।

### कुष्ठकुठार रस

**भस्मसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलून्।। 180।।**
**त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु।**
**इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात् प्रत्येकं शाणषोडश।। 181।।**
**चतुःषष्टिः करञ्जस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत्।**
**चतुःषष्टिर्मृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत्।। 182।।**
**स्निग्धभाण्डे घृतं खादेद् द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत्।**
**रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिवारणः।। 183।।**

पारद भस्म (मूर्च्छित पारद या रससिन्दूर) शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म शुद्धगूगल, त्रिफला चूर्ण, महानिम्ब (बकायन) के बीज का गिरी तथा शिलाजीत प्रत्येक वस्तु सोलह-सोलह शाण (4-4 तोला), करञ्ज के बीजों का चूर्ण चौंसठ शाण (16 तोला) तथा अभ्रक भस्म चौंसठ शाण (16 तोला) लेकर मधु तथा घी में मिला दें और इसे स्निग्ध (चिकने) पात्र में रख दें। इसकी दो निष्क (8 माशा) मात्रा सब प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करती है। इस्का नाम 'कुष्ठकुठार' रस है। यह गलत्कुष्ठ को नष्ट करता है।

### उदयादित्य रस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम्।
तद्गोलं पिठरीमध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत्।। 184।।
सूतकाद् द्विगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन च।
पार्श्वे भस्म निधायाथ पात्रोर्ध्वे गोमयं जलम्।। 185।।
किञ्चित्किञ्चित्प्रदातव्यं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत्।
चण्डाग्निना तदुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत्।। 186।।
काष्ठोदुम्बरिकावह्नित्रिफलाराजवृक्षकम्।
विडङ्गं बाकुचीबीजं क्वाथयेत् तेन भावयेत्।। 187।।
दिनैकमुदयादित्यो रसो देयो द्विगुञ्जकः।
विचर्चिकां ददुकुष्ठं वातरक्तं च नाशयेत्।। 188।।
अनुपानं च कर्तव्यं बाकुचीफलचूर्णकम्।
खदिरस्य कषायेण समेन परिपाचितम्।। 189।।
त्रिशाणं तद् गवां क्षीरैः क्वाथैर्वा त्रैफलैः पिबेत्।
त्रिदिनान्ते भवेत् स्फोटः सप्ताहाद्वा किलासके।। 190।।
नीलीं गुञ्जां च कासीसं धत्तूरं हंसपादिकाम्।
सूर्यभक्तां च चाङ्गेरी पिष्ट्वा मूलानि लेपयेत्।। 191।।
स्फोटस्थानप्रशान्त्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः।
श्वेतकुष्ठं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः।। 192।।
अपरः श्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेऽत्र भिषग्वरैः।
गुञ्जाफलाग्निचूर्णं च लेपितं श्वेतकुष्ठनुत्।। 193।।
शिलापामार्गभस्मापि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत्।

शुद्धपारद एक भाग तथा शुद्धगन्धक दो भाग लेकर एक दिन तक घीकुआर के रस से मर्दन करें, तत्पश्चात् उसका गोला बनाकर मिट्टी की हाँडी में रख दें और पारद से दुगुने शुद्ध ताम्र से निर्मित पात्र (ताँबे की कटोरी) से ढँक दें तथा ऊपर से सामान्य भस्म भर दें (इनकी तह दो-तीन अंगुल मोटी होनी चाहिये)। उसके ऊपर बार-बार थोड़ा-थोड़ा गोबर मिला जल देते जाना चाहिये। इस प्रकार एक चूल्हा पर रखकर दो पहर पर्यन्त तीव्र अग्नि से पाक करना चाहिये। तदनन्तर सर्वांगशीतल हो जाने पर धीरे से उसे निकालकर पीस लें और कठगूलर, चीता, त्रिफला, अमलताल, वायविडंग एवं बकुची के क्वाथ की एक दिनतक भावना दें। इस रस का नाम 'उदयादित्य' है। इसकी मात्रा दो रत्ती है। यह विचर्चिका, दद्रु एवं वातरक्त को नष्ट करता है। अनुपान में बाकुची का चूर्ण, खैरसार के क्वाथ के साथ पकाकर तीन शाण (।।। भर) लेकर गोदुग्ध के साथ अथवा त्रिफला के क्वाथ के साथ पीना चाहिये। इससे तीन दिन के पश्चात् किलास (श्वेतदाग) के स्थान पर फफोला उठ आता है। इसके चारों ओर निम्नलिखित द्रव्यों का गाढ़ा लेप करना चाहिये–नील की पत्ती, गुञ्जाफल, हीराकसीस, धत्तूरा की पत्ती, हंसराज (परसौसा), हुलहुल की पत्ती और चाङ्गेरी। उक्त द्रव्यों का लेप फफोलों के स्थान की शान्ति के लिए सात दिन तक बार-बार करना चाहिये। यह प्रयोग साध्य एवं असाध्य श्वेतकुष्ठ को शीघ्र ही नष्ट कर देता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

विद्वान् वैद्य श्वेतकुष्ठ का एक और भी लेप इस प्रकार बतलाते हैं–गुञ्जाफल एवं चीता की जड़ का लेप श्वेतकुष्ठ को नष्ट करता है और मैनसिल एवं अपामार्ग की भस्म भी लेप करने पर श्वेतकुष्ठ को नष्ट करती है।

**वक्तव्य**–श्वित्र रोग एक दुःसाध्य रोग है। इसकी चिकित्सा समय-साध्य होती है। अतः चिकित्सक तथा रोगी को धैर्य रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

### सर्वेश्वर रस

शुद्धं सूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत्।। 194।।
मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलं पलम्।
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम्।। 195।।
माषैकं मृतवज्रं च तालं शुद्धं पलद्वयम्।
जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः।। 196।।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम्।
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम्।। 197।।
बालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना।
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद् विषम्।। 198।।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः।
द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत्।। 199।।
बाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत्।
लिहेदैरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम्।। 200।।

शुद्धपारद एक पल (4 तोला) और शुद्धगन्धक चार पल (16 तोला) दोनों को एक पहर तक पीसकर कज्जली बनानी चाहिये। ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म तथा शुद्ध शिंगरफ प्रत्येक एक-एक पल (4-4 तोला), सुवर्णभस्म तथा रजतभस्म प्रत्येक दस-दस निष्क (2½-2½ तोला), वज्र (हीरा), भस्म एक माशा तथा शुद्ध हरिताल दो पल (आठ तोला) लेकर खरल में डाल दें और जम्बीरी नींबू धत्तूरा, अडूसा, सेहुण्ड, आक, बकायन तथा कनेर के पत्तों के रस से एक दिन तक मर्दन करना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक मर्दन करके गोला बना लें और उसे कपड़े में लपेट

कर तथा बालुकायन्त्र में रखकर मन्द-मन्द अग्नि द्वारा तीन दिन पर्यन्त स्वेदन करें। सर्वांगशीतल होने पर उसे निकालकर भली-भाँति पीस लें। उसमें शुद्ध विष एक पल (4 तोला) और पीपल का चूर्ण दो पल मिलाकर रख दें। इसका नाम 'सर्वेश्वररस' है। इसकी दो रत्ती की मात्रा मधु के साथ चाटनी चाहिये। यह सुप्तिकुष्ठ तथा मण्डलकुष्ठ को जीतता है। बाकुचि तथा देवदारु का चूर्ण एक तोला लेकर एरण्ड के तैल में मिलाकर चाटना चाहिये। यह सुखदायक अनुपान है।

**वक्तव्य**-सुप्ति नामक कोई कुष्ठ नहीं है, अपितु यह कुष्ठ का पूर्वरूप है। प्राय: कुष्ठ-स्थल शून्य (स्पर्शज्ञान हीन) हो जाता है। त्वचा स्थित कुष्ठ का लक्षण भी त्वक्स्वाप है, उसे ही 'सुप्तिकुष्ठ' कहा जाता है। देखें-सु० नि० अ० 5।

### स्वर्णक्षीरी रस

**हेमाह्वां पञ्चपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत्।**
**तक्रे जीर्णे समुद्धृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत्।। 201।।**
**क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य क्षालयित्वा विशोषयेत्।**
**तच्चूर्णं पञ्चपलिकं मरिचानां पलद्वयम्।। 202।।**
**पलैकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत्।**
**निष्कैकं सुप्तिकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीरीरसो ह्ययम्।। 203।।**

चोक (सत्यानाशी) की जड़ पाँच पल (20 तोला) लेकर और तक्र (मट्ठा से) पूर्ण घड़ें में डालकर पकायें जब पूरा तक्र पक जाये अर्थात् खोया की भाँति गाढ़ा हो जाये तो निकाल कर दुग्धपूर्ण घट में पकाये, जब दूध भी पक जाये तो उसे निकालकर पात्र को धोकर सुखा लें। इस चोक का चूर्ण पाँच पल (20 तोला), मरिचचूर्ण दो पल तथा मूर्च्छित पारद (रससिन्दूर) एक पल-इन सभी को एक साथ मिलाकर एक निष्क (3 माशा या 4 आना भर) उचित अनुपान के साथ सुप्तिकुष्ठ से पीड़ित रोगी को खिलायें। यह 'स्वर्णक्षीरी रस' है।

### मेहबद्ध रस

**भस्मसूतं मृतं कान्तं मुण्डभस्म शिलाजतु।**
**शुद्धं ताप्यं शिलां व्योषं त्रिफलां कोलबीजकम्।। 204।।**
**कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्।**
**त्रिंशद् वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत् सदा।। 205।।**
**निष्कमात्रो हरेन्मेहान् मेहबद्धो रसो महान्।**
**महानिम्बस्य बीजानि पिष्ट्वा षट्सम्मितानि च।। 206।।**
**पलतण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च।**
**एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरन्तनम्।। 207।।**

पारदभस्म (रससिन्दूर), कान्तलोहभस्म, मुण्डलोहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक, शुद्ध मैनसिल, अभ्रकभस्म, त्रिफलाचूर्ण, बेर का मींगी, कैथ का फल तथा हल्दी का चूर्ण, प्रत्येक द्रव्य को समान भाग में लेकर भाँगरा के रस की तीस बार भावना दें और सुखाकर मधु के साथ प्रतिदिन चाटना चाहिये। इसकी एक निष्क (4 आना भर) मात्रा प्रमेहों को हरती है। यह महान् (उत्तम) 'मेहबद्ध रस' है। बकायन के छ: बीज पीसकर एक पल चावलों के जल (धोवन) तथा दो निष्क घृत के साथ मिलाकर अनुपान में देना चाहिये। यह पुराने प्रमेह को नष्ट करता है।

### महावह्नि रस

**चतुःसूतस्य गन्धाष्टौ रजनी त्रिफला शिवा।**
**प्रत्येकं च द्विभागं स्यात् त्रिवृज्जैपालचित्रकम्।। 208।।**
**प्रत्येकं च त्रिभागं स्यात् त्र्यूषणं दन्तिजीरके।**
**प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत्।। 209।।**
**जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः ।**
**प्रत्येकेन क्रमाद् भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक्।। 210।।**
**महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत्।**
**विरेचनं भवेत् तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम्।। 211।।**
**दिनान्ते दापयेत् पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम्।**
**सर्वोदरहरः प्रोक्तो मूढवातहरः परः।। 212।।**

शुद्ध पारद चार भाग तथा शुद्ध गन्धक आठ भाग (दोनों का विधिपूर्वक कज्जली बना लें), हल्दी, त्रिफला तथा हरड़ प्रत्येक द्रव्य दो-दो भाग, निसोत, शुद्ध जैपाल तथा चीता प्रत्येक द्रव्य तीन-तीन भाग, त्रिकटु, दन्ती तथा सफेद जीरा (भुना हुआ) प्रत्येक आठ-आठ भाग सबको पीसकर एक साथ मिला दें और अरणी, सेहुण्ड का दूध, भाँगरा, चीता, एरण्ड का तैल, प्रत्येक द्रव्य को क्रम से पृथक्-पृथक् सात-सात बार भावना दें। यह 'महावह्नि' नामक रस है। इसकी एक निष्क (चार आना भर) की मात्रा उष्णजल के साथ पीनी चाहिये। इससे विरेचन (दस्त) होता है। दिन के अन्त में अर्थात् उचित रूप से विरेचन हो जाने पर सेंधा नमक मिलाकर तक्र तथा भात का पथ्य देना चाहिये, शीतल जल का सर्वथा परित्याग करना चाहिये। यह सभी प्रकार के उदर रोगों को हरता है और मूढ़वात या उदावर्त्त का उत्तम विनाशक है।

**वक्तव्य**-एरण्ड तैल की सात भावनायें नहीं दी जा सकतीं, अत: औषध स्निग्ध होने भर ही उक्त तेल डालना चाहिये।

विद्याधर रस

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिलाम्।
शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद् भावयेद् दिनम्॥ 213॥
पिप्पल्यास्तु कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत्।
निष्कार्धं भक्षयेत् क्षौद्रैर्गुल्मं प्लीहादिकं जयेत्॥ 214॥
रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु।

शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरिताल, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक, ताम्रभस्म, शुद्ध मैनसिल तथा शुद्ध पारद को समान भाग में लेकर भली-भाँति पीसना चाहिये और एक दिन तक पीपल के क्वाथ का और एक दिन तक सेहुण्ड के दूध की भावना देनी चाहिये। तत्पश्चात् आधा निष्क (दो आना भर) की मात्रा मधु के साथ खानी चाहिये। यह गुल्म तथा प्लीहा आदि को जीतता है। इसका नाम 'विद्याधर रस' है। इसके अनुपान में गोमूत्र पीना चाहिये।

त्रिनेत्र रस

टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम्॥ 215॥
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्य रुद्ध्वा पुटे पचेत्।
त्रिनेत्राख्यरसस्यैकं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत्॥ 216॥
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु।
पक्तिशूलहरः ख्यातो मासमात्रान्न संशयः॥ 217॥

शुद्ध टंकण (आग में भुना हुआ), हरिण के सींग की भस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म तथा पारद भस्म (रससिन्दूर) सभी द्रव्यों को समान भाग में लेकर अदरक के रस से एक दिन तक मर्दन करना चाहिये, तत्पश्चात् सम्पुट में रखकर पुट देनी चाहिये। इसका नाम 'त्रिनेत्र रस' है। इसकी एक माशा की मात्रा मधु तथा घृत के साथ चाटनी चाहिये और अनुपान में सेंधा नमक, भुना हुआ सफेद जीरा एवं घी में भुनी हुई हींग का चूर्ण मधु तथा घृत के साथ चाटना चाहिये। यह रस पक्तिशूल (परिणाम) को एक मास में नष्ट कर देता है, इसमें सन्देह नहीं है।

गजकेसरी रस.

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद् दृढम्।
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं सम्पुटे तन्निरोधयेत्॥ 218॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे धारयेद् भिषक्।
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥ 219॥
सम्पुटं चूर्णयेत् सूक्ष्मं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम्।
भक्षयेत् सर्वशूलार्तो हिङ्गु शुण्ठी च जीरकम्॥ 220॥
वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत्।
असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं गजकेसरी॥ 221॥

शुद्ध पारद एक भाग और शुद्ध गन्धक दो भाग दोनों का एक साथ एक पहर तक भली-भाँति मर्दन करना चाहिये। तत्पश्चात् दोनों के समान भाग शुद्ध ताम्र चूर्ण (यह अत्यन्त सूक्ष्म होना चाहिये) लेकर सम्पुट में बन्द कर दें। फिर मिट्टी के पात्र में ऊपर और नीचे लवण का चूर्ण देकर इस सम्पुट को टिकाकर रख दें। तत्पश्चात् गजपुट में पकाकर सर्वांगशीतल होने पर निकाल लें। सम्पुट में से औषध (ताम्रभस्म) निकालकर अत्यन्त सूक्ष्म पीस लें और सभी प्रकार के शूल से पीड़ित रोगी इस औषध को दो रत्ती लेकर पान के पत्र में रखकर खायें। घी में भुनी हुई हींग, सोंठ, भुना हुआ सफेद जीरा, वच और मरिच का चूर्ण एक तोला लेकर उष्ण जल के साथ इसे पीयें। यह 'गजकेसरी रस' असाध्य शूल को नष्ट करता है।

अग्नितुण्डवटी रस

शुद्धं सूतं विषं गन्धमजमोदां फलत्रयम्।
स्वर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम्॥ 222॥
सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम्।
विषमुष्टिं सर्वतुल्यां जम्बीराम्लेन मर्दयेत्॥ 223॥
मरिचाभां वटीं खादेद् वह्निमान्द्यप्रशान्तये।
(पथ्या शुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत् सदा।
अग्नितुण्डवटीख्याता सर्वरोगकुलान्तका॥ 224॥)

शुद्ध पारद, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, अजमोदा, त्रिफला, सज्जीखार, जौखार, चीता की जड़, सेंधा नमक, सफेद जीरा, काला नमक, वायविडंग, समुद्र नमक एवं त्रिकटु इन सबको समान भाग में लेकर सबके समान भाग में शुद्ध कुचिला लें और सबको जम्बीरी नींबू के रस में मर्दन करें तथा मरिच जैसी गोलियाँ बनाकर अग्निमान्द्य की शान्ति के लिए खाना चाहिये। अनुपान के रूप में हरड़, सोंठ, गुड़ सब मिलाकर आधा पल लें। यह 'अग्नितुण्डवटी' सभी रोगों का विनाश करती है।

अजीर्णकण्टक रस

शुद्धं सूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत्॥ 225॥
मरिचं सर्वतुल्यांशं कण्टकार्याः फलद्रवैः।
मर्दयेद् भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम्॥ 226॥
वटीं गुञ्जात्रयं खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये।
अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विषूचिकाम्॥ 227॥

शुद्ध पारद, शुद्ध विष एवं शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर सबके समान भाग में काली मिरच का चूर्ण मिलाकर भली-भाँति पीसना चाहिये। कण्टकारी (भटकटैया) के फलों के रस से इक्कीस बार भावना दें। तत्पश्चात् तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनायें। सभी प्रकार के अजीर्ण की शान्ति के लिए इन्हें खाना चाहिये। यह 'अजीर्णकण्टक रस' विसूची (हैजा) को भी नष्ट करता है।

**वक्तव्य**-विसूची (हैजा) में प्याज के रस या लौंग, पुदीना, बड़ी इलायची एवं सौंफ के क्वाथ के साथ देने पर यह रस शीघ्र लाभ करता है।

### मन्थानभैरव रस

**मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिङ्गु पुष्करमूलकम्।**
**सैन्धवं गन्धकं तालं कटुकीं चूर्णयेत् समम्।। 228।।**
**पुनर्नवादेवदालीनिर्गुण्डीतण्डुलीयकैः।**
**तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद् दृढम्।। 229।।**
**माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रे रसं मन्थानभैरवम्।**
**कफरोगप्रशान्त्यर्थं निम्बक्वाथं पिबेदनु।। 230।।**

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, घृतभृष्ट हींग, पोहकरमूल, सेंधा नमक, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरिताल एवं कुटकी को समान भाग में लेकर पीसना चाहिये फिर पुनर्नवा, बन्दालडोड़ा, निर्गुण्डी (सम्भालू), चौलाई एवं कडुवी तोरई के रस से एक-एक दिन तक भली-भाँति पीसना चाहिये। इसमें से एक माशा भर लेकर मधु के साथ मिलाकर कफ के रोगों की शान्ति के लिए इसे चाटना चाहिये। अनुपान के लिये नीम के पत्तों का क्वाथ पीना चाहिये। इस रस का नाम 'मन्थानभैरव रस' है।

### वातनाशन रस

**सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम्।**
**तालं नीलाञ्जनं तुत्थमहिफेनं समांशकम्।। 231।।**
**पञ्चानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत्।**
**वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वाधो भूधरे पचेत्।। 232।।**
**माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद् वातनाशनम्।**
**पिप्पलीमूलजक्वाथं सकृष्णमनुपाययेत्।। 233।।**
**सर्वान् वातविकारांस्तु निहन्त्याक्षेपकादिकान्।**

रससिन्दूर, सुवर्णभस्म, वज्र (हीरा) भस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध हरिताल, शुद्ध काला सुरमा, शुद्ध तूतिया तथा अफीम, ये सब द्रव्य समान भाग (1-1 तोला) और पाँचों नमक एक भाग (1 तोला), लेकर सबको एक साथ पीसना चाहिये। इसे सेहुण्ड के दूध की एक बार भावना देकर सम्पुट में रखकर भूधर-यन्त्र में पकाना चाहिये, तत्पश्चात् एक माशा भर लेकर अदरक के रस के साथ खाना चाहिये। अनुपान-पीपलामूल के क्वाथ में पीपल का चूर्ण डालकर पीना चाहिये। यह 'वातनाशन रस' सभी प्रकार के आक्षेपक आदि वात-विकारों को नष्ट करता है।

### कनकसुन्दर रस

**कनकस्याष्टशाणाः स्युः सूतो द्वादशभिर्मतः।। 234।।**
**गन्धोऽपि द्वादश प्रोक्तस्ताम्रं शाणद्वयोन्मितम्।**
**अभ्रकं स्याच्चतुःशाणं माक्षिकं च द्विशाणिकम्।। 235।।**
**वङ्गो द्विशाणः सौवीरं त्रिशाणं लोहमष्टकम्।**
**विष त्रिशाणिकं कृत्वा लाङ्गली पलसम्मिता।। 236।।**
**मर्दयेद् दिनमेकं च रसैरम्लफलोद्भवैः।**
**दद्यान्मृदुपुटं वह्नौ ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत्।। 237।।**
**माषमात्रो रसो देयः सन्निपाते सुदारुणे।**
**आर्द्रकस्वरसेनैव रसोनस्य रसेन वा।। 238।।**
**किलासं सर्वकुष्ठानि विसर्पं च भगन्दरम्।**
**ज्वरं गरमजीर्णं च जयेद् रोगहरो रसः।। 239।।**

सुवर्णभस्म आठ शाण (2 तोला), शुद्ध पारद बारह शाण (3 तोला), शुद्ध गन्धक बारह शाण (3 तोला) (पारद-गन्धक की कज्जली बना लें), ताम्रभस्म दो शाण (आठ आना भर), अभ्रकभस्म चार शाण (1 तोला), सुवर्णमाक्षिक भस्म दो शाण (आधा तोला), वंगभस्म दो शाण (आधा तोला), सौवीर (सफेद सुरमा) भस्म तीन शाण (बारह आना भर), लोहभस्म आठ शाण (2 तोला), शुद्ध विष तीन शाण (बारह आना भर) और कलिहारी का कन्द एक पल (4 तोला), इन सबको लेकर अम्लफल (नींबू) के रस से एक दिन तक भली-भाँति पीसना चाहिये, फिर उसे सम्पुट में रखकर अग्नि में पुट दें, तत्पश्चात् उसे अत्यन्त सूक्ष्म पीस लें। यह 'कनकसुन्दर रस' की मात्रा एक माशा (एक आना भर) अदरक के रस अथवा लहसुन के रस के साथ भीषण सन्निपात में देना चाहिये। यह श्वेतकुष्ठ, अठारह प्रकार वो कुष्ठ, विसर्प, ज्वर, गर तथा अजीर्ण विकारों को जीतता है तथा सभी रोगों को हरता है।

### सन्निपातभैरव रस

**रसो गन्धस्त्रिकर्षः स्यात् कुर्यात्कज्जलिकां तयोः।**
**ताम्रतारारवङ्गाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः।। 240।।**

शिग्रुज्वालामुखीशुण्ठीबिल्वेभ्यस्तण्डुलीयकात्।
प्रत्येकं स्वरसैः कुर्याद् यामैकैकं विमर्दनम्।। 241।।
कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रे लवणापूरिते न्यसेत्।
काचभाण्डे ततः स्थाल्यां काचकूपीं निवेशयेत्।। 242।।
वालुकाभिः प्रपूर्याथ वह्निर्यामद्वय भवेत्।
तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत्।। 243।।
प्रवालचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च।
कृष्णसर्पस्य गरलैर्द्विवेलं भावयेत् तथा।। 244।।
तगरं मुशली मांसी हेमाह्वा वेतसः कणा।
नीलिनी पत्रकं चैला चित्रकश्च कुठेरकः।। 245।।
शतपुष्पा देवदाली धत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः।
मधूकजातीमदनरसैरेषां विमर्दयेत्।। 246।।
प्रत्येकमेकवेलं च ततः संशोष्य धारयेत्।
बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैः षोडशोन्मितैः।। 247।।
रसो द्विगुञ्जप्रमितः सन्निपातेषु दीयते।
प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना सन्निपातस्य भैरवः।। 248।।

शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक मिलाकर तीन कर्ष (1½-1½ तोला) लेकर कज्जली करें। ताम्रभस्म, रौप्य (चाँदी) भस्म, आर (पीतल अथवा यशद) भस्म, वंगभस्म, नाग (सीसा) भस्म एवं लोहभस्म प्रत्येक एक-एक कर्ष (1-1 तोला) लें, फिर सहिजन की छाल, ज्वालामुखी, सोंठ, बेलगिरी तथा चौलाई के स्वरस की एक-एक बार भावना दें, प्रत्येक भावना देने के बाद एक-एक पहर तक मर्दन करें। फिर गोला बनाकर तथा कपड़े में लपेट कर लवण (सेंधा नमक) से भरे हुये काँच के पात्र में रख दें तत्पश्चात् उस काँचपात्र को मिट्टी की स्थाली (नाँद) में रखकर और बालू से उक्त स्थाली को भरकर दो पहर तक अग्नि दें स्वांगशीतल होने पर उस गोले को निकालकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें, फिर प्रवाल चूर्ण (गुलाबजल द्वारा मूँगा की बनायी हुई पिष्टि) एक कर्ष (1 तोला) तथा शुद्ध विष एक शाण (चौथाई तोला) मिला दें, उसमें काले साँप के विष की दो बार भावना दें। तगर, सफेदमुसली, जटामांसी, चोक, बेत, पीपल, नील, तेजपत्ता, इलायची, चीता, तुलसी, सौंफ, ब्रन्दालडोडा, धत्तूरा, अगस्त्य वृक्ष की छाल, गोरखमुण्डी, महुआ, चमेली तथा मैनफल, प्रत्येक द्रव्य के स्वरस की एक-एक बार भावना दें, तत्पश्चात् सुखाकर रख लें। यह रस दो रत्ती की मात्रा में बिजौरा नींबू के रस, अदरक के रस तथा काली मिरच सोलह नग के साथ सभी प्रकार के सन्निपातों में दिया जाता है। यह रस 'सन्निपातभैरव रस' नाम से प्रसिद्ध है।

**वक्तव्य**—आर (पीतल) के विषय में शा०सं०, म० खं०अ० 11 श्लोक 1 का वक्तव्य देखें। सर्पविष सपेरों से प्राप्त किया जा सकता है।

### ग्रहणीकपाट रस

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागकाः।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान्।। 249।।
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत्।
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत्।। 250।।
बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा।
लोध्रप्रतिविषामुस्तधातकीन्द्रयवामृताः ।। 251।।
प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावना स्यात् त्रिधा त्रिधा।
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा।। 252।।
हन्यात् सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि।
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः।। 253।।

तार (चाँद) भस्म, मोतीभस्म, सुवर्ण भस्म तथा लोहभस्म का एक-एक भाग (1-1 तोला), शुद्ध गन्धक दो भाग (2 तोला) तथा शुद्ध पारद तीन भाग (3 तोला) दोनों का कज्जली बना लें और उक्त सभी द्रव्यों को मिला दें, तत्पश्चात् कैथ के स्वरस से उन्हें भली-भाँति पीसकर मृग शृङ्ग में भर दें तथा मध्यमपुट द्वारा पुट दें, इसके पश्चात् पीस लें और बरियारा के रस की सात बार, अपामार्ग के रस की तीन बार लोध, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल, इन्द्रजौ तथा गिलोय प्रत्येक द्रव्य के रस का तीन-तीन बार भावना देनी चाहिये। फिर एक माशा रस को मधु तथा मरिच (10-20 दाना) के साथ सेवन कराना चाहिये। यह सभी प्रकार के अतिसारों को तथा सन्निपातजनित ग्रहणीरोग को नष्ट करता है। यह 'ग्रहणीकपाट' नामक रस ग्रहणपरोग में प्रयुक्त होता है और अग्नि को दीप्त करता है।

**वक्तव्य**—मृगशृङ्ग (हिरन के सींग) का मूल भाग खोखला होता है, उसी में औषधद्रव्य भर दिये जाते हैं। पुट देने परु मृगशृङ्ग भी भस्म हो जाता है और वह भी साथ में पीस लिया जाता है। **सावधानी**—पुट इतनी मृदु होनी चाहिये कि केवल गन्धक का ही पाक हो सके, अन्यथा पारद भी उड़ जायेगा।

### ग्रहणीवज्रकपाट रस

मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटङ्कणम्।
अग्निमन्थं वचां कुर्यात् सूततुल्यानिमान् सुधीः।। 254।।

ततो जयन्तीजम्बीरभृङ्गद्रावैर्विमर्दयेत्।
त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत्।।255।।
लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत्।
अधो वह्निं शनैः कुर्याद् यामार्धं तत उद्धरेत्।।256।।
रसतुल्यां प्रतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा।
कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत् सप्तधा पृथक्।।257।।
धातकीन्द्रयवा मुस्ता लोध्रं बिल्वं गुडूचिका।
एतद् रसैर्भावयित्वा वेलैकैकं चु शोषयेत्।।258।।
रसं वज्रकपाटाख्यं शाणैकं मधुना लिहेत्।
वह्निं शुण्ठीं बिडं बिल्वं लवणं चूर्णयेत् समम्।।259।।
पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत्।

पारदभस्म (रससिन्दूर), अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, जौखार, टंकण (अग्नि पर भुना हुआ सुहागा), अरणी की छाल तथा वच, इन द्रव्यों को रससिन्दूर के समान भाग में लें। तत्पश्चात् अरणी की छाल, जम्बीरी नींबू तथा भृङ्गराज (भाँगरा) के रस से तीन दिन तक मर्दन करें, तदनन्तर गोला बनाकर और सुखाकर लोहे की कड़ाही में रख दें, ऊपर से सिकोरा रखकर बन्द कर दें, आधा पहर तक नीचे से धीरे-धीरे अग्नि दें, तत्पश्चात् स्वांगशीतल होने पर उसे निकाल लें। फिर इस औषधि में रससिन्दूर के समान भाग अतीस तथा मोचरस मिला दें और कपित्थ (कैथ) फल तथा भाँग के रस की पृथक्-पृथक् सात-सात बार भावना दें, धाय के फूल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, पठानीलोध, बेल को गुद्दी तथा गिलोय इन द्रव्यों का रस अथवा क्वाथ की एक-एक बार भावना देकर सुखा लें। इस 'वज्रकपाट' नामक रस की एक शाण (चार आना भर) की मात्रा को मधु के साथ चाटना चाहिये और चीता, सोंठ, बिरिया नमक, बेल का गुद्दी तथा सेंधा नमक को समान भाग में लेकर चूर्ण बना लें और उक्त रस के अनुपान में उष्ण जल के साथ पीयें। यह योग सन्निपातजनित ग्रहणीरोग को जीतता है।

**वक्तव्य**-'सूततुल्यान् इमान्' इस पाठ के अनुसार मृतसूत अर्थात् रससिन्दूर 1 तोला लें, तो अभ्रक आदि छः द्रव्य मिलाकर एक तोला लें अथवा छः तोला? दीपिकाकार दूसरा पक्ष ही मानते हैं, यही उचित भी है।

### मदनकामदेव रस

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं सूतकगन्धकम्।।260।।
लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया।
विमर्द्य कन्यकाद्रावैन्यसेत् काचमये घटे।।261।।
विमुच्य पिठरीमध्ये धारयेत् सैन्धवावृते।
पिठरीं मुद्रयेत् सम्यक् ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत्।।262।।
वह्निं शनैः शनैः कुर्याद् दिनैकं तत उद्धरेत्।
स्वाङ्गशीतं च सञ्चूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः।।263।।
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसलीक्षुरा।
त्रिस्त्रिवेलं रसैरासां शतावर्याश्च भावयेत्।।264।।
पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत्।
कस्तूरी व्योषकर्पूरकङ्कोलैलालवङ्गकम्।।265।।
पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत्।
सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितां पिबेत्।।266।।
गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः।
अस्य प्रभावात् सौन्दर्यं बलं तेजोऽभिवर्धते।।267।।
तरुणी रमयेद् बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते।

तार (रजत या चाँदी) भस्म (1 तोला), वज्र (हीरा) भस्म (2 तोला), सुवर्णभस्म (3 तोला), ताम्रभस्म (4 तोला), शुद्ध पारद (5 तोला), शुद्ध गन्धक (6 तोला) तथा लोहभस्म (7 तोला)-इन सभी द्रव्यों को इस प्रमाण से ग्रहण करें और घीकुआर के रस से मर्दन कर (सुखाकर) काँच का शीशी (जिस पर सात बार कपड़मिट्टी की गई हो) में डाल दें, तत्पश्चात् शीशी की खड़िया-मिट्टी के डाट से मुख बन्द कर नाँद में भरकर सेंधा नमक के चूर्ण से ढँक दें और नाँद का मुखबन्द कर दें। तत्पश्चात् चूल्हा पर चढ़ाकर एक दिन तक धीरे-धीरे अग्नि दें, फिर स्वांगशीतल हो जाने पर औषध को निकाल लें और उसे पीसकर आक के दूध की भावना दें, फिर असगन्ध, काकोली, किवाँच, मुसली तथा तालमखाना के रस की, शतावरी के रस की तीन-तीन बार भावना दें। फिर कमलकन्द (कमलगट्टा), कसेरू तथा काश के रस का एक-एक बार भावना दें, तत्पश्चात् (सूख जाने पर) कस्तूरी, त्रिकटु, शुद्धकर्पूर, शीतलचीनी, छोटी इलायची तथा लौंग-इन सभी द्रव्यों का चूर्ण उपर्युक्त औषधि की अपेक्षा अष्टमांश मिला दें, फिर सम्पूर्ण औषध के समान भाग उत्तम शर्करा (चीनी) मिलाकर रख दें, इसमें से एक शाण (चार आना भर) लेकर दो पल (आधा पाव) गोदुग्ध के साथ सेवन करें। इन दिनों रोगी मधुर आहार का सेवन करता रहे। इसके प्रभाव से सौन्दर्य तथा तेज बढ़ता है मनुष्य बहुत-सी स्त्रियों से रमण कर सकता है और उसके शुक्र में न्यूनता नहीं आती।

कन्दर्पसुन्दर रस

सूतो वज्रमहिर्मुक्ता तारं हेमासिताभ्रकम्।।268।।
रसैः कर्षांशकानेतान् मर्दयेदिरिमेदजैः।
प्रवालचूर्णं गन्धं च द्विद्विकर्षं विमिश्रयेत्।।269।।
ततोऽश्वगन्धास्वरसैर्विमर्द्यं मृगशृङ्गके।
क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद् धातकीरसैः।।270।।
काकोली मधुकं मांसी बलात्रयबिसेङ्गुदम्।
द्राक्षापिप्पलवन्दाकं वरी पर्णीचतुष्टयम्।।271।।
परूषकं कसेरुश्च मधूकं वानरी तथा।
भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत्।।272।।
एलात्वक्पत्रकं वांशी लवङ्गागरुकेशरम्।
मुस्तं मृगमदः कृष्णा जलं चन्द्रश्च मिश्रयेत्।।273।।
एतच्चूर्णैः शाणमितै रसं कन्दर्पसुन्दरम्।
खादेच्छाणमितं रात्रौ सिता धात्री विदारिका।।274।।
एतासां कर्षचूर्णेन सर्पिष्कर्षेण संयुतम्।
तस्यानु द्विपलं क्षीरं पिबेत् सुस्थितमानसः।।275।।
रमणी रमयेद् बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते।

रससिन्दूर, वज्र (हीरा) भस्म, नागभस्म, मोती की भस्म, रजत (चाँदी भस्म), सुवर्ण भस्म तथा कृष्णाभ्रकभस्म, इन सबको एक-एक कर्ष (1-1 तोला) लेकर दुर्गन्धि खैर के रस या क्वाथ से मर्दन करें फिर इसमें प्रवाल चूर्ण (भस्म या पिष्टि) तथा शुद्ध गन्धक दो-दो कर्ष (2-2 तोला) मिला दें, तत्पश्चात् असगन्ध के स्वरस से मर्दन कर (सुखाकर) मृगशृंङ्ग (हरिण के सींग) में भर दें और मृदु पुट में पुट देकर धाय के फूलों के स्वरस की भावना दें और काकोली, मुलेठी, जटामांसी बलात्रय (बरियारा, कंघी तथा गंगेरन), बिस (कमल का जड़), इंगुदी, मुनक्का, पीपल, बन्दा, शतावर, शालपर्णी, पृष्टिपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, फालसा, कसेरू, महुआ तथा किवाँच इन द्रव्यों के रस से भावना रेकर सुखाकर चूर्ण बना लें। फिर इसमें इलायची, दालचानी, तेजपत्ता, वंशलोचन, लौंग, अगरु, चन्दन, नागकेसर, नागरमोथा, कस्तूरी, पीपल, नेत्रबाला तथा शुद्ध कर्पूर, प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक-एक शाण (4-4 आना भर) मिला दें। इस रस का नाम 'कन्दर्प-सुन्दर रस' है। इसकी एक शाण (4 आना भर) की मात्रा चीनी, आँवला तथा विदारीङ्कद का चूर्ण एक कर्ष (1 तोला) और घी एक कर्ष (1 तोला) के साथ मिलाकर खानी चाहिये। साथ में दो पल (10 तोला) दूध पीना चाहिये। तत्पश्चात् धैर्ययुक्त होकर बहुत-सी स्त्रियों से रमण करे तो भी शुक्र की न्यूनता नहीं होती है।

लोह रसायन

शुद्धं रसेन्द्रं भागैकं द्विभागं शुद्धगन्धकम्।।276।।
क्षिपेत्कज्जलिकां कुर्यात् तत्र तीक्ष्णभवं रजः।
क्षिप्त्वा कज्जलिकातुल्यं प्रहरैकं विमर्दयेत्।।277।।
ततः कन्याद्रवैर्घर्मे त्रिदिनं परिमर्दयेत्।
ततः सञ्जायते तस्य सोष्णो धूमोद्गमो महान्।।278।।
अत्यन्तं पिण्डितं कृत्वा ताम्रपात्रे निधापयेत्।
मध्ये धान्यकुशूलस्य त्रिदिनं धारयेद् बुधः।।279।।
उद्धृत्य तस्मात्खल्वे च क्षिप्त्वा घर्मे निधाय च।
रसैः कुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलं परिभावयेत्।।280।।
संशोष्य घर्मे क्वाथैश्च भावयेत् त्रिकटोस्त्रिधा।
वासामृताचित्रकाणां रसैर्भाव्यं क्रमात् त्रिधा।।281।।
लोहपात्रे ततः क्षिप्त्वा भावयेत् त्रिफलाजलैः।
निर्गुण्डीदाडिमत्वग्भिर्बिसभृङ्गकुरण्टकैः ।।282।।
पलाशकदलीद्रावैर्बीजकस्य शृतेन च।
नीलिकालम्बुषाद्रावैर्बब्बूलफलिकारसैः ।।283।।
भावयेत् त्रिस्त्रिवेलं च ततो नागबलारसैः।
शतावरीगोक्षुरुभिः पातालगरुडीद्रवैः।।284।।
त्रिस्त्रिवेलं यथालाभं भावयेदेभिरौषधैः।
ततः प्रातर्लिहेत् क्षौद्रघृताभ्यां कोलमात्रकम्।।285।।
पलमात्रं वराक्वाथं पिबेदस्यानुपानकम्।
मासत्रयं शीलितं स्याद् वलीपलितनाशनम्।।286।।
मन्दाग्निं श्वासकासौ च पाण्डुतां कफमारुतौ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तं हन्यादेतन्न संशयः।।287।।
वातास्रं मूत्रदोषांश्च ग्रहणीं गुदजां रुजम्।
अण्डवृद्धिं जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम्।।288।।
बलवर्णकरं वृष्यमायुष्यं परमं स्मृतम्।
जयेत् सर्वामयान् कालादिदं लोहरसायनम्।।289।।
कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा।
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः।।290।।

शुद्ध पारद एक भाग (5 तोला) तथा शुद्ध गन्धक दो भाग (10 तोला) लेकर खरल में डालकर कज्जली बनाये, उसमें कज्जली के समान भाग (15 तोला), तीक्ष्ण लोह (फौलाद) का चूर्ण डालकर एक पहर तक मर्दन करें, तदनन्तर तीन दिन तक घीकुआर का रस डालकर मर्दन करें। इसके

तत्पश्चात् जब उसमें से गरम-गरम बहुत-सा धूम निकलने लगे तो उसका गोला बनाकर ताम्रपात्र में रख दें, फिर तत्काल इस पात्र को धान्य (गेहूँ आदि) के ढेर में तीन दिन तक रखें, तत्पश्चात् उसमें से निकाल कर खरल में डालकर तथा धूप में रखकर तुलसी के रस की तीन बार भावना दें फिर सुखाकर त्रिकटु (सोंठ-मरिच-पीपल) के क्वाथ की तीन बार भावना दें। इसी प्रकार अडूसा, गिलोय तथा चित्ता के रस की क्रमशः एक-एक बार भावना दें, तत्पश्चात् लोहे की कड़ाही में डालकर त्रिफला के रस, सम्भालू, अनार का छिलका, कमलनाल, भाँगरा, कटसरैया, पलाश की छाल, केला के कन्द का रस, विजयसार का क्वाथ, नील, मुण्डी का रस तथा बबूर (कीकर) की फलियों का रस इन सबकी तीन बार भावना दें, फिर नागबला (गंगेरन) का रस, शतावर, गोखरू तथा पातालगारुड़ी (जलजमनी), इन औषधियों के रस की तीन-तीन बार भावना दें। यह 'लोहरसायन' तैयार हो गया। इसमें से एक कोल (आधा कर्ष या आधा तोला) भर लेकर मधु तथा घी के साथ प्रातःकाल चाटना चाहिये और इसके अनुपान में त्रिफला का क्वाथ एक पल (4 तोला) पीना चाहिये। इस प्रकार तीन मास तक सेवन करने पर अकाल वली (झुर्रियाँ) तथा पलित (बालों का पकना) का विनाश हो जाता है। यह औषध पिप्पली तथा मधु के साथ खाने से मन्दाग्नि, श्वास, कास, पाण्डुरोग, कफरोग तथा वातव्याधि को नष्ट करती है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। गिलोय के सत्त्व तथा मधु के साथ खाने से वातरक्त मूत्रदोष (मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात आदि), ग्रहणीरोग, बवासीर तथा अण्डवृद्धि को जीतती है। बल, वर्ण, वीर्य तथा आयु को बढ़ाती है। कुछ काल तक सेवन करने से सभी प्रकार के रोगों को जीतती है। इसका नाम 'लोहरसायन' है। स्मरण रहे कि लोह अथवा लोहयुक्त औषधियों का सेवन करने वाला मनुष्य कोहड़ा तिलतैल, उड़द की बनी वस्तुएँ, राई, मद्य तथा खट्टे पदार्थों का परित्याग कर दें।

**वक्तव्य**–यह उत्तम रसायन है। भानुपाक द्वारा एक प्रकार को लोहभस्म तैयार करने की यह उत्तम विधि है।

### जैपाल-शुद्धि की विधि

**(जैपालं रहितं त्वगङ्कुररसज्ञाभिर्मले माहिषे**
**निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमल खल्वे सवासोऽर्दितम्।**
**लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजः सन्निभं**
**निम्बूकाम्बुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत्।। 291।।)**

जैपाल (जमालगोटा) को लेकर छिलका अंकुर तथा जीभी से रहित करके भैंस के गोबर में तीन दिन तक दबा दें, तत्पश्चात् उष्ण जल से धोकर तथा मोटे कपड़े में पोटली बाँधकर खरल में पीसे, फिर उसे (पोटली में से निकाल थोड़ा जल डालकर पीसने के पश्चात्) नवीन खपरों (मिट्टी के बर्तनों) के ठीकरों पर लीप दें, जब इसका स्नेह (तैल) दूर हो जाये और वह चूर्ण जैसा हो जाये तो कई बार (सात बार) नींबू के रस को भावना देकर सुखा लें। इस प्रकार जैपाल शुद्ध तथा गुणवान् हो जाता है।

**वक्तव्य**–जैपाल उग्र विरेचन द्रव्य है। अशुद्ध जैपाल खाने से वमन, घबराहट तथा रक्तातिसार हो जाता है, अतः इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिये। इसके अनुपान में चीनी का शर्बत (शर्करोदक) तथा गुलकन्द अवश्य देना चाहिये।

### विष-शुद्धि की विधि

**(विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बन्धयेत्।**
**गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम्।। 292।।**
**गोमूत्रं च प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः।**
**त्र्यहेऽतीते समुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत्।। 293।।**
**शुद्ध्यत्येवं विषं तच्च योग्यं भवति चार्तिजित्।**
**खण्डीकृत्यं विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया।। 294।।**
**अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात्।**
**अजादुग्धाभावतस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत्।। 295।।)**

**इति श्रीदामोदरमुनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां मध्यमखण्डे रसादिशोधनमारणकल्पना नाम द्वादशोऽध्यायः।। 12।।**

विष (मीठा तेलिया अथवा सिंगिया) को छोटा-छोटा काटकर कपड़े के टुकड़े में ढीली पीटली बना लें, फिर उसे गोमूत्र में लटका कर तीन दिन तक धूप में रख छोड़ें और प्रतिदिन पुराना मूत्र निकालकर ताजा मूत्र डालते रहें, तत्पश्चात् तीन दिन व्यतीत हो जाने पर उसे निकाल कर सुखा लें और धीरे-धीरे पीस लें। इस प्रकार विष शुद्ध होकर योगों में मिलाने योग्य तथा रोगनाशक हो जाता है। अथवा विष के टुकड़े बनाकर तथा कपड़े में बाँधकर दोलायन्त्र द्वारा बकरी के दूध में एक पहर तक स्वेदन करने से भी वह शुद्ध हो जाता है। अथवा बकरी के दूध के अभाव में उक्त विधि से गाय के दूध में भी उसे शुद्ध किया जा सकता है।

**वक्तव्य**–रसशास्त्र में जहाँ-जहाँ विष का प्रयोग करने का विधान आया है, वहाँ-वहाँ इसी प्रकार से शुद्ध किया हुआ विष प्रयुक्त किया जाता है। विष के टुकड़े सरौता से काटने चाहिये। कूटने से उसका कुछें भाग अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है, जो गोमूत्र में घुल जाता है नष्ट हो जाता है। ध्यान दें-विष को जितनी सावधानी से शुद्ध कीजिये, वह शुद्ध होने पर लगभग आधा रह जाता है। विष नाम से दो ही विषों का उपयोग होता है-1. मीठा तेलिया (वत्सनाभ) का और 2. सिंगिया।

**अहिफेन-शोधन**–'**शृंगवेररसैर्भाव्यं अहिफेनं त्रिसप्तधा। तत्संयुक्तेषु योगेषु योजयेत् तद्विधानतः**'।। अर्थात् अफीम को अदरक के रस की 21 बार भावना देने से वह शुद्ध हो जाती है। इसे आवश्यकतानुसार योगों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

**वक्तव्य**–अफीम दो प्रकार की मिलती है-1 कच्ची, जो किसानों के यहाँ मिलती है और 2. पक्व, जो ठेकेदारों के यहाँ से मिलती है। इनमें कच्ची अफीम अधिक उपयोगी होती है।

**भंगा-शोधन**–'**बब्बूलत्वक् कषायेण भङ्गां संस्वेद्य शोषयेत्। गोदुग्धभावनां दत्त्वा शुष्कां सर्वत्र योजयेत्**'।। अर्थात् भाँग को बबूल की छाल के काढ़े में स्वेदन करके सुखा लें, फिर गोदुग्ध की भावना देकर और सुखाकर योगा में प्रयुक्त करें।

**विषमुष्टि-शोधन**–'**दोलायन्त्रेण संस्वेद्य काञ्जिके प्रहरद्वयम्। किञ्चिदाज्येन सम्मृष्टो विषमुष्टिर्विशुध्यति**'।। अर्थात् काञ्जी में दोलायन्त्र द्वारा दो पहर तक स्वेदन कर घी में कुछ भून लेने पर कुचिला शुद्ध हो जाता है।

**लांगली-शोधन**–'**लाङ्गली शुद्धिमायाति दिन गोमूत्रसंस्थिता**'। अर्थात् लाङ्गली (कलिहारी) के कन्द को एक दिन 'गोमूत्र' में रखें तो वह 'शुद्ध' हो जाती है।

**गुञ्जा-शोधन**–'**गुञ्जा काञ्जिकसंस्विन्ना प्रहरात् शुद्ध्यति ध्रुवम्**'। गुञ्जा (घुँघची) को एक पहर तक 'काञ्जी' में रखकर दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करें, तो वह शुद्ध हो जाती है।

**करवीर-शोधन**–'**दोलायन्त्रेण गोदुग्धे शोधयेत् करवीरकम्**'। करवीर (कनेर) को दोलायन्त्र द्वारा गोदुग्ध में डालकर शुद्ध करें।

**अर्क-सेहुण्डदुग्ध-शोधन**–'**चिञ्चापत्ररसे प्रस्थे वस्त्रपूते पलद्वयम्। रौद्रयन्त्रे स्नुहीक्षीरं भावयेत् यत्नतः सुधीः।। अमुमेव विधिं कुर्यात् अर्कदुग्धविशोधने**।' अर्थात् सेहुण्ड (थूहर) के 2 पल दूध को इमली के पत्तों के 1 सेर रस से भावना दें, तो वह शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार अर्क (आक या मदार) के दुग्ध को भी शुद्ध करें।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता मध्यमखण्ड का बारहवाँ अध्याय समाप्त।। 12।।

**मध्यमखण्ड समाप्त।**

# उत्तरखण्डे

## प्रथमोऽध्यायः

## स्नेहपानविधिः

**स्नेह के भेद, उनके पान का समय**

**स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं तथा वसा।**
**मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ।।1।।**

स्नेह चार प्रकार का कहा जाता है। यथा–1. घृत, 2 तैल, 3. वसा (मांसगत स्नेह) और 4. मज्जा (अस्थिगत स्नेह)। मनुष्य इस स्नेह को कुछ सूर्योदय होने पर पीये।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोक द्वारा किया गया स्नेहपान का समय-विधान सामान्य है। विशिष्ट विधान इसी अध्याय के सोलहवें श्लोक में दिया गया है।

**स्नेहपान-विधि**–जब किसी रोगी अथवा नीरोग प्राणी को शोधन अर्थात् वमन-विरेचन आदि का प्रयोग करना होता है तो सर्वप्रथम स्नेहन तथा स्पंदन का प्रयोग कराया जाता है, अन्यथा लाभ के स्थान में हानि हो सकती है। ध्यान दें– **'स्नेहमग्रे प्रयुञ्जीत ततः स्वेदमनन्तरम्। स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथेतरत्'**।। (च०सू०अ० 13.99)। और भी– **'स्नेहसारोऽयं पुरुषः, प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठाः स्नेहसाध्याश्च भवन्ति'। तथा–'स्नेहो हि पानानुवासनमस्तिष्कशिरो वस्ति, नस्य, कर्णपूरण, गात्राभ्यङ्ग, भोजनेषु उपयुज्यते'**। (सु० चि० अ० 31)।

**स्नेह की दो योनियाँ**

**स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते।**
**तिलतैलं स्थावरेषु जङ्गमेषु घृतं वरम्।।2।।**

स्नेह की योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थान दो हैं–1. स्थावर तथा 2. जंगम। स्थावरों में उत्तम स्नेह तिलतैल है और जंगमों का उत्तम स्नेह घृत है।

**वक्तव्य**–संसार के समस्त द्रव्य स्थावर, जंगम भेद से दो भागों में विभक्त हैं। यथा–1. स्थावर, इनसे तेल नामक स्नेह प्राप्त होता है। यथा–तिल, सरसों, तीसी, बादाम, पिस्ता, कद्दू, ककड़ी तथा खीरा आदि के बीजों का स्नेह जो कि कोल्हू आदि यन्त्रों द्वारा प्राप्त किया जाता है। 2. जङ्गम–मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी, पक्षी तथा मछली आदि इनसे वसा, मज्जा तथा घृत प्राप्त होता है। इस प्रकार स्थावर तथा जङ्गम दो प्रकार के पदार्थों से उपलब्ध होने के कारण स्नेह को 'द्वियोनि' कहा जाता है। संस्कार के अनुसार कार्य करने के कारण तिलतैल तथा घृत को उत्तम माना जाता है। वैसे तो सभी प्रकार के स्नेह अपनी अपना विशेषता रखते ही हैं।

**मिलित स्नेहों के नाम**

**द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान्।**

मिलाये गये दो स्नेहों का नाम 'यमक', तीन स्नेहों का नाम 'त्रिवृत्' एव चार स्नेहों का नाम 'महान्' है।

**स्नेह–सेवन की कालावधि**

**पिबेत् त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहं तथा।।3।।**
**सप्तरात्रात् परं स्नेहः सात्म्यीभवति सेवितः।**

तीन, चार, पाँच अथवा छः दिन तक निरन्तर स्नेह का सेवन किया जा सकता है और सात दिन के पश्चात् सेवन किया हुआ स्नेह सात्म्य (अनुकूल) हो जाता है।

**वक्तव्य**–कोष्ठ की मृदुता तथा क्रूरता के अनुसार उक्त दिनों तक स्नेहपान करना चाहिये, इसके पश्चात् जब स्नेह सात्म्य हो जाता है, तो उसमें मलों को उभाड़ने की शक्ति नहीं रह जाती। ('सात्म्यीभूतो हि कुरुते न मलानामुदीरणम्')।

आप ध्यान दें, कोई भी वस्तु प्रारम्भ में अपना प्रभाव पूर्णरूप से दिखलाती है, तत्पश्चात् वह अनुकूल हो जाता है।

### स्नेह की मात्रायें

**दोषकालाग्निवयसां बलं दृष्ट्वा प्रयोजयेत्।।4।।**
**हीनां च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान्।**

विद्वान् चिकित्सक वातादि दोषों, शीत-उष्ण आदि काल, मन्द-तीक्ष्ण आदि जठराग्नि की शक्ति तथा बाल्य आदि वय के बल को देखकर घृत, तैल आदि स्नेह की हीन, मध्यम तथा उत्तम मात्रा का रोगियों पर प्रयोग करें।

### विधिहीन स्नेहपान के दोष

**अमात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः।।5।।**
**(कण्डूकुष्ठज्वरोत्क्लेशशूलानाहभ्रमादिकान् ।)**
**स्नेहः करोति शोफार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञताः।।6।।**

अनुचित मात्रा से, अनुचित काल में तथा मिथ्या (अहितकर) आहार-विहार करने से स्नेहपान सूजन, बवासीर, तन्द्रा, निद्रा, विसंज्ञता (मोह अथवा मूर्च्छा), खुजली, कुष्ठ, ज्वर, उत्क्लेश (मिचली), शूल, आनाह तथा भ्रम आदि रोगों को उत्पन्न कर देता है।

### दोषशान्ति के उपाय

**प्रकुर्याल्लङ्घनं तत्र स्वेदं ज्ञात्वा विरेचनम्।**

यदि स्नेहपान से उक्त उपद्रव उत्पन्न हो जाये तो लंघन तथा स्वेदन अथवा आवश्यकतानुसार विरेचन कराना चाहिये।

### स्नेह-मात्रा-विचार

**देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्य पलसम्मिता।।7।।**
**मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी।**

तक्ष्णि जठराग्नि वाले मनुष्य के लिए स्नेह की मात्रा एक पल (चार तोला), मध्यम कोटि के मनुष्य के लिए तीन कर्ष (3 तोला) तथा जघन्य (दुर्बल) मनुष्य के लिए 2 कर्ष (2 तोला) देना चाहिये।

**वक्तव्य**-स्नेह मात्रा के परिमाण में रोग एवं रोगी की परिस्थिति के अनुसार चिकित्सक न्यूनाधिकता कर सकता है।

### अन्य प्रकार से मात्रा का निश्चय

**अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्त्रोऽन्याः सर्वसम्मताः।।8।।**
**अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा।**
**जीर्यत्यल्पा दिनार्धेन सा विज्ञेया सुखावहा।।9।।**



अथवा स्नेह की तीन मात्रा और भी मानी जाती हैं, जो सर्वसम्मत है। यथा-1. महती या उत्तम मात्रा, जो दिन-रात (चौबीस घंटे) में पचती है। 2. मध्यमा मात्रा, जो दिन या रात (4 पहर या 12 घंटे) में पचती है और 3. अल्पा मात्रा, जो आधे दिन (2 पहर या 6 घंटा) में पचती है, अतः यह अल्पा मात्रा सुखदायिनी मानी जाती है।

**वक्तव्य**-वास्तव में स्नेहमात्रा का निश्चय तौल की अपेक्षा पाचन काल से करना अधिक उपयुक्त है।

### मात्राओं के गुण

**अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषेषु पूजिता।**
**मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी।।10।।**
**ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी।**

अल्पा मात्रा अग्नि को दीप्त रखने लिए, वीर्य को बढ़ाने के लिए तथा दुर्बल दोषों वाले मनुष्य के लिए मध्यमा मात्रा कोष्ठ अथवा सम्पूर्ण शरीर स्निग्ध करने के लिए, धातुओं को बढ़ाने के लिए एवं भ्रमरोग को हरने के लिए और ज्येष्ठा या महती मात्रा कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रहदोष (आदि का आवेश) तथा अपस्मार को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त की जाती है।

### दोष-भेद से स्नेह का विधान

**केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम्।।11।।**
**पेयं बहुकफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्।**

पित्तजनित रोगों में केवल घृत, वातजनित रोगों में सेंधा नमक मिला हुआ घृत तथा कफाधिक रोगों में त्रिकटु तथा जौखार मिलाकर घृत पीना चाहिये।

### घृतपान के योग्य व्यक्ति

**रूक्षक्षतविषार्तानां वातपित्तविकारिणाम्।।12।।**
**हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिष्पानं प्रशस्यते।**

रूक्षता, क्षत (घाव) तथा विष से पीड़ित, वात एवं पित्त के रोगों से पीड़ित रोगियों को तथा जिनकी बुद्धि, स्मरण-शक्ति घट गयी हो उनको घृतपान कराना उचित होता है।

### तैलपान के योग्य व्यक्ति

**कृमिकोष्ठानिलाविद्धाः प्रवृद्धकफमेदसः।।13।।**
**पिबेयुस्तैलसात्म्या ये तैलं दार्ढ्यार्थिनस्तु ये।**

जिनके उदर में कृमि हों, शरीर में वायु सम्बन्धी रोग हों, जिनकी कफ तथा मेदा बढ़ गयी हो, जिनको तैल सात्म्य या अनुकूल पड़ता हो तथा शरीर की दृढ़ता के अभिलाषी हों, मनुष्य तैल का पान करें।

### वसापान के योग्य व्यक्ति

**व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः।। 14।।**
**महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः।**

जो मनुष्य मात्रा से अधिक व्यायाम करने के कारण कृश (दुबले) हो गये हों, जिनका शुक्र तथा रक्त सूख गया हो, जो महाव्याधियों (अर्श, भगन्दर आदि) से पीड़ित हों और जिनका जठराग्नि, बल, वायु तथा प्राण (जीवनीय शक्ति) बढ़ी हुई हो, वे मनुष्य 'वसा' पान के योग्य माने जाते हैं।

### मज्जापान के योग्य व्यक्ति

**क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः।। 15।।**
**मज्जानं च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम्।**

जिनका आशय (कोष्ठ), क्रूर (कड़ा) हो, जो अधिक से अधिक क्लेश (कष्ट) को सहने के अभ्यासी हों, जो वातव्याधि से पीड़ित हों और जिनकी अग्नि दीप्त हो वे मज्जा पान करें, अथवा उनके लिए घृत सबसे हितकर होता है।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोक सुश्रुत चिकित्सास्थान अध्याय 31 के हैं। उक्त प्रसंग में 'सर्पिर्वा सर्वतो हितम्' के स्थान पर 'सर्पिर्वा स्वौषधान्वितम्' पाठ है जो अधिक उपयुक्त है।

### स्नेहपान का काल

**शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि।। 16।।**
**वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा।**

शतिकाल में दिन में तथा उष्णकाल में रात्रि में स्नेहपान करना चाहिये। वातपित्त की अधिकता में रात्रि में तथा वातकफ की अधिकता में दिन में स्नेहपान करना उचित है।

### घृत तैल की उपयोग-विधि

**नस्याभ्यञ्जनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणैः ।। 17।।**
**तैलं घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम्।**

नस्य (नासा द्वारा औषध-सेवन) में, अभ्यञ्जन (मालिश) में, गण्डूष में, शिर, कान तथा आँख के तर्पण में वातादि दोषों के बलाबल (वृद्धि-ह्रास) को देखकर तैल अथवा घृत का प्रयोग करना चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त कार्यों में वसा तथा मज्जा का भी प्रयोग किया जा सकता है और करते भी हैं।

यथा-शेर और सूअर की चर्बी का अभ्यंग पार्श्वशूल आदि में किया ही जाता है।

### स्नेहों के अनुपान

**घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते।। 18।।**
**वसामज्जोः पिबेन्मण्डमनुपानं सुखावहम्।**

घृत का अनुपान कोष्ण (गुनगुना) जल तथा तैल का अनुपान यूष (मूँग आदि की दाल का पानी) प्रशस्त (उत्तम) है। वसा तथा मज्जा का अनुपान माँड़ सुखदायक होता है।

### स्नेह-सेवन

**स्नेहद्विषः शिशून् वृद्धान् सुकुमारान् कृशानपि।। 19।।**
**उष्णकामानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत्।**

स्नेहपान के द्वेषियों (जो स्नेहपान करना नहीं चाहते) को, बालकों को, बूढ़ों को, सुकुमारों को, कृशों को तथा उष्णता (गर्मी) चाहने वालों को और उष्णकाल में भोजन या भात के साथ मिलाकर स्नेहपान कराना चाहिये।

**वक्तव्य**–यहाँ 'उष्णकामान्' पाठ सर्वथा असंगत प्रतीत होता है, इसके स्थान में 'तृष्णाकुलान्' पाठ होना चाहिये, जो कि सर्वथा संगत है। देखें–सु० चि० अ० 31 श्लोक 37। यह सम्पूर्ण श्लोक वहीं से उद्धृत किया गया है।

### यवागू से स्नेह-सेवन

**सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतण्डुला।। 20।।**
**सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनकारिणी।**

अधिक घृत से युक्त; अधिक तिल तथा थोड़े से चावलों से बनायी हुई 'यवागू' सुखोष्ण (गर्म-गर्म) सेवन की गयी शीघ्र स्नेहन करती है।

**वक्तव्य**–उक्त पद्य में 'बहुतिला' के स्थान पर 'पयः सिद्धा' पाठ है। देखे- सु० चि० अ० 31 श्लोक 40। दूध 1 सेर तथा चावल 1 छटांक की 'यवागू' (खीर) बनायें और घी डालकर गर्म-गर्म खा लें। मृदुकोष्ठ वाले रोगियों को इसी से विरेचन हो जाता है।

### धारोष्णदुग्ध से स्नेह-पान

**शर्कराचूर्णं सङ्घृष्टे दोहनस्थे घृते तु गाम्।। 21।।**
**दुग्ध्वा क्षीरं पिबेदुष्णं सद्यःस्नेहनमुच्यते।**

पिसी हुई चीनी के साथ मिश्रित घी को दूध दुहने के पात्र में रखकर उसमें गाय को दुहकर गर्म-गर्म पी लेने से शीघ्र स्नेहन हो जाता है।

**वक्तव्य**–उपर्युक्त पद्य में 'सङ्घृष्टे' के स्थान में 'संसृष्टे' होना चाहिये। देखें–सु० चि० अ० 31 श्लोक 41।

### स्नेहाजीर्ण की चिकित्सा

**मिथ्याचाराद् बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति।। 22।।**
**विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत्।**

मिथ्याचार (अनुचित आहार-विहार) से अथवा मात्रा में अधिक हो जाने से जिसका स्नेह न पचे अथवा विष्टम्भ

(पाचनसंस्थान की गति में रुकावट) को उत्पन्न करके पचे, उसे उष्ण जल द्वारा वमन (कै) करवा देनी चाहिये।

**स्नेहाजीर्ण का उपचार**

**स्नेहस्याजीर्णशङ्कायां पिबेदुष्णोदकं नरः।।23।।**
**तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा।**

यदि स्नेह के अजीर्ण की शंका हो तो उष्ण (गर्म) जल पीना चाहिये। इससे अजीर्ण शान्त होकर उद्‌गार (डकार) शुद्ध निकलता है तथा भोजन में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

**स्नेहपान-जनित तृष्णा-चिकित्सा**

**स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः।।24।।**
**तदास्योदीरयेत् तृष्णां विषमां तस्य वामयेत्।**
**शीतं जलं पाययेच्च पिपासा तेन शाम्यति।।25।।**

पित्त प्रधान मनुष्य की अग्नि जब स्नेहपान के कारण तीक्ष्ण हो जाती है, तो वह (अग्नि) तृष्णा (प्यास) को बढ़ा देती है, जो अत्यन्त भीषण होती है। ऐसे रोगी को वमन कराना चाहिये और शीतल जल पिलाना चाहिये, इससे पिपासा (तृष्णा) शान्त हो जाता है।

**वक्तव्य**–महर्षि सुश्रुत के अनुसार इस स्थिति में भी उष्णजल पिलाकर वमन कराना चाहिये। देखें-सु० चि० अ० 21 श्लोक 24।

**स्नेहपान से हानि**

**(स्नेहपानाद् भवन्त्येषां नृणां नानाविधा गदाः।**
**गदा वा कृच्छ्रतां यान्ति न सिद्ध्यन्त्यथवा पुनः।।26।।)**

जिन लोगों को स्नेहपान करने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनके साध्य रोग भी कष्टसाध्य अथवा असाध्य हो जाते हैं।

**स्नेहपान के अयोग्य रोगी**

**अजीर्णी वर्जयेत् स्नेहमुदरी तरुणज्वरी।**
**दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः।।27।।**
**दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च वान्तस्तृष्णाश्रमान्वितः।**
**अकालप्रस्रवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत्।।28।।**

अजीर्ण (अपच) का रोगी, उदररोग से पीड़ित, तरुणज्वर (आमज्वर) से पीड़ित, दुर्बल, अरुचि से युक्त, स्थूल (मेदस्वी), मूर्च्छा से पीड़ित, मदात्यय (मद्य-विकारों) से पीड़ित, जिसे वस्ति दी गयी हो, जिसे विरेचन कराया गया हो, जिसे वमन कराया गया हो, प्यास तथा परिश्रम से युक्त और अकालप्रस्रवा (जिसे अकाल में गर्भस्राव अथवा गर्भपात हो गया हो), ऐसी स्त्री भी स्नेहपान न करें और दुर्दिन (जिस दिन बादल छाये हों), में भी स्नेहपान करना उचित नहीं है।

**वक्तव्य**–थके हुये मनुष्य के लिए स्नेह का निषेध विचारणीय है, जबकि स्थान-स्थान पर मनुष्य को स्नेहपान का विधान किया गया है। उक्त पाठ सुश्रुत का है, किन्तु चरक सू० अ० 13 में थके हुये मनुष्य को स्नेहपान का निषेध नहीं किया है और स्नेहपान के अयोग्य मनुष्यों में-वे मनुष्य गिनाये गये हैं, जिनकी द्रव धातु अत्यन्त क्षीण हो गयी हो। देखें- **'अतिप्रतान्तोऽतिक्षीणद्रवधातुः'**-इति चक्रपाणिः।

**स्नेहपान के योग्य रोगी**

**स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तमानसाः ।**
**वृद्धा बालाः कृशा रूक्षाः क्षीणास्त्राः क्षीणरेतसः।।29।।**
**वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम्।**

जिनको स्वेदन तथा संशोधन कराने की आवश्यकता हो, मादक द्रव्यों, स्त्री-सहवास तथा व्यायाम में जिनका मन आसक्त हो, बूढ़े, बालक, कृश, रूक्ष तथा जिनका रक्त क्षीण हो गया हो, जिनका शुक्रक्षीण हो गया हो, जो वातव्याधि तथा तिमिर (रतौंधी) रोग से पीड़ित हों, उनको स्नेहन कराना उत्तम होता है।

**स्निग्ध तथा रूक्ष के लक्षण**

**वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम्।।30।।**
**मृदुस्निग्धाङ्गता ग्लानिः स्नेहोद्वेगोऽथ लाघवम्।**
**विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः।।31।।**

वायु का अनुलोम हो जाना, जठराग्नि का प्रदीप्त हो जाना, पुरीष (मल) का चिकना तथा गाँठरहित हो जाना, शरीर का कोमल तथा चिकना हो जाना, ग्लानि, स्नेह के प्रति अरुचि, शरीर में लघुता (हल्का या फुर्तीलापन) और इन्द्रियों की निर्मलता, ये 'सम्यक्-स्निग्ध' (जिसको उचित स्नेहन हो गया हो) के लक्षण हैं और रूक्ष मनुष्य में इनके विपरीत लक्षण होते हैं।

**अतिस्निग्ध के लक्षण**

**भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका।**
**तन्द्रातिसारः पाण्डुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम्।।32।।**

भोजन में अरुचि, मुखस्राव, गुद में दाह, प्रवाहिका (पेचिश), तन्द्रा, अतिसार तथा पाण्डु-रोग ये 'अत्यन्त स्निग्ध' के लक्षण हैं।

**वक्तव्य**–ये लक्षण प्राय: स्नेह-प्रयोग की अधिकता से उत्पन्न हो जाते हैं।

**रूक्ष तथा अतिस्निग्ध का उपचार**

**रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम्।**

रूक्ष मनुष्य को स्नेहों द्वारा स्नेहन अतिस्निग्ध को द्रव्यों द्वारा रूक्षण कराना चाहिये।

**रूक्षण द्रव्य**

**श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभि:।। 33।।**

अतिस्निग्ध मनुष्य को श्यामाक (सवाँ) के चावल तथा चना आदि (चना भुना हुआ होना चाहिये) से अथवा मट्ठा या लस्सी, खली तथा सत्तुओं को आहार-काल में खिलाकर रूक्षण करना चाहिये।

**स्नेह-सेवन का फल**

**दीप्ताग्नि: शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्दृढेन्द्रिय:।**
**निर्जरो बलवर्णाढ्य: स्नेहसेवी भवेन्नर:।। 34।।**

स्नेह का सेवन करने वाले मनुष्य का अग्नि दीप्त हो जाती है, कोष्ठ शुद्ध हो जाता है, धातुयें पुष्ट हो जाती हैं इन्द्रियाँ दृढ़ या बलवान् हो जाती हैं, बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता और वह पुरुष सदैव बल तथा वर्ण से युक्त रहता है।

**स्नेह-सेवन में त्याज्य**

**स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान्।**
**दिवास्वप्नमभिष्यन्दि रूक्षान्न च विवर्जयेत्।। 35।।**

**इति श्रीदामोदारसुनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे स्नेहपानविधि: नाम प्रथमोऽध्याय:।। 1।।**

स्नेहपान करते समय तथा उसके कुछ दिन बाद तक व्यायाम, शीतल स्थान, पान, भोजन, तथा मलमूत्रादि के वेगों का निरोध रात्रि में जागना, दिन में सोना और अभिष्यन्दि पदार्थ तथा रूक्ष अन्न को त्याग देना चाहिये।

**वक्तव्य**–स्नेहपान के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए चरक सू० अ० 13 तथा सु० चि० अ० 31 का अवलोकन करें।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का पहला अध्याय समाप्त।। 1।।
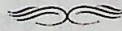
# द्वितीयोऽध्यायः

# स्वेदविधिः

### स्वेद की संख्या और गुण

**स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मस्वेदसञ्ज्ञकौ।**
**उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः।।1।।**
**स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ।**
**उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवो हितः।।2।।**

स्वेद चार प्रकार का कहा गया है–1. ताप, 2. ऊष्म, 3. उपनाह तथा 4. द्रव। ये सभी स्वेद वातजनित व्याधियों को नष्ट करते हैं। ताप तथा ऊष्म नामक स्वेद प्रायः कफरोगनाशक माने जाते हैं, उपनाह स्वेद वातनाशक होता है और यदि वातकफ के साथ पित्त का संयोग हो तो द्रवस्वेद लाभदायक होता है।

**वक्तव्य**–प्रथम अध्याय में स्नेहविधि का वर्णन किया जा चुका है उसके बाद अब यहाँ से स्वेदविधि का निरूपण किया जा रहा है। उक्त स्वेदों का विशेष विवरण इसी अध्याय में आगे दिया गया है। वात-कफ के रोगों में ही स्वेदन उपयुक्त होता है, पित्त-विकारों में तो स्वेदन किया ही नहीं जाता।

### स्वेद के भेद तथा प्रयोग

**महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान् स्मृतः।**
**दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्ये मध्यतमो मतः।।3।।**

यदि बलवान् मनुष्य को बलवान् रोग शीतकाल में हो जाये तो अधिक से अधिक स्वेद किया जा सकता है। दुर्बल मनुष्य को दुर्बल रोग हो तो थोड़ा स्वेद कराना चाहिये और मध्यम श्रेणी तथा मध्यम बल वाले पुरुष को मध्यम (न बहुत थोड़ा न बहुत अधिक) स्वेद कराना उचित है।

### दोष भेद से स्वेद के भेद

**बलासे रूक्षणस्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले।**
**कफमेदोवृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान्।।4।।**
**नियुद्धं मार्गगमनं गुरुप्रावरणं क्षुधः।**
**चिन्ताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये।।5।।**

कफ के रोगों में रूक्षता करने वाले द्रव्यों द्वारा स्वेद कराना चाहिये, कफ-वात के रोगों में रूक्ष तथा स्निग्ध द्रव्यों द्वारा स्वेदन कराना चाहिये। कफ तथा मेदा से आवृत वायु में कुछ उष्ण घर, सूर्य की किरणें, नियुद्ध (कुश्ती), मार्ग में चलना, भारी वस्त्र ओढ़ना, भूख, चिन्ता, व्यायाम तथा भार उठाना–रोग से मुक्ति पाने के लिए इनका सेवन करना चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त विधियों से स्वेदन होता है। फलतः स्वेदसाध्य रोगों से छुटकारा मिल जाता है। मेदस्वी मनुष्य उक्त चतुर्विध स्वेद को सहन नहीं कर सकता। अतः उसे साधारण स्वेदन का विधान किया गया है।

### पूर्व स्वेदनीय रोगी

**येषां नस्य विधातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम्।**
**शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः।।6।।**

जिन मनुष्यों को नस्य का विधान करना हो, वस्तिकर्म करना हो अथवा जो शोधन (वमन-विरेचन) के योग्य हों, उनको पहले स्वेदन कराना उचित होता है।

**वक्तव्य**–स्वेदन कराने के पश्चात् ही नस्य, वस्ति तथा शोधन का प्रयोग कराया जाता है।

### पश्चात् स्वेदनीय रोगी

**पश्चात्स्वेद्या गते शल्ये मूढगर्भगदे तथा।**
**काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितम्बिनी।।7।।**

निम्नलिखित रोगियों को बाद में स्वेदन कराना चाहिये–शल्य को निकाल देने के बाद उस स्थान पर, मूढ़गर्भ रोग में गर्भशल्य को निकाल लेने पर और समय पर प्रसव होने के बाद अथवा असमय पर प्रसव होने के बाद केवल प्रसूता स्त्री को।

**वक्तव्य**–काँटा निकल जाने पर वहाँ कपड़े द्वारा मुख की भाप का स्वेद दिया जाता है। प्रसव होने के बाद प्रसूता को उष्णजल से स्नान कराया जाता है तथा उसकी कमर के पास खटिया के नीचे आग रखी जाती है ये सब स्वेदन के ही प्रकार हैं। **काले-अकाले**–काल में अर्थात् नवें, दसवें मास में और अकाल में नवें मास के पहले जिसे गर्भस्राव या गर्भपात कहते हैं, उसमें।

**उभयविध स्वेदनीय रोगी**

**स्वेद्याः पूर्वं च पश्चात् च भगन्दर्यर्शसस्तथा।**
**अश्मर्यश्चातुरो जन्तुः शेषान् शास्त्रे प्रचक्ष्महे।। 8।।**

भगन्दर, बवासीर तथा अश्मरी (पथरी) के रोगियों को चिकित्सा कर्म के पूर्व और पश्चात् भी स्वेदन कराना चाहिये। अवशिष्ट रोगियों के लिए हम शास्त्र में यथास्थान कहेंगे।

**वक्तव्य**–उक्त 6-7-8 श्लोक सु० चि० अ० 32 से लिये गये हैं।

**स्वेद की व्यवस्था**

**सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णाहारे च कारयेत्।**

सभी प्रकार के स्वेदों का प्रयोग निर्वात (जहाँ सीधे हवा प्रवेश न कर सकती हो ऐसे) स्थान में भोजन के पच जाने पर करना चाहिये।

**स्वेद का फल**

**स्वेदाद् धातुस्थिता दोषाः स्नेहक्लिन्नस्य देहिनः।। 9।।**
**द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गत्वा यान्ति विरेकताम्।**

स्नेहन-क्रिया द्वारा स्निग्ध शरीर वाले मनुष्यों को स्वेदन क्रिया कराने से उनकी धातुओं में रहने वाले आम आदि दोष पतले होकर तथा कोष्ठ में आकर विरेचन दारा बाहर निकल जाते हैं।

**वक्तव्य**–पहले स्नेहन, फिर स्वेदन, तत्पश्चात् विरेचन कराने से आम (आँव) निकल जाता है।

**स्वेदन-काल में रोगी की रक्षा**

**स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशे।। 10।।**
**स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी।**

जिस समय रोगी के सम्पूर्ण शरीर को स्वेदन किया जा रहा हो, उस समय उसके हृदय को शीतल द्रव्यों (वट तथा पीपल आदि के पत्तों) का स्पर्श कराना चाहिये और इस रोगी के शरीर पर स्वेदन के पूर्व) स्नेह (नारायण तैल आदि) की मालिश करा देनी चाहिये और स्वेदन के समय रोगी के नेत्रों को शीतल द्रव्यों से ढाँक देना चाहिये।

**वक्तव्य**–विशेष विवेचन के लिए देखें–च० सू० अ० 14 श्लोक 12।

**स्वेद के अयोग्य रोगी**

**अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः।। 11।।**
**अतिसारी रक्तपित्ती पाण्डुरोगी तथोदरी।**
**मदार्तो गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या विजानता।। 12।।**
**एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत्।**

अजीर्ण (अनपच) का रोगी, दुर्बल, प्रमेह से पीड़ित, उरःक्षत से पीड़ित, क्षीण (जिसके धातुओं का क्षय हो गया हो), तृष्णा का रोगी (प्यासा), अतिसार से पीड़ित, रक्तपित्त, पाण्डु रोग तथा उदररोग के रोगी मद्य के विकारों से पीड़ित तथा गर्भवती स्त्री–इन सबकी विद्वान् चिकित्सक स्वेदन क्रिया न करें। इन रोगियों को भी यदि स्वेदसाध्य रोग हों तो मृदु (साधारण) स्वेदों द्वारा उपचार करें।

**वक्तव्य**–यद्यपि शार्ङ्गधरसंहिता आदि ग्रन्थों के साहित्य का संग्रह अथवा सम्पादन प्राचीन संहिताग्रन्थों के सहारे ही किया गया है, तथापि सैद्धान्तिक विषयों के निर्णय के लिए आप भी उन आधारभूत ग्रन्थों का अवलोकन अवश्य कर लें, क्योंकि आपके वचनों पर समाज श्रद्धा करता है और आप पर विश्वास करता है। अतः आप कोई बात ऐसी न कह बैठें, जो शास्त्र विरुद्ध हो। इसी दृष्टि से जिन्हें अस्वेदनीय कहा गया है, उन पर भी विचार करें, क्या उक्त श्लोकों में परिगणित सभी रोगी उस योग्य हैं?

**मृदुस्वेद के स्थान**

**मृदुस्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु।। 13।।**

हृदय, मुष्क (अण्डकोश) तथा नेत्रों पर मृदु स्वेद का प्रयोग करना चाहिये।

**अतिस्वेद के उपद्रव**

**अतिस्वेदात् सन्धिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः।**
**पित्तासृक्पिडकाकोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत्।। 14।।**

अधिक स्वेदन हो जाने से सन्धियों में पीड़ा, दाह, तृष्णा, सुस्ती, भ्रम (घुमटा), पित्त, रक्त का प्रकोप तथा पिड़काओं (फुन्सियों) की उत्पत्ति हो जाती है। ऐसी दशा में शीतल द्रव्यों से उपचार करना चाहिये।

### तापस्वेद-विधि

**तेषु तापाभिधः स्वेदो बालुकावस्त्रपाणिभिः।**
**कपालकन्दुकाङ्गारैर्यथायोग्यं प्रयुज्यते।। 15।।**

इन चारों प्रकार के स्वेदों में जो 'ताप' नामक स्वेद लिखा गया है, वह बालू की पोटली को गरम बनाकर, वस्त्र, हाथ, कपाल (घड़े के टुकड़ों), गेंद तथा अंगारों द्वारा आवश्यकतानुसार किया जाता है।

**वक्तव्य**–बालू आदि को अग्नि द्वारा गर्म कर लिया जाता है और अंगारों में समीप बैठकर सेंक लिया जाता है। 'ऊष्म' नामक स्वेद निम्नलिखित विधि से प्रयुक्त करना चाहिये।

### ऊष्मस्वेद-विधि

**ऊष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिण्डेष्टकाश्मभिः।**
**प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये नक्तकवेष्टिते।। 16।।**
**अथवा वातनिर्नाशिद्रव्यक्वाथरसादिभिः।**
**उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं विधाय च।। 17।।**
**विमुद्र्यास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठवंशजाम्।**
**षडङ्गुलास्यां गोपुच्छां नलीं युञ्ज्याद् द्विहस्तिकाम्।। 18।।**
**(सुखा सर्वाङ्गा ह्येषा न च क्लिश्नाति मानवम्।)**
**सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम्।। 19।।**
**हस्तिशुण्डिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम्।**
**पुरुषायाममात्रां वा भूमिमुत्कीर्य खादिरैः।। 20।।**
**काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः।**
**वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम्।। 21।।**
**एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेदमाचरेत्।**

'ऊष्मस्वेद' का प्रयोग निम्नलिखित विधियों से करना चाहिये–

**पहली विधि**–लोहपिण्ड, ईंट अथवा पत्थर को तपाकर और अम्ल द्रवों (काञ्जी आदि) से सींचकर तथा कपड़े में लपेटकर शरीर के स्वेदनीय भाग पर ऊष्म अर्थात् माप का प्रयोग करना चाहिये।

**दूसरी विधि**–वातनाशक द्रव्यों (एरण्ड तथा देवदारु आदि) के क्वाथ अथवा रस आदि को ऊष्ण करके एक घड़े भर दें और उसका मुख बन्द कर दें तथा उस घड़े के पार्श्वभाग में पहले ही एक छिद्र बनाकर उसमें ताम्र आदि धातु की, काठ की अथवा बाँस की एक नली लगा दें, इस नली के तीन भाग होने चाहिये (आवश्यकतानुसार तीन, दो अथवा एक ही खण्ड का प्रयोग किया जाता है, इसका मुख छः अंगुल (व्यास) का हो, आकृति गाय के पूँछ जैसी और लम्बाई दो हाथ होनी चाहिये। इस 'हस्तिशुण्डिका' (हाथी की सूँड जैसी) नामक नाडी (नली) द्वारा व्यातव्याधि से पीड़ित रोगी को स्वेदन कराना चाहिये, क्योंकि यह सुखपूर्वक प्रयुक्त की जा सकती है तथा सभी अङ्गों पर पहुँचायी जा सकती है। इससे मानव को क्लेश भी नहीं होता। इस रोगी को भली-भाँति स्नेह (तैल) की मालिश कराकर और भारी कपड़े (कम्बल या रजाई आदि) से ढाँककर सुखपूर्वक बैठा देना चाहिये। तब उक्त विधि से स्वेदन देना चाहिये।

**तीसरी विधि**–जिसे स्वेदन कराना हो उस पुरुष की लम्बाई तथा मोटाई के समान भूमि को खोदकर उसमें खैर की लकड़ियाँ जला दें, जब लकड़ियाँ जल चुकें तो उसमें से सब कोयले निकाल दें, उसे दूध, काँजी अथवा जल से छिड़क कर और वातनाशक वृक्षों (एरण्ड आदि) के पत्रों से ढाँककर (उक्त पत्र नीचे भी बिछा दें) लेटे हुये मनुष्य को स्वेदन कराना चाहिये।

**चौथी विधि**–उड़द आदि को उबाल कर उसे आवश्यकतानुसार फैला दें और उस पर मनुष्य को लेटाकर स्वेदन कराना चाहिये।

**वक्तव्य**–ऊष्मा (भाप) द्वारा स्वेदन कराने के कारण ही इसे 'ऊष्मस्वेद' कहते हैं।

### उपनाह-स्वेद-विधि

**अथोपनाहस्वेदं च कुर्याद् वातहरौषधैः।। 22।।**
**प्रदिह्य देहं वातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः।**
**अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः।। 23।।**
**उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च।**
**दधिसौवीरकक्षीरैर्वीरतर्वादिना तथा।। 24।।**
**कुलत्थमाषागोधूमैरतसीतिलसर्षपैः।**
**शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः।। 25।।**
**एरण्डमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः।**
**मिशिकृष्णाकुठेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः।। 26।।**
**प्रसारिण्यश्वगन्धाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः।**
**गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः।। 27।।**
**क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम्।**
**महाशाल्वणसञ्ज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्तिहृत्।। 28।।**

अब 'उपनाह स्वेद' की विधि कही जाती है। वातनाशक

द्रव्यों को दूध, मांसरस अथवा अम्ल द्रव (काँजी आदि) के साथ पीसकर नमक तथा स्नेह (तिलतैल आदि) मिलाकर गर्म करें और वातपीड़ित शरीर के अवयव को वातहरलेप से लीपकर (मोटा लेप लगाकर) उपनाह नामक स्वेद का प्रयोग करें। अथवा गाँव में रहने वाले (घोड़ा, खच्चर, गदहा, मेढ़ा तथा दुम्बा आदि) अनूप देश में रहने वाले (हाथी, भैंस तथा सूअर आदि) प्राणियों के मांस अथवा जीवनीयगण (देखें-शा०, म०खं० अ० 6) के द्रव्य अथवा दही, काँजी तथा दूध में पीसे हुये वीरतर्वादिगण (देखें-शा०, म०खं० अ० 2) के द्रव्य लेकर और पीसकर प्रदेह (पुलटिश) करें, अथवा कुलथी, उड़द, गेहूँ, तीसी (अलसी), तिल, सरसों (या राई), सौंफ, देवदारु, सम्भालू, कलौंजी (मंगरैला), एरण्ड की जड़ तथा बीज, रासना, मूली के बीज, सहजन के बीज या पत्ते, सोया, पीपल, तुलसी, नमक (कोई भी), अम्ल (कोई भी), गन्ध-प्रसारिणी, असगन्ध, बला (चारों प्रकार की), दशमूल (देखें-शा०, म०खं० अ० 2), गिलोय तथा किवाँच के बीज-इसमें से जितने द्रव्य मिल जायें, उन्हें लेकर, कूटकर, पकाकर तथा कपड़ें में बाँधकर स्वेदन कराये। यह 'महाशाल्वण' नामक योग सभी प्रकार की वातव्याधियों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—प्रदेह को 'पुलटिस' कहा जाता है और स्वेदन द्रव्यों की पोटली बनाकर स्वेदन या सेक कराना भी प्रदेह के ही अन्तर्गत आता है।

### द्रवस्वेद-विधि

**द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्यक्वाथेन पूरिते।**
**कटाहे कोष्ठके वाऽपि सूपविष्टोऽवगाहयेत्॥ 29॥**

**द्रवस्वेद की विधि**—बात नाशक द्रव्यों के स्वाथ से भरे हुये कटाह (कड़ाहा) अथवा कोष्टक (द्रोणी या टब) में बैठकर अवगाहन करना चाहिये।

**वक्तव्य**—उक्त विधि से दूध, मांसरस, यूष, तैल, घान्याम्ल, घृत, वसा तथा मूत्र में भी अवगाहन किया जाता है। उषा द्रवा से सेचन करना भी द्रवस्वेद ही है।

### द्रवद्रव्य का परिमाण

**नाभेः षडङ्गुलं यावन्मग्नः क्वाथस्य धारया।**
**कोष्णया स्कन्धयोः सिक्तस्तिष्ठेत् स्निग्धतनुर्नरः॥ 30॥**
**एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम्।**

स्वेदन के पूर्व रोगी को स्नेहपान अथवा अभ्यंग द्वारा स्निग्ध करके तत्पश्चात् कटाह अथवा कोष्टक या नाँद में बैठा दें, इस (कटाह) में वातनाशक द्रव्यों का क्वाथ इतना भरना चाहिये जिससे नाभि से छः अंगुल तक डूब जाये, और उक्त क्वाथ की धारा रोगी के कन्धों तक भी स्पर्श कर सके। इस प्रकार रोगी को तैल, दूध अथवा घृत से भी स्वेदन कराया जा सकता है।

**वक्तव्य**—शीतकाल में उष्ण जल से स्नान करना अथवा उष्ण जल से भरे हुये टब (नाँद) में बैठकर स्नान कराना 'द्रवस्वेद' ही है।

### स्नेहकृत स्वेद का काल

**एकान्तरे द्व्यन्तरे वा स्नेहो युक्तोऽवगाहने।**

अवगाहन में तैल आदि स्नेहों का प्रयोग एक अथवा दो दिन का अन्तर देकर करना चाहिये।

### स्वेद का लाभ-प्रकार

**शिरामुखैर्लोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत्॥ 31॥**
**शरीरे बलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने।**

अवगाहन में स्नेह का प्रयोग करने से वह सिराओं के मुखों द्वारा रोमकूपों तथा धमनियों से भीतर जाकर शरीर को तृप्त करता है और बल को बढ़ाता है।

### स्वेद से धातुवृद्धि

**जलसिक्तस्य वर्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः॥ 32॥**
**तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते।**
**नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः॥ 33॥**

जैसे जड़ में जल सींचने से वृक्ष के अंकुर बढ़ते हैं ठीक वैसे ही स्नेह द्वारा सींचने से शरीर में धातुओं का वृद्धि होती है। स्नेहावगाहन से उत्तम वातनाशन का कोई भी उपाय नहीं है।

### स्वेदन की अवधि

**शीतशूलाद्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे।**
**दीप्ताग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद् विरतिर्मता॥ 34॥**

शीत तथा शूल के शान्त हो जाने पर, स्तम्भ (जकड़न), तथा भारीपन के नष्ट हो जाने पर, जठराग्नि दीप्त हो जाने पर और शरीर में मृदुता या कोमलता उत्पन्न हो जाने पर स्वेदन कार्य बन्द कर देना चाहिये।

### सुस्विन्न का आहार-विहार

**सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णाम्बुभिः शनैः।**
**भोजयेच्चानभिष्यन्दि व्यायामं च न कारयेत्॥ 35॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे स्वेदविधिः नाम द्वितीयोऽध्यायः ।। 2 ।।**

भली-भाँति स्वेदन हो जाने पर शरीर को धीरे-धीरे मर्दन करें और उष्ण जल से स्नान करवा दें, तत्पश्चात् ऐसा भोजन करायें जो अभिष्यन्दी न हो और व्यायाम (किसी भी प्रकार का परिश्रम) न करने दें।

**वक्तव्य**–स्वेद-विधि की विशेष जानकारी के लिये देखें–च० सू० अ० 14 तथा सु० चिं० अ० 32।

**उष्ण जल से स्नान की विधि**–अधःकाय (गरदन के नीचे का भाग) का उष्ण जल द्वारा परिषेचन या स्नान बलवर्द्धक होता है, किन्तु उसी उष्ण जल द्वारा उत्तमांग या शिर का परिषेचन केश तथा नेत्रों के बल को हरता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ।। 2 ।।

# तृतीयोऽध्यायः
# वमनविधिः

### वमन-विरेचन का काल

**शरत्काले वसन्ते व प्रावृट्काले च देहिनाम्।**
**वमनं रेचनं चैव कारयेत् कुशलो भिषक्।।1।।**

कुशल चिकित्सक शरद् ऋतु (कार्त्तिक तथा अगहन) में, वसन्त ऋतु (फाल्गुन तथा चैत्र) में प्रावृट् ऋतु (आषाढ़ तथा सावन) में मनुष्यों को वमन तथा विरेचन कराना चाहिये।

**वक्तव्य**—स्नेहन तथा स्वेदन के पश्चात् यदि आवश्यकता हो तो शोधन (वमन, विरेचन) का प्रयोग किया जाता है। उक्त ऋतुओं का समय समशीतोष्ण होता है, अतः वमन-विरेचन कराने में किसा प्रकार का व्यापत्ति का भय नहीं रहता।

### वमन के योग्य पुरुष

**बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम्।**
**तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत्।।2।।**

बलवान्, कफ से व्याप्त, हल्लास (जी मिचलाना) आदि लक्षणों से पीड़ित, वमन-सात्म्य (जिसको वमन अनुकूल पड़ता हो) तथा धीरचित्त (जो घबराने वाला न हो) ऐसे पुरुष को वमन कराना चाहिये।

### वमन के योग्य रोग

**विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे।**
**हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च।।3।।**
**विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु।**
**अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु।।4।।**
**नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्त्रावे द्विजिह्विके।**
**गलशुण्ड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा।।5।।**
**मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद् भिषक्।**

विषजनित विकारों, स्तन्यजनित रोगों (बालकों तथा धात्री में), मन्दाग्नि, श्लीपद (फील-पाँव), अर्बुदरोग, हृदयरोगों, कुष्ठ, वीसर्प, प्रमेह, अजीर्ण (अपच तथा अलसक आदि) भ्रम, विदारिका नामक व्याधि अपची (गण्डमाला भेद), कास, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक कर्णस्त्राव, द्विजिह्वक रोग, गलशुण्डी, अतिसार, पित्तकफ के रोगों, मेदोवृद्धि तथा अरुचि वमन कराना चाहिये।

### वमन के अयोग्य रोग

**(अवाम्यवमनाद् रोगाः कृच्छ्रतां यान्ति रोगिणः।।6।।**
**असाध्यतां वा गच्छन्ति ततोऽवाम्यान्न वामयेत्।)**

वमन के अयोग्य रोगों में वमन कराने से रोगी के रोग कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य हो जाते हैं, अतः अवाम्य रोगियों को वमन नहीं कराना चाहिये।

### वमन के अयोग्य रोगी

**न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः।।7।।**
**नातिवृद्धो गर्भिणी च न स्थूलां न क्षुधातुरः।**
**मदार्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः।।8।।**
**उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दी केवलानिली।**
**पाण्डुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात् स्वरघातकः।।9।।**

तिमिर (धुन्ध) रोगी, गुल्मरोगी (वायुगोला से पीड़ित) उदररोगों से पीड़ित कृश अत्यन्त वृद्ध, गर्भवती, अत्यन्त स्थूल, उरः क्षत से पीड़ित, मद्यजनित रोगों से पीड़ित, बालक रूक्ष शरीर वाला, भूख से पीड़ित, जिसको निरूहणवस्ति दी गयी हो, उदावर्त्त का रोगी, जिसको मुख, नाक आदि ऊपरी मार्गों से रक्तपित्त जा रहा हो, जिसे व्रमन होने में अत्यन्त कष्ट होता हो, जिसे केवल वायु के रोग हों, पाण्डुरोगी जिसके उदर में क्रिमि हों तथा जिसका पढ़ने के कारण स्वर बैठ गया हो, ऐसे लोगों को वमन कराना उचित नहीं है।

### वमन के अयोग्यों को भी वमन का विधान

**एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः।**
**कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्वाथपानतः।। 10।।**

ये भी, जिन्हें वमन नहीं कराना चाहिये, यदि वे अजीर्ण से अथवा विष-विकार से पीड़ित हों तो वमन कराने योग्य माने जाते हैं। यदि वे कफ-विकार से व्याप्त हों तो उनको मुलेठी का क्वाथ पिलाकर वमन करानी चाहिये।

### सुकुमार आदि के वमन की विधि

**सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं च वामयेत्।**
**पीत्वा यवागूमाकण्ठं क्षीरतक्रदधीनि वा।। 11।।**

सुकुमार, कृश, बालक, वृद्ध तथा भीरु (डरपोक) को यवागू, दूध, मट्ठा अथवा दही कंठ तक पिलाकर वमन कराना चाहिये।

### वमन का विशेष विधान

**असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्य देहिनः।**
**स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्तते।। 12।।**

स्निग्ध तथा स्विन्न अर्थात् जिनको स्नेहन, स्वेदन कराया जा चुका हो उनके दोषों को, असात्म्य तथा कफवर्धक भोजनों (भक्ष्य, पेय आदि) से उभाड़ दिया हुआ वमन भली-भाँति प्रवृत्त होता है।

### वमन के सहायक द्रव्य

**वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम्।**

सभी वमन की औषधियों में सेंधा नमक तथा मधु का प्रयोग लाभदायक होता है।

### वमन-विरेचन-स्वरूप

**बीभत्सं वमनं दद्याद् विपरीतं विरेचनम्।। 13।।**

बीभत्स (अरुचिकर) द्रव्यों से वमन तथा इससे विपरीत (रुचिकर) द्रव्यों से विरेचन देना चाहिये।

### वमन-द्रव्यों का परिमाण

**क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके।**
**अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत्।। 14।।**

क्वाथ्य द्रव्य एक कुडव (14 तोला) लेकर एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) जल में पकायें आधा जल शेष रह जानें पर इसका वमन के लिए प्रयोग करें।

### क्वाथ-पान की मात्रा

**क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता।**
**मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी।। 15।।**



क्वाथ की उत्तम मात्रा नौ प्रस्थ की, मध्यम मात्रा छः प्रस्थ की तथा कनीयसी (छोटी) मात्रा तीन प्रस्थ की कही गयी है।

### कल्कादि की मात्रा

**कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया।**
**मध्यमां द्विपलां विद्यात् कनीया पलसम्मिता।। 16।।**

कल्क, चूर्ण तथा अवलेहका उत्तम मात्रा, तीन पल (12 तोला) की, मध्यम मात्रा दो पल की तथा कनीयसी मात्रा एक पल की माननी चाहिये।

**वक्तव्य**—यहाँ उक्त मात्राओं का उल्लेख सामान्य रूप से किया गया है। इनका प्रयोग देश, काल, वध तथा बल के अनुसार करना चाहिये।

### वमन के वेग

**वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तान्तमुत्तमाः।**
**षड्वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारस्त्ववरे स्मृताः।। 17।।**

वमन के आठ वेग होते हैं। यदि अन्तिम वेग में पित्त निकल जाये तो उत्तम माना जाता है। छः वेग मध्यम तथा चार वेग स्वर (हीन) माने जाते है।

### वमनादि में प्रस्थ का मान

**वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे।**
**सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः।। 18।।**

वमन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण में विद्वान् चिकित्सक साढ़े तेरह पल (54 तोला) का प्रस्थ मानते हैं।

**वक्तव्य**–वमन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण में कुछ दोष भले ही अवशिष्ट रह जायें, किन्तु इस अतियोग नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे शमन-क्रिया द्वारा शान्त किये जा सकते हैं। प्रकरण में प्रस्थ को छोटा स्वीकार करने का कारण भी यही है।

### दोष-भेद से द्रव्य-भेद

**कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत्।**
**सुस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम्।। 19।।**

कफ को कड़वी, तीक्ष्ण तथा उष्ण औषधियों द्वारा, पित्त को स्वादु (मधुर) तथा शीत औषधियों द्वारा, वायु से सम्मिलित कफ को सुमधुर, लवण (नमकीन) अम्ल (खट्टी) तथा उष्ण औषधियों द्वारा जीतना चाहिये।

### पित्त में वमन

**कृष्णा राठफलं सिन्धु कफे कोष्णजलैः पिबेत्।**
**पटोलवासानिम्बैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत्।। 20।।**

पीपल, मैनफल तथा सेंधा नमक का चूर्ण कफ-विकार में कोसे पानी के साथ, पित्त में परवल की पत्ती, अडूसा की पत्ती तथा निम्ब के पत्रों के शीतकषाय के साथ पीना चाहिये।

### कफवातज रोगों में वमन

**सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत्।**
**अजीर्णे कोष्णपानीयैः सिन्धु पीत्वा वमेत् सुधीः।। 21।।**

कफयुक्त वातज रोगों में मैनफल का चूर्ण दूध के साथ और अजीर्ण में उष्ण जल के साथ सेंधा नमक (जल में पकाकर) पिलाकर वमन कराना चाहिये।

### वमन के उपद्रवों की चिकित्सा

**(गण्डूषधूमानाहारान् रूक्षान् भुक्त्वा तदुद्वमेत्।**
**व्यायामः स्रुतिरस्रस्य शस्तं चात्र विरेचनम्।। 22।।**
**सक्षारलवणं तैलमभ्यङ्गार्थे च शस्यते।)**

भली-भाँति वमन न होने से उत्पन्न हुये उपद्रवों में रूक्ष गण्डूष (कुल्ले), धूम तथा आहारों का प्रयोग करें और भोजन करके तत्काल वमन करा दें। व्यायाम, रक्तस्राव (सिरावेध आदि द्वारा) तथा विरेचन भी इस दशा में प्रशस्त होता है और क्षार (टंकण आदि) तथा नमक मिश्रित तैल का अभ्यंग (मालिश) भी लाभदायक होता है।

### वमन करते समय कर्तव्य

**वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितम्।। 23।।**
**कण्ठमेरण्डनालेन स्पृशन्तं वामयेद् भिषक्।**
**ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वे द्वे च प्रधारयेत्।। 24।।**

वमनकारक औधषि पिलाकर रोगो को जानु भर ऊँचे आसन (कुरसी) पर बिठा दें। जब जी मिचलाने लगे तो एरण्ड की लकड़ी (अथवा अंगुली) से कण्ठ को स्पर्श करते हुये रोगी को वमन कराये और जिस समय वमन हो रहा हो, उस समय रोगी का मस्तक पकड़ लेना चाहिये तथा दोनों ओर की पसलियों को मसलते रहना चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त श्लोक सु० चि० अ० 33 के छठे सूत्र के अन्तिम भाग का पद्यानुवाद मात्र है। उक्त क्रिया से रोगी घबराता नहीं और वमन में सहायता मिलती है। अन्य कार्य परिचारक से करवाने चाहिये, किन्तु गले के भीतर अंगुली का स्पर्श रोगी स्वयं कर सकता है।

### दुर्वान्त के लक्षण

**प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कण्डूर्दुश्छर्दिते भवेत्।**

यदि वमन भली-भाँति नहीं होता तो प्रत्येक (मुख से पानी जाना), हृद्ग्रह (हृदय का गति में रुकावट), कोठ (शीतपित्त) तथा कण्डू (खुजली) ये लक्षण या रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

### अतिवान्त के लक्षण

**अतिवान्ते भवेत् तृष्णा हिक्कोद्गारौ विसंज्ञिता।। 25।।**
**जिह्वानिःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावत्तिर्हनुसंहतिः।**
**रक्तच्छर्दिःष्ठीवनं च कण्ठे पीडा च जायते।। 26।।**

वमन के अतियोग (अधिक हो जाने) से निम्नलिखित विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यथा-प्यास, हिचकी, उद्गार (डकारों का अधिकता), मूर्च्छा या मोह, जिह्वा-निःसरण (जीभ का बाहर निकल आना), नेत्रों का विकृत हो जाना, हनुस्तम्भ, रक्त की उलटी, अधिक थूक आना तथा कण्ठ में वेदना होना।

### वमन के उपद्रवों की चिकित्सा

**वमनस्यातियोगे तु मृदु कुर्याद् विरेचनम्।**
**वमनान्तः प्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः।। 27।।**
**स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः।**
**फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः।। 28।।**
**निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत्।**
**व्यावृतेऽक्ष्णि घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैः शनैः।। 29।।**
**हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत्।**
**रक्तपित्तविधानेन रक्तच्छर्दिमुपाचरेत्।। 30।।**
**धात्रीरसाञ्जनोशीरलाजाचन्दनवारिभिः।**
**मन्थं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम्।। 31।।**
**शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः।**

वमन के अतियोग में मृदुविरेचन (साधारण-सा दस्त) कराना लाभदायक है (इससे वमन रुक जाता है)। अधिक वमन होने के कारण यदि जीभ भीतर की ओर चलीं गयी हो तो हृदय को प्रिय लगने वाले स्निग्ध अम्ल (खट्टे) तथा नमकीन द्रव्यों के तथा घी, दूध तथा मांसरस के साथ कवलग्रह हितकारक होते हैं और यदि उस मनुष्य के सामने दूसरा मनुष्य खट्टे फल (नींबू आदि) खायें तो उसकी जीभ उचित स्थान पर आ जाती है। बाहर निकली हुई जीभ को तिल तथा मुनक्का के कल्क का प्रलेप करके भीतर प्रविष्ट करा देना

चाहिये। विकृत हुई आँखों को घी की मालिश करके धीरे-धीरे पीड़न या यथास्थान बैठा देना चाहिये। हनुमोक्ष (विवृतास्यत्व अथवा संवृतास्यत्व) में स्वेद-अथवा कफ-वातनाशक नस्य देना उचित है। रक्तपित्त की चिकित्सा से रक्त के वमन का उपचार करना चाहिये। आँवला, रसवत, खस, धान का लावा, रक्तचन्दन तथा नेत्रबाला का मन्थ बनाकर उसमें घी, मधु तथा मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे तृष्णा तथा हिचकी आदि उपद्रव जो वमन के अतियोग के कारण उत्पन्न हो गये हों तो शान्त हो जाते हैं।

### सम्यग् वात के लक्षण

**हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वं च लाघवम्।।32।।**
**कफपित्तविनाशश्च सम्यग् वान्तस्य लक्षणम्।**

हृदय, कण्ठ तथा शिर का शुद्ध होना, अग्नि का दीप्त होना, शरीर में हलकापन, कफ तथा पित्त के विकारों का विनाश ये लक्षण जिसका उत्तम रीति से वमन हो गया हो, उसमें देखे जाते हैं।

**वक्तव्य**-जब तक उक्त लक्षण उत्पन्न न हों, तब तक वमन कराते जाना चाहिये।

### वान्त का पथ्य

**ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः।।33।।**
**हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत्।**

उचित रूप से वमन हो जाने पर दोपहर के बाद (तीसरे पहर) दीप्ताग्नि (जिसकी अग्नि दीप्त हो या उचित रूप से भूख लगी हो) में मूँग, साठी के चावल तथा शालिचावलों से बनाये हुये यूष, हृद्य (हृदय को शक्ति देने वाले), जांगल (जांगल देश में उत्पन्न) प्राणियों (हरिण आदि) के मांस रस के साथ खिलाना चाहिये।

### वमन के लाभ

**तन्द्रा निद्राऽस्यदौर्गन्ध्यं कण्डूश्च ग्रहणी विषम्।।34।।**
**सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन।**

तन्द्रा, निद्रा, मुख की दुर्गन्ध, खुजली, ग्रहणी रोग तथा विषजनित विकार ये सब सुवान्त (जिसको भली-भाँति वमन हो चुका है) मनुष्य को कभी भी कष्टदायक नहीं होते, अर्थात् उचित प्रकार से वमन होने पर उक्त रोग शान्त हो जाते हैं।

### वमन में परिहार्य

**अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा।।35।।**
**स्नेहाभ्यङ्गं प्रकोपं च दिनैकं वर्जयेत् सुधीः।**

वमन के पश्चात् बुद्धिमान् रोगी को अजीर्णोत्पादक वस्तुओं, शीत जल, व्यायाम, मैथुन, स्नेह की मालिश तथा क्रोध का परित्याग करना चाहिये।

**वक्तव्य**-वमन के विषय में विशेष जानकारी के लिए च० सू० अ० 15 तथा सु० चि० अ० 33 देखें।

### वमन-विरेचन के पूर्व स्नेहन-स्वेदन

**(स्नेहस्वेदावकृत्वाऽग्रे यस्तु संशोधनं पिबेत्।।36।।**
**दारुशुष्कमिवानामे देहस्तस्य विशीर्यते।)**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे वमनविधिः तृतीयोऽध्यायः।।3।।**

जो पुरुष पहले स्नेहन तथा स्वेदन न करके वमन, विरेचन की औषधि का पान करता है, उसकी देह उस प्रकार विशीर्ण हो जाती है जैसे स्नेहन स्वेदन के बिना झुकाने पर सूखी लकड़ी।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त।।3।।

## चतुर्थोऽध्यायः

# विरेचनविधिः

### विरेचन-योग्य रोगी

**स्निग्धस्विन्नस्य वान्तस्य दद्यात् सम्यग्विरेचनम्।**
**अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत् कफः।।1।।**

स्निग्ध, स्विन्न तथा वान्त (जिसको विधिपूर्वक स्नेहन, स्वेदन तथा वमन कराया जा चुका हो) मनुष्य को विधिपूर्वक विरेचन कराना चाहिये।

**वक्तव्य**-स्नेहन, स्वेदन तथा वमन कराने के बाद ही विरेचन देना चाहिये। देखें-सु० चि० अ० 33। क्योंकि स्नेहन, स्वेदन का सेवन न करके जो मनुष्य संशोधन औषध का सेवन करता है, उसका शरीर सूखी लकड़ी के समान टूट जाता है।

### वमन-रहित विरेचन के दोष

**मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद् वा प्रवाहिकाम्।**
**अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत्।।2।।**
**स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्य रेचनम्।**

जिसको वमन नहीं कराया गया है, उस मनुष्य का कफ नीचे (आमाशय से ग्रहणी में) जाकर ग्रहणी को ढँककर उसे विकृत कर देता है। अतएव मन्दाग्नि, गौरव (भारीपन) तथा प्रवाहिका को उत्पन्न कर देता है। इसलिये वमन कराकर ही विरेचन कराना उचित होता है। अथवा पाचन-क्रिया द्वारा आम तथा कफ को पकाना चाहिये और स्नेहों द्वारा स्निग्ध तथा स्वेदों द्वारा स्विन्न मनुष्य को विरेचन देना उचित होता है।

### विरेचन का काल

**शरदृतौ वसन्ते च देयं शुद्धौ विरेचनम्।।3।।**
**अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद् बुधः।**

शरद् ऋतु (कार्तिक-मार्गशिर) तथा वसन्त ऋतु (फाल्गुन चैत्र) में देह की शुद्धि के लिए विरेचन देना चाहिये। उक्त ऋतुओं से अतिरिक्त समय में अत्यन्त आवश्यक होने पर शोधन (विरेचन) द्रव्यों का सेवन किया जा सकता है।

**पाठभेद-'अन्यदात्ययिके कार्ये स्वेदनं शीलयेद् बुधः'**। पाठक इस पाठ की दीपिका तथा गूढार्थदीपिका टीकाओं को भी देखें, आप समझ जायेंगे कौन-सा पाठ अधिक उपादेय है।

### संशोधन का फल

**दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः।।4।।**
**ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः।**

लंघन तथा पाचनक्रिया द्वारा जीते (शान्त किये) हुये दोष कभी कुपित हो सकते हैं, किन्तु शोधन-क्रिया द्वारा जो शुद्ध कर दिये जाते हैं, उनकी फिर से उत्पत्ति नहीं होती।

### विरेचन-योग्य रोग

**पित्ते विरेचनं युञ्ज्यादामोद्भूते गदे तथा।।5।।**
**उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्ध्यै विशेषतः।**

पित्तजनित विकारों, आमजनित रोगों, उदर रोगों तथा आध्मान (अफरा) कोष्ठशुद्धि के लिये विशेष रूप से विरेचन का प्रयोग करना चाहिये।

### विरेचन के अयोग्य रोगी

**बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः।।6।।**
**श्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी।**
**नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी।।7।।**
**शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता।**

विद्वान् चिकित्सक निम्नलिखित व्यक्तियों को विरेचन न करायें-बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध (जिसने अत्यन्त स्नेहपान किया हो), जिसको उरःक्षत हो, जिसके धातुओं का क्षय हो गया हो, डरने वाला, थका हुआ, प्यासा, मोटा, गर्भवती,

नवीन ज्वर से पीड़ित, नवप्रसूता स्त्री, जिसकी अग्नि मन्द हो, जिसने अधिक मद्यपान किया हो, जिसके शरीर में शल्य चुभ गया हो तथा जिसका कोष्ठ रूक्ष हो।

**वक्तव्य**–इन्हें भी पित्त के बढ़ने पर थोड़ा-थोड़ा विरेचन दिया जा सकता है।

### विरेचन-योग्य रोगी

**जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगन्दरी।। 8।।**
**अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडिताः ।**
**योनिरोगप्रमेहार्ता गुल्मप्लीहव्रणार्दिताः।। 9।।**
**विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविसूचीकुष्ठसंयुताः ।**
**कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः ।। 10।।**
**यकृत्शोथाक्षिरोगार्ताः क्रिमिक्षीणानिलार्दिताः।**
**शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः।। 11।।**

जिसको जीर्ण ज्वर हो, जिसको गर नामक विष के विकार हों, वातरक्त, भगन्दर, बवासीर, पाण्डुरोग, उदररोग, ग्रन्थिरोग (गण्डमाला आदि), हृद्रोग, अरुचि से पीड़ित, योनिरोग, प्रमेह से पीड़ित, वायुगोला, प्लीहा रोग, व्रण से पीड़ित, विद्रधि (व्रणविशेष), छर्दि (कै), विस्फोट (बड़ी माता), विसूची (इसमें दस्त तो होते ही हैं, अतः जब तक दोष निकल रहे हों, उन्हें रोकना नहीं चाहिये। अलसक और विलम्बिका में विरेचन अत्यावश्यक होता है। कुष्ठ से युक्त, और कान, नाक, सिर, मुख, गुद तथा लिङ्ग के रोगों से पीड़ित, यकृत्-विकार, शोथ, नेत्ररोगों से पीड़ित, क्रिमि, क्षार, वात रोगों से पीड़ित, शूल तथा मूत्राघात से पीड़ित ये मनुष्य विरेचन के योग्य माने जाते हैं।

### विरेचन के लिए कोष्ठ-भेद

**बहुपित्तो मृदुः कोष्ठो बहुश्लेष्मा च मध्यमः।**
**बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते।। 12।।**

'अधिक पित्तयुक्त कोष्ठ 'मृदु', अधिक कफ से युक्त कोष्ठ 'मध्यम' और अधिक वायु से युक्त कोष्ठ 'क्रूर' होता है और यह (क्रूर) दुर्विरेच्य (जिसका सुख से विरेचन नहीं होता) कहा जाता है।

**वक्तव्य**-कोष्ठ की मृदुता आदि का विचार करके तदनुरूप विरेचन-औषधियों का प्रयोग करना उचित होता है।

### कोष्ठ-भेद से मात्रा-विचार

**मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा।**
**क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्यैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः।। 13।।**



मृदु कोष्ठ में मृदु विरेचन कराने वाले द्रव्यों का मृदु मात्रा, मध्यम कोष्ठ में मध्यम विरेचन कराने वाले द्रव्यों की मध्यम मात्रा तथा क्रूर कोष्ठ में तीक्ष्ण विरेचन कराने वाले द्रव्यों की तीक्ष्ण मात्रा का प्रयोग करना चाहिये।

### कोष्ठ-भेद से द्रव्यों का विचार

**मृदुर्द्राक्षापयश्चाम्बुतैलैरपि विरिच्यते।**
**मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ।। 14।।**
**क्रूरः स्नुक्पयसा हेमक्षीरीदन्तीफलादिभिः।**

मृदुकोष्ठ मुनक्का, दूध, गरम पानी तथा एरण्ड के तेल से ही विरक्त हो जाता है। मध्यमकोष्ठ निसोत, कुटकी तथा अमलतास की गुद्दी के सेवन से और क्रूरकोष्ठ सेहुण्ड के दूध, चोक (सत्यानासी की जड़) तथा जमालगोटा आदि के सेवन से विरक्त होता है।

### वेगभेद से विरेचन-मात्रा

**मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफान्तगा।। 15।।**
**वेगैर्वशितिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका।**

विरेचन की 'उत्तम' मात्रा तीस वेगों (30 बार दस्त होने) की होती है, किन्तु अन्तिम वेग में कफ आना चाहिये। बीस वेगों का 'मध्यम' और दस वेगों की 'हीन' मात्रा होती है।

### विरेचन-द्रव्यों का मान-विचार

**द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत्।। 16।।**
**पलार्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम्।**
**कल्कमोदकचूर्णानां कर्षं मध्वाज्यलेहतः।। 17।।**
**कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया।**

विरेचन द्रव्यों के कषायों (स्वरस, क्वाथ आदि) की 'उत्तम' मात्रा दो पल, 'मध्यम' मात्रा एक पल तथा 'कनीयसी या हीन' मात्रा एक पल की होती है और कल्क चूर्ण तथा अवलेहों की मात्रा एक 'कर्ष' (एक तोला) दो कर्ष अथवा एक पल (4 कर्ष) हाती है। इसे मधु तथा घी के साथ मिलाकर चाटने योग्य बना लेना चाहिये और उक्त नियम का पालन रोगी की आयु तथा रोग आदि (देश, काल, कोष्ठ तथा औषधि बल) का विचार कर करना चाहिये।

### दोष-भेद से द्रव्य-विधान

**पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्वाथादिभिः पिबेत्।। 18।।**
**त्रिफलाक्वाथगोमूत्रैः पिबेद् व्योषं कफार्दितः।**

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः।। 19।।
वातार्दितो विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा।

पित्तोत्तर कोष्ठ में निसोत का चूर्ण, द्राक्षा (मुनक्का), क्वाथ दूध आदि के साथ पीना चाहिये। कफ से पीड़ित मनुष्य त्रिकटुचूर्ण को त्रिफलाक्वाथ अथवा गोमूत्र के साथ पीये तथा वात से पीड़ित कोष्ठ बाला मनुष्य विरेचन के लिये निसोत, सेंधा नमक तथा सोंठ के चूर्ण के अमृत द्रव (काँजी आदि) अथवा जाङ्गल देश के प्राणियों (हरण आदि) के मांसरस के साथ पीये।

### एरण्ड तैल-प्रयोग

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन च।। 20।।
युक्तं पीतं पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते।

एरण्ड का तेल दुगुने त्रिफलाक्वाथ अथवा दूध के साथ विधिवत् पीने से शीघ्र ही विरेचन करा देता है।

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम्।। 21।।
समृद्वीकारसक्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम्।
त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करोदीच्यचन्दनम्।। 22।।
द्राक्षाम्बुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये।
(त्रिवृतां चित्रकं पाठामजाजीं सरलां वचाम्।। 23।।
हेमक्षीरीं च हेमन्ते चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत्।)
पिप्पली नागरं सिन्धु श्यामा त्रिवृतया सह।। 24।।
लिहेत् क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम्।
त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम्।। 25।।

निसोत, इन्द्रजौ, पीपल तथा सोंठ का चूर्ण, मुनक्का के रस तथा मधु के साथ मिलाकर खाने से 'वर्षा ऋतु' में विरेचन होता है। निसोत, धमासा, मोथा, खाँड़, नेत्रबाला, सफेद चन्दन, मुलेठी का चूर्ण मुनक्का के रस के साथ मिलाकर सेवन करने से 'शरदऋतु' में विरेचन होता है और यह शीतल है। निसोत, चीता, पाठा, जीरा, सरल, वच तथा सत्यानासी की जड़ का चूर्ण उष्ण जल के साथ 'हेमन्तऋतु' में पीना चाहिये। पीपल, सोंठ, सेंधा नमक तथा कालीनिसोत का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर खाने से 'शिशिर' तथा 'वसन्त' ऋतु में विरेचन होता है और निसोत का चूर्ण तथा खाँड़ समान भाग में लेकर खाने से 'ग्रीष्म ऋतु' में विरेचन होता है।

### सब ऋतुओं के योग्य विरेचन

त्रिवृतां हपुषां दन्तीं सप्तलां कटुरोहिणीम्।
स्वर्णक्षीरीं च सञ्चूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत् त्र्यहम्।। 26।।
एष सर्वर्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहा।

निसोत, दन्ती, हाऊबेर, सप्तपर्णी, कुटकी तथा चोक का चूर्ण बनायें और तीन दिन तक गोमूत्र की भावना दें, यह 'सर्वर्त्तुक योग' अर्थात् सब ऋतुओं में सेवन करने योग्य योग है। यह स्निग्ध मनुष्यों के मलदोष को दूर करता है।

### अभयादि मोदक

अभया मरिचं शुण्ठीविडङ्गामलकानि च।
पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च।। 27।।
एतानि समभागानि दन्ती च द्विगुणा भवेत्।
त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा।। 28।।
मधुना मोदकान् कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः।
एकैकं भक्षयेत् प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम्।। 29।।
तावद् विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते।
पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यन्त्रणः सदा।। 30।।
विषमज्वरमन्दाग्निपाण्डुकासभगन्दरान् ।
दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शोगलगण्डभ्रमोदरान् ।। 31।।
(विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान्।
वातरोगांस्तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम्।। 32।।)
पृष्ठपार्श्वोरुजघनजङ्घोदररुजो जयेत्।
सततं शीलनादेषां पलितानि प्रणाशयेत्।। 33।।
अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः।

बड़ी हरड़, मरिच, सोंठ, वायविडंग, आँवला, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपत्ता तथा नागरमोथा-ये सब द्रव्य समभाग (1-1 तोला), दन्ती दो भाग (2 तोला), निसोत आठ भाग (8 तोला) तथा खाँड छः भाग (6 तोला), उक्त सभी द्रव्यों को चूर्ण रूप में लेकर मधु के योग से एक-एक कर्ष (1-1 तोला) के मोदक (लड्डू) बना लें। एक मोदक प्रातःकाल खायें और अनुपान में शीतल जल पीयें। इससे तब तक विरेचन होता जाता है, जब तक उष्ण जल नहीं पी लिया जाता। इस औषध का सेवन करते समय पान, आहार तथा विहार में किसी प्रकार का बन्धन या नियम रखने का आवश्यकता नहीं है। यह औषध विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, कास, भगन्दर, बवासीर, कुष्ठ, वायुगोला की पीड़ा, गलगण्ड, भ्रम, उदररोग, दाह, प्लीहा-विकार, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, वातव्याधि, अफरा, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी) तथा पीठ, पार्श्व (पसली एवं फुक्फुस), ऊरु, जघन या जंघा

(टांग) तथा उदर की पीड़ा को जीतता है। निरन्तर (बहुत दिनों या वर्षों तक) सेवन करने से पलित (युवावस्था में बालों का सफेद हो जाना) का विनाश होता है। ये 'अभयामोदक' उत्तम रसायन माने जाते हैं।

### विरेचन-काल में कर्तव्य

**पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी।। 34।।**
**सुगन्धिं किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेन्नरः।**
**निवातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत् तथा।। 35।।**
**शीताम्बु न स्पृशेत् क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः।**

विरेचन (दस्तावर) औषधि को पीकर आँखों के शीतल जल से सींचकर तथा किसी सुगन्धित पदार्थ (इत्र आदि) को सूँघकर उत्तम ताम्बूल का सेवन करना चाहिये, जिसमें अधिक वायु न लगे ऐसे स्थान में बैठना चाहिये, विरेचन के वेगों को रोकना नहीं चाहिये, इसमें सोना उचिज नहीं, किसी भी कार्य में शीतल जल का प्रयोग नहीं करना चाहिये और बार-बार गुनगुना जल पीना चाहिये।

### सम्यग् विरेचन का लक्षण

**बलासौषधपित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत्।। 36।।**
**रेकात् तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत्।**

जैसे वमन में क्रमशः कफ, औषध (जो वमन करने के लिए पी गयी थी), पित्त तथा वायु निकलती है, उसी प्रकार विरेचन में मल (पुरीष) पित्त, औषधि तथा कफ निकलता है।

### दुर्विरिक्त का लक्षण

**दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता।। 37।।**
**पुरीषवातसङ्गश्च कण्डूमण्डलगौरवाः।**
**विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते।। 38।।**

दुर्विरिक्त (जिसको भली-भाँति विरेचन नहीं हुआ है) मनुष्य का नाभि में स्तब्धता (कड़ापन), उदर में शूल, मल तथा वायु (अपानवायु) की रुकावट, खुजली, शीतपित्त, शरीर में भारीपन, दाह, अरुचि, आध्मान, भ्रम तथा कै हो जाता है।

### दुर्विरिक्त की चिकित्सा

**तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत्।**
**तेनास्योपद्रवा यान्ति दीप्ताऽग्नेर्लघुता भवेत्।। 39।।**

जिसे उत्तम विरेचन नहीं हुआ हो, उसे फिर पाचन क्रिया द्वारा पकाकर और स्नेहों द्वारा स्निग्ध कर विरेचन कराना चाहिये। इससे उसके उपद्रव शान्त हो जाते हैं, अग्नि दीप्त तथा शरीर में हल्कापन हो जाता है।

### अति विरेचन के उपद्रव

**विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च।**
**शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसन्निभम्।। 40।।**
**मेदोनिभं जलाभासं रक्तं वापि विरिच्यते।**

विरेचन के अतियोग अर्थात् अधिक होने से मूर्च्छा, गुदभ्रंश (काँच निकलना), उदर में शूल, कफ की अतिप्रवृत्ति और मांस के धोअन जैसा, मेदा जैसा अथवा जल जैसा विरेचन होता है, अथवा रक्त भी निकलने लगता है।

### विरेकातियोग में कर्तव्य

**तस्य शीताम्बुभिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बुभिः।। 41।।**
**मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद् वमनं मृदु।**
**सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा।। 42।।**
**पिष्ट्वा नाभिप्रलेपेन हन्त्यतीसारमुल्बणम्।**
**अजाक्षीरं रसं वापि वैष्किरं हारिणं तथा।। 43।।**
**शालिभिः षष्टिकैः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत्।**
**शीतैः सङ्ग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात् सङ्ग्रहणं भिषक्।। 44।।**

जिसको विरेचन का अतियोग हुआ है, उसके शरीर पर शीतल जल के छींटें देकर मधु-मिश्रित तण्डुलाम्बु (चावलों का धोअन) द्वारा साधारण-सी वमन करवा देनी चाहिये। आम (आम के वृक्ष) की छाल को दही अथवा काँजी के साथ पीसकर कल्क बनाये और यह कल्क नाभि (उदर पर) लेप करने से बढ़े हुये अतिसार को नष्ट करता है। बकरी का दूध अथवा बकरी के मांस का रस (शोरबा) अथवा विष्किर (बिखेर कर खाने वाले मोर, मुरगा आदि) पक्षियों अथवा हरिण के मांस का रस, शाली के चावल अथवा साठी के चावलों के साथ अथवा मसूर की दाल के साथ थोड़ा-सा खिलाना चाहिये। इतना करने पर यदि अतिसार (दस्त) न रुक सके तो चिकित्सक शीतल तथा संग्राही द्रव्यों द्वारा संग्रहण करायें, अर्थात् दस्तों को रोकने का प्रयत्न करें।

### सुविरिक्त के लक्षण

**लाघवे मनसस्तुष्टावनुलोमे गतेऽनिले।**
**सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि।। 45।।**

शरीर में हल्कापन, मन की प्रसन्नता तथा वायु के अनुलोम (स्वमार्गगामी) हो जाने पर मनुष्य को 'सुविरिक्त' जानकर रात्रि में पाचन (पाचन औषधियों के चूर्ण तथा फाण्ट आदि)

**वक्तव्य**-उक्त लक्षण देखने पर समझ लेना चाहिये कि विरेचन भली-भाँति हो गया है, क्योंकि विरेचन का अतियोग हानिकर होता है। अतः अवशिष्ट दोष को शान्त करने के लिए पाचन का विधान किया गया है।

### विरेचन से लाभ

**इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीपनम्।**
**धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद् रेचनसेवनात्।। 46।।**

विधिपूर्वक 'विरेचन' का सेवन करने से इद्रियों का बल बढ़ता है। बुद्धि का प्रसाद (उन्मादादि रोगों का विनाश) होता है, अग्नि दीप्त होती है, धातुएँ स्थिर हो जाती हैं, और आयु का ह्रास नहीं होता है।

### विरेचन में परिहार्य

**प्रवातसेवाशीताम्बुस्नेहाभ्यङ्गमजीर्णताम् ।**
**व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः।। 47।।**

विरेचित (जिसको विरेचन दिया गया है) मनुष्य प्रवात (प्रचण्ड वायु या आँधी) का सेवन, शीतल, जल, स्नेह (तैल आदि) की मालिश, अजीर्ण (अपच), व्यायाम तथा मैथुन का सेवन न करें।

### विरेचन में पथ्य

**शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत् कृताम्।**
**जाङ्गलर्विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम्।। 48।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे विरेचनविधिः नाम चतुर्थोऽध्यायः**

शाली चावल (वासमती), साठी चावल आदि की 'यवागू' (खीर जैसी पतली खिचड़ी) छौंक लगाकर खिलानी चाहिये अथवा शाली चावलों का भात जाङ्गल (हरिण आदि) तथा विष्किर (मुरगा आदि) प्राणियों के मांसरस के साथ भी लाभदायक होता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का चौथा अध्याय समाप्त।। 4।।

पञ्चमोऽध्यायः

# स्नेहवस्तिविधिः

### वस्तियों के दो भेद

**वस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम्।**
**वस्तिभिर्दीयते यस्मात् तस्माद् वस्तिरिति स्मृतः।। 1।।**

वस्ति दो प्रकार की होती हैं-1. अनुवासन और 2 निरूहण। क्योंकि यह 'वस्ति' द्वारा दी जाती है, इसलिये इसे 'वस्ति' कहते हैं। देखें-च० सि० अ० 3।

**वक्तव्य**-बूढ़ी गाय, भैंस, सूअर, बकरा तथा भेड़ा की वस्ति या मूत्राशय ही इस उपकरण या यन्त्र में प्रधान होता है, अत: इसे 'वस्ति' कहा जाता है। **'अनुवसन्नपि न दुष्यति, अनुदिवसं वा दीयते इति अनुवासनः'। तथा 'स दोषनिर्हरणात् शरीररोगहरणाद्वा निरूहः'**।-सु० चि० अ० 35.18 के अनुसार इसके दो नाम रखे गये हैं।

वस्ति का एक नाम 'पिचकारी' भी है। इससे गुद, भग तथा मूत्रमार्ग में द्रव औषध पहुँचायी जाती है। यद्यपि शरीर के अन्यान्य स्रोतों में तथा सिराओं में इंजेक्शन द्वारा औषधि पहुँचाने के साधन को भी वस्ति कहा जा सकता है, तथापि अगले तीन अध्यायों में उपर्युक्त तीन स्थानों में ही वस्ति देने का विधान लिखा गया है। चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता में चिकित्सा की दृष्टि से वस्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। देखें-च० सि० अ० 1.40 तथा सु० चि० 35.13। आधुनिक भारतीय आयुर्वेद की प्रणाली के चिकित्सक प्राय: वस्ति कर्म का परित्याग कर बैठे हैं। हमारा विचार है कि वे इस कर्म को पुनः अपनायें और यशस्वी बनें।

### वस्तियों के लक्षण

**यः स्नेहैर्दीयते सः स्यादनुवासननामकः।**
**कषायक्षारतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते।। 2।।**

जो वस्ति स्नेहों द्वारा दी जाती है, वह 'अनुवासन' तथा जो कषाय (क्वाथ आदि), क्षार (सोडा आदि) तथा तैल को मिलाकर दी जाती है, वह 'निरूह' कहलाती है।

**वक्तव्य**-उक्त दोनों ही वस्तियाँ एक ही प्रकार के यन्त्र द्वारा दी जाती हैं। अन्तर केवल प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्यों का है। उक्त 'कषायक्षीरतैलैः' इस पाठ में 'क्षीर' के स्थान में 'क्षार' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि सुश्रुत में निरूहवस्ति को शोधन तथा लेखनकारक कहा है। देखें-'सु० चि० अ० 35। उक्त दोनों गुण 'क्षार' में ही होते हैं, 'क्षीर' (दूध) में नहीं। आजकल निरूहवस्ति साबुन के पानी से दी जाती है, जो क्षार तथा तैल का मिश्रण है।

### वस्ति-क्रम का निर्देश

**तत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते।**
**पूर्वमेव ततो वस्तिर्निरूहाख्यो भविष्यति।। 3।।**
**निरूहादुत्तरश्चैव वस्तिः स्यादुत्तराभिधः।**

उक्त दोनों प्रकार की वस्तियों में से यहाँ पर पहिले 'अनुवासन-वस्ति' का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् 'निरूहण-वस्ति' का वर्णन किया जायेगा और निरूह के पश्चात् 'उत्तर' नामक वस्ति का वर्णन किया जायेगा।

### अनुवासन का भेद मात्रावस्ति

**अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरुदीरितः।। 4।।**
**पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्धापि वा भवेत्।**

अनुवासन वस्ति का भेद या विकल्प 'मात्रावस्ति' नाम से पुकारा जाता है। इसकी मात्रा दो पल (8 तोला) अथवा इससे भी आधी अर्थात् एक पल (4 तोला) की होती है।

**वक्तव्य**-अनुवासन तथा मात्रावस्ति में केवल स्नेह की मात्रा का अन्तर है। देखें-शा० सं०, उ० ख० अ० 5 श्लोक 20 और सु० चि० अ० 35 में मात्रावस्ति परिचय। इसमें किसी प्रकार के परहेज की आवश्यकता नहीं होता है और मात्रावस्ति के लिये ही लिखा गया है **'अनुदिवसं वा दीयते'**। अर्थात् यह प्रतिदिन भी दी जा सकती है।

### अनुवासन के योग्य रोगी

**अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात् तीक्ष्णाग्निः केवलानिली।। 5।।**

रूक्ष (जिसके शरीर में रूक्षता हो), तीक्ष्ण अग्नि वाले तथा केवल वायु के रोगों से पीड़ित मनुष्य को 'अनुवासन-वस्ति' देनी चाहिये।

### अनुवासन के अयोग्य रोगी

**नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी।**
**नास्थाप्या नानुवास्याश्चाजीर्णोन्मादतृडर्दिताः।। 6।।**
**शोकमूर्च्छाऽरुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ।**

कुष्ठी (कोढ़ी), प्रमेह रोगी, स्थूल (मोटा) तथा उदररोगी को 'अनुवासन' वस्ति नहीं देनी चाहिये। अजीर्ण, उन्माद तृष्णा, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, कास तथा क्षयरोग से पीड़ित मनुष्यों को न आस्थापन (निरूहण) वस्ति देनी चाहिये और न अनुवासनवस्ति।

**वक्तव्य**-यद्यपि उक्त पाठ में मूर्च्छित रोगी को अनुवासन तथा आस्थापन वस्ति देने का निषेध किया गया है, किन्तु स्वयं शार्ङ्गधराचार्य ने अग्रिम छठे अध्याय के 8वें श्लोक में मूर्च्छित को निरूहणवस्ति देने का विधान भी किया है।

### वस्ति-नेत्र के द्रव्य

**नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः।। 7।।**
**नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते।**

वस्ति का नेत्र (नलिका) सुवर्ण आदि धातुओं, लकड़ी, बाँस, नल, दन्त (हाथदाँत) का, सींग अथवा मणि का बनाया जाता है।

**वक्तव्य**-यही नेत्र या नलिका एक ओर से गुद आदि में प्रविष्ट की जाती है और इसके दूसरे सिरे पर वस्ति (थैली) बाँध दी जाती है।

### वयस्-भेद से नेत्र-परिमाण

**एकवर्षात्तु षड्वर्षं यावन्मानं षडङ्गुलम्।। 8।।**
**ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसम्मितम्।**
**ततः परं द्वादशभिरङ्गुलैर्नेत्रदीर्घता।। 9।।**

इस नेत्र की लम्बायी रोगी की एक वर्ष से छः वर्ष की अवस्था तक छः अङ्गुल, छः से बारह वर्ष तक आठ अङ्गुल और इसके पश्चात् बारह अङ्गुल होनी चाहिये।

### वस्ति-नेत्र का छिद्र तथा आकार

**मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिसन्निभम्।**
**यथासङ्ख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम्।। 10।।**

इस नेत्र (नलिका) का छिद्र यथासंख्या अर्थात् छः, आठ तथा बारह अङ्गुल की नलिका में मूँग, मटर तथा बेर (झरबेरी का फल) की गुठली के (प्रविष्ट होने योग्य) होना चाहिये। यह नेत्र श्लक्ष्ण (साफ हो और खुरदरा न हो) तथा गाय की पूँछ के समान (आगे से पतला और मूल में मोटा) होना चाहिये।

### वस्ति-नेत्र का परिणाह

**आतुराङ्गुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते।**
**कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम्।। 11।।**

यह नेत्र मूल में रोगी के अँगूठे के समान और अग्रभाग में कनिष्ठिका अंगुली के समान मोटा होना चाहिये और इसका अग्रभाग गुटिका जैसा होना चाहिये।

### वस्ति-नेत्र की कर्णिका

**तम्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात्।**
**योजयेत् तत्र बस्तिं च बन्धद्वयविधानतः।। 12।।**

इस नेत्र के मूल की ओर चौथाई भाग छोड़कर (6 अंगुल की नलिका में 2 अंगुल छोड़कर) दो कर्णिका (अँगूठी जैसी) बनानी चाहिये और इन्हीं कर्णिकाओं पर वस्ति चढ़ाकर दो जगह बन्धन बाँध देने चाहिये।

**वक्तव्य**-यह पाठ चरक तथा सुश्रुत के विरुद्ध होने के कारण भ्रान्त जैसा प्रतीत होता है। क्योंकि **'स्यात् कर्णिकैका-ऽग्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते वस्तिनिबन्धने द्वे'**। (च०सि० अ० 3 श्लोक 10)। इसमें 'अग्रे त्र्यंगुल' और जोड़ लें।

### वस्ति के योग्य द्रव्य

**मृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत्।**
**मूत्रकोषस्य वस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः।। 13।।**
**कषायरक्तः सुमृदुर्बस्तिः स्निग्धो दृढो हितः।**

हरिण, बकरा, सूअर, गाय, भैंस, के मूत्रकोश या मूत्राशय की वस्ति होनी चाहिये। इनके अभाव में (यदि मूत्रकोश न मिले तो) चमड़े की भी बनायी जा सकती है और यह वस्ति कषाय रस वाले द्रव्यों (बबूल की छाल आदि) द्वारा रंगी हुई, सुकोमल, चिकनी तथा दृढ़ (मजबूत) होनी चाहिये।

**वक्तव्य**-आजकल बाजार में रबर की वस्ति बनी-बनायी मिलती है, जो इसी प्रमाण से बनी हुई होती है।

### व्रणवस्ति का नेत्र

**व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम्।। 14।।**
**मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च।**

व्रणवस्ति (इससें व्रण धोये जाते हैं) का नेत्र श्लक्ष्ण, (चिकना) आठ अङ्गुल लम्बा, मूँग के समान छिद्र वाला तथा गिद्ध के पँख की नलिका के समान मोटा होना चाहिये।

**वस्ति के सम्यग्योग का फल**

**शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः।।15।।**
**कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिः सम्यगुपासितः।**

विधिपूर्वक सेवन करने से वस्ति शरीर का पुष्टि, वर्ण, बल, आरोग्य तथा आयु की वृद्धि करती है।

**वस्ति के लिए समय-निर्देश**

**दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते।।16।।**
**ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम्।**

शीतकाल (हेमन्त तथा शिशिर ऋतु) में तथा वसन्त ऋतु में दिन में तथा ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद् ऋतु में रात्रि में स्नेहवस्ति (अनुवासन वस्ति) दी जाती है।

**वक्तव्य**-तात्पर्य यह है कि समशीतोष्ण काल में ही वस्ति देना उचित होता है।

**वस्ति के पूर्व भोजन-निर्देश**

**न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वाऽनुवासयेत्।। 17।।**
**मदं मूर्च्छां च जनयेद् द्विधा स्नेहः प्रयोजितः।**
**रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्नं बलं वर्णश्च हीयते।। 18।।**

अत्यन्त स्निग्ध भोजन खिलाकर अनुवासन वस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि दोनों ओर (मुख तथा गुद) से प्रयुक्त किया हुआ स्नेह मद तथा मूर्च्छा को उत्पन्न कर देता है। अत्यन्त रूक्ष भोजन कराकर भी वस्ति देने से बल तथा वर्ण की हानि होती है।

**वस्ति की मात्रा के दोष**

**हीनमात्रावुभौ बस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ।**
**अतिमात्रौ तथाऽऽनाहक्लमातीसारकारकौ।। 19।।**

अनुवासन तथा निरूहण ये दोनों ही वस्तियाँ हीनमात्रा (उचित से कम मात्रा) से देने पर उचित कार्य करने वाली नहीं होती और अतिमात्रा से देने पर आनाह, क्लम (सुस्ती) तथा आतिसार को उत्पन्न कर देती हैं।

**वस्ति-मात्रा-निर्देश**

**उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः।**
**पलास्यार्धेन हीनस्य युक्ता मात्राऽनुवासने।।20।।**

उत्तम (बलवान्) पुरुष के लिए अनुवासन (स्नेह) की मात्रा छः पल की, मध्यम के लिए तीन पल की और हीन (दुर्बल) के लिए डेढ़ पल (6 तोला) मात्रा उचित होती है।

**अनुवासन-वस्ति के द्रव्य**

**शताह्वासैन्धवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम्।**
**तन्मात्रोत्तममध्यान्ताः षट्चतुर्द्वयमाषकैः।। 21।।**

स्नेह में सौंफ तथा सेंधा नमक का चूर्ण अवश्य दिया जाता है। उसकी मात्रा उत्तम पुरुष के लिए 6 माशा, मध्यम के लिए चार माशा तथा हीन के लिए दो माशा होनी चाहिये।

**वक्तव्य**—वस्ति-प्रयोग के लिए स्नेह द्रव्य को गुनगुना कर लेना चाहिये। इससे वह शीघ्र ही लौट आता है।

**विरेचन के पश्चात् वस्ति**

**विरेचनात् सप्तरात्रे गते जातबलाय च।**
**भुक्तान्नायानुवास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः।। 22।।**

विरेचन के पश्चात् सात दिन बीतने पर जब रोगी बलवान् हो जाये, अन्न खाने लग जाये तथा अनुवासन के योग्य समझा जाये, तब उसे अनुवासन वस्ति देनी चाहिये।

**वस्ति देने की विधि**

**अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णाम्बुस्वेदितं शनैः।**
**भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचङ्क्रमणं ततः।। 23।।**
**उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत् स्नेहवस्तिना।**
**सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजङ्घाप्रसारिणः।। 24।।**
**कुञ्चितापरजङ्घस्य नेत्रं स्निग्धगुदे न्यसेत्।**
**बद्ध्वा वस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत्।। 25।।**
**पीडयेद् दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः।**
**जृम्भाकासक्षवादींश्च वस्तिकाले न कारयेत्।। 26।।**

इसके पश्चात् अनुवासन के योग्य मनुष्य को भली-भाँति अभ्यंग (मालिश) करें, फिर उष्ण जल से धीरे-धीरे स्वेदन करें। रोगी को शास्त्रानुसार भोजन कराकर चंक्रमण (टहलना) करायें, इसके पश्चात् अपानवायु, मल तथा मूत्र का परित्याग कराकर स्नेहवस्ति का प्रयोग करें। रोगी को बाँयी करवट लिटा दें और बाँयी टाँग फैलाकर वस्ति का प्रयोग करें तथा दाहिनी टाँग को संकुचित करवा दें, गुद को स्नेह (तैल) द्वारा स्निग्ध करके नेत्र (नलिका) को प्रविष्ट कर दें। इस नेत्र पर वस्ति को धागा या डोरा द्वारा बाँधकर नेत्र को बाँये हाथ से सम्भालकर पकड़े और दाहिने हाथ से स्नेह भरी हुई वस्ति को मध्यवेग से दबाना चाहिये, यह कार्य धैर्यपूर्वक करें।

वस्ति देते समय जँभाई लेना, खाँसना अथवा छींकना उचित नहीं है। रोगी को यह बात पहले ही समझा देनी चाहिये।

**वस्ति-प्रयोग में काल-निर्देश**

**त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडने।**
**ततः प्रणिहितः स्नेह उत्तानो वाक्शतं भवेत्।।27।।**

वस्ति के पीडन में तीस मात्रा (करीब 1 मिनट) परिमित समय लगना चाहिये। इसके पश्चात् नेत्र को धीरे से निकाल लें और रोगी स्नेह को पचाने के लिए उत्तान (चित्त) होकर सौ वाक् परिमित समय तक लेटा रहे।

**मात्रा-काल-प्रमाण**

**जानुमण्डलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकया युतम्।**
**एका मात्रा भवेदेषा सर्वत्रैष विनिश्चयः।।28।।**

वाक् अथवा मात्रा का परिमाण इस प्रकार है-जानु (घुटना) के सब ओर हाथ घुमाकर चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उतने समय का नाम 'मात्रा' है। यही सभी स्थानों में निश्चय माना जाता है।

**वस्ति-प्रयोग में पश्चात् कर्म**

**प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथावीर्यं विसर्पति।**
**ताडयेत् तलयोरेनं त्रीन् वारांश्च शनैः शनैः।।29।।**
**स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणीं शय्यां चैवोत्क्षिपेत् ततः।**
**जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम्।।30।।**

गात्रों (हाथ-पाँवों) को पसार कर लेटने से स्नेह का सार यथावत् शरीर में फैल जाता है और इस रोगा के तलुवों पर तथा स्फिचों (चूतड़ों) तथा कमर पर तीन बार धीरे-धीरे ताड़न करना चाहिये तथा उसकी शय्या (पलंग) को उठाकर (भूमि से एक हाथ भर) फेंकना चाहिये (इस क्रिया से स्नेह शीघ्र नहीं, अपितु विलम्ब से निकलता है)। इस विधान के पूर्ण हो जाने पर सुखपूर्वक सो जाना चाहिये।

**सम्यक् अनुवासित के लक्षण**

**सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वै।**
**उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः।।31।।**

जिस मनुष्य का स्नेह वायु (अपानवायु) तथा पुरीष को साथ लिये हुये शीघ्र (8-9 घण्टा के भीतर) ही लौट आता है और जिसमें कोई उपद्रव भी उत्पन्न न हुआ हो, वह 'सन्यक्-अनुवासित' समझा जाता है। अर्थात् उसको उचित अनुवासन हुआ है, ऐसा समझ लेना चाहिये।

**वक्तव्य**—इसके उपद्रवों का वर्णन इसी अध्याय के 43वें श्लोक में देखें और उन उपद्रवों की शान्ति का उपाय भी हीं दिया है।

**वस्ति के पश्चात् पथ्य**

**जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः।**
**लघ्वन्नं भोजयेत् कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि।।32।।**

जीर्णान्न (जिसका भोजन पच चुका है) मनुष्य को स्नेह के लौट आने पर सायंकाल लघु (हल्का) भोजन इच्छापूर्वक खिलाना चाहिये, यदि उसकी जठराग्नि दीप्त हो तो, अन्यथा नहीं खिलाना चाहिये अथवा बहुत थोड़ा खिलाना चाहिये।

**अनुवासन की व्यापत्ति की चिकित्सा**

**अनुवासिताय दातव्यमितरेऽह्नि सुखोदकम्।**
**धान्यशुण्ठीकषायो वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम्।।33।।**

अनुवासित (जिसको अनुवासन दिया गया है) मनुष्य को दूसरे दिन उष्ण जल अथवा धनियाँ तथा सोंठ का क्वाथ देना चाहिये, इससे स्नेह की व्यापत्ति (विकृति) का विनाश हो जाता है और अग्नि दीप्त तथा भोजन में रुचि हो जाती है।

**उष्णोदक के गुण**—उष्ण जल मनुष्य के अनुवासन-वस्ति द्वारा दिये गये स्नेह के अनपच को पचाता है, कफ का भेदन करता है और वायु का अनुलोमन करता है। इसलिये वमन, विरेचन, निरूहण तथा अनुवासन में वायु तथा कफ की शान्ति के लिए उष्ण जल देना चाहिये।

**धान्यशुण्ठी जल का गुण—'एकान्तरोपयोगेन धान्यशुण्ठीजलं पिबेत्। तेनास्य दीप्यते वह्निर्भक्ताकाङ्क्षा च जायते'**। अर्थात् अनुवासन के एक दिन पश्चात् धनियाँ तथा सोंठ द्वारा परिपक्व जल पीना चाहिये, उसे पीने से अग्नि दीप्त हो जाती है और भोजन में रुचि होने लगती है।

**स्नेह वस्ति के साथ निरूहण-वस्ति**

**अनेन विधिना सप्त चाष्टौ वाथ नवापि वा।**
**विधेया बस्तयस्तेषामन्तरा तु निरूहणम्।।34।।**

उक्त विधि से सात आठ अथवा नौ वस्तियाँ देनी चाहिये और उनके बीच-बीच में निरूहण वस्ति भी देते जाना चाहिये।

**वक्तव्य**—अनुवासन-वस्ति के स्नेहन और निरूहण-वस्ति से शोधन होता है। चिकित्सा में सफलता पाने के लिए इन दोनों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है।

**वस्तियों के फल**

**(दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद् वस्तिवङ्क्षणौ।**
**सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत्।।35।।**

**बलं वर्णं च जनयेत् तृतीयस्तु प्रयोजितः।**
**चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी।।36।।**
**षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च।**
**अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम्।।37।।**
**एवं शुक्रगतान् दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत्।)**
**अष्टादशाष्टादशकान् बस्तीनां यो निषेवते।।38।।**
**स कुञ्जरबलोऽप्यश्वं जयेत् तुल्योऽमरप्रभः।**

पहली वस्ति (मूत्राशय) तथा वंक्षण (मूत्रवाही के दोनों स्रोतों तथा वृक्कों) को स्निग्ध कर देती है। विधिपूर्वक दी हुई दूसरी वस्ति शिर तक की वायु (दूषित वायु) को जीतती अथवा शान्त करती है, तीसरी वस्ति बल तथा वर्ण (कान्ति) को उत्पन्न कर देती है, चौथी और पाँचवीं रस और रक्त को स्निग्ध कर देती है, छठी मांस को तथा सातवीं मेदा को स्निग्ध कर देती है, आठवीं तथा नौवीं हड्डी तथा मज्जा को स्निग्ध कर देती है। इस प्रकार दुगुनी अर्थात् अठारह वस्तियाँ शुक्रगत दोषों को सिद्ध (शान्त) कर देती है। इसी प्रकार 18 बार वस्ति का प्रयोग करने वाला पुरुष हाथी के समान बलवान् तथा घोड़े के समान वेगवान् होकर देवताओं के सदृश कान्तिमान् हो जाता है।

### वातरोगी के लिए स्नेह-वस्ति

**रूक्षाय बहुवाताय स्नेहबस्तिं दिने दिने।।39।।**
**दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामग्न्याबाधभयात् त्र्यहात्।**

कुशल चिकित्सक रूक्ष शरीर वाले तथा वातपीड़ित शरीर वाले मनुष्य के लिए प्रतिदिन स्नेहवस्ति दे सकता है और दूसरे लोगों को अग्निमांद्य के भय से तीसरे दिन वस्ति देना उचित है।

### स्नेह तथा निरूहवस्ति की प्रशंसा

**स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः।।40।।**
**तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते।)**

रूक्ष मनुष्यों को अल्प मात्रा वाली स्नेहवस्ति का दीर्घ (लम्बे) काल (समय) तक सेवन करने पर भी हानिकारक नहीं होती और इसी प्रकार स्निग्ध मनुष्यों को अल्प मात्रा वाली निरूहणवस्ति भी प्रशस्त मानी जाती है।

**वक्तव्य**—उक्त पद्य का तात्पर्य यह है कि आवश्यकतानुसार एक ही वस्ति एक से अधिक बार भी दी जा सकती है।

### स्नेह-वस्ति के निकलने पर

**अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः।।41।।**
**तस्यान्योऽन्यतरो देयो न हि स्निह्यत्यतिष्ठति।**

अथवा जिस मनुष्य का वस्ति द्वारा दिया हुआ स्नेह तत्काल अकेला ही निकल जाये, उसको दुबारा थोड़ा-सा स्नेह दे देना चाहिये, क्योंकि स्नेह के पक्वाशय में रुके बिना भली-भाँति स्नेहन नहीं होती।

### स्नेह-वस्ति के उपद्रव और प्रतिकार

**अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः।।42।।**
**तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते।**
**पक्वाशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम्।।43।।**
**तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैर्युक्ता फलवर्त्रिर्हिता तथा।**
**यथानुलोमनं वायुर्मलः स्निग्धश्च जायते।।44।।**
**तथा विरेचनं दद्यात् तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते।**

जब अशुद्ध (जिसे शोधन नहीं दिया गया है) मनुष्य का स्नेह मल को लेकर नहीं निकलता है, तब उसको शिथिलता, अफरा, शूल, श्वास तथा पक्वाशय में भारीपन हो जाता है, ऐसी स्थिति में तीक्ष्ण द्रव्यों का निरूहण देना चाहिये अथवा तीक्ष्ण द्रव्यों की 'फलवर्त्रि' लाभपद्र होती है। इससे वायु का अनुलोमन (स्वमार्गगामी) और मल स्निग्ध हो जाता है। अतः तीक्ष्ण विरेचन और तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग करना चाहिये।

**वक्तव्य**—'फलवर्ति', बत्ती नाम से प्रसिद्ध ही इसका निर्माण स्नेह और क्षार के मिश्रण से किया जाता है। यह एलोपैथिक दवाखानों में मिलती है। यह नहाने के साबुन से भी तैयार की जा सकती है। इसे गुदद्वार में चढ़ा देने से तत्काल मल निकल जाता है और सम्बन्धित उपद्रव शान्त हो जाते हैं। फलवर्त्ति का विधान शा०सं०, उ०खं० अ० 7 श्लोक में देखें।

### उपद्रवहीन स्नेह-वस्ति

**यस्य नोपद्रवं कुर्यात् स्नेहवस्तिरनिःसृतः।।45।।**
**सर्वोऽल्पो वा वृते रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता।**

जिसको स्नेहवस्ति भीतर रह जाने पर भी शिथिलता आदि उपद्रवों को उत्पन्न न करे, भले ही रूक्षता के कारण सबकी सब अथवा थोड़ी-बहुत भीतर रह गयी हो, उसकी उपेक्षा करे देनी चाहिये।

**वक्तव्य**—तात्पर्य यह है कि वस्ति द्वारा दिया हुआ स्नेह यदि कुछ कष्ट न दें, तो उसके निकालने का प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती है।

**स्नेह के न लौटने पर उपाय**

**अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत्।।46।।**
**स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते।**

दिन-रात तक (24 घंटे) में यदि स्नेह न निकले तो उसे (दूसरे दिन) संशोधन (निरूहण अथवा फलवर्ति) द्वारा निकाल देना चाहिये, क्योंकि स्नेह के न निकलने पर दुबारा स्नेह देना उचित नहीं है।

**वक्तव्य**–अनुवासन के पश्चात् निरूहण और निरूहण के पश्चात् अनुवासन का प्रयोग करना उचित तथा आवश्यक होता है। इसी अध्याय में ऊपर 35 से 38 तक के श्लोकों द्वारा कहा गया विषय भी इससे प्रमाणित होता है।

**स्नेह-वस्ति के लिए गुडूच्यादि तैल**

**गुडूच्येरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ।।47।।**
**शतावरीं सहचरं काकनासां पलोन्मिताम्।**
**यवमाषातसीकोलकुलत्थान् प्रसृतोन्मितान्।।48।।**
**चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च।**
**पचेत् तैलाढकं पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः।।49।।**
**अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत्।**

गिलोय, एरण्ड की जड़, पूतिकरञ्ज (डिठोरी) को छाल, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, कटसरैया तथा कौवाठोठी प्रत्येक द्रव्य एक-एक (4-4 तोला), जौ, उड़द, अलसी, बेर तथा कुलथी प्रत्येक द्रव्य एक-एक प्रसुत (8-8 तोला) लेकर कूट लें, फिर इन सबको चार द्रोण (51 से 16 तोला) जल में डालकर क्वाथ करें और एक द्रोण (12 सेर 64 तोला) शेष रहने पर छानकर ले लें, इसको एक आढ़क (3 सेर 16 तोला) तिलतैल में डाल दें तथा जीवनीयगण (देखें शा०सं०, म०खं०अ० 6) के द्रव्यो को एक-एक पल (4-4 तोला) लकर उनका कल्क बनाकर उसी तैल में डाल दें उसके बाद विधिपूर्वक पाक करें। इस तैल द्वारा दिया गया 'अनुवासन' सभी प्रकार के वातविकारों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–इस तेल के अभाव में नारायण तैल आदि दूसरे तैल अथवा एरण्ड तैल का भी अनुवासन दिया जा सकता है, जो लाभकर होता है।

**स्नेहपानादि उपचार**–स्नेहपान, वमन, विरेचन, रक्तस्राव, तथा निरूहणवस्ति पश्चात् मनुष्य की कायाग्नि (जठराग्नि) मन्द हो जाती है, वह अल्प मात्रा वाले या लघु (हल्के) आहारों के उपयोग से उस प्रकार बढ़ती है जिस प्रकार लकड़ी के पतले या हल्के टुकड़ों के उपयोग से अग्नि बढ़ती है। तात्पर्य यह है कि स्नेहपानादि क्रियाओं के पश्चात् थोड़ा तथा हल्का भोजन करना चाहिये, क्योंकि अग्नि के ठीक रहने पर मनुष्य चिरकाल तक जीता है और उसके बिगड़ने पर वह रोगी हो जाते हैं या वह मर जाता है। इसलिये अग्नि ही बल कहा जाता है।

**धान्यशुण्ठी क्वाथ**–जिसे स्नेहवस्ति दी गयी है, उसे दूसरे दिन प्रातःकाल धनियाँ तथा सौंठ से सिद्ध किया हुआ उष्ण जल पीने को देना चाहिये। इससे उसकी अग्नि दीप्त होती है और भोजन की इच्छा उत्पन्न हो जाती है।

**वस्ति-फलश्रुति**–जैसे मूल में सींचने से वृक्ष हरा-भरा हो जाता है, वैसे ही 'वस्ति' का प्रयोग करने से मनुष्य कान्तिमान् तथा बलवान् हो जाता है।

**वस्ति-सेवनक्रम**–अकेली स्नेहवस्ति अथवा निरूहवस्ति का ही अत्यन्त सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्नेहवस्ति के अति सेवन से मन्दाग्नि तथा उत्क्लेश (जी मिचलाना) हो सकता है और निरूहणवस्ति के अति सेवन से वायु के कोप होने का भय रहता है। अतः जिसे निरूहण दिया गया है, उसे अनुवासन करना चाहिये और जिसे अनुवासन दिया गया है, उसे निरूहण करना चाहिये। ऐसा करने से पित्त तथा कफ का कोप भी नहीं होता और वायु के कोप का भय भी नहीं रहता।

**वस्ति-व्यापत्तियाँ**

**षट्सप्ततिव्यापदस्तु जायन्ते वस्तिकर्मणा।।50।।**
**दूषितात् समुदायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात्।**

दूषित (विकृत) वस्तिकर्मों के कारण 76 प्रकार की व्यापत्तियाँ हो सकती हैं। उनकी चिकित्सा आचार्य सुश्रुत के कथनानुसार करनी चाहिये।

**वक्तव्य**–शास्त्रोक्त विधि का ध्यान न देकर जो वस्तिकर्म किया जाता है, उससे कुछ हानियाँ भी हो सकती हैं। उनका विशिष्ट परिज्ञान सुश्रुत चिकित्सास्थान अध्याय 35 तथा 36 के अध्ययन से प्राप्त करें।

**पथ्यापथ्य-निर्देश**

**पानाहारविहाराश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः।।51।।**
**स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे स्नेहवस्तिविधिः नाम पञ्चमोऽध्यायः।।5।।**

अनुवासन वस्ति में पान, आहार, विहार तथा परिहार

(परहेज) सब स्नेहपान के समान ही कहे गये हैं। इसमें सन्देह करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

**वक्तव्य**–गुद का दूसरा नाम 'पायु' है जिसका अर्थ है **'पिबति तैलं बस्त्यौषधं वा इति वायुः।'** जो तैल अथवा वस्ति द्वारा दी हुई औषध को पी जाये, इससे प्रमाणित हो जाता है कि जिस प्रकार मुख से तैलादिक का सेवन (पान) करने पर हानि अथवा लाभ होता है, उसी प्रकार गुद या पायु से भी। इसीलिए पथ्यापथ्य भी उसी प्रकार का समझना चाहिये। वस्ति के विषय में अधिक परिज्ञान करने के लिए सु० चि० अ० 35 से 38 तक और चरकसंहिता का सिद्धिस्थान भी देखें।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्यादि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त।। 5।।

षष्ठोऽध्यायः

# निरूहणवस्तिविधिः

### निरूहण-वस्ति-परिचय

**निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः।**
**तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः॥1॥**
**निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः।**
**स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम्॥2॥**

कारण-भेद से निरूहवस्ति कई प्रकार का मानी जाती है और उन्हीं कारणों से आचार्यों ने उसके अनेक नाम भी रख दिये हैं। निरूहण का दूसरा नाम 'आस्थापन' है और इसका यह नाम दोष तथा धातुओं को अपने-अपने स्थान पर स्थापित कर देने के कारण रखा गया है।

**वक्तव्य**—व्यवहार के लिए अथवा उनकी विशेषताओं को सूचित करने के लिए एक वस्तु के अनेक नाम रख दिये जाते हैं, तदनुसार निरूहणवस्ति के भी विविध नाम निश्चित किये गये हैं। यथा—दोषहर, संशमन, शोधन, लेखन तथा पिच्छिलवस्ति।

### निरूहण-वस्ति की मात्रा

**निरूहस्य प्रमाणं च प्रस्थं पादोत्तरं परम्।**
**मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनं च कुडवास्त्रयः॥3॥**

निरूहणवस्ति का उत्तम परिमाण सवा प्रस्थ (1 सेर), मध्यम एक प्रस्थ (64 तोला) तथा हीन परिमाण तीन कुड़व (48 तोला) कहा गया है।

**वक्तव्य**—यह उस द्रव्य का परिमाण या तौल है, जो उक्त वस्ति द्वारा गुद के भीतर पहुँचाया जाता है।

### निरूहण के अयोग्य रोगी

**अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौ क्षतोरस्कः कृशस्तथा।**
**आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः॥4॥**
**गुदशोफातिसारार्तो विसूचीकुष्ठसंयुतः।**
**गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी॥5॥**



जिसका शरीर अत्यन्त स्निग्ध है, जिसके दोष उत्क्लिष्ट (वमन द्वारा निकलने को) हों, जिसके उरःक्षतः हों, जो कृश हों, जो आध्मान (अफरा), छर्दि (उलटी या कै), हिचकी, बवासीर, कास तथा श्वास से पीड़ित हो, जो गुद, शोथ तथा अतिसार से पीड़ित हो, जो विसूची (हैजा) तथा कुष्ठ से युक्त हो, गर्भवती ( सात मास तक का गर्भ हो), मधुमेह का रोगी और जलोदर वाला रोगी, इनको आस्थापन या निरूहण वस्ति देना उचित नहीं है।

**वक्तव्य**—देखें—सुश्रुतसंहिता चि० अ० 35।

### निरूहण-वस्ति के योग्य रोगी

**वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे।**
**मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च॥6॥**
**वृद्धासृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम्।**
**शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद् विधिवद् बुधः॥7॥**

वातव्याधि, उदावर्त्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, उदररोग, अनाह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, बढ़े हुये रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त तथा हृद्रयरोगों में विधिपूर्वक निरूहणवस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

**वक्तव्य**—निरूहणवस्ति देने का प्रकार भी वही है, जो पिछले अध्याय में अनुवासनवस्ति देने का निर्दिष्ट है।

### निरूहण की विधि

**उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धस्विन्नमभोजितम्।**
**मध्याह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत्॥8॥**
**स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम्।**
**जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः॥9॥**
**तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं तु निरूहागमनेच्छया।**
**अनायातं मुहूर्तं तु निरूहं शोधनैर्हरेत्॥10॥**
**निरूहैरेव मतिमान् क्षारमूत्राम्लसैन्धवैः।**

पहले आवश्यकतानुसार स्नेहन-स्वेदन कराकर और अपानवायु, पुरीष तथा मूत्र का परित्याग कराकर तथा भोजन न कराकर रोगी को दोपहर वस्ति के समय पर घर (एकान्त) में निरूहणवस्ति देना उचित है। अनुवासनवस्ति के समान ही निरूहणवस्ति का प्रयोग किया जाता है। निरूहणवस्ति का प्रयोग हो जाने पर उत्कटक आसन (जैसे शौच करते समय बैठा जाता है) से बैठ जाना उचित है और निरूहणवस्ति द्वारा किये हुये द्रव्य के निकलने की प्रतीक्षा करते हुये (इच्छाशक्ति का प्रभाव डालता हुआ) दो घड़ी तक बैठा रहे, यदि दो घड़ी में निरूहण द्रव न निकले तो विद्वान् चिकित्सक उस (निरूहण) को क्षार, मूत्र, अम्ल (काँजी आदि) तथा सेंधा नमक के घोल से बने हुये शोधन निरूहों का प्रयोग करके निकाल दें।

**निरूहण के उपद्रव**–विकृत वायु द्वारा अवरुद्ध अतएव अधिक समय तक रुका हुआ निरूहण द्रव उदर में शूल, बेचैनी, ज्वर, आनाह तथा मृत्यु को उत्पन्न कर सकता है।

**सावधानी**–भोजन के पश्चात् तत्काल निरूहण का प्रयोग करना उचित नहीं है, क्योंकि इससे विसूची, छर्दि अथवा वात आदि दोषों का प्रकोप हो सकता है। अत: भोजन किये बिना ही निरूहण का प्रयोग करें, यह निश्चित मत है। रोगी तथा रोग आदि की सभी अवस्थाओं (दशाओं) में निरूहण किया जा सकता है, क्योंकि मल निकल जाने पर दोषों का बल क्रमश: घट जाता।

### सुनिरूढ के लक्षण

**यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायव:।। 11।।**
**लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत्।**

जिस रोगी के पुरीष, पित्त, कफ तथा वायु क्रमश: निकल जायें और शरीर में हल्कापन उत्पन्न हो जायें, उसको 'सुनिरूढ' (अर्थात् उसको उत्तम प्रकार से निरूहणवस्ति का लाभ प्राप्त हो चुका है) समझना चाहिये।

### दुर्निरूढ के लक्षण

**यस्य स्याद् वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिल:।। 12।।**
**मूर्च्छार्तिजाड्यारुचिमान् दुर्निरूहं तमादिशेत्।**

जिसका वस्ति द्वारा दिया हुआ द्रव बहुत थोड़ा-थोड़ा निकले, उसके साथ मल तथा वायु भी बहुत थोड़ी निकले और रोगी को मूर्च्छा, पीड़ा, सुस्ती तथा अरुचि हो जाये तो उसको 'दुर्निरूढ़' समझना चाहिये।

**अतिनिरूढ के लक्षण**–विरेचन का अतियोग होने पर जो लक्षण इसी (शा०सं०, उ०खं०अ० 5) में कहे गये हैं, वे सब लक्षण निरूहणवस्ति का अतियोग होने पर भी होते हैं।

**आस्थापन तथा निरूहण का प्रयोग**–भली भाँति ज्ञान (मूर्च्छादि का दूर होना), मन की प्रसन्नता, शरीर का स्निग्ध होना, रोगों का नाश, ये सब आस्थापन (निरूहण) तथा अनुवासन-वस्ति के समुचित प्रयोग का लक्षण है।

**दोषभेद से वस्ति-विधान**–**'सस्नेह एक: पवने पित्ते द्वौ पयसा सह। कषायकटुरूक्षाद्या: कफे कोष्णास्त्रयो हिता:'**।। वायु की प्रधानता में स्नेहमिश्रित एक वस्ति पित्त की प्रधानता में दुग्धमिश्रित दो वस्तियाँ और कफ की प्रधानता में कषायरस युक्त त्रिफला आदि कटुरस युक्त क्षार आदि तथा रूक्ष द्रव्यों से मिश्रित कुछ गर्म-गर्म तीन वस्तियाँ लाभदायक होती हैं।

**दोष-भेद से भोजन-व्यवस्था**–इसके पश्चात् सुनिरूढ़ प्राणी को स्नान कराकर पित्त, कफ तथा वायु से पीड़ित प्राणी को क्रमश: दूध, यूष तथा मांस रस के साथ उचित भोजन खिलाये अथवा सभी को विकाररहित जाङ्गल (हरिण आदि) प्राणियों के मांसरस के साथ भोजन खिलाये और दोष तथा जठराग्नि का विचार कर भोजन की मात्रा त्रिभागहीन (सेर भर खाने वाले को एक पाव), आधा (सेर भर खाने वाले को आधा सेर) और हीन मात्रा (सेर भर खाने वाले को तीन पाव) होनी चाहिये तथा इसके पश्चात् उसी दिन यथायोग्य स्नेहवस्ति का प्रयोग भी करना चाहिये।

**विशेष वक्तव्य**–जिस दिन निरूहणवस्ति दी जाती है, उस दिन वातदोष का अधिक भय रहता है। इस कारण उस दिन खाने के लिए मांसरस तथा भात देना उचित है और अनुवासन वस्ति का प्रयोग भी अत्यावश्यक है। फिर जठराग्नि के बल तथा वायु की गति का विचार कर भोजन द्वारा जठराग्नि के बलवान् हो जाने पर आवश्यकतानुसार स्नेह-वस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

### एकाधिक वस्तियों का विधान

**अनेन विधिना युञ्ज्यान्निरूहं वस्तिदानवित्।। 13।।**
**द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम्।**

वस्ति देने में कुशल चिकित्सक इसी विधि से आवश्यकतानुसार दूसरी तीसरी अथवा चौथी निरूहणवस्ति का प्रयोग कर सकता है।

**वक्तव्य**–जिस प्रकार आवश्यकतानुसार एक से अधिक

भी अनुवासन वस्तियाँ दी जाती हैं, उसी प्रकार निरूहण वस्तियाँ भी एक से अधिक दी जा सकती हैं। सम्यक् निरूढ में 'विविक्तता, मनुस्तुष्टि' आदि लक्षण दिखलायी पड़ने पर वस्ति-विधान रोक देना चाहिये। वस्ति का हीनक्रम, हीनयोग भले ही करें, किन्तु अतियोग न हो। विशेषता सुकुमारों के लिये तो हीनक्रम ही हितकर होता है।

### दोषभेद से भोजन-व्यवस्था

**पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात्।।14।।**
**निरूढं भोजयित्वा च ततस्तमनुवासयेत्।**

पित्त, कफ तथा वायु से पीड़ित, निरूढ़ (जिसे निरूहवस्ति दी गयी है) मनुष्य को क्रमशः दूध, यूष तथा मांसरस (शोरवा) के साथ भोजन कराकर फिर अनुवासनवस्ति देनी चाहिये।

### सुकुमारादि के लिए वस्ति

**सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः।।15।।**
**वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद् बलायुषी।**

सुकुमार, वृद्ध तथा बालक को मृदुवस्ति लाभदायक होती है। तीक्ष्णवस्ति का प्रयोग उनके बल तथा आयु को नष्ट कर देता है।

### वस्तियों का क्रम

**दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः।।16।।**
**पश्चात् संशमनीयं च दद्याद् वस्तिं विचक्षणः।**

कुशल चिकित्सक पहले 'उत्क्लेशन' (दोषों को उभाड़ने वाली) वस्ति का बीच में 'दोषहर' (शोधनकारक) वस्ति का और अन्त में 'संशमनीय' वस्ति का प्रयोग करें।

### उत्क्लेशन-वस्ति

**एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा।।17।।**
**हपुषा फलकल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः।**

एरण्ड के बीज, मुलेठी, पीपल, सेंधा नमक, वच तथा हाऊबेर-इन द्रव्यों का कल्क मिलाकर जो वस्ति दी जाती है, उसे 'उत्क्लेशन' कहा जाता है।

### दोषहर-वस्ति

**शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च।।18।।**
**सकाञ्जिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः।**

सौंफ, मुलेठी, बैलगिरी, इन्द्रजौ, काँजी तथा गोमूत्र के मिश्रण से जो वस्ति दी जाती है, उसे 'दोषहर' कहा जाता है।

### शोधन-वस्ति

**शोधनद्रव्यनिष्क्वाथैस्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः।।19।।**
**युक्त्या खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः।**

शोधन द्रव्यों के क्वाथ तथा कल्क, स्नेह (तेल) तथा सेंधा नमक इन सबको एक साथ मिलाकर और मथानी से मथकर 'शोधन' वस्तियाँ तैयार कर ली जाती हैं।

**वक्तव्य**-शोधन द्रव्य इस प्रकार हैं-दन्ती, त्रिफला, पठानीलोध, जवाखार, सेहुण्ड (थूहर), शंखिनी, अमलतास, कबीला, चोक तथा दूध आदि।

### शमन-वस्ति

**प्रियङ्गु मधुकं मुस्ता तथैव च रसाञ्जनम्।।20।।**
**सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमनः स्मृतः।**

प्रियंगु, मुलेठी, नागरमोथा, रसवत तथा दूध का घोल बनाकर जो वस्ति दी जाती है, उसे 'शमन' (दोषों को शान्त करने वाली) कहा जाता है।

### लेखन-वस्ति

**त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः।।21।।**
**ऊषकादिप्रतीवापैर्बस्तयो लेखनाः स्मृताः।**

त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र, मधु तथा क्षार का घोल तैयार करके और उसमें ऊषकादिगण (देखें-शा० सं० म० खं० अ० 2) का प्रक्षेप मिलाकर जो वस्तियाँ दी जातीं हैं, उनको 'लेखन' कहा जाता है।

### बृंहण-वस्ति

**बृंहणद्रव्यनिष्क्वाथाः कल्कैर्मधुरकैर्युताः।।22।।**
**सर्पिर्मांसरसोपेता बस्तयो बृंहणाः स्मृताः।**

बृंहण द्रव्यों (जीवनीयगण तथा अश्वगन्धा, शतावरी आदि) के क्वाथ में मधुर द्रव्यों (द्राक्षा, खजूर तथा इस प्रकार के मधुर द्रव्य) का कल्क तथा घृत और मांसरस मिलाकर जो बत्तियाँ दी जाती हैं, उनको 'बृंहण' (शरीर को पुष्ट करने वाला) कहा जाता है।

### पिच्छिल-वस्ति

**बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनागराः।।23।।**
**क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः।**
**अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः।।24।।**
**मात्रा पिच्छिलबस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता।**

बेरी के पत्ते, नागबला (गंगेरन) के पत्ते, लिसोड़ा के पत्ते या फल, सेमल के फूल, धामिन के पत्ते तथा नागरमोथा-इन सब द्रव्यों को क्षीरपाक-विधि (देखें-शा०सं०, म०खं०

अ० 2 श्लोक 161) से दूध में पकाकर और उसमें मधु मिलाकर जो वस्ति दी जाती है, उसे '**पिच्छिलवस्ति**' कहा जाता है। इसमें बकरा, भेड़ा तथा हरिण का रक्त भी मिलाया जाता है। 'पिच्छिलवस्ति' की मात्रा 12 पल (48 तोला) की मानी जाती है।

**वक्तव्य**—इसमें वे द्रव्य डाले जाते हैं, जो पिच्छिल या चिपचिपाहट वाले या लुआबदार हों। यह गुदा के दाह, क्षत तथा रक्तातिसार में बहुत अधिक लाभ करती है।

**प्रमाणानुसार द्रव्यमिश्रण-विधि**

**दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयम्।। 25।।**
**विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृतित्रयम्।**
**एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत्।। 26।।**
**सम्मूर्च्छिते कषायं तु चतुःप्रसृतिसम्मितम्।**
**क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक्।। 27।।**

किसी बड़े पात्र में पहले एक तोला सेंधा नमक (पीसा हुआ) डाले और फिर उसमें दो प्रसृति (4 पल) मधु डालकर भली-भाँति मथकर तीन प्रसृति स्नेह उसमें डाल दें। उसे मथकर मिला दें, तत्पश्चात् एक प्रसृति कल्क डालकर मिला दें, फिर चार प्रसूति कषाय मिला दें, अन्त में दो प्रसृति आवाप (दूध तथा काँजी आदि) मिलायें, इस प्रकार बनायी हुई वस्ति का कुशल चिकित्सक प्रयोग करे। यह 'द्वादश-प्रसृतवस्ति' कहलाती है।

**दोष-भेद से स्नेह, मधु का प्रमाण**

**वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात् स्नेहस्य षट्पलम्।**
**पित्ते चतुष्पलं क्षौद्रं स्नेहं दद्यात् पलत्रयम्।। 28।।**
**कफे च षट्पलं क्षौद्रं क्षिपेत् स्नेहं चतुष्पलम्।**

उक्त द्वादशप्रसृतिवस्ति में वात की अधिकता में मधु चार पल और स्नेह 6 पल, पित्त की अधिकता में मधु चार पल और स्नेह 3 तथा कफ की अधिकता में मधु 6 पल और स्नेह 4 पल डालना चाहिये।

**माधुतैलिक-वस्ति**

**एरण्डक्वाथतुल्यांशं मधु तैलं पलांशकम्।। 29।।**
**शतपुष्पापलार्धेन सैन्धवार्धेन संयुतम्।**
**मधुतैलकसंज्ञोऽयं वस्तिः खजविलोडितः।। 30।।**
**मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः।**
**बलवर्णकरश्चैव वृष्यो दीपनबृंहणः।। 31।।**

एरण्ड क्वाथ 8 पल, मधु 4 पल, तैल 4 पल, सौंफ तीन कर्ष, सैन्धव-लवण 1 कर्ष और मैनफल 1 नग सबको मिलाकर मथानी से मथकर, कुछ गर्म करके वस्ति देनी चाहिये। इसका नाम 'माधुतैलिक' वस्ति है। यह मेदोदोष, गुल्म, कृमि, प्लीहा, मलजनित उदावर्त्त को नष्ट करती है, बल तथा वर्ण को बढ़ाती है। यह वृष्य और दीपन-पाचन है।

**वक्तव्य**—राजाओं, राजाओं जैसे तथा बड़े लोगों, नारियों, सुकुमारों, बालकों तथा बूढ़ों के दोषों को निकालने के लिए बल-वर्ण की वृद्धि के लिए 'माधुतैलिक' वस्तियों का संक्षेप से उपदेश किया गया है। इनमें यात्रा, स्त्री-सेवा, भोजन और पान का कोई नियम नहीं है। इसका फल बहुत अधिक देखा जाता है। व्यापत्तियाँ भी नहीं होतीं, इसका प्रयोग इच्छानुसार किया जा सकता है। इस वस्ति की मात्रा 9 प्रसृत (18 पल) होनी चाहिये। देखें—सु०चि०अ० 3 श्लोक 100 की डल्हण-व्याख्या।

**दीपन-वस्ति**

**क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिः प्रसृतं भवेत्।**
**हपुषासैन्धवाक्षांशो वस्तिः स्याद् दीपनः परः।। 32।।**

मधु, घृत, दुग्ध तथा तैल प्रत्येक एक-एक प्रसृत (2-2 पल) और हाऊबेर तथा सेंधा नमक एक-एक अक्ष (1-1 तोला) मिलाकर जो वस्ति दी जाती है, वह परम दीपन या अग्निवर्धक है। इसका नाम 'दीपन-वस्ति' है।

**युक्तरथ-वस्ति**

**एरण्डमूलनिष्क्वाथो मधु तैलं ससैन्धवम्।**
**एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः।। 33।।**

एरण्ड की जड़ का क्वाथ, मधु तैल तथा सेंधा नमक मिलाकर और वच, पीपल तथा मैनफल का प्रक्षेप डालकर जो वस्ति दी जाती है, उसका नाम 'युक्तरथ' है।

**वक्तव्य**—रथ, हाथी तथा घोड़े की सवारी करते समय भी इस वस्ति का प्रयोग किया जा सकता है। अतः इसका नाम 'युक्तरथ' है। देखें—सु० चि० अ० 38। उक्त वस्तुओं का परिमाण का निश्चय शास्त्रानुसार करें।

**सिद्ध-वस्ति**

**पञ्चमूलस्य निष्क्वाथस्तैलं मागधिका मधु।**
**ससैन्धवः समधुकः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः।। 34।।**

बिल्वादि पञ्चमूल का क्वाथ, तैल, पीपल, मधु, सेंधा नमक तथा मुलेठी को मिलाकर जो वस्ति दी जाती है, उसे 'सिद्धवस्ति' कहा जाता है।

**वक्तव्य**—बल, पुष्टि तथा वर्ण की सिद्धि (प्राप्ति) तथा सैकड़ों रोगों की सिद्धि (विनाश) करने के कारण इसे 'सिद्धवस्ति' कहा जाता है। देखें—सु० चि० अ० 38।

**मुस्तादि-वस्ति**—नागरमोथा, पाठा, गिलोय, कुटकी, बला, रास्ना, पुनर्नवा, मजीठ, अमलतास, खस, त्रायमाणा और गोखरू 1-1 पल, लघुपञ्चमूल 1-1 पल, मैनफल 8 नग सबको 4 सेर जल में पकायें, चतुर्थांश शेष रहने पर 1 सेर दूध डालकर पकायें। जब केवल दूध मात्र शेष रह जाये तो उसमें 1 पाव मांसरस, मधु और घृत 1-1 पल, सौंफ, प्रियंगु, मुलेठी, कुरैया की छाल, रसवत तथा सैन्धवलवण 1-1 तोला कल्क बनाकर और सबको मिलाकर वस्ति दें। यह वातरक्त, मोह, सूजन, अर्श, गुल्म, मूत्राघात, विसर्प, ज्वर, मलभेद और रक्तपित्त को नष्ट करती है, यह बलवर्द्धक, सञ्जीवन, वीर्यवर्द्धक, नेत्ररक्षक और शूलनाशक है। यह 'मुस्तादि-वस्ति' सभी वस्तियों का राजा है।

**वस्ति-कल्पना**—बुद्धिमान् चिकित्सक अपनी बुद्धि द्वारा औषधों के प्रभाव को तथा रोग की स्थिति को विचार कर इस निम्नलिखित 'बीज' अर्थात् निर्देश से सैकड़ों वस्तियों की रचना कर सकता है।

**त्रिदोषहर-वस्तियाँ**—वातनाशक औषधों के क्वाथ, सैन्धव लवण, निसोत, काँजी आदि अम्ल द्रव्यों से युक्त कुछ गर्म-गर्म वस्तियों का प्रयोग वायु-विकारों में करना चाहिये। न्यग्रोधादिगण के क्वाथ काकोल्यादिगण से युक्त घी तथा मिश्री मिलाकर वस्तियों का प्रयोग पित्त-विकारों में करना चाहिये।

**वक्तव्य**—उक्त गण क्रमशः शा०सं०म०खं०अ० 2 तथा अ० 6 में देखें। आरग्वधादि-गण के क्वाथ पिप्पल्यादिगण से युक्त मधु तथा गोमूत्र पिलाकर वस्तियों का प्रयोग कफ-विकारों में करना चाहिये।

**रक्तविकार-वस्ति**—बरगद आदि क्षीरीवृक्षों के क्वाथ, मिश्री, ईख का रस, दूध और घी मिलाकर ठण्डी-ठण्डी वस्तियों का प्रयोग रक्तजनित विकारों में करना चाहिये।

### निरूहण-वस्ति में पथ्यापथ्य

**स्नान मुष्णोदकैः कुर्याद् दिवास्वप्नमजीर्णताम्।**
**वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत् स्नेहवस्तिवत्।।35।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गरसंहितायां उत्तरखण्डे निरूहणवस्तिविधिः नाम षष्ठोऽध्यायः।।6।।**

निरूहणवस्ति के सेवन-कर्ता को उष्ण जल से स्नान करना चाहिये और दिन में सोना, अजीर्ण का परित्याग तथा शेष सभी स्नेहवस्ति के समान आचार रखना चाहिये।

**वक्तव्य**—इस विषय को समझने के लिए सु० चि० अ० 38 अवश्य देखें। इस विषय से सम्बन्धित अधिकांश पाठ इस प्रकरण में वहीं से उद्धृत किये गये हैं।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का छठा अध्याय समाप्त।।6।।

सप्तमोऽध्यायः

# उत्तरवस्तिविधिः

### उत्तरवस्ति-विधान

**अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम्।**
**द्वादशाङ्गुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम्।।1।।**
**मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपसन्निभम्।**

अनुवासन तथा निरूहणवस्ति के पश्चात् 'उत्तरवस्ति' का विधि लिखी जायेगी। इसका नेत्र (नली) बारह अंगुल लम्बा होता है और इस (नेत्र) के मध्य में (अर्थात् छः अंगुल पर) कर्णिका बनायी जाती है। इसी कर्णिका पर वस्ति (थैली) बाँधी जाती है। यह नेत्र मालती के फूल के वृन्त (मूलभाग) के सदृश मोटा होना चाहिये और उसमें सरसों के बीज के आने-जाने योग्य छिद्र होना चाहिये।

**वक्तव्य**—जो वस्ति पुरुषों के मूत्रमार्ग में तथा स्त्रियों के भग (गर्भ) मार्ग में दी जाती है, उसका नाम 'उत्तरवस्ति' है। इसमें वस्ति या औषध भरने की थैली वही प्रयुक्त होती है, जो पूर्वोक्त वस्तियों में कही गयी है। देखें—सु० चि० अ० 38। 100-101।

### वस्ति-मात्रा-निर्धारण

**पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिका।।2।।**
**तदूर्ध्वं पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः।**

विद्वान् चिकित्सक उत्तरवस्ति में स्नेह की मात्रा 25 वर्ष के नीचे दो कर्ष (2 तोला) तथा उसके ऊपर एक पल (4 तोला) मानते हैं।

### पुरुषों में वस्ति-प्रयोग-विधि

**अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः।।3।।**
**स्थितस्य जानुमात्रे च पीठेऽन्विष्यशलाकया।**
**स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत्।।4।।**
**शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्रेऽङ्गुलानि षट्।**
**ततोऽवपीडयेद् बस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत्।।5।।**
**ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः।**

आस्थापन (निरूहण) द्वारा शुद्ध होने के पश्चात् और उचित स्नान तथा भोजनों के सेवन से बलवान् हो जाने पर रोगी को जानुभर ऊँचे पीठ (पीढ़े या कुर्सी) पर बैठा दें और मूत्रमार्ग में स्निग्ध (स्नेहलिप्त) तथा श्लक्ष्ण सलाई द्वारा अन्वेषण कर अर्थात् उसमें इसे प्रविष्ट करने के पश्चात् नेत्र का प्रयोग करें। इस नेत्र को घी लगाकर चिकना कर लेना चाहिये और मूत्रमार्ग में बहुत धीरे-धीरे छः अंगुल (कर्णिका) तक चढ़ा दें, इसके पश्चात् वस्ति का पीड़न करें (औषध को मूत्राशय में पहुँचा दें), फिर धीरे-धीरे नेत्र को निकाल लें। इसके थोड़ी देर बाद स्नेह के लौट आने पर स्नेहवस्ति का क्रम उत्तम माना जाता है।

**वक्तव्य**—उक्त पाठ के नीचे इस श्लोक को भी जोड़ना चाहिये-'**भोजयेत् पयसा मात्रां यूषेणाथ रसेन वा। अनेन विधिना दद्यात् वस्तींस्त्रींश्चतुरोऽपि वा।।**' (सु०चि०अ० 37.113)।

### स्त्रियों में वस्ति-प्रयोग-विधि

**स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद् दशाङ्गुलम्।।6।।**
**मुद्गप्रवेशयोग्यं च योन्यन्तश्चतुरङ्गुलम्।**
**द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत्।।7।।**

स्त्रियों के लिए नेत्र दस अंगुल लम्बा तथा कनिष्ठिका अंगुली के समान मोटा होना चाहिये और इसका छिद्र मूँग के आने-जाने योग्य होना चाहिये। यह नेत्र योनि (भग) में चार अंगुल प्रविष्ट कराया जाता है और स्त्रियों के मूत्रमार्ग में सूक्ष्म नेत्र (जो प्रथम श्लोक द्वारा कहा गया है) केवल दो अंगुल प्रविष्ट कराया जाता है।

**वक्तव्य**—मूत्रमार्ग में प्रयुक्त किये जाने वाले नेत्र में मूल से चार अंगुल पर कर्णिका बनानी चाहिये।

### बालकों में वस्ति-प्रयोग-विधि

**मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमङ्गुलम्।**
**शनैर्निष्कममाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः।। 8।।**

मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्ररोगों में बालिकाओं के मूत्रमार्ग में केवल एक अंगुल नेत्र (जो उक्त मालतीपुष्पवृन्त से भी पतला हो) धीरे-धीरे कम्पनरहित प्रविष्ट कराना चाहिये।

### विशेष मात्रा-निर्देश

**योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी।**
**मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी।। 9।।**

स्त्रियों के योनिमार्ग में दी जाने वाली वस्ति में स्नेह की मात्रा दो पल (8 तोला) और मूत्रमार्ग द्वारा दी जाने वाली वस्ति में एक पल (4 तोला) की मात्रा दी जाती है और वही बालिकाओं के मूत्रमार्ग में दो कर्ष (2 तोला) दी जाता है।

**वक्तव्य**—बालिकाओं का गर्भमार्ग योनिच्छद से अवरुद्ध रहता है और गर्भाशय अपुष्ट रहता है, अतः उसमें वस्ति प्रयोग की सम्भवतः आवश्यकता ही नहीं पड़ती, किन्तु देखा जाता है कि दैवदुर्विपाक से बालिकाओं के भी योनिमार्ग में रोग हो जाते हैं। जैसे—श्वेतद्रव का बहना, माता-पिता के दोष से आतशक के व्रणों का हो जाना तथा कण्डू आदि का उत्पन्न होना। इन दशाओं में प्रक्षालन आदि की आवश्यकता अवश्य पड़ सकती है।

### स्त्रियों में वस्ति-प्रयोग-विधि

**उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः।**
**अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावृत्तरसंज्ञिते।। 10।।**
**भूयो बस्तिं निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः।**
**फलवर्तिं निदध्याद् वा योनिमार्गे दृढां भिषक्।। 11।।**
**सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम्।**
**दह्यमाने तथा बस्तौ दद्याद् वस्तिं विशारदः।। 12।।**
**क्षीरिवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन वा।**
**वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजां रुजम्।। 13।।**
**हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित्।**

स्त्री को लेटाकर तथा उसके जानुओं (घुटनों) को संकुचित कराकर (मोड़कर) विद्वान् चिकित्सक उत्तरवस्ति का प्रयोग करें। यदि एक मुहूर्त (दो घड़ी) तक उत्तरवस्ति द्वारा दिया गया स्नेह न निकले तो फिर चिकित्सक शोधन-द्रव्यों द्वारा प्रस्तुत की हुई निरूहण-वस्ति का प्रयोग करे अथवा योनिमार्ग में फलवर्त्ति का प्रयोग करें। यह फलवर्त्ति (बत्ती) सूत से या कपड़े से बनी हुई, स्नेह से स्निग्ध विरेचनीय स्नेह द्रव्यों से सनी हुई तथा दृढ़ होनी चाहिये। यदि वस्ति के प्रयोग से दाह उत्पन्न हो जाये तो विद्वान् चिकित्सक क्षीरिवृक्षों (बरगद, गूलर आदि) की छाल के क्वाथ से अथवा शीतल जल से वस्ति दें। उत्तर-वस्ति मनुष्यों के शुक्र सम्बन्धी रोगों को तथा स्त्रियों के आर्त्तव सम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है, किन्तु प्रमेह से पीड़ित पुरुषों तथा स्त्रियों को कभी भी उचित नहीं है।

**वक्तव्य**—स्त्रियों में उत्तरवस्ति का प्रयोग पुरुष-चिकित्सक को कभी भी नहीं करना चाहिये, यह कार्य नर्स, दाई या लेडी-डाक्टर द्वारा ही कराना चाहिये। ग्रन्थकार ने जो यहाँ 'विचक्षणः' शब्द का प्रयोग किया है, वह केवल चिकित्सा-व्यवस्था देने तक के लिये ही है। परिचारक तथा परिचारिका के अपने-अपने स्वतन्त्र विभाग होते हैं, तदनुसार वे अपने विभागों का कार्य स्वयं किया करते हैं।

**फलवर्त्ति-प्रयोग-विधि**—**'फलवर्त्तिं निदध्याद्वा शोधनद्रव्यसम्भृताम्। प्रवेशयेद् वा मतिमान् वस्तिद्वार-मथैषणीम्।। पीडयेद् वाप्यधोनाभेर्बलेनोत्तरमुष्टिना। आरग्वधस्य पत्रेषु निर्गुण्ड्याः स्वरसेषु च।। कुर्याद् गोमूत्रपिष्टेषु वर्त्तीर्वापि ससैन्धवाः। मुद्गैलाः सर्षपसमाः प्रविभज्य वयांसि तु।। वस्तेरागमनार्थाय ता निदध्याच्छलाकया। आगारधूमबृहतीपिप्पलीफलसैन्धवैः।। कृता वा शुक्तगोमूत्रसुरापिष्टैः सनागरैः। अनुवासनसिद्धिं च वीक्ष्य कर्म प्रयोजयेत्।।'** अर्थात् यदि मूत्रमार्ग में दी गयी वस्ति समय पर स्वयं न लौटे, तो वस्तिद्वार में या मूत्रमार्ग में शोधन-द्रव्यों (आरग्वधादि) द्वारा बनायी हुई 'फलवर्त्ति' का प्रयोग करें, अथवा एषणी (शलाका) का प्रयोग करें अथवा मुट्ठी से बलपूर्वक नाभि के नीचे (पेडू को) दबायें।

**फलवर्त्ति-निर्माण-विधि**—अमलतास के पत्तों को थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर निर्गुण्डी के स्वरस तथा गोमूत्र में पीसकर मूँग, इलायची, सरसों जैसी बत्तियाँ बनाकर रोगी या रोगिणी के वयस् (बाल्य, यौवन तथा वार्द्धक्य) का विचार करके वस्ति-द्रव्य के लौटने के लिए सलाई की सहायता से मूत्रमार्ग में प्रवेश कराये अथवा गृहधूम, बनभण्टा के फल, पीपल, मैनफल, सेंधा नमक तथा सोंठ का सिरका, गोमूत्र तथा मद्य में पीसकर उक्त प्रकार की बत्तियाँ बनाकर उक्त प्रकार से मूत्रमार्ग में चढ़ाये। यह सब चिकित्सा-क्रम अनुवासन-वस्ति की सिद्धि (सफलता) को ध्यान में रखकर प्रयोग करना चाहिये।

**लक्षण-समन्वय**

**सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम एव च।। 14।।**
**बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहवस्तिना।**

उत्तर-वस्ति का सम्यक् योग तथा व्यापत्तियों (हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों) के लक्षण तथा उनकी चिकित्सा स्नेह-वस्ति के ही समान होती है।

**फलवर्ति का नामभेद**

**घृताभ्याक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वाङ्गुष्ठसन्निभा।। 15।।**
**मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायाम् उत्तरखण्डे उत्तरवस्तिविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः।। 7।।**

गुद में घी लगाकर रोगी के अँगूठे के समान मोटी और लम्बी वर्त्ति (बत्ती) चढ़ायी जाती है। इसका प्रयोग रुके हुये मल को निकालने के लिए किया जाता है, इसका नाम 'मलप्रवर्तिनीवर्ति' तथा 'फलवर्त्ति' है।

**वक्तव्य**—गुद में मल को, मूत्रमार्ग में मूत्र को तथा योनि के मुख में आर्त्तव को निकालने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। देखें–सु० चि० अ० 17।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त।। 7।।

## अष्टमोऽध्यायः

# नस्यविधिः

### नस्य की निरुक्ति

**नस्यं तत् कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्।**
**नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्।।1।।**

जो औषध नासिका या नाक द्वारा ग्रहण की जाती है, उसको 'नस्य' कहा जाता है। उसके दो नाम हैं–नावन और 2. नस्य कर्म।

**वक्तव्य**–'नस्य' नासिका से सम्बन्धित विकारों के लिए हितकर होती है। हमारे विचार से तो यह 'ऊर्ध्वजत्रुविकारों' में आश्चर्यजनक लाभ करती है, आप भी चिकित्सा काल में प्रयोग करके देखें। ध्यान दें रोगी को रूक्षनस्य की आवश्यकता है कि स्निग्ध नस्य की।

### नस्य के भेद

**नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा।**
**रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम्।।2।।**

नस्य दो प्रकार का होता है–1. रेचन (शोधन) और 2. स्नेहन (स्निग्ध करने वाला)। रेचन नस्यकर्म (अपतर्पण) और स्नेहन नस्य बृंहण (सन्तर्पण) कहा जाता है।

### नस्य-प्रयोग का काल

**कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके।**
**दिने तु गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे।।3।।**

कफ, पित्त तथा वायु को नष्ट करने के लिए क्रमशः दिन के पूर्वभाग, मध्यभाग तथा अन्तिम भाग में नस्य का प्रयोग करना चाहिये। यदि अत्यन्त भीषण (संन्यास आदि शीघ्रकारी) रोग हो तो रात्रि में भी नस्य का प्रयोग करना उचित है।

**वक्तव्य**–यहाँ पर नस्य प्रयोग के जिन कालों का वर्णन किया गया है, वह इसलिये कि उक्त दोषों का प्रकोप प्रायः उन-उन कालों में अधिक होता है। अतः नस्य-प्रयोग से उनका शीघ्र शमन हो जाता है।

### नस्य के अयोग्य काल और रोगी

**नस्यं त्यजेद् भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पिते।**
**तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः।।4।।**
**अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पतिस्नेहोदकासवः।**
**क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तो वृद्धबालकौ।।5।।**
**वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत्।**

भोजन के पश्चात्, दुर्दिन (जिस दिन आकाश में बादल छाये हों) में तथा अपतर्पित (बुभुक्षित) मनुष्य को नस्य नहीं लेनी चाहिये। नवनि प्रतिश्याय (जुकाम) से पीड़ित, गर्भवती गर (कृत्रिम विष) से पीड़ित, अजीर्ण वाला, जिसको वस्ति दी गयी हो, जिसने स्नेह, जल तथा आसव का पान किया हो, क्रोधयुक्त, शोक से सन्तप्त तृष्णा से पीड़ित, वृद्ध, बालक, मल-मूत्रादि के वेग को रोकने वाला, जिसने स्नान किया है और जो स्नान करना चाहता है, ऐसे व्यक्ति नस्य का प्रयोग न करें।

### नस्य के योग्य-अयोग्य वय

**अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत्।।6।।**
**अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते।**

आठ वर्ष की अवस्था से नस्य का प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिये और अस्सी वर्ष के पश्चात् नस्य का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

**वक्तव्य**–आवश्यकता पड़ने पर इसके पूर्व तथा पश्चात् भी चिकित्सक के परामर्श से नस्य का प्रयोग कराया जा सकता है।

### विरेचन-नस्य

**अथ वैरेचनं नस्य ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः।।7।।**
**तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा।**

रेचन नस्य तीक्ष्ण (कटु) तैलों (राई आदि के तेल) से

अथवा तीक्ष्ण द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुये स्नेहों, क्वाथों तथा रसों के प्रयोग से दिया जाता है।

**वक्तव्य**–विरेचन नस्य से छीकें आती हैं। नाक, मुख तथा आँखों से जल एवं कफ भी निकलता है।

### विरेचन-नस्य की मात्रा

**नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिन्दवः।। 8।।**
**प्रत्येकं रेचने योज्या मुख्यमध्यान्त्यमात्रया।**

नासिका के प्रत्येक रन्ध्र (नथुने) में आठ, छः तथा चार बिन्दुओं (बूँदों) का प्रयोग रेचन नस्य की क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अन्तिम (अधम) मात्रा है।

### नस्य के लिए द्रव्यों का परिमाण

**नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम्।। 9।।**
**हिङ्गु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैन्धवं मतम्।**
**क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात् पानीयं च त्रिकार्षिकम्।। 10।।**
**कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत्।**

नस्य के लिए जब औषध योग प्रस्तुत किया जाता है, तो उसमें तीक्ष्ण औषध (त्रिकटु तथा कट्फल आदि) एक शाण (। भर), हींग जो भर, सेंधा नमक एक माशा, दूध आठ शाण (2 तोला), नल तीन तोला तथा मधुर द्रव्य (खाँड तथा मधु आदि) एक तोला की मात्रा में मिलाकर इस घोल को नस्य-कर्म में प्रयुक्त करना चाहिये।

### विरेचन-नस्य के दो भेद

**अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ।। 11।।**
**शिरोविरेचनस्यात्र तौ तु देयौ यथायथम्।**

शिरोविरेचन-नस्य के दो भेद और माने जाते हैं– 1. अवपीड तथा 2. प्रधमन। इनका आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है।

### अवपीड, प्रधमन का स्वरूप

**कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः।। 12।।**
**सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः।**
**षडङ्गुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत्।। 13।।**
**तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हि तत्।**

औषध का कल्क बनाकर उसको निचोड़ कर जो रस निकाला जाता है, उससे जो नस्य ली जाती है, उसे **'अवपीड़'** कहा जाता है। तीक्ष्ण द्रव्यों (त्रिकटु तथा कट्फल आदि) का बारीक चूर्ण एक कोल भर लेकर छः अंगुल लम्बी तथा दोनों ओर मुख वाली नालिका में डालकर नाक के भीतर मुख की वायु से फूँक दे, इसको **'प्रधमन-नस्य'** कहा जाता है।

**वक्तव्य**–किसी भी तीक्ष्ण द्रव्य की कोल भर की मात्रा वहुत अधिक होती है, अतः सुश्रुतोक्त वचनों पर ध्यान देकर कार्य करना उचित है-**'नाडी षडङ्गुलायामा द्विमुखी च तया धमेत्। त्रिश्चूर्णमुच्चुटीमात्रमेष प्रधमने विधिः।। शुक्तिप्रमाणं जिघ्रेद् वा बद्धं सूक्ष्मेण वाससा'**। देखें–सु० चि० अ० 40 सूत्र 46। चुटकी भर चूर्ण को अथवा शुक्ति भर चूर्ण को अत्यन्त बारीक वस्त्र में बाँधकर सूँघना चाहिये।

### विरेचन-नस्य के योग्य रोग

**ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसङ्क्षये।। 14।।**
**अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे।**
**शोफाऽपस्मारकुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम्।। 15।।**

ऊर्ध्वजत्रु (Collar bone) प्रदेश में स्थित रोगों, कफज स्वरभेद, अरुचि, प्रतिश्याय, शिरोरोग, पीनस, शोथ, अपस्मार तथा कुष्ठरोग में विरेचन-नस्य लाभदायक होती है।

### स्नेहन-नस्य

**भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन दीयते।**

भीरु (डरपोक), स्त्री कृश तथा बालक को स्नेह (तीक्ष्ण द्रव्यों से परिपक्व) की नस्य देनी चाहिये, यही इनके लिये उत्तम होती है।

### अवपीड-नस्य के योग्य रोगी

**गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे।। 16।।**
**मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम्।**

गलरोगों, सन्निपात, नींद की अधिकता, विषमज्वर, मानसिक रोगों तथा शिर के क्रिमिरोग में 'अवपीड' नस्य प्रयुक्त की जाती है। इसी को शिरोविरेचन-नस्य भी कहते हैं।

### प्रधमन के योग्य रोग

**अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते।। 17।।**
**चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः।**

अत्यन्त बढ़े हुये दोषों में और मूर्च्छित रोगियों को चूर्णरूप में 'प्रधमन-नस्य' दी जाती है, क्योंकि वह तीक्ष्णतर होती है।

### गुडादि-नस्य

**नस्यं स्याद् गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पल्या सैन्धवेन च।। 18।।**
**जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः।**
**मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः।। 19।।**

गुड़ एवं सोंठ अथवा पीपल तथा सेंधा नमक को जल में पीसकर (रस निकाल कर नस्य देने से आँख, कान, नाक तथा शिर के रोग और मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ तथा गलरोग और भुज (बाहु) एवं पीठ के रोग नष्ट हो जाते हैं।

**मधूकसारादि नस्य**

**मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः।**
**नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात् संज्ञाप्रबोधनम्।। 20।।**
**अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके।**

महुये की बीच की लकड़ी, पीपल, वच, मरिच तथा सेंधा नमक–इन सबको गुनगुने जल में पीसकर नस्य देने से अपस्मार (मिरगी), उन्माद, सन्निपात, अपतन्त्रक रोगी में संज्ञा (होश) आ जाती है, अर्थात् बेहोशी दूर हो जाती है।

**सैन्धवादि-नस्य**

**सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च।। 21।।**
**बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम्।**

सेंधा नमक, सफेद मरिच, सरसों तथा कूठ को बकरे के मूत्र में पीसकर नस्य देने से तन्द्र (उँचाई) दूर हो जाता है।

**प्रधमन-नस्य**

**रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं सैन्धवं वचा।। 22।।**
**मरिचं पिप्पली शुण्ठी कङ्कोलं लशुनं पुरम्।**
**कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः।। 23।।**

सेंधा नमक, वच, मरिच, पीपल, सोंठ, शीतलचीनी, लहसुन, गूगल तथा कायफल (की छाल) का सूक्ष्म चूर्ण बनायें और उसको रोहित (रोहू) मछली की पित्त की भावना दें। चिकित्सक इस चूर्ण को प्रयोग 'प्रधमन-नस्य' के रूप में करें।

**बृंहण नस्य-कल्पना**

**अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना।**
**मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहनौ मतौ।। 24।।**
**मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताऽष्टभिः।**
**मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता स्मृता।। 25।।**
**एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः।**
**मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम्।। 26।।**
**एकान्तरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद् विचक्षणः।**
**त्र्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा सुयन्त्रितम्।। 27।।**

अब 'बृंहण' (स्नेहन) नस्य की कल्पना (विधि) कही जाता है। स्नेहन-नस्य के दो भेद होते हैं–1. मर्श और 2. प्रतिमर्श। मर्श की तर्पणी (तृप्त करने वाली) मुख्य (उत्तम) मात्रा आठ शाण, मध्यम मात्रा चार शाण तथा हीन मात्रा एक शाण की होती है। गर्भ की यह मात्रा एक-एक नासापुट (नथुने) में दी जाती है और दोष के बलाबल को देखकर एक दिन में दो-तीन बार भी दी जा सकती है। विद्वान् चिकित्सक का कर्तव्य है कि एक अथवा दो दिन का अन्तर देकर (तीसरे, चौथे दिन) नस्य का प्रयोग करें और तीन, पाँच अथवा सात दिन तक इस नस्य का प्रयोग किया जा सकता है। इन दिनों रोगी को नियमपूर्वक रहना चाहिये।

**मर्श-शिरोविरेचन**

**मर्शे शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः।**
**दोषोत्क्लेशात् क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम्।। 28।।**
**दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युञ्ज्याद् वमनशोधनम्।**
**अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं हितम्।। 29।।**

'मर्श' नस्य तथा 'शिरोविरेचन' नस्य के कारण अनेक प्रकार की आपत्तियाँ क्रमशः दोषों की उत्क्लेश (वृद्धि) तथा क्षय से उत्पन्न होती है। दोषों के उत्क्लेश से होने वाली व्यापत्तियों में वमन तथा विरेचन नस्य का प्रयोग करना चाहिये और क्षय से होने वाली व्युपत्तियों में बृंहण (स्नेहन) नस्य लाभदायक होते हैं।

**वक्तव्य**–मर्श नस्य से केवल पित्त तथा कफ की वृद्धि और वायु का ह्रास (क्षय) होता है और रेचन से पित्त तथा कफ का ह्रास (क्षय) और वायु की वृद्धि होती है।

**बृंहण-नस्य के योग्य रोग**

**शिरोनासाक्षिरोगेषु सूयवितार्धभेदके।**
**दन्तरोगे बले हीने मन्याबाह्वंसजे गदे।। 30।।**
**मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा।**
**अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने।। 31।।**
**युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः।**

शिर, नासा तथा नेत्र के रोगों में सूर्यावर्त्त तथा अर्द्धावभेदक (आधासीसी) में, दन्तरोग में, दुर्बलता में, मन्या बाहु तथा कन्धे के रोगों में, मुखशोष में, कर्णनाद में, वात तथा पित्त के रोगों में, अकालपलित (युवावस्था में बालों का पकना), केश तथा श्मश्रु (दाढ़ी-मोछ) के बाल झड़ने में बृंहण-नस्य का प्रयोग किया जाता है और उसमें स्नेहों तथा मधुर द्रवों का संयोग रहता है।

**वक्तव्य**–केवल स्नेह से ही नहीं, अपितु स्नेह तथा

मधुर द्रवों के संयोगा भी 'बृंहण नस्य' के योग प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

**अणुतैल**–'**चन्दनागुरुणी पत्रं दार्वीत्वक् मधुकं बलाम्। प्रपौण्डीकं सूक्ष्मैलां विडङ्गं बिल्वमुत्पलम्। ह्रीबेरमभयां वन्यं त्वङ्मुस्तं सारिवां स्थिराम्।। जीवन्तीं पृश्निपर्णीं च सुरदारु शतावरीम्। हरेणुं बृहतीं व्याघ्रीं सुरभीं पद्मकेसरम्।। विपाचयेच्छतगुणे माहेन्द्रे विमलेऽम्भसि। तैलाद् दशगुणं शेषं कषायमवतारयेत्।। तेन तैलं कषायेण दशकृत्वो विपाचयेत्। अथास्य दशमे पाके समांशं छागलं पयः।। दद्यादेषोऽणुतैलस्य नावनीयस्य संविधिः। अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत तैलस्यार्धपलोन्मिताम्।। स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य पिचुना नावनैस्त्रिभिः। त्र्यहात् त्र्यहाच्च सप्ताहमेतत्कर्म समाचरेत्।। निवातोष्णसमाचारो हिताशी नियतेन्द्रियः। तैलमेतत् त्रिदोषघ्नमिद्रियाणां बलप्रदम्।। प्रयुञ्जानो यथाकालं यथोक्तानश्नुते गुणान्।**' अर्थात्–सफेदचन्दन, अगुरु, तेजपत्ता, दारुहल्दी, दालचीनी, मुलेठी, बरियारा, पुंडेरिया, छोटी इलायची, वायविडंग, बेलगिरी, कमल, नेत्रबाला, हरड़, केवटीमोथा, दालचीनी, नागरमोथा, सारिवा, शालपर्णी, जीवन्ती, पिठवन, देवदारु, शतावर, हरेणु, बनभण्टा, भटकटैया, सुरभी, (रास्ना) तथा कमल का केसर–इन सब द्रव्यों को तैल से सौगुने वर्षा के निर्मल जल में पकायें, फिर तैल से दशगुना क्वाथ अवशिष्ट रख लें, इस क्वाथ से दस बार अर्थात् बार-बार समभाग क्वाथ डालकर पाक करें और दसवें पाक में समभाग बकरी का दूध डालकर पाक करें। यह नस्योपयोगी 'अणुतैल' के निर्माण की विधि है। इस तैल की आधा पल (64 बिन्दु) की मात्रा का प्रयोग करें। रोगी के शिर पर स्नेहन तथा स्वेदन करने के अनन्तर फाहा द्वारा दिन में तीन बार नस्य दें। तीन-तीन दिन के बाद सात दिन (21 दिन) तक यह कर्म करें। रोगी निवातस्थान में रहें, उष्ण अन्न, जल तथा हित भोजन का सेवन करें और जितेन्द्रिय बना रहे। यह तैल त्रिदोषनाशक एवं इन्द्रियों को शक्ति देने वाला है। इसका यथासमय प्रयोग करने से मानव स्नेहन-नस्य के सभी गुणों को प्राप्त कर लेता है।

**स्पष्टीकरण**–तैल 1 सेर, वर्षा का जल 100 सेर, शेष 10 सेर, औषध 1 सेर, बकरी का दूध 1 सेर। शेष विधि स्पष्ट है।

**विशेष वक्तव्य**–वृद्धवाग्भट ने गद्यरूप में प्रथम, द्वितीय भेद से दो अणुतैलों की चर्चा की है। इसके अधिकांश द्रव्य द्वितीय अणुतल से मिलते है। देखें—अ०सं०सू०अ० 29 गद्य 9।

### कुंकुम-नस्य

**(सशर्करं पयःपिष्टं भृष्टमाज्येन कुङ्कुमम्।**
**नस्यप्रयोगतो हन्याद् वातरक्तभवा रुजः।।32।।**
**भ्रूशङ्खाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकान् ।)**

केशर को घी में भून लें, फिर समान भाग खाँड मिलाकर दूध में पीस लें। इसकी नस्य लेने से वात तथा रक्त से उत्पन्न होने वाली पीड़ायें और भ्रू (भौंह), शंख (कनपटी), नेत्र शिर, कान के रोग, सूर्यावर्त्त तथा अर्द्धावभेदक नामक शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–यह बृंहण नस्यों में सुप्रसिद्ध योग है।

### बृंहण-नस्य के द्रव्य

**नस्यं स्यादणुतैलेन तथा नारायणेन वा।।33।।**
**माषादिना वा सर्पिर्भिस्तत्तद् भेषजसाधितैः।**

अणुतैल, नारायण तैल, माषादि तैल तथा उपयुक्त द्रव्यों के संयोग से विधिपूर्वक पकाये हुये घृत की नस्य 'बृंहण-नस्य' कही जाती हैं।

### दोष-भेद से स्नेह-व्यवस्था

**तैलं कफे स्याद् वाते च केवले पवने वसाम्।।34।।**
**दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च।**

कफ तथा वायु के विकारों में तैल, केवल वायु के विकारों में वसा तथा पित्त के विकारों में घी और मज्जा की नस्य देनी चाहिये।

### माषादि नस्य

**माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः ।।35।।**
**कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।**
**कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम्।।36।।**
**जयेदर्दितवातं च मन्यास्तम्भापबाहुकौ।**

उड़द, किवाँच के बीज, रासना, बरियारा, एरण्ड के बीज, रोहिषतृण तथा असगन्ध के क्वाथ में हींग तथा सेंधा नमक मिलाकर रख लें, फिर इसको गुनगुना करके नस्य लें। यह पक्षाघात, कम्पवायु, अर्दित (मुख-प्रदेश का लकवा) मन्यास्तम्भ तथा अपबाहुक रोगों को जीत लेता है।

### प्रतिमर्श-नस्य-विधि

**प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिन्दुमिता मता।।37।।**
**प्रत्येकशो नस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम्।**

प्रतिमर्श-नस्य का मात्रा स्नेह के दो-दो बूँदों की मानी जाती है और वह दोनों नथुनों में प्रयुक्त की जाती है। यह शास्त्रीय निश्चय है।

**वक्तव्य**—मर्श और प्रतिमर्श नस्यों के नामभेद में मात्रा का भेद ही कारण है।

### प्रतिमर्श की मात्रा

**स्नेहे ग्रन्थिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः।। 38।।**
**तर्जनीयं स्त्रवेद् बिन्दुं सा मात्रा बिन्दुसंज्ञिता।**
**एवंविधैर्बिन्दुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते।। 39।।**
**स देयो मर्शनस्ये तु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः।**

स्नेह में दो ग्रन्थि तक तर्जनी (अँगूठे के समीप वाली) अंगुली को डुबा दें और फिर निकाल लें, उससे जो बूँद गिरती है, उसको 'बिन्दुमात्रा' कहा जाता है। इस प्रकार के आठ बिन्दुओं का एक शाण होता है और वह मर्श नामक नस्य में प्रयुक्त होता है। प्रतिमर्श की मात्रा तो दो बिन्दुओं की होती ही है।

### प्रतिमर्श के काल

**समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश।। 40।।**
**प्रभाते दन्तकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा।**
**व्यायामाध्वव्यवायान्ते विण्मूत्रान्तेऽञ्जने कृते।। 41।।**
**कवलान्ते भोजनान्ते दिवा सुप्तोत्थिते तथा।**
**वमनान्ते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते।। 42।।**

विद्वानों ने प्रतिमर्श-नस्य के 14 समय कहे गये हैं। यथा—1. प्रातःकाल, 2. दतवन करने के पश्चात्, 3. घर से बाहर जाते समय, 4. व्यायाम के पश्चात्, 5. मार्ग-गमन के पश्चात्, 6. मैथुन के पश्चात्, 7. मलोत्सर्ग के पश्चात्, 8. मूत्रोत्सर्ग के पश्चात्, 9. अञ्जन लगाने के पश्चात्, 10. कवल (जलपान) के पश्चात्, 11. भोजन के पश्चात्, 12. दिन में सोने के पश्चात्, 13. वमन के पश्चात् और 14. सायंकाल। इन समयों में प्रतिमर्श का प्रयोग किया जाता है।

**वक्तव्य**—इसके विशेष विवेचन के लिए देखे—सु० चि० अ० 40।

### प्रतिमर्श की विधि

**ईषदुच्छिक्कनात् स्नेहो यदा वक्त्रं प्रपद्यते।**
**नस्ये निषिक्तं तं विद्यात् प्रतिमर्शं प्रमाणतः।। 43।।**
**उच्छिन्दन्न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम्।**

जितना स्नेह नाक में डालने पर थोड़ा-सा मुख में पहुँच जाये उतना स्नेह प्रतिमर्श की एक मात्रा है। इसे पीना नहीं चाहिये, अपितु मुख में आये हुये स्नेह को थूक देना चाहिये।

### प्रतिमर्श के योग्य रोगी

**क्षीणे तृष्णास्यशोषार्ते बाले वृद्धे च युज्यते।। 44।।**
**प्रतिमर्शेन शाम्यन्ति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः।**
**वलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत्।। 45।।**

क्षीण (जिसकी धातुओं का क्षय हो चुका है), तृष्णा तथा मुखशोष से पीड़ित, बालक तथा वृद्ध को प्रतिमर्श का प्रयोग करना उचित होता है। इससे जत्रु के ऊपरी भाग के रोग शान्त होते हैं, बलियों (झुर्रियों) तथा अकालपलित का नाश होकर ज्ञानेन्द्रियों का बल बढ़ता है।

### पलित में नस्य

**बिभीतनिम्बगम्भारी शिवा शेलुश्च काकिनी।**
**एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम्।। 46।।**

बहेड़ा, नीम, गम्भार, हरड़, लिसोड़ा तथा मकोय-इनमें से किसी एक तेल की नस्य लेने से पलित (अकाल में बाल पकना) अवश्य नष्ट हो जाता है।

### नस्य-ग्रहण-विधि

**अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे।**
**देशे वातरजोमुक्ते कृतदन्तनिघर्षणम्।। 47।।**
**विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालगलं तथा।**
**उत्तानशायिनं किञ्चित् प्रलम्बशिरसं नरम्।। 48।।**
**आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम्।**
**समुन्नमितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत्।। 49।।**
**कोष्णमच्छिन्नधारं च हेमतारादिशुक्तिभिः।**
**शुक्त्या वा यत्र युक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत्।। 50।।**
**नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत्।**
**न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिदेन्न हसेत् तथा।। 51।।**
**एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते।**
**ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसम्भवः।। 52।।**
**शृङ्गाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम्।**

इसके पश्चात् नस्य लेने के लिये उसकी विधि कही जायेगी। इसके लिए वायु (तीव्र वायु) तथा धूलि से रहित स्थान होना चाहिये। रोगी को पहले दतवन तथा धूमपान कराकर शुद्ध कर लें, उसके मस्तक तथा गले को स्वेदित कर दें, फिर उसे चित लेटा दें और गरदन के नीचे तकिया रखकर

शिर को कुछ नीचे लटका दें। उसे कहें कि हाथ-पाँव फैला लो, उसकी आँखों को वस्त्र से ढाँक दें, फिर उसकी नाक के अग्रभाग को ऊपर की ओर उठाकर चिकित्सक नस्य का प्रयोग करें। नस्योपयोगी द्रव गुनगुना हो, नाक में डालते समय उसकी धार टूटे नहीं, सोना अथवा चाँदी की सीपी (चम्मच), फाहा अथवा और किसी युक्ति से नाक में उसे डालना चाहिये। रोगी को पहले से सावधान कर दें कि जब नस्य दी जा रही हो उस समय शिर हिलाना, क्रोध करना, बहुत बोलना, सुड़कना तथा हँसना उचित नहीं, क्योंकि ऐसा करने से स्नेह भीतर (उचित भागों में) नहीं पहुँचता और इसी कारण से कास, प्रतिश्याय, शिरोरोग तथा नेत्ररोग उत्पन्न हो जाते हैं। उस द्रव को शृंगाटक (नासावंश तथा भौंहों का मध्यभाग) तक ले जाकर ठहराने का प्रयत्न करें और उसे निगले नहीं।

#### नस्य-धारण-काल

**पञ्च सप्त दशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे।। 53।।**
**उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम्।**
**वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत् सम्मुखे न हि।। 54।।**
**नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधं च सन्त्यजेत्।**
**शयीत निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्शतं नरः।। 55।।**
**तथा वैरेचनश्चान्ते धूमो वा कवलो हितः।**

नस्य को धारण करके रखने में पाँच, सात अथवा दश मात्रा का समय लगना चाहिये। इसके बाद रोगी उठ बैठे और नाक तथा मुख में आये हुये द्रव को बायीं या दाहिनी ओर थूक दें (इस प्रकार मल शीघ्र झड़ जाता है), सामने की ओर नहीं थूकना चाहिये, ऐसा करने से विपरीत प्रभाव पड़ता है। नस्य लेने के बाद मानसिक सन्ताप, धूलि तथा क्रोध का परित्याग करना चाहिये। रोगी निद्रा को त्याग कर सौ मात्रा तक केवल चित लेटा रहे। अन्त में विरेचन धूम (क्योंकि स्नेहन किया गया है, यदि रेचन-नस्य दी गयी हो तो बृंहण-धूम उपयोगी होता है) अथवा कवल लाभदायक होता है।

#### नस्य के तीन योग

**नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः।। 56।।**
**शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिन्तकैः।**

आयुर्वेद का मनन करने वाले विद्वानों ने नस्य में विशेष रूप से प्रयोगों के अनुसार तीन लक्षण बतलाये हैं-1 शुद्धि (सम्यक्) योग, 2. हीनयोग और 3. अतियोग।

**वक्तव्य**-स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वस्ति का जहाँ विवेचन किया गया है, वहाँ उक्त तीनों योगों की विस्तृत चर्चा भी की गयी है, इसका अवलोकन करें।

#### नस्य-शुद्धि का लक्षण

**लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसङ्क्षयः।। 57।।**
**चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम्।**

शिर का हल्कापन, स्रोतों की शुद्धि, व्याधि का नाश, मन तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता-ये शिर की सम्यक् शुद्धि के लक्षण हैं।

**वक्तव्य**-इस स्थिति में समझना चाहिये कि नस्य का प्रयोग विधिपूर्वक हुआ है।

#### नस्य का हीनयोग

**कण्डूपदेहौ गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः।। 58।।**
**मूर्ध्नि हीनविशुद्धेस्तु लक्षणं परिकीर्तितम्।**

मुख तथा नासिका आदि में कण्डू (खुजलाहट), उपदेह (चिपचिपाहट), गुरुता (भारीपन का अनुभव) और स्रोतों (मुख, नासिका आदि) में से कफ का झरना-ये सभी शिर की हीन शुद्धि के लक्षण हैं।

**वक्तव्य**-इस स्थिति में समझना चाहिये कि शिर का शोधन भली-भाँति नहीं हुआ है।

#### नस्य का अतियोग

**मस्तुलुङ्गागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः।। 59।।**
**शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते।**

मस्तुलुंग (जिन द्रव्यों से मस्तिष्क का निर्माण हुआ है) का आना अर्थात् निकल जाना, वायु की वृद्धि (कोप), इद्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) का विनाश या विह्वल हो जाना और शिर का शून्य (खाली) प्रतीत होना, ये सब शिर के अत्यन्त विरेचित हो जाने के लक्षण हैं।

**वक्तव्य**-इस स्थिति में समझना चाहिये कि विरेचन-नस्य का अतियोग हो गया है।

#### हीनातियोग में उपचार

**हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत्।। 60।।**
**सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्ये निषेचयेत्।**

शिर की हीनशुद्धि होने पर कफनाशक तथा अतिशुद्ध होने पर वातनाशक उपाय करने चाहिये। सम्यक् शुद्धि होने पर नस्य में घृत का प्रयोग करना चाहिये।

### अतिस्निग्ध का लक्षण

**कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः।। 61।।**
**लक्षणं तदतिस्निग्धे तत्र रूक्षं प्रदापयेत्।**
**भोजयेच्चानभिष्यन्दि नस्याचारिकमादिशेत्।। 62।।**

कफ का प्रसेक (झरना), शिर में भारीपन और इन्द्रियों में विभ्रम–ये अतिस्निग्ध के लक्षण हैं। इस स्थिति में रूक्षण-क्रिया करनी चाहिये एवं अनभिष्यन्दी (जो अभिष्यन्दकारक न हो ऐसा) भोजन दें तथा पञ्चकर्मोपयोगी आचरण का उपदेश दें।

### पञ्चकर्म

**वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्।**
**एतानि पञ्च कर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः।। 63।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां**
**शार्ङ्गधरसंहितायाम् उत्तरखण्डे**
**नस्यविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः।। 8।।**

वमन, विरेचन, नस्य, निरूहण तथा अनुवासन-वस्ति को विद्वानों ने 'पञ्चकर्म' कहा है।

**चिकित्सा-विषयक विचार**–'इति पञ्चविधं कर्म विस्तरेण निदर्शितम्। येभ्यो यत्त्वहितं यद्यत्कर्म येभ्यश्च यद्धितम्। न चैकान्तेन निर्दिष्टे तत्राभिनिविशेद् बुधः। स्वयमप्यत्र वैद्येन तर्क्यं बुद्धिमता भवेत्।। उत्पद्येत हि साऽवस्था देशकालबलं प्रति। यस्यां कार्यमकार्यं स्यात् कर्मं कार्यं च वर्जितम्।। छर्दिहृद्रोगगुल्मार्ते वमनं स्वे चिकित्सते। अवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं कुष्ठिना वस्तिकर्म च।। तस्मात् सत्यपि निर्देशे कुर्यादूह्य स्वयं धिया। विना तर्केण या सिद्धिर्यदृच्छासिद्धिरेव सा।।' अर्थात्–इस प्रकार 'पञ्चकर्म' का विस्तार के साथ निर्देश किया गया है, अर्थात् जो 'कर्म' जिनके लिए 'अहित' होता है और जो 'कर्म' जिनके लिए 'हित' होता है। बुद्धिमान् चिकित्सक को चाहिये कि वे इस 'निर्देश' के सम्बन्ध में स्वयं भी विचार करें, क्योंकि देश, काल तथा रोग अथवा रोगी के बल के कारण वह 'अवस्था' या परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें कार्य (करने योग्य) वमनादि अकार्य कर्म भी (न करने योग्य) हो जाता है और वर्जित या निषिद्ध कर्म (वमनादि) कार्य (करने योग्य) हो जाता है। जैसे–छर्दिरोग, हृद्रोग तथा गुल्म रोगी को। 'वमन' तथा कुष्ठ रोगी को 'वस्तिकर्म' की अवस्था-विशेष का विचार कर अपनी-अपनी चिकित्सा-विधि में वर्जित होने पर भी निर्देश किया गया है। इसलिये निर्देश होने पर भी चिकित्सक अपनी बुद्धि से विचार करें। विचार किये बिना कर्म करने पर जो सफलता मिलती है, वह 'यदृच्छासिद्धि' अर्थात् 'आकस्मिक सफलता' ही होती है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से सवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त।। 8।।

## नवमोऽध्यायः

# धूमपानविधिः

### धूमपान-विधि

**धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा।**
**रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः।। 1।।**
**शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा।**
**बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहिकौ मृदुरेव च।। 2।।**
**रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च।**

धूम छः प्रकार का कहा गया है–1. शमन, 2. बृंहण, 3. रेचन, 4. कासहा (कासनाशक), 5. वमन (वमन कराने वाला) और 6. व्रणधूपन (घावों को धूप देना)। शमन धूम के दो नाम हैं–1. मध्यम और 2. प्रायोगिक। बृंहण-धूम के भी दो नाम हैं–1. स्नैहिक और 2 मृदु तथा रेचन के भी दो नाम हैं–1. शोधन और 2. तीक्ष्ण।

### धूमपान के अयोग्य व्यक्ति

**अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः।। 3।।**
**दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा।**
**पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी।। 4।।**
**शिरोऽभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः।**
**क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी।। 5।।**
**रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः।**
**भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा।। 6।।**

निम्नलिखित लोगों को 'धूम' का प्रयोग नहीं करना चाहिये–श्रान्त (थका हुआ), भीत (डरा हुआ), दुःखी (धननाशादि से दुःखित), दत्तवस्ति (जिसको वस्ति दी गयी हो), विरिक्त (जिसको विरेचन कराया गया हो), रात्रि में जागा हुआ, पिपासित (जिसको प्यास लगी हो), दाह से पीड़ित, जिसका तालु सूख रहा हो, उदररोगी, शिरोरोगी, तिमिररोगी, कै तथा अफरा से पीड़ित, जिसको उरःक्षत हो, प्रमेहरोगी, पाण्डुरोगी, गर्भवती, रूक्ष शरीर वाला, क्षीण, जिसने दूध, मधु, घी अथवा आसव (मद्य) का पान किया हो, जिसने अन्न (भात, रोटी) दही तथा मछली का भोजन किया हो, बालक, वृद्ध तथा कृश।

**वक्तव्य**–इन लोगों को शास्त्रीय धूमों के अतिरिक्त हुक्का, सिगरेट तथा बीड़ी आदि का भी सेवन नही करने देना चाहिये।

### धूमपान-निषेध का कारण

**अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्।**
**(बाधिर्यमान्ध्यमूकत्वं रक्तपित्तं शिरोभ्रमम्।। 7।।)**
**तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम्।**
**सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्कराम्बु वा।। 8।।**
**मधुराम्लौ रसौ वापि शमनाय प्रदापयेत्।**

अकाल में अथवा अधिक मात्रा में किया हुआ धूमपान–बधिरता, अन्धापन, मूकता, रक्तपित्त तथा शिरोभ्रम–इन उपद्रवों को पैदा कर देता है। इस स्थिति में (उपद्रव उत्पन्न हो जाने पर) घृतपान, स्नेहन, नस्य, अञ्जन तथा तर्पण का प्रयोग लाभदायक होता है। घृत, ईख का रस, मुनक्का, दूध, शर्कराम्बु (चीनी का शर्बत), मधुर अथवा अम्ल रस उपद्रवों की शान्ति के लिये देने चाहिये।

**वक्तव्य**–उक्त सातवाँ श्लोक चरकसंहिता का है, किसी कारण से इसका आधा अंश छूट गया है, उसे यहाँ स्मरण कर लेना चाहिये, अन्यथा 'उपद्रवान्' का अर्थ नहीं लगाया जा सकेगा। अतः उक्त श्लोकांश के ब्रेकेट के भीतर ऊपर यथास्थान दे दिया गया है। देखें–च०सू०अ० 5.35।

### धूमपान की अवधि

**धूमस्तु द्वादशांद् वर्षाद् गृह्यतेऽशीतिकान्न च।। 9।।**

धूमपान बारह वर्ष के पूर्व तथा अस्सी वर्ष की वय के पश्चात् नहीं करना चाहिये।

**वक्तव्य**—वह सामान्य नियम है, आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सक के परामर्श से इसको आगे-पीछे भी लिया जा सकता है।

### सुप्रयुक्त धूम-प्रशंसा

**कासश्वासप्रतिश्यायान् मन्याहनुशिरोरुजः।**
**वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद् धूमः सुयोजितः।। 10।।**
**धूमप्रयोगात् पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः।**
**दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धिवदनो भवेत्।। 11।।**

धूमपान का विधिपूर्वक प्रयोग करने से कास, श्वास, प्रतिश्याय, मन्याग्रह, हनुग्रह, शिर का पीड़ा, वात तथा कफ के विकारों को नष्ट करता है। धूम के प्रयोग से मनुष्य की इन्द्रियाँ, वाणी तथा मन प्रसन्न हो जाते है। केश, दाँत तथा श्मश्रु (दाढ़ी-मोछ) दृढ़ हो जाते हैं एवं मुख सुगन्धित हो जाता है।

### धूमयन्त्र-परिचय

**धूमनाडी भवेत् तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्विका।**
**कनिष्ठिकापरीणाहा राजमाषागमान्तरा।। 12।।**
**धूमनाडी भवेद् दीर्घा शमने रोगिणोऽङ्गुलैः।**
**चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद् द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ मता।। 13।।**
**तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्नी षोडशोन्मितैः।**
**दशाङ्गुलैर्वामनीये तथा स्याद् व्रणनाडिका।। 14।।**
**कलायमण्डलस्थूला कुलित्थागमरन्ध्रका।**

धूमपान के लिए नाड़ी (नेचा) तीन खण्डों (टुकड़ों में विभक्त, जिससे छोटी-बड़ी बनायी जा सके) तथा तीन पर्वों (पोरों) वाली होनी चाहिये। उसकी मोटाई कनिष्ठिका अंगुली के समान हो और उसका छिद्र राजमाष के आने-जाने योग्य हो। उसकी लम्बाई 'शमन धूमपान' के लिए रोगी के चालीस अंगुल, 'मृदु' में बत्तीस अंगुल, 'तीक्ष्ण' में चौबीस अंगुल, कासनाशक धूम के लिए सोलह अंगुल और वामनीय धूम में दस अंगुल होनी चाहिये तथा व्रण को धूप देने के लिए भी दस अंगुल की ही नाड़ी होनी चाहिये, किन्तु इसकी मोटाई कलाय (मटर) जैसी और इसका रन्ध्र (छेद) कुलथी के आने-जाने योग्य होना चाहिये।

### प्रकार-भेद से धूमपान

**अथेषिकां प्रलिम्पेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलाम्।। 15।।**
**धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टाङ्गुलः स्मृतः।**
**कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत्।। 16।।**
**ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात्।**
**अङ्गारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रन्ध्रके।। 17।।**
**वदनेन पिबेद् धूमं वदनेनैव सन्त्यजेत्।**
**नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत् सुधीः।। 18।।**

बारह अंगुल लम्बी तथा साफ चिकनी एक सलाईं लें और उस पर धूमोपयोगी द्रव्यों के कल्क का लेप करें। यह लेप आठ अंगुल लम्बा (दोनों ओर दो-दो अंगुल सलाई रखनी चाहिये) तथा कल्क का परिमाण एक कर्ष (1 तोला) हो। इसे छाया में सुखा लें और सूख जाने पर सावधानी के साथ सलाई को निकाल कर बत्ती को स्नेह में भिगा लें, फिर इसे अंगारों से क्व ओर अग्नि लगाकर और दूसरी ओर के नेत्र अर्थात् नलिका के रन्ध्र में फँसाकर मुख से धूमपान करें और मुख से ही धूम (धुँआ) का परित्याग करें। इसके पश्चात् नाक से धूमपान करके मुख से निकाल दें।

**वक्तव्य**—तात्पर्य यह है कि नाक से धुआँ निकालना उचित नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर नाक से धूमपान किया जा सकता है।

### व्रणधूपन-विधि

**शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा कल्कमङ्गारदीपितम्।**
**छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत्।। 19।।**

उपयोगी द्रव्यों का कल्क सम्पुट में रखकर उस सम्पुट को अग्नि पर रख दें। उसके छिद्र (यह छिद्र पहले ही कर लेना चाहिये) में नलिका लगा दें। इस प्रकार ब्रण का धूपन करें।

### विविध धूपन-प्रयोग

**एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ।**
**रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्नं क्षुद्रिकोषणम्।। 20।।**
**वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद् धूमस्य पानकम्।**
**व्रणे निम्बवचाद्यं च धूपनं सम्प्रशस्यते।। 21।।**

शमनधूप में एलादिगण का (कुष्ठ और तगर को छोड़कर) कल्क, मृदु में स्नेह युक्त फल (बिभीतक, बादाम आदि) तथा राल (मोम, गूगल आदि) का कल्क, रेचनधूम में तीक्ष्ण द्रव्यों का कल्क, कासघ्न में कण्टकारी, काली मिरच आदि द्रव्यों का कल्क, वामनधूप में में स्नायु तथा चर्म (चमड़ा) आदि प्रयुक्त किये जा सकते हैं और व्रण में नीम तथा वचा आदि की धूप देना प्रशस्त है।

**वक्तव्य**—उक्त पाठ सु० चि० अ० 40.4 का पद्यानुवाद मात्र है। एलादिगण के द्रव्यों सु० सू० अ० 38 में देखें।

### बालग्रहनाशक-धूपन

अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये।
मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम्।। 22।।
मरिचं हिङ्गु मांसी च बीज कार्पाससम्भवम्।
छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा बैडालिकी तथा।। 23।।
गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृतविमिश्रितम्।
गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहाञ्जयेत्।। 24।।
पिशाचान् राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत्।

रोगों की शान्ति के लिए और भी धूपों के प्रयोग घरों में किये जाते हैं, जिनका वर्णन यहाँ प्रस्तुत–मोर के पंख, नीम के पत्र वनभण्टा के फल, मरिच, हींग, जटामांसी, कपास के बीज (बिनौले), बकरे के रोम, साँप की केंचुली, बिल्ली की विष्ठा और हाथी के दाँत–इन सबका चूर्ण बनाकर, उसमें थोड़ा घी मिलाकर घरों में धूप दें। यह धूप सभी प्रकार के बालग्रहों को जीत लेता है। यह पिशाच और राक्षसों को जीतकर सभी प्रकार के ज्वरों को भी हरता है।

**वक्तव्य**–हवन करना भी धूप या धूम-प्रयोग ही है। मुख द्वारा पीने योग्य धुँये को धूम तथा दूसरे को धूप कहा जाता है। यह वायु-शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। भूतविद्या में भूतबाधा की शान्ति के लिए इसका प्रर्याप्त प्रयोग किया जाता है।

### पथ्य-अपथ्य आदि निर्देश

परिहारस्तु धूमेषु कार्यो रेचननस्यवत्।। 25।।
नेत्राणि धातुजानयाहुर्नलवंशादिजान्यपि।

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायाम् उत्तरखण्डे धूमपानविधिर्नाम नवमोऽध्यायः।। 1।।**

धूमों के सेवन में रेचन-नस्य के समान ही परिहार (पथ्यापथ्य) किया जाता है और धूमपान के लिये जो नेत्र या नलिकायें बनायी जाती हैं, वे धातुओं की अथवा नरसल एवं बाँस आदि की बनानी चाहिये।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का नवाँ अध्याय समाप्त।। 9।।
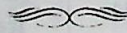
# दशमोऽध्यायः

# गण्डूषादिविधिः

### गण्डूष-कवल-विधि

**चतुर्विधः स्याद् गण्डूषः स्नैहिकः शमनस्तथा।**
**शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः।।1।।**
**स्निग्धैस्तु स्नेहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः।**
**पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे।।2।।**
**कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णो रोपणो व्रणे।**
**चतुष्प्रकारो गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः।।3।।**

गण्डूष चार प्रकार का होता है–1. स्नैहिक, 2. शमन, 3. शोधन और 4. रोपण। इसी प्रकार कवल भी चार प्रकार का होता है। स्निग्ध द्रव्यों का स्नैहिक गण्डूष होता है, वात रोगों में स्वादु (मधुर) तथा शीतल द्रव्यों का प्रसादन अर्थात् शमन गण्डूष होता है। पित्तज रोगों में कटु, अम्ल, लवण तथा उष्ण द्रव्यों का शोधन गण्डूष होता है। कफज रोगों में कषाय, तिक्त, मधुर, कुछ उष्ण द्रव्यों का रोपणगण्डूष होता है, अर्थात् जो व्रणों के धावों को भरता है। इसी प्रकार कवल भी कहा गया है।

**वक्तव्य**–केवल द्रव्यों तथा मात्रा के भेद से गण्डूष (कुल्ला) तथा कवल (कौर या ग्रास) के चार भेद माने गये हैं। मुख के भीतरी अवयवों की चिकित्सा के ये उत्तम माध्यम हैं।

### गण्डूष तथा कवल में भेद

**असञ्चारी मुखे पूर्णे गण्डूषः कवलश्चरः।**
**तत्र द्रवेण गण्डूषः कल्केन कवलः स्मृतः।।4।।**
**दद्याद् द्रवेषु चूर्णं च गण्डूषे कोलमात्रकम्।**
**कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवले बुधैः।।5।।**

गण्डूष का द्रव मुख में इतना भर लिया जाता है कि वह पूर्ण रूप से घुमाया नहीं जा सकता और कवल का द्रव इतना ही डाला जाता है, जो मुख में इधर-उधर घुमाया जा सकता है। गण्डूष द्रव पदार्थों का होता है और कवल कल्क किये हुये द्रव्यों का। गण्डूष के द्रवों में यदि चूर्ण डालना हो तो एक कोल (आधा कर्ष या आधा तोला) डाला जाता है और कवल में कल्क एक तोला भर दिया जाता है।

### गण्डूषादि सेवन में वय का विचार

**धार्यन्ते पञ्चमाद् वर्षाद् गण्डूषकवलादयः।**
**गण्डूषान् सुस्थितः कुर्यात् स्विन्नभालगलादिकः।।6।।**
**मनुष्यस्त्रींस्तथा पञ्च सप्त वा दोषनाशनात्।**
**कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत्।।7।।**
**नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत् तावद् गण्डूषधारणम्।**

पाँच वर्ष की आयु के पश्चात् तथा कवल का प्रयोग करना उचित है। शिर तथा गले आदि का स्वेदन करने के पश्चात् स्वस्थ होकर गण्डूष करने चाहिये। मनुष्य तीन, पाँच, सात बार अथवा दोष का नाश होने तक गण्डूष करें। एक गण्डूष को मुख में तब तक रखना चाहिये, जब तक मुख में कफ न भर जाये अर्थात् गण्डूष के द्रव की लार बन जाये, अथवा दोष का विनाश हो जाये और आँख तथा नाक में से स्राव होने लगे, तब तक गण्डूष धारण करना चाहिये।

**वक्तव्य**–इस श्लोक के पहले और तीसरे पाद द्वारा एक गण्डुष के धारण का काल बतलाया गया है और दूसरे पाद द्वारा गण्डूषों के प्रयोग का काल बतलाया गया है।

### स्नैहिक गण्डूष

**तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नैहिके हितः।।8।।**
**तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च।**
**सक्षौद्रो हनुवक्त्रस्थो गण्डूषो दाहनाशनः।।9।।**

तिलों का कल्क, जल, दूध, स्नेह, 'स्नैहिक' गण्डूष में प्रयुक्त होते हैं। इसका एक उदाहरण–तिल, नीलकमल, घृत,

खाँड तथा दूध का गण्डूष मधु मिलाकर मुख में रखने से यह दाह को नष्ट करता है।

मधु-गण्डूष के गुण

**वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखव्रणान्।**
**दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम्।। 10।।**

मधु का गण्डुष धारण करने से यह मुख में विशदता (चिपचिपाहट का अभाव) को उत्पन्न करता है, मुख के घावों को भरता है और दाह तथा प्यास को शान्त करता है।

विविध रोगों में गण्डूष

**विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा।**
**तैलसैन्धवगण्डूषो दन्तचाले प्रशस्यते।। 11।।**
**शोषं मुखस्य वैरस्यं गण्डूषः काञ्जिको जयेत्।**
**सिन्धत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः।। 12।।**
**त्रिफलामधुगण्डूषः कफासृक्पित्तनाशनः।**

विष, क्षार (चूना आदि) तथा अग्नि (अग्नितप्त द्रव्यों) द्वारा जल जाने पर घृत अथवा दूध का और दन्तचाल (दाँतों के हिलने) में सैन्धव लक्षण युक्त तैल का गण्डूष करना श्रेष्ठ है। काँजी का गण्डूष मुखशोष (सूखना) और विरसता को जीतता है। सेंधा नमक, त्रिकटु, राई तथा अदरक मिलाकर बनायी हुई काँजी का गण्डूष करने से कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं। त्रिफला के क्वाथ में मधु मिलाकर गण्डूष करने से कफ, रक्त तथा पित्त के विकार नष्ट हो जाते हैं।

दार्व्यादि-गण्डूष

**दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवाः।। 13।।**
**यवासश्चेति तत्क्वाथः षष्ठाशक्षौद्रसंयुतः।**
**शीतो मुखो धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम्।। 14।।**

दारुहल्दी, गिलोय, त्रिफला, मुनक्का, चमेली के पत्ते तथा जवासा का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर, उसमें छठा भाग मधु मिलायें, फिर शीतल हो जाने पर मुख में धारण करें। यह त्रिदोषजनित मुखपाक (निनावाँ) को नष्ट करता है।

प्रतिसारण और कवल

**यस्यौषधस्य गण्डूषस्तस्यैव प्रतिसारणम्।**
**कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलैर्नरैः।। 15।।**

जिन औषधियों का गण्डूष बनाया जाता है, उनका प्रतिसारण और कवल भी बनाया जा सकता है। कुशल चिकित्सकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।

**वक्तव्य**—द्रव्यों का क्वाथ अथवा स्वरस गण्डूष, चूर्ण, प्रतिसारण (घर्षण) तथा कवल में प्रयुक्त होता है।

मातुलुङ्गकेसरादि कवल

**केसरं मातुलुङ्गस्य सैन्धवोषणसंयुतम्।**
**हन्यात् कवलतो जाड्यमरुचिं कफवातजाम्।। 16।।**

बिजौरानींबू का केसर, सेंधा नमक और कालीमिरच मिलाकर कल्क बनायें, फिर उसका कवल करने से मुख की जड़ता (रस का ज्ञान न होना) और कफवातजनित अरुचि नष्ट हो जाती है।

प्रतिसारण के भेद

**कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम्।**
**अङ्गुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम्।। 17।।**

प्रतिसारण तीन प्रकार का होता है–1. कल्क, 2. अवलेह तथा 3. चूर्ण इसको अंगुली से मुखरोगों में आवश्यकतानुसार रगड़ा या लगाया जाता है।

कुष्ठादि प्रतिसारण

**कुष्ठं दार्वी समङ्गा च पाठा तिक्ता च पीतिका।**
**तेजनी मुस्तलोध्रे च चूर्णं स्यात् प्रतिसारणम्।। 18।।**
**रक्तस्रुतिं दन्तपीडां शोथं दाहं च नाशयेत्।**

कूठ, दारुहल्दी, मजीठ, पाठा, कुटकी, हल्दी, तेजबल की लकड़ी या छाल, नागरमोथा तथा पठानीलोध–इन सबका चूर्ण बनाकर प्रतिसारण करने से यह रक्तस्राव (मसूड़ों से खून का निकलना), दाँतों की पीड़ा, मसूड़ों के शोथ तथा दाह को नष्ट करता है।

गण्डूषादि के हीनयोग, अतियोग

**हीनयोगात् कफोत्क्लेशो रसाज्ञानारुची तथा।। 19।।**
**अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत्।**

गण्डूष, कवल तथा प्रतिसारण के हीनयोग से कफ की वृद्धि, रसग्राही स्रोतों की शून्यता तथा अरुचि होती है। अतियोग से मुख में पाक, शोष, प्यास तथा सुस्ती होती है।

गण्डूषादि का सम्यग् योग

**व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम्।। 20।।**
**इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे शुद्धिलक्षणम्।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायाम् उत्तरखण्डे गण्डूषादिविधिर्नाम दशमोऽध्यायः।। 10।।**

व्याधि का घट जाना, रोगी के हृदय में परितोष, मुख में हलकापन और इन्द्रियों में प्रसन्नता–ये गण्डूष की सम्यक् शुद्धि के लक्षण हैं।

**दतवन या दातून**–'कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः। भक्षयेद् दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्।। निहन्ति गन्धं वैरस्यं जिह्वादन्तास्यजं मलम्। निष्कृष्य रुचिमाधत्ते दन्तरोगविनाशनम्'।। अर्थात् प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर कषायरस (खैर, बबूर आदि), मधुर या मीठी (महुआ आदि), तिक्त (नीम आदि) तथा कटुरस (तेजबल आदि) वाली दतवन करें, किन्तु मसूड़ों पर किसी प्रकार बाधा (खरोच आदि) न आने पाये। दतवन मुख की दुर्गन्ध तथा विरसता को, जीभ, दाँत तथा मुख के मल को दूर कर रुचि को उत्पन्न करती है और दाँतों के रोगों को नष्ट करती है।

**ताम्बूल सेवन**–'कर्पूरजातीकङ्कोललवङ्गकटकाह्वयैः। सुचूर्णपूगैः सहितं पत्रं ताम्बूलजं शुभम्।। मुखवैशद्य-सौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम्। हनुदन्तस्वरमलजिह्वेन्द्रिय-विशोधनम्।। प्रसेकशमनं हृद्यं गलामयविनाशनम्। पथ्यं सुप्तोत्थिते मुक्ते स्नाते वान्ते च मानवे'।। अर्थात् ताम्बूल का पत्र, कपूर, जावित्री, शीतलचीनी, लौंग, लताकस्तूरी, साफ चूना तथा सुपारी से युक्त उत्तम होता है। वह मुख को स्वच्छ, सुगन्धित, कान्तिमान् तथा सुन्दर बनाता है; कपोल, दाँत, स्वर, मल तथा जीभ को शुद्ध करता है; थूक की अधिकता को कम करता है; हृदय को शक्ति देता है; गल के रोगों को नष्ट करता है। दातून सोकर उठने पर, भोजन करने पर, स्नान करने पर तथा वमन के पश्चात् करने पर पथ्य (लाभदायक) होता है।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का दसवाँ अध्याय समाप्त।। 10।।

# एकादशोऽध्यायः

## लेपमूर्धतैलकर्णपूरणविधिः

### आलेप के नाम तथा परिमाण

**आलेपस्य च नामानि लिप्तो लेपश्च लेपनम्।**
**दोषघ्नो विषहा वर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधा मतः।।1।।**
**त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागोऽर्धाङ्गुलोन्नतः।**
**आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयतिच्छविम्।।2।।**

आलेप के तीन नाम हैं–1. लिप्त, 2. लेप तथा 3. लेपन। मुखलेप तीन प्रकार का होता है–1. दोषघ्न (दोषनाशक) 2. विषहा (विषनाशक) और 3. वर्ण्य (वर्ण के लिए हितकारक) और इसकी मोटाई के तीन परिमाण है, यथा–1. चौथाई अंगुल, 2. तिहाई अंगुल तथा 3. आधा अंगुल मोटा। वह जब तक आर्द्र या गीला रहता है, तब तक व्याधि को हरता है और जब सूख जाता है, तब छवि अर्थात् कान्ति को दूषित करता है। तात्पर्य यह है कि सूखने से पहले ही लेप को उतार देना चाहिये।

**वक्तव्य**–चिकित्सा में आलेप या लेप भी बहुत महत्त्व की क्रिया है। इससे अनेक प्रकार के रोग शान्त किये जाते हैं। इस अध्याय में लेपों का वर्णन किया जायेगा।

### शोथनाशक लेप

**पुनर्नवां दारु शुण्ठीं सिद्धार्थं शिग्रुमेव च।**
**पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथजित्।।3।।**

पुनर्नवा (गदहपुन्ना), देवदारु, सोंठ, सरसों तथा सहिजन की छाल–इन सबको काँजी में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के शोथ शान्त हो जाते हैं।

### दाहनाशक लेप

**बिभीतफलमज्जाया लेपो दाहार्तिनाशनः।**

बहेड़ा के फल की मज्जा (गिरी) का लेप दाह तथा पीड़ा को शान्त करता है।

### दशाङ्ग लेप

**शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम्।।4।।**
**एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं बालकमेव च।**
**इति सञ्चूर्ण्य लेपोऽयं पञ्चमांशमृतप्लुतः।।5।।**
**जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशाङ्ग इति संज्ञितः।**
**विसर्पान् विषविस्फोटाञ्शोथान् दुष्टव्रणाञ्जयेत्।।6।।**

सिरिस की छाल, मुलेठी, तगर, लालचन्दन, बड़ी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ एवं नेत्रबाला–इन सबका कपड़छन चूर्ण बनाकर और चूर्ण से पाँचवाँ भाग घी मिलाकर जल के साथ पकाकर लेप लगाना चाहिये। इसका नाम दशाङ्ग लेप है। यह विसर्प (मकड़ी का मूतना), विष-विकार, विस्फोट, शोथ तथा दुष्ट व्रणों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–इस प्रकार के लेपों को 'पुल्टिस' भी कहते हैं।

### भल्लातक-शोथहर लेप

**अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः।**
**शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमृत्तिकैः।।7।।**

बकरी का दूध, तिल तथा मक्खन का लेप अथवा कालीमिट्टी (धानों के खेत की) का लेप भिलावा के सूजन को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–भिलावा का रस अथवा उसकी भाप लगने से प्रायः शोथ हो जाता है।

### लाङ्गल्यादि लेप

**लाङ्गल्यतिविषालाबुजालिनीमूलबीजकैः।**
**लेपो धान्याम्बुसम्पिष्टः कटिविस्फोटनाशनः।।8।।**

कलिहारी की जड़, अतीस, कड़वी तुम्बी, जालिनी

(तोरई) तथा मूली के बीज इनको पीसकर काँजी के साथ लेप करने से कीड़ों का विष तथा विस्फोट नष्ट हो जाते हैं।

रक्तचन्दनादि लेप

**रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः ।**
**वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः।। 9।।**

लालचन्दन, मजीठ, लोध, कूठ, फूलप्रियंगु, वट के अंकुर और मसूर का आटा का लेप व्यंग (झाँई) को नष्ट करता है और मुख की कान्ति को बढ़ाता है।

मातुलुङ्गादि लेप

**मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो रसः।**
**मुखकान्तिकरो लेपः पिटिकाव्यङ्गकालजित्।। 10।।**

बिजौरा नींबू की जड़, घी, मैनसिल और गाय के गोबर का रस-इनका लेप मुख की कान्ति को बढ़ाता है और मुहासों तथा कालिमा को नष्ट करता है।

लोध्रादि लेप

**लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः ।**
**तद्वद् गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनम्।। 11।।**

लोध, धनियाँ तथा वच का लेप, गोरोचन तथा मरिच का लेप मुँहासों को नष्ट करता है।

सिद्धार्थकादि लेप

**सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम्।**
**व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका।। 12।।**

सरसों, वच, लोध और सेंधा नमक का लेप अथवा अर्जुन की छाल तथा मजीठ का मधु मिलाकर किया गया लेप व्यंगों में लाभदायक होता है।

अश्वखुरमसी-लेप

**लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी।**
**अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात्।। 13।।**
**मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भव ध्रुवम्।**

सफेद घोड़े के खुर की भस्म, आक का दूध, हल्दी तथा मक्खन का लेप मुख की बहुत पुरानी कृष्णता (झाँई) को शान्त करता है।

वटपत्रादि लेप

**वटस्य पाण्डुपत्राणि मालती रक्तचन्दनम्।। 14।।**
**कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत्।**
**तारुण्यपिटिकाव्यङ्गनीलिकादिविनाशनम् ।। 15।।**

बरगद के पीले पत्ते, चमेली के पत्ते, लालचन्दन, कूठ, कालागुरु तथा लाध का लेप लगाना चाहिये। इससे मुँहासे, व्यंग तथा नीलिका आदि नष्ट हो जाते हैं।

**वक्तव्य**-उक्त सभी लेप मुखमण्डल (चेहरे) पर होने वाले सुन्दरता नाशक विकारों का शान्त करने के लिए कहे गये हैं।

अरुंषिकाहर लेप

**पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च।**
**मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम्।। 16।।**

पुरानी खली और मुरगा की बीट इन दोनों का गोमूत्र में पीसकर किया हुआ लेप शीघ्र ही (आठ-दस दिन में) 'अरुंषिका' को नष्ट कर देता है।

दूसरा लेप

**खदिरारिष्टजम्बूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः।**
**कुटजत्वक् सैन्धवं च लेपो हन्यादरुंषिकाम्।। 17।।**

खैर, नीम और जामुन के छिलकों को गोमूत्र में पीसकर किया हुआ लेप अथवा कुरैया की छाल तथा सेंधा नमक का लेप 'अरुंषिका' को नष्ट-करता है।

**वक्तव्य**-शिरःप्रदेश में जो अत्यन्त छोटी-छोटी फुन्सियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उनमें से पीला मवाद निकलकर वहीं पर जमता जाता हैं, जिससे माथे से दुर्गन्ध आने लगती है, बाल उखड़ जाते हैं। उसी को 'अरुंषिका' कहते हैं।

वारुणरोगहर लेप (1)

**प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः।**
**कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः।। 18।।**

चिरौंजी के बीज, मुलेठी, कूठ, उड़द एवं सेंधा नमक-इन सबको पीसकर तथा मधु मिलाकर 'दारुणक' नामक रोग में शिर पर लेप करना चाहिये।

दारुणरोगहर लेप (2)

**दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद् दारुणं जयेत्।**
**आन्त्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णसमं द्वयम्।। 19।।**
**दुग्धपिष्टः प्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम्।**

खसखस (पोस्ता दाना) को दूध के साथ पीसकर लेप करने से 'दारुणक' रोग को जीतता है। आम की गिरी का चूर्ण तथा हरड़ का चूर्ण दोनों को समान भाग में लेकर और दूध में पीसकर लेप करें। यह भी 'दारुणक' को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—दारुणक को 'रूसी' कहा जाता है। यह बालों में कंधी करते समय झड़ा करती है। वस्तुतः 'अरुंषिका' को ही रूसी कहना उचित है न कि 'दारुणक' को।

### इन्द्रलुप्तहर लेप

**रसस्तिक्तपटोलस्य पत्राणां तद्विलेपनात्।। 20।।**
**इन्द्रलुप्तं शमं याति त्रिभिरेव दिनैर्ध्रुवम्।**
**इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः।। 21।।**
**गुञ्जामूलं फलं वापि भल्लातकरसोऽपि वा।**

कड़वे परवल के पत्तों का रस निकाल लें। इसका लेप करने से इन्द्रलुप्त तीन दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है। बनभण्टा का रस मधु के साथ मिलाकर अथवा गुंजा की जड़ या फल या भिलावा का रस मधु के साथ मिलाकर लेप करने से इन्द्रलुप्त को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**—दाढ़ी तथा मोछ के बालों का उखड़ना 'इन्द्रलुप्त' कहा जाता है।

### केशवर्द्धक लेप

**गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी।। 22।।**
**शिरःप्रलेपनं तेन केशसंवर्धनं परम्।**

गोखरू, तिल के फूल, मधु एवं घृत का लेप करने से शिर के बाल भली-भाँति बढ़ते हैं।

### रोमोत्पादक लेप

**हस्तिदन्तमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम्।। 23।।**
**रोमाण्यनेन जायन्ते लेपात् पाणितलेष्वपि।**

हाथी के दाँत की भस्म और रसवत् दोनों को बकरी के दूध में पीसकर लेप करने से पाणितलों (हथेली) पर भी रोम उत्पन्न हो जाते हैं।

**वक्तव्य**—पाणितलों में रोमकूप होते ही नही तो रोम कहाँ से उत्पन्न होंगे। यह उक्त योग की सफलतासूचक अतिशयोक्ति मात्र नहीं है, अपितु रोमों को उगाने का सफल प्रयोग भी है।

### इन्द्रलुप्तहर लेप

**यष्टीन्दीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः।। 24।।**
**इन्द्रलुप्तं शमं याति केशाः स्युः सघना दृढाः।**

मुलेठी, कमल, मुनक्का, तेल, घृत और दूध के लेप से इन्द्रलुप्त शान्त हो जाता है। उससे केश दृढ़ और सघन हो जाते हैं।

### रोमसंजनन लेप

**चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृङ्गास्थिभस्मभिः।। 25।।**
**तैलेन सह लेपोऽयं रोमसञ्जननः परः।**

चौपायों (गाय घोड़ा, बकरा आदि) की त्वचा, रोम, नख, सींग तथा हड्डी की भस्मों को तेल के साथ मिलाकर लेप करने से रोम अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं।

**वक्तव्य**—इन्द्रलुप्त, खालित्य तथा रुह्या में रोम उखड़ जाने पर उक्त लेप करना चाहिये।

### पलितनाशक लेप ( 1 )

**इन्द्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यङ्गमाचरेत्।। 26।।**
**प्रत्यहं तेन जायन्ते कुन्तला भृङ्गसन्निभाः।**

इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण) के बीजों के तैल का अभ्यंग (मालिश) प्रतिदिन करने से केश भार के समान काले हो जाते हैं।

### पलितनाशक लेप ( 2 )

**अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका।। 27।।**
**स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात् पलितं जयेत्।**

लोहचूर्ण, भाँगरा, त्रिफला और काली मिट्टी—इन सबको ईख के रस में एक मास तक रख दें, तत्पश्चात् इसका लेप करने से 'पलित' रोग नष्ट हो जाता है।

### पलितनाशक लेप ( 3 )

**धात्रीफलत्रयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम्।। 28।।**
**पञ्चाम्रमज्जा लोहस्य कर्षैकं च प्रदीयते।**
**पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेदुषितं निशि।। 29।।**
**लेपोऽयं हन्ति नचिरादकालपलितं महत्।**

आँवला के फल 3, हरड़ के फल 2, बहेड़ा का फल 1, आम की गिरी 5 नग और लोह, चूर्ण 1 तोला—इन सबको पीसकर लोहपात्र में रात भर रख लें। यह लेप बहुत अधिक 'अकाल-पलित' को शीघ्र ही जीतता है।

**वक्तव्य**—ईख के रस के योग से उक्त द्रव्यों का कल्क बनाकर रख लें। आवश्यकता पड़ने पर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

### पलितनाशक लेप ( 4 )

**त्रिफला नीलिकापत्रं लोहं भृङ्गरजः समम्।। 30।।**
**अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात् कृष्णीकरं स्मृतम्।**

त्रिफला, नील के पत्ते, लोहचूर्ण तथा भाँगरा को समान

भाग में लेकर भेड़ के मूत्र में पीस लें। इसका लेप करने से बाल काले हो जाते हैं।

पलितनाशक लेप ( 5 )

**त्रिफला लोहचूर्णं च दाडिमुत्वग्बिसं तथा।। 31।।**
**प्रत्येकं पञ्चपलिकं चूर्णं कुर्याद् विचक्षणः।**
**भृङ्गराजरसस्यापि प्रस्थषट्कं प्रदापयेत्।। 32।।**
**क्षिप्त्वा लोहमये पात्रे भूमिमध्ये निधापयेत्।**
**मासमेकं ततः कुर्याच्छागीदुग्धेन लेपनम्।। 33।।**
**कूर्चे शिरसि रात्रौ च संवेष्ट्यैरण्डपत्रकैः।**
**स्वपेत् प्रातस्ततः कुर्यात् स्नानं तेन च जायते।। 34।।**
**पलितस्य विनाशश्च त्रिभिर्लेपर्न संशयः।**

त्रिफला लोहचूर्ण अनार के फलों का छिलका और विस (कमलनाल) प्रत्येक द्रव्य को पाँच-पाँच पल (20-20 तोला) लेकर चूर्ण बना लें और भाँगरा का रस छः प्रस्थ (4 सेर 3 पाव 4 तोला) निकाल कर और उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर लोहपात्र में डालकर इस पात्र को भूमि में गाड़ दें। एक मास के पश्चात् निकाल कर, बकरी का दूध मिलाकर रात्रि में दाढ़ी तथा शिर पर लेप करे और एरण्ड के पत्तौ से बाँधकर सो जायें, प्रातःकाल उठकर स्नान करें। इस प्रकार तीन बार लेप करने से 'पलित' का विनाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

**वक्तव्य**–युवावस्था में जिनके बाल पक जाते हैं, उनके लिए उक्त लेपों का प्रयोग हितकर होता है।

रोमनाशक लेप ( 1 )

**शङ्खचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम्।। 35।।**
**मनःशिला चार्धभागा स्वर्जिका चैकभागिका।**
**लेपोऽयं वारिपिष्टस्तु केशानुत्पाट्य दीयते।। 36।।**
**अनया लेपयुक्त्या च सप्तवेलं प्रयुक्तया।**
**निर्मूलं केशस्थानं स्यात् क्षपणस्य शिरो यथा।। 37।।**

शंखचूर्ण (भस्म) दो भाग (2 तोला), हरिताल 1 भाग (1 तोला), मैनसिल आधा भाग (आधा तोला) और सज्जीखार 1 भाग (1 तोला)– इन सबको जल में पीसकर और बालों को उखाड़कर लेप किया जाता है। इसी प्रकार सात बार लेप करने से वालों का स्थान निर्मूल (रोमोत्पादन शक्तिहीन) हो जाता है। जैसे-क्षपणक (बौद्ध भिक्षु) का शिर।

रोमनाशक लेप ( 2 )

**तालकं शाणयुग्मं स्यात् षट्शाणं शङ्खचूर्णकम्।**
**द्विशाणिकं पलाशस्य क्षारं दत्त्वा प्रमर्दयेत्।। 38।।**
**कदलीदण्डतोयेन रविपत्ररसेन वा।**
**अस्यापि सप्तभिर्लेपै रोम्णां शातनमुत्तमम्।। 39।।**

हरिताल दो शाण (आधा भर), शंखभस्म छः शाण (डेढ़ भर) और पलास का क्षार तीन शाण (पौन भर) इनको केले के दण्डरस अथवा आक के पत्तों के रस से पीस लें। इसका भी सात बार लेप करने से रोम कट जाते हैं। यह भी उत्तम योग है।

**अर्शो-लेप–'स्वर्जिकातुत्थशैलेयमञ्जनं सरसाञ्जनम्। मनःशिलालेपसमं चूर्णं मांसाङ्कुरापहम्।।'** अर्थात् सज्जीखार, तूतिया (भुना), छरीला, काला सुरमा, रसवत, मैनशिल और हरताल का चूर्ण करके जल से गोली बना लें, उसके बाद थोड़ा दही के पानी में घिसकर लेप करें तो सभी प्रकार के 'मांसांकुर' (मस्से) नष्ट हो जाते हैं।

**शोथनाशक लेप**–'नलिका गन्धद्रव्यस्य चूर्णं पयः परिप्लुतम्। पक्वं तल्लेपनाद् हन्ति सर्वान् शोथरुजादिकान्।।' अर्थात् नलिका या नालुका नामक (मोटा तज) गन्ध द्रव्य को पीसकर जल में घोलकर और अग्नि में पकाकर लेप करने से सभी प्रकार के शोथ तथा पीड़ाएँ नष्ट हो जाती हैं।

**कर्ममूल शोथ-चिकित्सा–'कुलत्थः कट्फलं शुण्ठी कारवी च समांशकैः। सुखोष्णैर्लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः।। गैरिकं कठिनं शुण्ठी कट्फलारग्वधैः समैः। उष्णैः काञ्जिकसम्पिष्टैर्लेपनं कर्णमूलनुत्।।'** अर्थात् कुलथी, कायफल, सोंठ तथा कालीजीरी समान भाग में लेकर जल में पीसकर और गर्म करके कर्णमूल शोथ पर बार-बार लेप करें तो वह शान्त हो जाता है। गेरू, खड़िया मिट्टी, सोंठ, कट्फल तथा अमलतास की गुद्दी को समान भाग में लेकर काँजी में पीसकर गर्म लेप करने से 'कर्णमूल शोथ' दूर हो जाता है।

श्वित्रहर लेप ( 1 )

**सुवर्णपुष्पी कासीसं विडङ्गानि मनःशिला।**
**रोचना सैन्धवं चैव लेपनाच्छ्वित्रनाशनम्।। 40।।**

सत्यानाशी की जड़, कासीस (हीराकसीस), वायविडंग, मैनसिल, गोरोचन तथा सेंधा नमक–इन सबका लेप 'श्वित्र' (सफेद कुष्ठ या फुलबहरी) का नाश करता है।

### श्वित्रहर लेप ( 2 )

**वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता।**
**बस्तमूत्रेण सम्पिष्टा प्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी।। 41।।**

मकोय, चकवड़ (पवाँर) के बीज, कूठ तथा पीपल को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर गुटिका (लम्बी गोली) बना लें। उसका लेप श्वित्र को नष्ट करता है।

### श्वित्रहर लेप ( 3 )

**तालकं शाणमात्रं स्याच्चतुःशाणा च बाकुची।**
**गोमूत्रपिष्टं तच्चूर्णं लेपनाच्छ्वित्रनाशनम्।। 42।।**

हरिताल एक शाण (चौथाई भर) और बाकुची चार शाण (1 तोला) दोनों को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से श्वित्र का नाश होता है।

### श्वित्रहर लेप ( 4 )

**बाकुची वेतसो लाक्षा काकोदुम्बरिका कणा।**
**रसाञ्जनमयश्चूर्णं तिलाः कृष्णास्तदेकतः।। 43।।**
**चूर्णयित्वा गवां पित्तैः पिष्ट्वा च गुटिका कृता।**
**अस्याः प्रलेपाच्छ्वित्राणि प्रणश्यन्त्यतिवेगतः।। 44।।**

बाकुची, वेत, लाही (लाख), कठगूलर, पीपल, रसवत, लोहचूर्ण और काला तिल–इन सबको एक साथ पीसकर और गाय के पित्त की भावना देकर गुटिका बना लें। इसके लेप से श्वित्र शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

### सिध्महर लेप ( 1 )

**धात्री सर्जरसश्चैव यवक्षारश्च चूर्णितः।**
**सौवीरेण प्रलेपोऽयं प्रयोज्यः सिध्मनाशने।। 45।।**

आँवला, राल तथा जौखार को पीसकर चूर्ण बना लें और फिर काँजी के साथ मिलाकर लेप करें। इसे 'सिध्म' या सेहुँआ का विनाश करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिये।

### सिध्महर लेप ( 2 )

**दार्वी मूलकबीजानि तालकं सुरदारु च।**
**ताम्बूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक् पृथक्।। 46।।**
**शङ्खचूर्णं शाणमात्रं सर्वाण्येकत्र कारयेत्।**
**लेपोऽयं वारिणा पिष्टः सिध्मनां नाशनः परः।। 47।।**

दारुहल्दी, मूली के बीज, हरताल, देवदारु तथा पान के पत्ते, प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष (1 तोला) और शंखभस्म एक शाण (चौथाई भर)–सबको एक साथ मिलाकर और जल में पीसकर लेप करें। सिध्म का नाश करने के लिए यह भी उत्तम लेप है।

### नेत्ररोगहर लेप ( 1 )

**हरीतकी सैन्धवं च गैरिकं च रसाञ्जनम्।**
**बिडालको जले पिष्टः सर्वनेत्रामयापहः।। 48।।**

बड़ी हरड़, सेंधा नमक, गेरू तथा रसव्रत इन सबको जल से पीसकर 'बिडालक' (आँख की बरौनियों पर जो लेप किया जाता है, उसको बिड़ालक कहते हैं) करने से सम्पूर्ण नेत्रों में होने वाले रोगों (अभिष्यन्द आदि) को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–चिकित्सक इस लेप में कपूर, हल्दी, केसर तथा अफीम भी मिलाते हैं।

### नेत्ररोगहर लेप ( 2 )

**रसाञ्जनं व्योषयुतं समिष्टं वटकीकृतम्।**
**कण्डूं पाकान्वितां हन्ति लेपादञ्जननामिकाम्।। 49।।**

रसवत् तथा त्रिकटु को पीसकर गोली बना लें। इसका लेप खुजली तथा पाक से युक्त 'अञ्जननामिका' (बरौनी पर होने वाली फुन्सी) को नष्ट करता है।

### पामा-दद्रू-विचर्चिकाहर लेप ( 1 )

**प्रपुन्नाटस्य बीजानि बाकुची सर्षपास्तिलाः।**
**कुष्ठं निशाद्वयं मुस्तं पिष्ट्वा तक्रेण चैकतः।। 50।।**
**प्रलेपादस्य नश्यन्ति दद्रूकण्डूविचर्चिकाः।**

चक्रमर्द (पँवार) के बीज, बाकुची सरसों, तिल, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी तथा नागरमोथा–इन सबको मट्ठा के साथ पीस लें। इस लेप से दाद पामा (खुजली) तथा विचर्चिका का विनाश हो जाता है।

### पामा-दद्रू-विचर्चिकाहर लेप ( 2 )

**हेमक्षीरी विडङ्गानि दरदं गन्धकस्तथा।। 51।।**
**दद्रुघ्नः कुष्ठसिन्दूरे सर्वाण्येकत्र मर्दयेत्।**
**धतूरनिम्बताम्बूलीपत्राणां स्वरसैः पृथक्।। 52।।**
**अस्य प्रलेपमात्रेण पामादद्रूविचर्चिकाः।**
**कण्डूश्च रसकश्चैव प्रशमं यान्ति वेगतः।। 53।।**

सत्यानाशी के बीज, वायविडंग, शिंगरफ, गन्धक, चक्रमर्द (पँवार) के बीज, कूठ तथा सिन्दूर–सबको एक साथ पीसकर धतूरा, नीम तथा पान के पत्तों के स्वरस की पृथक्-पृथक् भावनायें देकर गोलियाँ बना लें। इसका लेप (जल में घिसकर) करने से पामा, दाद, विचर्चिका, सूखी खुजली तथा रसक (चर्मरोग-विशेष) शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–इसका जितना ही पतला लेप किया जाता है, उतना ही अधिक लाभ होता है।

पामा-दद्रू-विचर्चिकाहर लेप ( 3 )

**दूर्वाऽभया सैन्धवं च चक्रमर्दः कुठेरकः।**
**एभिस्तक्रयुतो लेपः कण्डूदद्रूविनाशनः।। 54।।**

सफेद दूध, हरड़, सेंधा नमक, चक्रमर्द, तथा तुलसी–इन सबको तक्र ( मट्ठा ) के साथ पीसकर लेप करने से खुजली तथा दाद का विनाश हो जाता है।

पामा-दद्रू-विचर्चिकाहर लेप ( 4 )

**दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डूपामाविनाशनः।**
**कृमिदद्रूहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः।। 55।।**

दूध तथा हल्दी का लेप कण्डू ( खुजली ) तथा पामा का विनाश कर कृमि, दाद तथा शीतपित्त का विनाश करता है।

पामा-दद्रू-विचर्चिकाहर लेप ( 5 )

**सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह।**
**कटुतैलेन सम्मिश्रं दद्रुघ्नं च प्रलेपनम्।। 56।।**

सरसों, हल्दी, कूठ, चक्रमर्द तथा तिल को पीसकर और कटुतैल ( सरसों का तेल ) को मिलाकर लेप करने से दाद का विनाश होता है।

वातविसर्पहर लेप

**रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला।**
**घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः।। 57।।**

रास्ना, नीलकमल, देवदारु, लालचन्दन, मुलेठी तथा बरियारा–इनको पीसकर घी तथा दूध के साथ मिलाकर लेप करने से वातजनित वीसर्प का नाश होता है।

पित्तविसर्पहर लेप

**मृणालं चन्दनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम्।**
**सारिवामलकी पथ्या लेपः पित्तविसर्पनुत्।। 58।।**

कमलनाल, लालचन्दन, लोध, खस, लालकमल, नीलकमल, सारिवा, आँवला तथा हरड़ का लेप पित्तजनित विसर्प को नष्ट् करता है।

कफविसर्पहर लेप

**त्रिफला पद्मकोशीरं समङ्गा करवीरकम्।**
**नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा।। 59।।**

त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खस, मजीठ, कनेर के पत्र र्पनरसल की जड़ तथा अनन्तमूल का लेप कफजनित वीसर्प को नष्ट करता है।

वातरक्त, रक्तपित्तहर लेप

**मांसी सर्जरसो लोध्रं मधुकं सहरेणुकम्।**
**मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमैः सह।। 60।।**
**प्रलेपः पित्तवातास्रे शतधौतघृतप्लुतः।**
**आमलं घृतभृष्टं तु पिष्टं काञ्जिकवारिभिः।। 61।।**
**जयेन्मूर्ध्नि प्रलेपेन रक्तं नासिकया सृतम्।**

जटामांसी, राल, लोध, मुलेठी, सम्भालू के बीज, मरोड़फली, नीलकमल, लालकमल तथा सिरस के फूल–इन सबको पीसकर तथा सौ बार धोये हुये घृत में मिलाकर वातरक्त में लेप किया जाता है। आँवले को घृत में थोड़ा भूनकर तथा काँजी के जल में पीसकर मस्तक पर लेप करने से नाक से गिरने वाला रक्त ( नकसीर ) बन्द हो जाता है।

वातिक शिरोरोगहर लेप ( 1 )

**कुष्ठमेरण्डतैलेन लेपात् काञ्जिकपेषितम्।। 62।।**
**शिरोऽर्तिं वातजां हन्यात् पुष्पं वा मुचुकुन्दजम्।**

कूठ को काँजी में पीसकर और एरण्ड के तैल में पकाकर लेप करें अथवा मुचुकुन्द के फूलों का उक्त विधि से लेप करें। ये लेप वातजनित शिरोरोग को नष्ट करते हैं।

वातिक शिरोरोगहर लेप ( 2 )

**देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम्।। 63।।**
**सकाञ्जिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोऽर्तिनुत्।**

देवदारु, तगर, कूठ, खस तथा सोंठ को काँजी में पीसकर और स्नेह ( एरण्ड तैल ) में काकर लेप करें। यह भी वातजनित शिरोरोग को नष्ट करता है।

पैत्तिक शिरोरोगहर लेप ( 1 )

**चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।।64।।**
**क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद् रक्तपित्तशिरोऽर्तिजित्।**

सफेद चन्दन, खस, मुलेठी, बरियारा, नाखूना तथा कमल को दूध में पीसकर लेप करें। यह रक्तजनित तथा पित्तजनित शिरोरोग को जीतता है।

पैत्तिक शिरोरोगहर लेप ( 2 )

**धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचन्दनैः ।।65।।**
**दूर्वोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात् प्रलेपनम्।**
**शिरोऽर्तिं पित्तजां हन्याद् रक्तपित्तरुजं तथा।। 66।।**

आँवला, कसेरु, नेत्रबाला, कमल, पदमकाष्ठ, श्वेतचन्दन दूब, खस् तथा नरसल की जड़–इन सबको पीसकर लेप

करें। यह भी पित्तजनित तथा रक्तपित्तजनित शिरोरोग को नष्ट करता है।

### कफज शिरोरोगहर लेप

**हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः।**
**मांसीरास्नारुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत्॥67॥**

सम्भालू के बीज, तगर, छड़ीला, मोथा, इलायची, अगुरु, देवदारु, जटामांसी, रास्ना तथा एरण्ड की जड़–इनको पीसकर और गर्म करके लेप करें। इससे कफजनित शिरोरोग नष्ट हो जाता है।

### दूसरा लेप

**शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः सरोहिषैः।**
**मूत्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च लेपः श्लेष्मशिरोऽर्तिनुत्॥68॥**

सोंठ, कूठ, चक्रमर्द, देवदारु तथा रोहिषतृण–इस सबको गोमूत्र में पीसकर और गर्म करके लेप करें। यह लेप कफजनित शिरोरोग को नष्ट करता है।

### आधा-शीशी पर लेप

**सारिवाकुष्ठमधुकवचाकृष्णोत्पलैस्तथा।**
**लेपः सकाञ्जिकस्नेहः सूर्यावर्तार्धभेदयोः॥69॥**

सारिवा, कूठ, मुलेठी, वच, पीपल तथा कमल इन सबको काँजी में पीसकर तथा स्नेह (एरण्ड तैल) में पकाकर इसका 'सूर्यावर्त्त' एवं अर्द्धावभेदक नामक शिरोरोगों में लेप करना चाहिये।

### सभी शिरोरोगों पर लेप

**वरी नीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा।**
**शङ्खकेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरोऽर्तिजित्॥70॥**

शतावर, नीलकमल, दूब, तिल, पीपल तथा पुनर्नवा का लेप 'शंखक' तथा 'अनन्तवात' नामक शिरोरोगों में करना चाहिये। यह सब प्रकार के शिरोरोगों को जीतता है।

### दूसरी लेप-विधि

**अथ लेपविधिश्चान्यः प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः।**
**द्वौ तस्य कथितौ भेदौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ॥71॥**
**चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत् प्रोन्नतं सा मितिस्तयोः।**
**शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपः परिकीर्तितः॥72॥**
**आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात् प्रदेहः श्लेष्मवातहा।**
**रोमाभिमुखमादेयौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ॥73॥**
**वीर्यं सम्यग् विशत्याशु रोमकूपैः शिरामुखैः।**
**न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत्॥74॥**
**शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति।**
**(तमसा पिहितो ह्यूष्मा रोमकूपमुखे स्थितः॥75॥**
**विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेदतः।)**
**रात्रावपि प्रलेपादिविधिः कार्यो विचक्षणैः॥76॥**
**अपक्वशोथे गम्भीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे।**

इसके पश्चात् अब एक और लेपविधि कही जाती है जो विद्वान् चिकित्सकों को सम्मत है। उसके दो भेद हैं–1. प्रलेप (साधारण लेप) और 2. प्रदेह (जो गर्म करके बनाया जाता है, जिसको 'पुल्टिस' भी कहते हैं)। इन दोनों की मोटाई भैंस के गीले चमड़े के समान होनी चाहिये। इनमें शीत (जो गर्म नहीं किया गया), तनु (पतला यथा चन्दनलेप), विशोषी (सूखने वाला अर्थात् व्रणशोथ को पीड़न करने वाला, यथा–गन्धाविरोजा आदि का लेप) अथवा अविशोषी (विशोषी के विपरीत गुण वाला) प्रलेप कहलाता है। आर्द्र (गीला), घन (मोटा) तथा उष्ण (गर्म किया हुआ) 'प्रदेह' कहा जाता है। यह प्रदेह कफ-वातनाशक और प्रलेप पित्तनाशक होता है। प्रलेप तथा प्रदेह का प्रयोग रोमाभिमुख (रोमों की ओर) करना चाहिये। इससे औषधि का वीर्य (सार) रोमकूपों में लगी हुई सिराओं द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। रात्रि में लेप न करें और सूखने से पहले ही उसे उतार दें, किन्तु पीड़न के लिये प्रयुक्त किये गये प्रदेह को सूखने देना चाहिये। अन्धकार से रुकी हुई व्रणशोथ की ऊष्मा रोमकूपों के मुख में स्थित रहती है (अर्थात् रात्रि के स्वाभाविक शीत के कारण वह नहीं निकल पाती, लेप करने से तो और भी रुक जाता है), लेप न करने से कुछ-कुछ निकल जाती है, इसलिये रात्रि में लेप नहीं करना चाहिये। विद्वान् चिकित्सक रात्रि में भी लेप का प्रयोग किया करते हैं। यथा–कच्चे फोड़ों पर, गम्भीर नामक फोड़े पर और रक्त तथा कफ के फोड़ों पर।

**वक्तव्य**–उक्त पाठ को सु० सू० अ० 18 में विस्तारपूर्वक देखें।

### व्रणशोथ-चिकित्सा-क्रम

**आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः॥77॥**
**तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः।**
**पञ्चमः शोधनो भूयात् षष्ठो रोपण इष्यते॥78॥**
**सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमा मताः।**

पहले (जब फोड़ा उठ रहा हो) शोथहर लेप लगायें, यदि इससे लाभ न हो तो दूसरा रक्तसेचन (जोंक अथवा

सिंगी द्वारा रक्त निकालना) कर्म करें, यदि इससे भी लाभ न हो तो तीसरा क्रिया उपनाह (पकाने का प्रयत्न) या पुल्टिस का प्रयोग करें, यदि न पके तो चौथी पाटन क्रिया (चोरा लगाना) करें, पाँचवीं शोधन-क्रिया (जिससे दोष पूर्ण रूप से निकल जाते हैं) करें छठी रोपण-क्रिया (व्रण को भरने का उपाय) करें और सातवीं सवर्णकरण-क्रिया (व्रणस्थान पर सफेद दाग या काला दाग न पड़ जाये) करें। इस प्रकार फोड़ो में सात क्रम (चिकित्सा-विधियाँ कही गयी) हैं।

**वक्तव्य**—देखें—सु०सू०अ० 17।

**वातिक व्रणशोथहर लेप**

**बीजपूरजटा हिंस्रा देवदारु महौषधम्।। 79।।**
**रास्नाग्निमन्थो लेपोऽयं वातशोथविनाशनः।**

बिजौरा नींबू की जड़, हींस की जड़, देवदारु, सोंठ, रास्ना तथा अरणी की छाल इनका लेप वातजनित शोथ को नष्ट करता है।

**पैत्तिक व्रणशोथहर लेप**

**मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलं च पद्मकम्।। 80।।**
**उशीरं बालकं पद्मं पित्तशोथे प्रलेपनम्।**

मुलेठी, लालचन्दन, मरोड़फली, नरसल का जड़, पद्मकाठ, खस, नेत्रबाला तथा कमल का लेप पित्तजनित शोथ में करना चाहिये।

**श्लैष्मिक व्रणशोथहर लेप**

**कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक्सिकता शिवा।। 81।।**
**मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽय प्रदेहः श्लेष्मशोथहा।**

पीपल, पुरानी खली, सहजन का छाल, बालू (रेत) तथा हरड़-इन सबको गोमूत्र में पीसकर और गर्म करके मोटा लेप करने से कफजनित शोथ का नाश हो जाता है।

**रक्तज व्रणशोथहर लेप**

**द्वे निशे चन्दने द्वे च शिवा दूर्वा पुनर्नवा।। 82।।**
**उशीरं पद्मकं लोध्रं गैरिकं च रसाञ्जनम्।**
**आगन्तुके रक्तजे च शोथे कुर्यात् प्रलेपनम्।। 83।।**

हल्दी, दारुहल्दी, लालचन्दन, सफेदचन्दन, हरड़, दूब, पुनर्नवा, खस, पद्मकाठ, लोध, गेरू और रसवत का लेप आगन्तुज (चोट आदि से उत्पन्न होने वाले) शोथ में तथा रक्तजनित शोथ में करना चाहिये।

**वक्तव्य**—उक्त लेप तब किये जाते हैं, जब फोड़ा उत्पन्न हो रहा हो। इन्हीं लेपों का एक नाम 'शोथहर' है।

**पाचन लेप**

**शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः।**
**सवचः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः।। 84।।**

शण (सनई), मूली, सहजन के बीज, तिल, सरसों, वच, खली या अलसी (तीसी) को पीसकर और पकाकर उसका प्रदेह (मोटा लेप या पुल्टिस) करने से व्रणदोष का पाचन होता है।

**दारण लेप (1)**

**दन्ती चित्रकमूलत्वक्स्तुह्यर्कपयसी गुडः।**
**भल्लातकास्थि कासीसं सैन्धवं दारणः स्मृतः।। 85।।**

दन्ती, चीते के मूल का छाल, सेहुण्ड तथा आक का दूध, गुड़, भिलावा, लाल कासीस तथा सेंधा नमक का लेप दारण (व्रण को फोड़ने वाला) होता है।

**दारण लेप (2)**

**चिरबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः।**
**कपोतकङ्कगृध्राणां मलं लेपेन दारणम्।। 86।।**

करञ्ज (डिठोरा) के बीज, भिलावा, दन्ती, चीता, कनेर कबूतर कंक (चील) तथा गिद्ध की बीट, इनका लेप भी दारण होता है।

**दारण लेप (3)**

**स्वर्जिकायावशूकाद्याः क्षारा लेपेन दारणाः।**
**हेमक्षीर्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः।। 87।।**

सज्जीखार एवं जौखार आदि क्षार अत्यन्त दारण होते हैं और सत्यानाशी के पञ्चाङ्ग का लेप तो परम दारण (फोड़ों को फोड़ने वाला) होता है।

**वक्तव्य**—दारण-लेप पके हुये फोड़ों पर किये जाते हैं। इनसे फोड़े फूट जाते हैं। विद्रधि जाति के अर्थात् गम्भीर फोड़े नहीं फूटते, उनमें चीरा लगाना ही पड़ता है। दोनों का लक्ष्य एक ही पाटन या फाड़ना है। रक्तसेचन-क्रम का वर्णन अगले अध्याय में देखें।

**शोधन-लेप**

**तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुगैः।**
**त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः।। 88।।**

तिल, सेंधा नमक, मुलेठी, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी तथा निसोत को पीसकर और घी मिलाकर लेप करने से व्रण का शोधन हो जाता है।



**वक्तव्य**—उक्त लेप से पूर्ण रूप में पूय निकल कर व्रण

शुद्ध हो जाता है। शुद्ध व्रण के लक्षण इस प्रकार है–'जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः। सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः'।।

### शोधन-रोपण लेप

**निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ।**
**तिलैश्च सह संयुक्तो लेपः शोधनरोपणः।। 89।।**

नीम के पत्ते, घी, मधु, दारुहल्दी, मुलेठी तथा तिल–इन सबको भली-भाँति पीसकर लेप करने से व्रण (घाव) का शोधन और रोपण (भरना) भी हो जाता है।

### कृमिनाशक लेप

**करञ्जारिष्टनिर्गुण्डी लेपो हन्याद् व्रणक्रिमीन्।**
**लशुनस्याथवा लेपो हिङ्गुनिम्बभवोऽथवा।। 90।।**

करञ्ज, नीम तथा सम्भालू का लेप व्रण के क्रिमियों को नष्ट करता है। उसी प्रकार लहसुन का लेप अथवा हींग और नीम के पत्तों का लेप भी व्रण के क्रिमियों को नष्ट करता है।

**वक्तव्य**–कभी-कभी असावधानी के कारण व्रण में क्रिमि पड़ जाते हैं। ऐसी दशा में लेप उपयोगी होते हैं।

### शोधन-रोपण-लेप

**निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम्।**
**दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः।। 91।।**

नीम के पत्ते, तिल, दन्ती, निसोत, सेंधा नमक तथा मधु का लेप दूषित व्रण को शान्त करता है। यह शोधन तथा रोपण है।

### उदरशूलहर लेप

**मदनस्य फलं तिक्तां पिष्ट्वा काञ्जिकावारिणा।**
**कोष्णं कुर्यान्नाभिलेपं शूलशान्तिर्भवेत् ततः।। 92।।**

मैनफल तथा कुटकी को काँजी में पीसकर तथा गर्म कर नाभि के आस-पास अर्थात् समस्त उदर पर लेप करें। इससे शूल की शान्ति हो जाती है।

### वातविद्रधिहर लेप

**शिग्रुशेफालिकैरण्डयवगोधूममुद्गकैः ।**
**सुखोष्णो बहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ।। 93।।**

सहजन की छाल, सम्भालू, एरण्ड की जरु अथवा बीज, जौ, गेहूँ तथा मूँग–इनको पीसकर तथा गर्म कर मोटा लेप वातजनित विद्रधि में करना चाहिये।

### पित्तविद्रधिहर लेप

**पैत्तिके सर्पिषा लाजामधुकैः शर्करान्वितैः।**
**प्रलिम्पेत् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्याशीरचन्दनैः।। 94।।**

पित्तजनित विद्रधि में लावा मुलेठी तथा चीनी को घी में मिलाकर अथवा विदारीकन्द, खस तथा श्वेतरन्दन को दूध में पीसकर लेप करना चाहिये।

### कफविद्रधिहर लेप

**इष्टिका सिकता लोहकिट्टं गोशकृता सह।**
**सुखोष्णः स्यात् प्रदेहोऽयं मूत्रैः स्याच्छ्लेष्मविद्रधौ।। 95।।**

ईंट का चूर्ण, बालू, मण्डूर, तथा गाय के गोबर को गोमूत्र में पीसकर तथा गर्भ कर कफजनित विद्रधि में प्रदेह (मोटा लेप) करें।

### आगन्तुज विद्रधिहर लेप

**रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ।**
**क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागन्तुनिमित्तजे।। 96।।**

लालचन्दन, मजीठ, हल्दी, मुलेठी तथा गेरू को दूध में पीसकर रक्तजनित तथा आगन्तुज विद्रधि में लेप करें।

### गलगण्ड लेप (1)

**निचुलः शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा।**
**प्रदेहो वातगण्डेषु सुखोष्णः सम्प्रदीयते।। 97।।**

जलवेत, सहजन के बीज तथा दशमूल (देखें–शा० सं०, म० खं० अ० 2, श्लोक 28)–इन सबको जल के साथ पीसकर और गर्म कर वातजनित गलगण्ड में प्रदेह किया जाता है।

### गलगण्डलेप (2)

**देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रदेहकः।**

देवदारु तथा इन्द्रायण की जड़ का लेप कफजनित गलगण्ड में किया जाता है।

### अपचीनाशक लेप (1)

**सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह।। 98।।**
**छागमूत्रेण सम्पिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम्।**

सरसों, नीम के पत्र एवं भिलावे को (मिट्टी के पात्र में बन्द करके) जलाकर और बकरे के मूत्र में पीसकर लेप करने से अपची (पकने वाली गण्डमाला) का नाश होता है।

### अपचीनाशक लेप (2)

**सर्षपाः शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवाः।। 99।।**
**मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत्।**
**गण्डमालार्बुदं गण्डं लेपेनानेन शाम्यति।। 100।।**

सरसों, सहजन के बीज, शण के बीज अलसी, जौ तथा मूली के बीज को खट्टे तक्र (मठ्ठा) के साथ पीस लें। इस

लेप से गण्डमाला, अर्बुद (रसौली) तथा गलगण्ड शान्त हो जाता है।

### अपबाहुक आदि के लेप

**तक्षयित्वा क्षुरेणाङ्गं केवलानिलपीडितम्।**
**तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्टं गुञ्जाफलैः कृतम्॥ 101॥**
**तेनापबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी तथा।**
**अन्यापि वातजा पीडा प्रशमं याति वेगतः॥ 102॥**

केवल वायु से पीड़ित अवयव पर क्षुर (छुरा या उस्तरा) से पच्छ लगाकर घुघँची को पीसकर लेप करें। इससे अपबाहुक, विश्वाची, गृध्रसी तथा अन्यान्य वातरोग शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

### श्लीपदहर लेप

**धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ।**
**प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम्॥ 103॥**

धत्तूरा के पत्ते, सम्भालू, पुनर्नवा, सहजन एवं सरसों का लेप पुराने तथा भीषण श्लीपद (फीलपाँव) को नष्ट करता है।

### अण्डवृद्धिहर लेप

**अजाजीहपुषाकुष्ठमेरण्डबदरान्वितम् ।**
**काञ्जिकेन तु सम्पिष्टं कुरण्डघ्नं प्रलेपनम्॥ 104॥**

काला जीरा, हाऊबेर, कूठ, एरण्ड की जड़ तथा बेर को काँजी में पीसकर लेप करने से 'कुरण्ड' (अण्डवृद्धि) का नाश होता है।

### उपदंशहर लेप ( 1 )

**करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा।**
**असाध्यापि व्रजत्यस्तं लिङ्गोत्था रुक्प्रलेपनात्॥ 105॥**

कनेर की जड़ को जल में पीसकर लेप करने से लिंग में होने वाले असाध्य रोग (उपदंश के व्रण) नष्ट हो जाते हैं।

### उपदंशहर लेप ( 2 )

**दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मषी मधुसंयुता।**
**उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम्॥ 106॥**

त्रिफला को कड़ाही में डालकर (जलते हुये चूल्हे में रखकर) जला दें। यह मषी (त्रिफला का काली भस्म) मधु के साथ मिलाकर लेप करने से उपदंश के व्रणों को शीघ्र ही भर देती है।

### उपदंशहर लेप ( 3 )

**रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम्।**
**सक्षौद्रं लेपनं योज्यमुपदंशगदापहम्॥ 107॥**

रसवत्, सिरीष की छाल तथा हरड़ को पीसकर, मधु के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये। इससे उपदंशरोग का नाश हो जाता है।

### अग्निदग्धहर लेप ( 1 )

**अग्निदग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः।**
**सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद् भिषक्॥ 108॥**
**तिन्दुकीत्वक्कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत्।**

वंशलोचन, पिलखन की छाल, सफेदचन्दन, गेरू तथा गिलोय को पीसकर घी में मिलाकर अथवा तिन्दुक की छाल के स्वाथ को घी में फेंट कर आग से जले पर लेप करना चाहिये।

### अग्निदग्धहर लेप ( 2 )

**यवान् दग्ध्वा मषी कार्या तैलेन युतया तया॥ 109॥**
**दद्यात् सर्वाग्निदग्धेषु प्रलेपो व्रणरोपणः।**

जौ को जलाकर राख बना लें, फिर इसे तेल में मिलाकर सभी प्रकार के अग्निदग्ध पर लेप करने से घाव भर जाते है।

### भगसंकोचक लेप

**पलाशोदुम्बरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ॥ 110॥**
**मधुना योनिमालिम्पेद् गाढीकरणमुत्तमम्।**

पलाश के फल तथा गूलर के फल दोनों को पीसकर, मधु के साथ मिलाकर भग में लेप करें, इससे वह संकुचित हो जाती है।

**माकन्दफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात् ॥ 111॥**
**गतेऽपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढाऽतिजायते।**

आम की गुठली का चूर्ण, मधु तथा कपूर के साथ मिलाकर लेप करने से यौवन के ढल जाने पर भी स्त्रियों का भग अत्यन्त गाढ़ा (संकुचित) हो जाता है।

**वक्तव्य**—उक्त लेपों का प्रयोग भग के भीतर नहीं किया जा सकता। अतः उक्त द्रव्यों की ढीली पोटली बनाकर भग के भीतर रखनी चाहिये।

### लिङ्गवृद्धिकर लेप ( 1 )

**मरिचं सैन्धवं कृष्णा तगरं बृहतीफलम्॥ 112॥**
**अपामार्गस्तिलाः कुष्ठं यवा माषाश्च सर्षपाः।**
**अश्वगन्धा च तच्चूर्णं मधुना सह योजयेत्॥ 113॥**
**अस्य सततलेपेन मर्दनाच्च प्रजायते।**
**लिङ्ग स्तनोत्सेधः संहतिर्भुजकर्णयोः॥ 114॥**

मरिच, सेंधा नमक, पीपल, तगर, बनभण्टा के फल, अपामार्ग के बीज, तिल, कूठ, जौ, उड़द, सरसों तथा असगन्ध–इन सबको पीसकर मधु में मिलाकर रख लें। इसका निरन्तर (महीनों तक लगातार) लेप करने और मर्दन करने से लिङ्ग की वृद्धि होती है, स्तनों पर लेप करने से स्तन पुष्ट हो जाते हैं और बाहु तथा कान दृढ़ हो जाते हैं।

### लिङ्गवृद्धिकर लेप ( 2 )

**सिताश्वगन्धासिन्धूत्थछागक्षीरैर्घृतं पचेत्।**
**तल्लेपान्मर्दनाल्लिङ्गवृद्धिः सञ्जायते परा।। 115।।**

मिश्री, असगन्ध तथा सेंधा नमक का कल्क, बकरी का दूध मिलाकर विधिपूर्वक घी पकाना चाहिये। इसके लेप तथा मर्दन से आवश्यकतानुसार लिंग की वृद्धि हो जाती है।

**वक्तव्य**–पति-पत्नी के मनमुटाव, कलह या प्रेमाभाव का पता उनसे वार्तालाप करते समय लिंगवृद्धि आदि की आवश्यकता का पता लग जाता है। कभी-कभी रोगी स्वयं चिकित्सक के पास आकर अपनी दशा सुना देता है। ये प्रयोग समय की माँग के अनुसार प्रयुक्त होते हैं, समझदारी इसी में है कि योनिसंकोचक तथा लिंगवृद्धिकर योगों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

### योनिद्रावक लेप

**इन्द्रवारुणिकापत्ररसैः सूतं विमर्दयेत्।**
**रक्तस्य करवीरस्य काष्ठेन व मुहुर्मुहुः।। 116।।**
**तल्लिप्तलिङ्गसंयोगाद् योनिद्रावोऽभिजायते।**

पारद को इन्द्रायण के पत्तों के रस में डालकर लाल कनेर का लकड़ी से बार-बार (सात दिन तक) मर्दन करें। इसका लेप लिंग पर करके स्त्री संयोग करने से 'योनिद्राव' हो जाता है।

**वक्तव्य**–जब योनि स्पर्शसुख रहित हो जाती है, तब मैथुन करने पर भी स्त्री स्खलित नहीं होती, अत एव मैथुनानन्द भी प्राप्त नहीं होता। इसी अवस्था को सुधारने के लिये उक्त योग का प्रयोग किया जाता है।

### दुर्गन्धिनाशक योग ( 1 )

**ताम्बूलपत्रचूर्णं तु चूर्णं कुष्ठशिवाभवम्।। 117।।**
**वारिणा लेपनं कुर्याद् गात्रदौर्गन्ध्यनाशनम्।**

ताम्बूल (पान) के पत्तों का चूर्ण तथा कूठ और हरड़ का चूर्ण लेकर जल में पीसकर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धि का नाश हो जाता है।

### दुर्गन्धिनाशक योग ( 2 )

**कुलित्थसक्तवः कुष्ठं मांसी चन्दनजं रजः।। 118।।**
**सक्तवश्चणकस्यैव त्वक् चैवैकत्र कारयेत्।**
**स्वेददौर्गन्ध्यनाशश्च जायतेऽस्यावधूलनात्।। 119।।**

कुलथी का सत्तू, कूठ, जटामांसी, श्वेतचन्दन का चूर्ण, चने का सत्तू तथा दालचीनी–ये सब एक साथ मिलाकर शरीर पर अवधूलन करने (बुरकने या चुपड़ने) से स्वेद (पसीना) तथा दुर्गन्धि का नाश हो जाता है।

**वक्तव्य**–कुलथी आदि उपर्युक्त पदार्था को भूनकर पीस लेने से सत्तू (पाउडर) तैयार हो जाता है। इसके प्रयोग से शारीरिक दुर्गन्धि का नाश हो जाता है।

### वशीकरण लेप

**वचा सौवर्चलं कुष्ठं रजन्यौ मरिचानि च।**
**एतल्लेपप्रभावेण वशीकरणमुत्तमम्।। 120।।**

वच, कालानमक, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी तथा मरिच को पीसकर लेप करें। इस लेप के प्रभाव से उत्तम वशीकरण होता है।

### शिर पर तैल लगाने की विधि

**अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरिति क्रमात्।**
**मूर्धतैलं चतुर्धा स्याद् बलवच्च यथोत्तरम्।। 121।।**
**त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः।**
**शिरोवस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः।। 122।।**

शिर-पर तैल का प्रयोग करने के चार प्रकार हैं। यथा–1 अभ्यंग (मालिश करना), 2. परिषेक (शिर पर तैल की धार गिराना), 3. पिचु (फाहा भिगाकर रखना) और 4. वस्ति। ये उत्तरोत्तर (एक से दूसरा) बलवान् अर्थात् अधिक लोभदायक है। इनमें पहले अभ्यंग आदि तीन प्रयोग सर्वत्र प्रसिद्ध है, अर्थात् साधारण लोग भी जानते हैं और शिरोवस्ति का विधि, जो कि विद्वानो को सम्मत (अभीष्ट) है, वह यहाँ कही जा रही है।

### शिरोवस्ति की विधि

**शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद् द्विमुखो द्वादशाङ्गुलः।**
**शिरःप्रमाणं तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्टकैः।। 123।।**
**सन्धिरोधं विधायादौ स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत्।**
**तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः।। 124।।**
**वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम्।**
**विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिः प्रशस्यते।। 125।।**

शिरोवस्ति चमड़े की होनी चाहिये, उसके दो मुख (अर्थात् दोनों ओर से खुली) हों, उसकी ऊँचाई बारह अंगुल हो और व्यास (चौड़ाई) शिर की परिधि (घेरे) के बराबर हो। इसको शिर पर बाँधकर और उड़द की पीठी से सन्धिरोध करके कोष्ण (गुनगुने) स्नेहों (उपयुक्त तैल आदि) से भर दें। इसको तब तक धारण करें, जब तक नाक, नेत्र तथा मुख से जल का स्राव न होने लगे और जब तक वेदना शान्त न हो जाये अथवा एक हजार मात्रा परिमित समय (लगभग 30 मिनट) तक। भोजन किये बिना (प्रातःकाल) शिरोवस्ति का प्रयोग करना चाहिये।

**वक्तव्य**—कुछ प्रतियों में 'नासाकर्णमुखस्रुतिः' पाठ है। शिरोवस्ति के प्रयोग से कर्णस्राव से पहले नेत्रस्राव होते देखा जाता है।

### शिरोवस्ति प्रयोगकाल

**प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्चसप्ताहमेव वा।**
**विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समन्ततः।। 126।।**
**ऊर्ध्वकायं ततः कोष्णनीरैः स्नानं च कारयेत्।**
**अनेन दुर्जया रोगा वातजा यान्ति सङ्क्षयम्।। 127।।**
**शिरःकम्पादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते।**

पाँच अथवा सात दिन तक प्रतिदिन एक बार उक्त विधि से शिरोवस्ति का प्रयोग करना चाहिये। शिर से वस्ति को हटाकर (पहले तेल को सम्भाल कर ग्रहण कर लेना चाहिये) चारों ओर से शिर को मलना चाहिये और इसके पश्चात् गुनगुने जल से स्नान करा देना चाहिये। इस प्रकार वस्ति के सेवन से शिरःकम्प आदि दुःसाध्य वातरोग नष्ट हो जाते हैं। इसलिये सभी समयों (ऋतुओं) में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

**वक्तव्य**—ऊँचे किनारे वाली तथा छतरहित चमड़े या गत्ते की टोपी बनवाकर शिर पर बाँध दी जाती है और उसमें उपयुक्त स्नेह भर दिया जाता है। इसी का नाम 'शिरोवस्ति' है।

### कर्णपूरण-विधि

**स्वेदयेत् कर्णदेशं तु किञ्चिन्नुः पार्श्वशायिनः।। 128।।**
**मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्ततः श्रोत्रं प्रपूरयेत्।**
**कर्णं च पूरितं रक्षेच्छतं पञ्च शतानि वा।। 129।।**
**सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे।**

मनुष्य को पार्श्व के बल लेटाकर उसके कान तथा उसके आस-पास थोड़ा स्वेदन करे तत्पश्चात् मूत्र (अजामूत्र आदि) स्नेह (तेल आदि) तथा आक आदि के पत्तों के रस को कुछ गर्त कर उससे कान को भर दें। कान के रोगों में एक सौ मात्रा (लगभग 3 मिनट), कण्ठ के रोगों में पाँच सौ मात्रा (लगभग 15 मिनट), तथा शिर के रोगों में एक सहस्र मात्रा (लगभग 30 मिनट) तक कान को भरा रखना चाहिये, अर्थात् उसी प्रकार पड़े रहना चाहिये।

**वक्तव्य**—शार्ङ्गधरसंहिता के कुछ संस्करणों में मात्राकाल परिचायक एक पद्य यहाँ भी किया गया है। वास्तव में इस श्लोक की व्याख्या शा० सं० उ० खं० अ० 5 श्लोक 28 में की जा चुकी है, अतः उसे यहाँ स्थान नहीं दिया गया है।

### रसपूरण का समय

**रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात् प्राक्प्रशस्यते।। 130।।**
**तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते।**

भोजन के पूर्व (प्रातःकाल) कान में रस आदि भरना प्रशस्त है और तेल आदि सूर्य के अस्त हो जाने पर (रात्रि में) भरना चाहिये।

### कर्णरोगहर योग (1)

**पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तं वह्नौ प्रतापयेत्।। 131।।**
**तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः।**

आक के पीले पत्ते को घी लगाकर आग पर गर्म करें, फिर इसका रस निचोड़ कर कान में डाल दें। इससे कान का शूल अवश्य नष्ट हो जाता है।

### कर्णरोगहर योग (2)

**कर्णशूलातुरे कोष्णं बस्तमूत्रं ससैन्धवम्।। 132।।**
**निक्षिपेत् तेन शाम्यन्ति शूलपाकादिका रुजः।**

कर्णशूल से पीड़ित रोगी के कान में थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर बकरे का मूत्र गर्म करके डाल दें। इससे शूल तथा पाक (पीब जाना) आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

### कर्णरोगहर योग (3)

**शृङ्गबेरं च मधुकं मधु सैन्धवमामलम्।। 133।।**
**तिलपर्णीरसस्तैलं टङ्कणं निम्बुकद्रवम्।**
**कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद् वा वेदनापहम्।। 134।।**

अदरक, मुलेठी, मधु, सेंधा नमक, आँवला, तिलपर्ण, का रस, तेल, टंकण तथा नींबू का रस इन सब द्रव्यों का घोल तैयार कर तथा उसे गर्म कर कान में डालना चाहिये यह भी वेदना (शूल) को नष्ट करता है।

### कर्णरोगहर योग ( 4 )

**कलित्थमातुलुङ्गाम्लश्‍ृङ्गबेररसैः शुभैः।**
**सुखोष्णैः पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये।। 135।।**

कैथ, बिजौरा, नींबू, अम्लवेतस तथा अदरक का रस निकाल लें। इस रस को दुहरे-चोहरे वस्त्र से छानकर और गर्मकर कान में भर दें। इससे भी कर्णशूल शान्त हो जाता है।

### कर्णरोगहर योग ( 5 )

**अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्तांल्लवणान्वितान्।**
**सन्निदध्यात् स्नुहीकाण्डे कोरिते तच्छदावृते।। 136।।**
**पुटपाकक्रमं कृत्वा रसस्तच्च प्रपूरयेत्।**
**सुखोष्णैस्तेन शाम्यन्ति कर्णपीडाः सुदारुणाः।। 137।।**

आक के अंकुरों (कोपलों) को काँजी में पीस लें, फिर इसमें थोड़ा तैल तथा नमक डालकर कल्क बना लें, फिर सेहुण्ड के दण्ड को भीतर से छालकर उसमें उक्त कल्क को भर दें जर उसे सेहुण्ड (थूहर) के पत्तों से बन्द कर दें। फिर इसको पुटपाक की विधि से पकाकर रस निकाल लें और इस रस को कुछ गर्मकर कान में डाल दें। इससे भीषण कर्णशूल भी शान्त हो जाते हैं।

**वक्तव्य**–पुटपाक-विधि के लिए देखें-शा० सं०, म० खं० अ० 1, श्लोक 21-23।

### कर्णशूल में दीपिका तैल

**महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च।**
**क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत् ततः।। 138।।**
**यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत्।**
**ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम्।। 139।।**
**एवं स्याद् दीपिकातैलं कुष्ठे देवतरौ तथा।**

बृहत्पञ्चमूल (बिल्व, अरणी, सोनापाठा, पाढ़ल तथा गम्भार) की आठ आठ अंगुल लम्बी लकड़ियों को रेशमी कपड़े से लपेट कर और तिलतेल में भिगोकर चिमटे से पकड़कर जला दें। इन काष्ठों के जलते समय उनसे जो तेल टपकता है, उसका नाम 'दीपिका तेल' है। इस तेल को गर्म-गर्म कान में डालना चाहिये। यह त्रिदोषज वेदना को बहुत शीघ्र रोकता है। इसी विधि से कूठ तथा देवदारु के कल्क एवं क्वाथ से भी 'दीपिका तैल' बनाया जाता है।

### श्योनाक तैल

**तैलं श्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ परिपाचितम्।। 140।।**
**हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात्।**

सोनापाठा की जड़ का कल्क एक पाव और तिलतेल एक सेर दोनों को मिलाकर धीमी आँच पर विधिपूर्वक पकायें। यह तेल कान में भरने (डालने) से त्रिदोषज कर्णशूल को नष्ट करता है।

### शूकरवसा योग

**कल्कक्वाथेन यष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः।। 141।।**
**शूकरस्य वसां पक्त्वा कर्णनादार्तिनाशिनी।**

मुलेठी, काकोली (अभाव में अश्वगन्धा), उड़द तथा धनियाँ के क्वाथ तथा कल्क के साथ सूअर की चर्बी पकायें। इससे कर्णनाद (कान में विविधि प्रकार की ध्वनियाँ होना) तथा कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

### स्वर्जिका तैल

**स्वर्जिका मूलकं शुष्कं हिङ्गु कृष्णासमन्वितम्।। 142।।**
**शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं सूक्तचतुर्गुणम्।**
**प्रणादं शूलबाधिर्यं स्रावं कर्णस्य नाशयेत्।। 143।।**

सज्जीखार, सूखी मूली, हींग, पीपल तथो सौंफ इनका कल्क बनाकर कल्क से चौगुना तेल तथा तैल से चौगुनी काञ्जी इन सभी को मिलाकर विधिपूर्वक तेल का पाक करें। यह तेल कर्णनाद, कर्णशूल, बाधिर्य (बहरापन) तथा कर्णस्राव को नष्ट करता है।

### अपामार्ग तैल

**अपामार्गक्षारजले तत् क्षारं कल्कितं क्षिपेत्।**
**तेन पक्वं जयेत् तैलं बाधिर्यं कर्णनादकम्।। 144।।**

अपामार्ग के क्षार के जल से अपामार्ग के क्षार का कल्क बनायें, फिर इससे तेल का पाक करें। तह तेल बाधिर्य तथा कर्णनाद को नष्ट करता है।

### शम्बूक तैल

**शम्बूकस्य तु मांसेन पचेत् तैलं तु सार्षपम्।**
**तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति।। 145।।**

शम्बूक (घोंघा या शंख) के कीड़ों के कल्क से सरसों का तैल पकायें। इसे कान में डालने मात्र से कर्णनाड़ी (कर्णस्राव या कान का नासूर) शान्त हो जाती है।

### कर्णस्रावहर योग

**चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरसमेव च।**
**कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह।। 146।।**
**तिन्दुकान्यभया लोध्रः समङ्गा चामलक्यपि।**
**ज्ञेयाः पञ्च कषायास्तु कर्णेऽस्मिन् भिषग्वरैः।। 147।।**

पञ्चकषाय द्रव्यों का चूर्ण, कैथ का रस तथा मधु इन सभी को मिलाकर कान में डालने से कणस्राव शान्त हो जाता है। इस कार्य के लिए निम्नलिखित पाँच द्रव्य 'पञ्चकषाय' कहे जाते हैं–1 तेन्दू, 2. हरड़, 3. लोध, मजीठ और 5. आँवला।

**स्वर्जिका योग**

**स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत्।**
**कर्णस्रावरुजादाहाः प्रणश्यन्ति न संशय।। 148।।**

सज्जीखार का चूर्ण बिजौरा के रस में मिलाकर कान में डालने से कान का स्राव, पीड़ा तथा दाह शान्त हो जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

**आम्रादि तैल**

**आम्रजम्बूप्रवालानि मधूकस्य वटस्य च।**
**एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशान्तिकृत्।। 149।।**

आम, जामुन, महुआ तथा बरगद इनके प्रवालों (कोमल पत्तों) का कल्क डालकर सिद्ध किया हुआ तेल पूतिकर्ण (कान में से दुर्गन्धित पीब का निकलना) नामक रोग को शान्त कर देता है।

**कर्णकीटहर योग ( 1 )**

**पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च।**
**अथवा सार्षपं तैलं कर्णकीटहरं परम्।। 150।।**

हरिताल को गोमूत्र में पीसकर अथवा केवल सरसों का तैल कान में डालने से कान के क्रिमि नष्ट हो जाते हैं।

**कर्णकीटहर योग ( 2 )**

**स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा।**
**त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छूजटारसम्।। 151।।**
**कृत्वैकत्र क्षिपेत् कर्णे कर्णकीटहरं परम्।**
**( धूपनं कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलः श्रेष्ठ उच्यते।। 152।। )**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां**
**शार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे**
**लेपमूर्धतैलकर्णपूरणविधिर्नामैकादशोऽध्यायः।। 11।।**

सहिजन की जड़ का रस, सूर्यावर्त (हुलहुल) का रस, त्रिकटु का चूर्ण तथा किवाँच की जड़ का रस इन सबको एक साथ मिलाकर कान में डालने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। कान से दुर्गन्धि आने पर गुग्गुलु की धूप देना उत्तम होता है।

**वक्तव्य**–उक्त दो योग कान में उत्पन्न हुये क्रिमियों को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। यदि बाहर से कोई क्रिमि कान में चला जाये तो केवल जल से कान को भर देना चाहिये। इससे क्रिमि शीघ्र ही बाहर निकल आता है फिर कान में भरे हुये उस जल के गर्दन टेढ़ी करके गिरा दें और उसे रुई के फाहे से पोंछ दें। प्रायः देखा गया है कि आजकल आयुर्वेदीय पद्धति से चिकित्सा करने वाले चिकित्सक आँख, कान, नाक तथा गला आदि के रोगों की उपेक्षा किये रहते हैं। यह प्रवृत्ति आयुर्वेद के लिए अपमानजनक है। आप ध्यान दें, आयुर्वेद में उक्त अवयवों में होने वाले रोगों की अचूक चिकित्सायें भरी पड़ी हैं, आवश्यकता है केवल भारतीय हृदय से अपने आयुर्वेदीय साहित्य का पर्यवेक्षण करने की, और उसके सही उपादानों को लेकर उन-उन योगों के विधिवत् निर्माण-प्रयोग तथा उसके प्रतिफल को धैर्यपूर्वक देखने एवं सुनने की। फिर आप देखेंगे कि धन और सुयश आपके कदम चूमा करेंगे।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।। 11।।
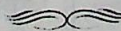
द्वादशोऽध्यायः

# शोणितस्रावविधिः

### रोगानुसार रक्त-निर्हरण

**शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च।**
**प्रस्थं प्रस्थार्धकं वापि प्रस्थार्धार्धमथापि वा।।1।।**

रोग का भली-भाँति विचार कर ही रोगी का रक्त निकालना उचित होता है। रक्त एक प्रस्थ (13।। पल या 54 तोला), आधा प्रस्थ (27 तोला) अथवा चौथाई प्रस्थ (13।। तोला) ही निकालना उचित है।

### रक्त-निर्हरण काल तथा लाभ

**शरत्काले स्वभावेन कुर्याद् रक्तस्रुतिं नरः।**
**त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः।।2।।**

स्वभावतः शरद् ऋतु (आश्विन-कार्तिक) में रक्तस्राव करवाना चाहिये, क्योंकि इस समय रक्तस्राव से त्वचा के रोग, ग्रथियों के रोग तथा शोथ आदि रोग उत्पन्न नहीं होते।

**वक्तव्य**—सम्भवतः इसी सिद्धान्त के अनुसार ही रक्तसार मनुष्य (सीमाप्रान्त के निवासी पठान जाति के लोग) प्रतिवर्ष शरद् ऋतु (आश्विन तथा कार्तिक) में रक्त निकलवाते हैं।

### शुद्ध तथा अशुद्ध रक्त का लक्षण

**मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु।**
**शोणितं स्निग्धविस्रं स्याद् विदाहश्चास्य पित्तवत्।।3।।**

**विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा।**
**भूम्यादिपञ्चभूतानामेते रक्तगुणाः स्मृताः।।4।।**

शुद्ध रक्त का रस मधुर उसका वर्ण लाल तथा वह समशीतोष्ण होता है (शरीर के भीतर उसका तापमान प्रायः 100 डिग्री होता है) और गुरु (जिस पात्र में जल 100 तोले आ सकता है, उसमें रक्त 1055 तोला आ जाता है) होता है। वह स्निग्ध (स्नेह युक्त) और विस्र (एक विशेष प्रकार की आम गन्ध से युक्त) होता है। इसका विदाह पित्त के समान (खट्टा) होता है। रक्त में भूमि आदि पञ्चमहाभूतों के गुण पाये जाते हैं। यथा—1. विस्रता-एक प्रकार की गन्ध जो भूमि का गुण है, 2. द्रवता अर्थात् पतलापन जो जल का गुण है, 3. राग (रक्तता) जो अग्नि का गुण है, 4. चलन (गति) जो वायु का गुण है और 5. विलय (विलीन हो जाना) जो आकाश का गुण है।

**वक्तव्य**—रक्त पाँचभौतिक होता है, क्योंकि इसमें पाँचों महाभूतों के तत्त्वों को सत्ता पायी जाती है। रक्त का रस कुछ नमकीन भी होता है।

### रक्तदुष्टि के लक्षण

**रक्ते दुष्टे वेदना स्यात् पाको दाहश्च जायते।**
**रक्तमण्डलता कण्डूः शोथश्च पिटिकोद्गमः।।5।।**

रक्त के दुष्ट (विकृत) हो जाने पर वेदना (पीड़ा), पाक (उन-उन अवयवों का पक जाना), दाह, लाल-लाल चकत्ते निकलना, कण्डू (खुजली), शोथ (सूजन) तथा फुन्सियों का निकलना-ये लक्षण होते हैं।

### रक्तवृद्धि के लक्षण

**वृद्धे रक्ताङ्गनेत्रत्वं शिराणां पूरणं तथा।**
**गात्राणां गौरवं निद्रा मेदो दाहश्च जायते।।6।।**

रक्त के बढ़ जाने पर शरीर पर तथा नेत्रों में रक्तता (सुर्खी), शिराओं में पूर्णता, शरीर में भारीपन, नींद की अधिकता, मद (नशा) तथा दाह-ये लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

### रक्तक्षय के लक्षण

**क्षीणेऽम्लमधुराकाङ्क्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता।**
**शैथिल्यं च शिराणां स्याद् वातादुन्मार्गगामिता।।7।।**

रक्त के घट जाने पर खट्टे तथा मीठे पदार्थों को खाने की अभिलाषा, मूर्च्छा, त्वचा में रूखापन, शिराओं में शिथिलता और वायु का उन्मार्गगामी अर्थात् कुपित हो जाना-ये लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

**वक्तव्य**—उक्त लक्षणों को देखकर रक्त के बिगड़ने तथा घटने का निश्चय कर तदनुसार उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

**वातदूषित रक्त के लक्षण**

**अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम्।**
**अस्कन्दि सूचिनिस्तोदि रक्तं स्याद् वातदूषितम्।। 8।।**

वायु से दूषित रक्त अरुण (कालापन लिये लाल), फेनिल (झागवाला), रूक्ष (उचित स्निग्धता से रहित), परुष (खरखरा), तनु (पतला), शीघ्रगामी (अधिक गतिशील), अस्कन्दी (देर से जमने वाला) तथा सूची निस्तोदी (सुई के चुभने की-सा पीड़ा करने वाला) होता है।

**पित्तदूषित रक्त के लक्षण**

**पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम्।**
**अस्कन्द्युष्णं मक्षिकाणां पिपीलानामनिष्टकम्।। 9।।**

पित्त से दूषित रक्त पीला हरा नाला काला दुर्गन्धियुक्त न जमने वाला, उष्ण तथा चींटियों तथा मक्खियों का अप्रिय होता है।

**कफदूषित रक्त के लक्षण**

**शीतलं बहलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम्।**
**मांसपेशीप्रभं स्कन्दि मन्दगं कफदूषितम्।। 10।।**

कफ से दूषित रक्त शीत (इसमें रक्त का ताप सौ 100 डिग्री से घट जाता है), बहल (गाढ़ा), स्निग्ध (अधिक स्निग्ध), गेरू घुले हुये जल जैसा, मांसपेशियों जैसा, शीघ्र जमने वाला तथा मन्दगामी होता है।

**द्विदोष तथा त्रिदोष से दूषित रक्त के लक्षण**

**द्विदोषदुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगन्धकम्।**
**सर्वलक्षणसंयुक्तं काञ्जिकाभं च जायते।। 11।।**

दो-दो दोषों से दूषित रक्त में दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण पाये जाते हैं, तीन दोषों से दूषित रक्त अत्यन्त दुर्गन्धियुक्त तथा सभी दोषों के उक्त लक्षणों से युक्त तथा काँजी जैसा होता है।

**वक्तव्य**—यहाँ दो-दो दोषों का नामतः उल्लेख नहीं किया गया है, अतः आप रक्त परीक्षणकाल में दोषों का नाम-निर्धारण स्वयं कर लें।

**विषदूषित रक्त के लक्षण**

**विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा।**
**विस्रं काञ्जिकसङ्काशं सर्वकुष्ठकरं बहु।। 12।।**

विष से दूषित रक्त काला, नाक से निकलने वाला, दुर्गन्धियुक्त, काँजी जैसा, सभी प्रकार के कुष्ठों का उत्पादक तथा मात्रा में अधिक होता है।

**शुद्ध रक्त के लक्षण**

**इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम्।**

बीरबहूटी की कान्ति वाला तथा असंहत (तरल या ग्रन्थियों से रहित) रक्त शुद्ध होता है।

**वक्तव्य**—यहाँ पर शुद्ध रक्त के लक्षणों की परिचायिका एक पंक्ति इस प्रकार उपलब्ध होती है। यथा—'गुञ्जाफलसवर्णं पद्मालक्तकसन्निभम्'। अर्थात् गुंजाफल के सदृश वर्ण वाले, लाल कमल तथा लाक्षारस के समान वर्ण वाले रक्त को प्रकृतिस्थ (शुद्ध) समझना चाहिये। विशेष अध्ययन के लिये देखे—च० सू० अ० 24 तथा सु० सू० अ० 14।

**रक्तस्राव के योग्य रोग**

**शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ।। 13।।**
**वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले।**
**पाणिरोगे श्लपिदे च विषदुष्टे च शोणिते।। 14।।**
**ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमन्थिषु।**
**विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे।। 15।।**
**रक्ताभिष्यन्दतन्द्रायां पूतिघ्राणास्यदेहके।**
**यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिटिकोद्गमे।। 16।।**
**कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजि।**
**उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते।। 17।।**

शोथ (व्रणशोथ), दाह, अंगपाक (किसी अवयव का पाक होना) रक्तवर्ण के रक्तस्राव (लोहितस्राव में नहीं), वातरक्त कुष्ठ पीड़ायुक्त दुःसाध्य वातरोग, पाणिरोग (बाहुरोग), श्लीपद, विषदूषित रक्त, ग्रन्थि, अर्बुद, अपची तथा क्षुद्र रोगों, रक्तजनित अधिमन्थ (नेत्ररोग विशेष), विदारी (प्लेग की ग्रन्थि), स्तन रोगों की शिथिलता तथा भारीपन, रक्तजनित अभिष्यन्द (दुःखती आँख), तन्द्रा, नाक, मुख तथा शरीर से दुर्गन्धि आने पर, यकृत् विकार, प्लीहावृद्धि, विसर्प विद्रधि, फुन्सियों के उत्पन्न होने, कान, ओठ, नाक एवं मुखपाक, दाह, शिरोरोग, उपदंश तथा रक्तपित्त में रक्तस्राव कराना प्रशस्त (हितकर) है।

**वक्तव्य**—उक्त पाठ में दाह शब्द दो बार आया है। अतः एक दाह का अर्थ विदाह है, देखें—'विदाहश्चान्नपानस्थः' च० सू० अ० 24 श्लोक 13। उक्त श्लोकों को च० सू० अ० 24 तथा सु० सु० अ० 20 में देखें।

### रक्तस्राव की विधियाँ

**एषु रोगेषु शृङ्गैर्वा जलौकालाबुकैरपि।**
**अथवाऽपि शिरामोक्षैः कुर्याद् रक्तस्तुतिं नरः।। 18।।**

उक्त रोगों में शृंग (सिंगी) से, जलौका (जोंक) से, अलाबू (तुम्बी या गिलास) से अथवा सिरावेध से रक्तस्राव करें।

### किनका रक्त नहीं निकालना चाहिये

**न कुर्वीत सिरामोक्षं कृशस्यातिव्यवायिनः।**
**क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतिकापाण्डुरोगिणाम्।। 19।।**
**पञ्चकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम्।**
**सर्वाङ्गशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम् ।। 20।।**
**छर्दतीसारदुष्टानामतिस्विन्नतनोरपि ।**
**ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च।। 21।।**
**आघातस्त्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते।**
**एषां चात्ययिके रोगे जलौकाभिस्तु निर्हरेत्।। 22।।**
**तथा च विषदुष्टानां शिरामोक्षोऽपि शस्यते।**

निम्नलिखित व्यक्तियों का शिरावेध (शिरामोक्ष) नहीं करना चाहिये-कृश, अतिमैथुनशील, नपुंसक, भीरु (डरपोक), गर्भवती, प्रसूता, पाण्डुरोगी जो पञ्चकर्म (वमन, विरेचन, नस्य, निरूहण, अनुवासन) से शुद्ध हो चुका है जिसने स्नेहपान किया है, जो अर्शोरोग, सर्वाङ्गशोथ, उदररोग, श्वास, कास, कै एवं अतिसार से पीड़ित हो, जिसको अत्यन्त स्वेदन हो चुका हो, जिसकी अवस्था सोलह से कम और सत्तर से अधिक हो और जिसका चोट लगने के कारण रक्त निकल गया हो। यदि इन रोगियों का रक्त निकालना अत्यन्त आवश्यक हो तो इनका रक्त जोंक से निकालना चाहिये और यदि ये लोग विष से पीड़ित हों तो 'सिरावेध' भी प्रशस्त है।

**वक्तव्य**—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उक्त व्यक्तियों का 'सिरावेध' करना उचित नहीं है, तथापि विशेष परिस्थित में इनका भी जोंक द्वारा रक्त निकाला जा सकता है और विष-विकारों में तो सिरामोक्ष भी किया जा सकता है।

### रक्तस्रावण यन्त्र

**गोशृङ्गेण जलौकाभिरलाबुभिरपि त्रिधा।। 23।।**
**वातपित्तकफैर्दुष्टं शोणितं स्त्रावयेद् बुधः।**
**द्विदोषाभ्यां तु सन्दुष्टं त्रिदोषैरपि दूषितम्।। 24।।**
**शोणितं स्त्रावयेद् युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा।**

विद्वान् चिकित्सक वायु से दूषित रक्त को गोशृंग (सिंगी) से, पित्त से दूषित रक्त को जोंक से तथा कफ से दूषित रक्त को अलाबू (तुम्बी) से निकालें और द्विदोष तथा त्रिदोष से दूषित रोगियों का युक्तिपूर्वक सिरामोक्ष अथवा पद (पच्छ) से रक्तस्राव करें।

### शृंग आदि द्वारा रक्तस्रावण

**गृह्णाति शाणितं शृङ्गं दशाङ्गुलमितं बलात्।। 25।।**
**जलौका हस्तमात्रं तु तुम्बी च द्वादशाङ्गुलम्।**
**पदमङ्गुलमात्रस्य शिरा सर्वाङ्गशोधिनी।। 26।।**

शृंग (सिंगी) दस अंगुल तक के रक्त को, जोंक एक हाथ (24 अंगुल) तक के रक्त को, तुम्बी बारह अंगुल तक के रक्त को तथा पद (पच्छ) एक अंगुल तक के रक्त को निकाल देता है और सिरावेध सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध कर देता है अर्थात् सम्पूर्ण शरीर के अशुद्ध रक्त को निकाल देता है।

**वक्तव्य**—रक्तस्राव के सिंगी, जौंक, तुम्बी आदि साधनों द्वारा शरीर के उन-उन अवयवों से जो रक्तविकार से पीड़ित हैं रक्त निकलवाना चाहिये और सम्पूर्ण शरीरगत रक्तविकार ये सिरावेध कराना आवश्यक है। शरीर के भीतरी अवयवों (हृदय, मस्तिष्क आदि) जिनमें उक्त साधन प्रयुक्त नहीं किये जा सकते हैं, उनमें सिरावेध का ही प्रयोग करना चाहिये।

### रक्तस्राव के अयोग्य काल एवं रोगी

**शीते निरन्ने मूर्च्छायां तन्द्राभीतिमदश्रमैः।**
**युतानां न स्त्रवेद् रक्तं तथा विण्मूत्रसङ्गिनाम्।। 27।।**

शीतकाल में, भोजन न करने पर अर्थात् भूखे मनुष्य का, मूर्च्छा में और तन्द्रा, भय, मद तथा श्रम (थकावट) से युक्त मनुष्यों का, पुरीष तथा मूत्र के निरोध से पीड़ित मनुष्यों का रक्त उचित रूप से नहीं निकलता है।

### रक्तस्रावकारक उपाय

**अप्रवर्तितरक्ते च कुष्ठत्रिकटुसैन्धवैः।**
**मर्दयेद् व्रणवक्त्रं च तेन सम्यक् प्रवर्तते।। 28।।**

यदि उचित रूप से रक्तस्राव न हो तो व्रण (घाव जो कि रक्तस्राव कराने के लिए किया गया है) के मुख को कूठ, त्रिकटु एवं सेंधा नमक के चूर्ण से मर्दन करें। ऐसा करने से रक्त भली-भाँति निकलने लगता है।

### रक्तस्राव का समय

**तस्मान्न शीते नात्युष्णे न स्विन्ने नातितापिते।**
**पीत्वा यवागूं तृप्तस्य स्त्रावयेच्छोणितं बुधः।। 29।।**

इसलिये न शीतकाल, न अत्यन्त उष्णकाल, न स्वेदन

होने पर और न ही शरीर के अत्यन्त सन्तप्त होने पर रक्तस्राव कराना उचित है। इससे विपरीत दशा में भी 'यवागू' पिलाकर रक्तस्राव कराना चाहिये।

रक्तातिस्राव-परिहार

**अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात्।**
**अतिप्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात् प्रतिक्रियाम्।।30।।**

अत्यन्त स्वेदन होने पर तथा उष्णकाल में तथा सिरा के अधिक कट जाने से रक्त अधिक निकलने लगता है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित प्रतिकार (उपाय) करना चाहिये।

रक्त की अतिप्रवृत्ति में चिकित्सा

**अतिप्रवृत्ते रक्ते च लोध्रसर्जरसाञ्जनैः।**
**यवगोधूमचूर्णैर्वा धवधन्वनगैरिकैः।।31।।**
**सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः।**
**मुखं व्रणस्य बध्वा च शीतैश्चोपचरेद् व्रणम्।।32।।**
**विध्येदूर्ध्वं शिरां तां च दहेत् क्षारेण वाग्निना।**

रक्त की अतिप्रवृत्ति होने पर लोध, राल और रसवत के चूर्ण से अथवा जौ, तथा गेहूँ के चूर्ण से अथवा धाय के फल, धामिन तथा गेरू के चूर्ण से अथवा साँप की केंचुली के चूर्ण से अथवा रेशमी तथा सूती वस्त्र की भस्म से व्रण के मुख को अवचूर्णित करें अर्थात् उक्त चूर्णों की व्रण पर बुरक दें अथवा व्रण पर कपड़े की गद्दी रखकर बाँध दें अथवा शीतद्रव्यों (शीतल जल तथा बर्फ आदि) से उपचार करें अथवा (इतने पर भी रक्त न रुके तो) उसी। को थोड़ी दूर ऊपर से वेध दे अथवा क्षार से या अग्नि से सिरा का दाह कर दें।

रक्तरोधन के उपाय

**व्रणं कषायः सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम्।।33।।**
**व्रणास्यं पाचयेत् क्षारो दाहः सङ्कोचयेच्छिराम्।**

कषायरस (युक्त द्रव्य) व्रण का सन्धान (घाव को बन्द) कर देता है, शीत द्रव्य रक्त को जमा देता है, क्षार घ्रण के मुख को पका देता है और दाह शिरा को संकुचित कर देता है। इन क्रियाओं से रक्त रुक जाता है।

अग्निदाह-विधि

**वामाण्डशोथे दक्षस्य करस्याङ्गुष्ठमूलजाम्।।34।।**
**देहेच्छिरां व्यत्यये तु वामाङ्गुष्ठशिरां दहेत्।**
**शिरादाहप्रभावेण मुष्कशोथः प्रणश्यति।।35।।**
**विषूच्यां पार्ष्णिदाहेन जायतेऽग्नेः प्रदीपनम्।**
**सङ्कुचन्ति यतस्तेन रसश्लेष्मवहाः शिराः।।36।।**

**यदा वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नोः शिशोः सञ्जायतेऽसृजः।**
**तदा तत्स्थानदाहेन सङ्कुचन्त्यसृजः शिराः।।37।।**

अण्डवृद्धि वाले रोगी के यदि बायें अण्डकोश में सूजन हो तो दाहिने हाथ के अँगूठे के मूल की शिरा पर और यदि दाहिने अण्डकोश में सूजन हो तो बायें अँगूठे के मूल की शिरा पर दाहकर्म करें। सिरादाह के प्रभाव से शीघ्र ही अण्डकोश का शोथ नष्ट हो जाता है। विसूची (हैजा) में पार्ष्णि (एड़ी) में दाहकर्म करने से अग्नि दीप्त हो जाती है, क्योंकि इससे रस तथा कफ के वहने वाली सिरायें संकुचित हो जाती हैं। जब किसी बालक के यकृत् तथा प्लीहा रक्त के दोष से बढ़ जाते हैं तो उस स्थान (यकृत् तथा प्लीहा) पर दाहकर्म करने से रक्तवाही सिरा सकुचित हो जाती है। जिसके कारण यृकत् और प्लीहा भी संकुचित होकर अपने वास्तविक रूप को धारण कर लेते हैं।

**वक्तव्य**–आजकल बड़े-बड़े नगरों में चिकित्सा करने वाले पढे-लिखे चिकित्सक भी दाह कर्म को नहीं कर रहे हैं। उन्हें चाहिये कि चिकित्साशास्त्र के इस महत्त्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध कर्म को पुनः प्रारम्भ कर आयुर्वेद की इस देन का यथासम्भव प्रचार करें। हर्ष का विषय है कि देहातों में रहने वाले परम्परागत ग्रामीण वैद्य इस दाहकर्म को आज भी सफलतापूर्वक करते हैं। इस अग्निकर्म को 'गुल लगाना' भी कहते हैं। इसमें लोहे की सलाई अथवा ताँबे के पैसे अथवा सोने की सलाई को तपाकर उचित स्थान पर लगा देते हैं, जिससे फफोला उठता है और दो-तीन दिन में फूट कर निकल जाता है और रोग शान्त हो जाता है। किन्तु इसके लिए यथाविधि कर्माभ्यास अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये। देखें–सु० सू० अ० 12।

अधिक रक्तस्राव का निषेध

**रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति।**
**अतः स्राव्यं सावशेषं रक्तं नातिक्रमो हितः।।38।।**
**आन्ध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजम्।**
**पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहं च पाण्डुताम्।।39।।**
**कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च।**

दूषित रक्त के कुछ अवशिष्ट रह जाने पर भी व्याधि का प्रकोप (वृद्धि) नहीं होता है, इसलिये सावशेष (कुछ शेष रखकर) रक्तस्राव कराना उचित होता है, क्योंकि रक्तस्राव विधि में अतिक्रम (अतियोग) हितकर नहीं होता। रक्त के

अधिक निकल जाने से अन्धापन, आक्षेपक, तृष्णा, तिमिर (धुन्ध), शिरोरोग, पक्षावात, श्वास कास, हिक्का, दाह एवं पाण्डुरोग उत्पन्न हो सकता है अथवा मृत्यु भी हो जाती है।

**वक्तव्य**–रक्त को निकालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह मात्रा से अधिक न निकले। यदि थोड़ा शेष भी रह जाता है, तो वह बाद में संशमन-क्रिया द्वारा शुद्ध कर लिया जा सकता है। उसके अधिक निकल जाने पर उक्त रोगों के होने की सम्भावना रहती है तथा मृत्यु भी हो सकती है।

### रक्त का महत्त्व

**देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते।। 40।।**
**विना तेन व्रजेज्जीवो रक्षेद् रक्तमतो बुधः।**

रक्त से ही शरीर की उत्पत्ति होती है। रक्त से ही शरीर का धारण तथा पोषण होता है। रक्त के बिना जीव भी चला जाता है। इसलिये रक्त की रक्षा अवश्य करनी चाहिये।

**वक्तव्य**–महर्षि सुश्रुत ने तो रक्त को स्पष्ट शब्दों में 'जीव' कहा है। यथा–रक्तं जीव इति स्थितिः'। देखें–सु० सू० अ० 14।

### रक्तस्रावजनित दोष का प्रतिकार

**शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते।। 41।।**
**कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत्।**
**क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ।। 42।।**
**रसः समुचितः पाने क्षीरं वा षष्ठिका हिताः।**

रक्त निकलने पर शीतक्रिया करने से वायु कुपित हो जाता है, जिससे सिरावेध के व्रण में शोथ तथा पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। इस दशा में व्रण पर गुनगुने घृत का सेचन करना चाहिये, इससे पीड़ा शान्त हो जाती है। क्षीण मनुष्य को काला हरिण, खरगोश, उरभ्र (भेड़ा) हीरण तथा बकरे के मांस का रस पीने के लिए देना चाहिये। अथवा इसमें दूध तथा साठी के चावल भी लाभदायक होते हैं।

### रक्तस्राव का फल

**पीडाशान्तिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसङ्क्षयः।। 43।।**
**मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यग्विस्राविते‍ऽसृजि।**

उचित रूप से रक्तस्राव हो जाने पर पीड़ा की शान्ति शरीर में लघुता, व्याधि के उद्रेक (वृद्धि या दौरा) का क्षय और मन को स्वस्थता (उन्माद आदि मानसिक रोगों की शान्ति) ये लक्षण होते हैं।

### रक्तमोक्षण में अपथ्य

**व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् ।। 44।।**
**एकाशनं दिवास्वप्नं क्षाराम्लकटुभोजनम्।**
**शोकं वादमजीर्णं च त्यजेदाबलदर्शनात्।। 45।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायाम् उत्तरखण्डे शोणितस्रावविधिर्नाम द्वादशोऽध्यायः।। 12।।**

रक्तस्राव के पश्चात् जब तक स्वाभाविक बल उत्पन्न न हो जाये तब तक व्यायाम, मैथुन, क्रोध, शतिल जल से स्नान, प्रवात, एक समय का भोजन (दिनभर में केवल दो समय खाना चाहिये), ये दिवास्वप्न (दिन में सोना) क्षार, अम्ल तथा कटु पदार्थों का सेवन, शोक, वाद (अधिक बोलना) तथा अजीर्ण का परित्याग करना चाहिये।

**वक्तव्य**–सिरावेध का विशद वर्णन सु०शा०अ० 8 में किया गया है। उनमें से कतिपय बातें यहाँ कही जा रही हैं। रक्तस्राव की सभी क्रियाओं को उन लोगों के सम्पर्क में रहकर सीखना चाहिये जो इन क्रियाओं को सदैव किया करते हैं। यथा-सिंगी या तुम्बी का प्रयोग प्रायः नीच जाति के लोग सफलतापूर्वक करते हैं। सिरावेध में यूनानी-पद्धति के चिकित्सक तथा प्रच्छन (पच्छ) लगाने में भारतीय नाई अधिक कुशल देखे जाते हैं। सिंगी लगाने वाले गाय के सींग को भीतर से साफ करके उसके शिर में एक छोटा-सा छिद्र बना लेते हैं। इसको उचित स्थान पर रखकर मुख से चूसते हैं, और तत्काल उस छिद्र को मकड़ी के जाला से बन्द कर उसे 15-20 मिनट लगा रहने देते हैं, फिर हटा लेते हैं। इसी प्रकार रुग्ण स्थान पर सिंगियों का प्रयोग किया जाता हे। इसको कच्ची सिंगी कहा जाता है। इस सिंगी से उक्त स्थान की दूषित वायु खींच ली जाती हैं, जिससे वातजनित पीड़ा शान्त हो जाती है। एक पक्की सिंगी होती है, इसमें पहले कच्ची सिंगी लगाकर उस स्थान की वायु खींचकर फिर उस स्थान पर उस्तरा से पच्छ लगा (छील) कर इस सिंगी द्वारा रक्त निकाल लिया जाता है।

**तुम्बी प्रयोग विधि**–पीड़ा युक्त स्थान पर दीपक रख कर और उसके ऊपर तुम्बी अथवा गिलास आदि का मुख नीचे की ओर करके उसे गरम किया जाता है। जब पर्याप्त गरम हो जाता है तो उसे हटा देते हैं। इस विधि से भी वेदना का शमन तथा रक्तनिर्हरण किया जाता है।

**जलौका प्रयोग**–जोंक को पीड़ायुक्त स्थान में लगाया जाता है। वह रक्त को चूस लेती है। जिससे वेदना शान्त हो जाती है। देखें–सु० सू० अ० 13।

**सिरावेध**–इसके विषय में स्मरणीय है, कि यदि मस्तक प्रदेश की पीड़ा को शान्त करने के लिए सिरावेध करना हो तो ग्रीवा में और कूर्पर सन्धि (कोहनी) में करना हो तो प्रगण्ड में बन्धन देकर यह कार्य किया जाता है, जिससे सिरा उठ जाये। उस उठी हुई सिरा का वेध कुठारिका नामक शस्त्र (नस्तर) से कर दिया जाता है, जिससे रक्त की धार निकलने लगती है। शल्यतन्त्र में सिरावेध को आधी चिकित्सा कहा गया है। इसी से इस चिकित्सा के महत्त्व का आकलन किया जा सकता है।

खेद है, कि आज आयुर्वेद के पिछड़ने में आयुर्वेद के उपासकों का ही सबसे बड़ा हाथ है। आप ध्यान दें! जिस प्रकार शल्यतन्त्र में 'शिरावेध' को आधी चिकित्सा कहा गया है, अर्थात् अन्य चिकित्सा-विधियाँ एक ओर और 'शिरावेध' एक ओर। ऐसी ही एक चिकित्सा-विधि 'दाहकर्म' भी है। इसी प्रकार कायचिकित्सा-प्रधान चरकसंहिता ग्रन्थ के सिद्धिस्थान में 'वस्तिचिकित्साविधि' को कुछ आचार्य सम्पूर्ण चिकित्सा तथा कुछ आधी चिकित्सा कहते हैं। किन्तु हम आयुर्वेद के पक्षधर आज इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण चिकित्सा-विधियों की उपेक्षा कर अपना और अपने सर्वांगपूर्ण आयुर्वेद का उपहास करा रहे हैं। आशा है, अगली पीढ़ी इस ओर सक्रिय ध्यान देगी।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका-व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का बारहवाँ अध्याय समाप्त।। 12।।

## त्रयोदशोऽध्यायः

# नेत्रप्रसादनविधिः

### नेत्ररोगनाशक उपचार

**सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा।**
**पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्।।1।।**

निम्नलिखित सात कल्पों (विधियों) से नेत्ररोगों का उपचार (चिकित्सा) करना चाहिये–1. सेक, 2. आश्च्योतन, 3. पिण्डी, 4. विडाल, 5. तर्पण, 6. पुटपाक तथा 7. अञ्जन।

**वक्तव्य**–रक्तमोक्षण, विधि का वर्णन करने के पश्चात् अब हम नेत्ररोगों की चिकित्सा की विविध विधियों का वर्णन करेंगे। ऊपर कहे गये सात कल्पों का परिचय भी आगे दिया जायेगा।

### सेचन–विधि

**सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः।**
**मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलात्।।2।।**
**स चापि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः।**
**लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राऽधुनोच्यते।।3।।**
**षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे।**
**वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि।।4।।**
**कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे।**

सम्पूर्ण नेत्रव्यापी (अभिष्यन्द आदि) रोगों में 'सेक' या सेचन किया जाता है। इसकी विधि यह है–रोगी मनुष्य की निमीलित (बन्द की हुई) आँख या आँखों पर किसी भी उपयुक्त द्रव की सूक्ष्म धाराएँ चार अंगुल ऊपर से गिरायी जाती हैं और वह द्रव वातज रोगों में स्नेहन, रक्तज तथा पित्तज रोगों में रोपण तथा कफज रोगों में लेखन होना चाहिये।

अब उसकी मात्रा कही जा रही है–स्नेहन द्रवों का सेक या सेचन छः सौ वाक् मात्रा परिमित समय (लगभग 20 मिनट) तक, रोपण द्रवों का सेक चार सौ वाक्–मात्रा परिमित (लगभग 15 मिनट) तक तथा लेखन द्रवा का सेक तीन सौ वाक्–मात्रा परिमित (लगभग 10 मिनट) तक करना चाहिये। यह सेक दिन में करना चाहिये, किन्तु अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर रात्रि में भी किया जा सकता है।

### वाताभिष्यन्द पर सेचन (1)

**एरण्डत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम्।।5।।**
**सुखोष्णं सेचनं नेत्रं वाताभिष्यन्दनाशनम्।**

एरण्ड की छाल अथवा पत्ते अथवा जड़ के साथ पकाया हुआ बकरी के सुखोष्ण (गुनगुना) दूध का आँखों पर सेचन करने से वातजनित अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है।

### वाताभिष्यन्द पर सेचन (2)

**परिषेको हितो नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम्।।6।।**
**रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम्।**
**वाताभिष्यन्दशमनं हितं मारुतपर्यये।।7।।**
**शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं सदा।**

सेंधा नमक मिश्रित बकरी का दूध अथवा हल्दी, देवदारु, सेंधा नमक से युक्त गर्म किये हुये बकरी के दूध का सेचन करने से 'वातविपर्यय' नामक नेत्ररोग में लाभ होता है। यह वायु के अभिष्यन्द को शान्त करता है और 'शुष्काक्षिपाक' नामक नेत्ररोग में भी उक्त सेचन सर्वदा हितकर होता है।

### वाताभिष्यन्द सेचन (3)

**साबरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम्।।8।।**
**छागीक्षीरे घृतं सेकात् पित्तरक्ताभिघातजित्।**

लोध अथवा मुलेठी को समान भाग में लेकर चूर्ण बनाकर उसे घी में भूनकर बकरी के दूध में भिगा दें, थोड़ी देर (2–3 घण्टा) के बाद मलकर दूध छान लें। इस दूध का सेचन करने से पित्त तथा रक्त का अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

रक्ताभिष्यन्द पर सेचन ( 1 )

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ।। 9 ।।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ।

त्रिफला, लोध, मुलेठि, खाँड तथा नागरमोथा को पीसकर जल में भिगा दें, फिर जल को छानकर आँखों पर सेक करें। उससे रक्तजनित अभिष्यन्द का नाश हो जाता है।

रक्ताभिष्यन्द सेचन ( 2 )

लाक्षामधुकमञ्जिष्ठालोध्रकालानुसारिवाः ।। 10 ।।
पुण्डरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ।

लाख, मुलेठी, मजीठ, लोध, कालीसारिवा तथा कमल इन द्रव्यों को पीसकर जल में भिगा दें, फिर छानकर सेक करें। इससे भी रक्तजनित अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है।

**वक्तव्य**—उक्त योगों का प्रयोग दु:खती हुई आँखों पर करना चाहिये। ये योग आश्चर्यजनक लाभ करते हैं।

नेत्रशूलनाशक योग

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम् ।। 11 ।।
उष्णाम्बुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमम्बके ।

सफेद लोध को घी में भूनकर चूर्ण बनायें, फिर उष्ण जल में भिगोकर और मलकर कपड़े से छान लें। इस जल का आँख पर सेक करने से नेत्रशूल नष्ट हो जाता है।

आश्च्योतन-विधि

अथाश्च्योतनकं कार्यं निशायां न कथञ्चन ।। 12 ।।
उन्मीलितेऽक्ष्णि दृङ्मध्ये बिन्दुभिर्द्व्यङ्गुलाद्धितम् ।
बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः ।। 13 ।।
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ।
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ।। 14 ।।

रात्रि में आश्च्योतन कभी नहीं करना चाहिये। आश्च्योतन की विधि—उन्मीलित (खुली हुई) आँख में दृष्टि के मध्य में दो अंगुल ऊँचे से औषध द्रव की बूँदें टपकायी जाती हैं। बिन्दुओं की संख्या इस प्रकार है। यथा—लेखन द्रवों की आठ बूँदें, स्नेहन द्रवों की दस बूँदें और रोपण द्रवों की बारह बूँदें आँख में टपकानी चाहिये। शीतकाल में उक्त द्रवों को गुनगुना तथा उष्णकाल में शीतल करके डालना उचित है। यह सर्वसम्मत निश्चय है।

वातादि भेद से आश्च्योतन

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्च्योतनं हितम् ।। 15 ।।



वातजनित नेत्ररोगों में तिक्त एवं स्निग्ध, पित्तज नेत्ररोगों में मधुर एव शीतल तथा कफज रोगों में तिक्त, उष्ण एवं रूक्ष द्रव्यों का आश्च्योतन लाभदायक होता है।

आश्च्योतन का धारण काल

आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतं हिता ।
निमेषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्योश्छोटिकाऽथवा ।। 16 ।।
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ।

सभी प्रकार के आश्च्योतनों की मात्रा (धारणकाल) सौ वाक् परिमित (लगभग 4 मिनट) होती है। आँख का निमेषोन्मेष (बन्द करके खोलना) अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु (दीर्घ स्वर वाले) अक्षर का उच्चारण करना एक 'मात्रा' मानी जाती है।

आश्च्योतन के योग ( 1 )

बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः ।। 17 ।।
क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ।

बेल आदि पंचमूल (बेल, अरणी, सोनापाठा, षाढ़ल तथा गम्भार की छाल) तथा वनभण्टा, एरण्ड तथा सहजन का स्वाथ बनायें और गुनगुना होने पर आँख में टपकायें। यह वातजनित अभिष्यन्द को नष्ट करता है।

आश्च्योतन के योग ( 2 )

अम्बुपिष्टैर्निम्बपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ।। 18 ।।
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ।
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ।। 19 ।।

नीम के पत्तों को जल में पीसकर लोध की गीली या हरी छाल पर लेप कर दें, फिर उसे अग्नि में तपाकर और पीसकर रस निकाल लें। यह रस आँख में डालने से वातज, रक्तज तथा। पित्तज अभिष्यन्द नष्ट होता है।

आश्च्योतन के योग ( 3 )

त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ।
स्त्रीस्तन्याश्च्योतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ।। 20 ।।
क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ।

त्रिफला के रस का आश्च्योतन सभी प्रकार के अभिष्यन्दों को नष्ट करता है। स्त्री के दूध का आश्च्योतन रक्त, पित्त तथा वायु की पीड़ा को जीतता है। कच्चे दूध से निकाला हुआ घी अथवा दही से निकाला हुआ घी वातरक्त की पीड़ा को जीतता है।

### पिण्डिकाविधान

**पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः।।21।।**
**नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते।**
**अभिष्यन्देऽधिमन्थे च सञ्जाते श्लेष्मसम्भवे।।22।।**
**स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत्।**
**अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम्।।23।।**
**अशान्ते सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत्।**
**अभिष्यन्देषु सर्वेषु बध्नीयात् पिण्डिकां बुधः।।24।।**

पिण्डी तथा कवलिका ये दो नाम पोट्टली के हैं। इसकी विधि यह है–औषधि के चूर्ण की रेशमी कपड़े में बाँधकर 'नेत्राभिष्यन्द' (दुखती आँख) पर प्रयुक्त किया जाता है (इस पोट्टली को गुलाबजल अथवा जल में भिगाकर प्रयोग करते हैं) और यह व्रणों पर भी बाँधी जाती है। कफजनित अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ में शिर पर स्नेहन तथा स्वेदन करके तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा (नस्य देकर) शिरोविरेचन करना चाहिये और सभी प्रकार के अधिमन्थों में मस्तक की शिरा का वेध करें। यदि किसी प्रकार भी अधिमन्थ शान्त न हो तो भ्रू (भौंह) के ऊपर दाह क्रिया करे और सब प्रकार के अभिष्यन्दों में पिंडी का प्रयोग करें।

**वक्तव्य**–पिण्डी का प्रयोग अधिमन्थ रोग की सफल चिकित्सा है। देहातों में आज भी चिकित्सक इसका प्रयोग करते हैं।

### पिण्डी के योग (1)

**वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत्।**
**एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी।।25।।**

वातजनित अभिषन्द की शन्ति के लिए स्निग्ध तथा उष्ण द्रव्यों की पिण्डी उपयुक्त होती है और एरण्ड के पत्ते, मूल तथा छाल की बनायी हुई पिण्डी वातजनित अभिष्यन्द को नष्ट कर देती है।

### पिण्डी के योग (2)

**पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा।**
**महानिम्बफलोद्भूता पिण्डी वा पित्तनाशिनी।।26।।**

पित्तजनित अभिष्यन्द का नाश करने के लिए आँवलों की पिण्डी सुखद होती है और बकायन के फलों की पिण्डी भी पित्ताभिष्यन्द को नष्ट करती है।

### पिण्डी के योग (3)

**शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी।**
**निम्बपत्रकृता पिण्डी श्लेष्मपित्तहरा भवेत्।।27।।**

सहजन के पत्तों का पिण्डी कफजनित अभिष्यन्द को नष्ट करती है और नीम के पत्तों की पिण्डी कफजनित अभिष्यन्द को हरती है।

### पिण्डी के योग (4)

**त्रिफलापिण्डिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः।**
**पिष्ट्वा काञ्जिकतोयेन घृतभृष्टा च पिण्डिका।।28।।**
**लोध्रस्य हरति क्षिप्रमभिष्यन्दमसृग्भवम्।**
**शुण्ठी निम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा।।29।।**
**धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डूव्यथापहा।**

त्रिफला की पिण्डी कफपित्तजनित अभिष्यन्द को नष्ट करती है और लोध को काँजी में पीसकर एवं थोड़े से घी में तलकर बनायी हुईं पिण्डी रक्तजनित अभिष्यन्द को शीघ्र ही हरती है। सोंठ तथा नीम के पत्तों में थोड़ा सा नमक मिलाकर तथा सबको पीसकर तथा गर्मकर आँख के ऊपर रखने सेजन, खुजली तथा व्यथा का नाश होता है।

**वक्तव्य**–इन द्रव्यों की पोटली बाँधकर गुलाबजल अथवा जल में भिगोकर उससे बार-बार आँखों को भिगोते रहते हैं। इससे शीघ्र लाभ होता है।

### विडालक-विधि

**बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जितः।।30।।**
**तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत्।**

पक्ष्म (बरौनियों) को छोड़कर नेत्र के बहिर्भाग में वर्मों (पलकों) पर जो लेप किया जाता है, उसका नाम 'बिडालक' है। इसकी मात्रा (मोटाई तथा धारणकाल) मुखलेप के समान ही होती है।

### विडालक के योग (1)

**यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीताक्ष्यैः समांशकैः।।31।।**
**जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः।**

मुलेठी, गेरू, सेंधा नमक, दारुहल्दी तथा रसवत को समभाग लेकर और जल में पीसकर आँखों के बाहर (चारों ओर) लेप करने से नेत्रों में होने वाले (अभिष्यन्द आदि) सम्पूर्ण रोगों का नाश हो जाता है।

**वक्तव्य**–इस योग में नेत्र-चिकित्सक कपूर, हरड़ तथा अफीम भी मिला देते हैं। यह दुखती आँखों की उत्तम औषधि है।

### विडालक के योग (2)

**रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलैरपि।।32।।**

**कुमारिकाग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि।**
**वचाहरिद्रानिम्बैर्वा तथा नागरगैरिकैः।।33।।**

रसवत का लेप अथवा हरड़, सोंठ तथा तेजपत्ता का लेप अथवा घीकुआर का गूदा तथा चीता के पत्तों का लेप अथवा अनार के पत्तों का लेप अथवा वच, हल्दी तथा नीम के पत्तों का लेप अथवा सोंठ और गेरू का लेप उक्त विधि से करने पर नेत्र रोगों का नाश हो जाता है।

### विडालक के योग (3)

**दग्ध्वा ससैन्धवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते।**
**पिष्टमञ्जनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम्।।34।।**

सेंधा नमक तथा लोध को जलाकर भस्म बना लें फिर उसको मोममिश्रित घी में मिलाकर रख लें। इसका अञ्जन तथा लेप शीघ्र ही नेत्र की पीड़ा को हरता है।

**वक्तव्य**—भस्म को भली-भाँति पीसकर और मोम को घी में डालकर पिघला कर लेप तैयार कर लें। इसको आँख के भीतर अंजन के रूप में तथा बाहर लेप के रूप में लगाया जाता है।

### विडालक के योग (4)

**लोहस्य पात्रे सङ्घृष्टो रसो निम्बफलोद्भवः।**
**किञ्चिद् धनो बहिर्लेपान्नेत्रबाधां व्यपोहति।।35।।**

लोहे की कड़ाही में नीम के पत्तों का रस डालकर घोटना चाहिये। जब कुछ गाड़ा हो जाये तो आँख के बाहर लेप कर दें। यह भी नेत्र की पीड़ा को नष्ट करता है।

### विडालक के योग (5)

**सञ्चूर्ण्य मरिचं केशराजस्वरसमर्दनात्।**
**लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट्।।36।।**

मरिच के चूर्ण को भाँगरा के रस में पीसकर लेप कर यह उत्तम योग सब प्रकार के अर्म रोगो का नाश करता है।

### विडालक के योग (6)

**स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम्।**
**शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत्।।37।।**

बरौनी पर होने वाली 'अञ्जन' नाम की फुन्सी का पहले स्वेदन करें फिर भेदन कर निष्पीडन करें। इसके पश्चात् मैनसिल, इलायची, तगर तथा सेंधा नमक का चूर्ण मधु में मिलाकर उस पर रगड़ देने से वह ठीक हो जाती है।

### तर्पण-विधि

**अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम्।**
**यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम्।।38।।**
**शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्।**
**तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः।।39।।**
**शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः।**
**तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्ररोगविशारदैः।।40।।**

अब मैं 'तर्पण' की विधि का वर्णन करता हूँ, जो नेत्र को तृप्त करने का परमोत्तम उपाय है। जो नेत्र, रूक्ष, शुष्क, कुटिल, आविल (मलिन), जिसके बाल झड़ते हों या झड़ गये हों, जिसमें शिरोत्पात रोग हो (इस रोग से आँख की सिरायें लाल हो जाती हैं), जो आँख कठिनता से खुलती हो, जो तिमिर (धुन्ध), अर्जुन, शुक्र, (फूला), अभिष्यन्द, अधिमन्थ शुष्काक्षिपाक, शोथ तथा वातविपर्यय नामक रोग से पीड़ित हो, उसमें चतुर नेत्र-चिकित्सक का 'तर्पण' कर्म का प्रयोग करना चाहिये।

### तर्पण का निषेध

**दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च।**
**अशान्तोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते।।41।।**

दुर्दिन (जिस दिन आकाश में बादल छाये हों) में, अत्यन्त उष्ण तथा शतिकाल में और चिन्ता, शोक तथा भ्रम रोग से पीड़ित रोगियों की आँख में तथा आम दोष के उपद्रव के लक्षणों से युक्त नेत्र में तर्पण का प्रयोग उचित नहीं होता है।

**वक्तव्य**—नेत्र रोगों के उपद्रव—नेत्र में पीड़ा का उत्पत्ति, लालिमा, शोथ (सूजन), रगड़ लगना, चुभने की-सी पीड़ा का होना, शूल तथा आँखों का आँसुओं से भरा रहना।

### तर्पण-विधि

**वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः।**
**आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ।।42।।**
**समौ दृढावसम्बाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः।**
**पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः।।43।।**
**अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा।**
**निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि।।44।।**
**पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मलियेच्छनैः।**
**धारयेद् वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः।।45।।**
**स्वच्छे कफे सन्धिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम्।**
**शुक्ले च षट्शतं कृष्णे रोगे सप्तशतं मतम्।।46।।**

दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमन्थे सहस्त्रकम्।
सहस्त्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम्।। 47।।

वायु, धूप तथा धूल से रहित स्थान में रोगी को चित्त (सीधा) लिटा दें और उसकी आँख के चारों ओर दृढ़, बाधारहित तथा उड़द की पीठी के गोल आधार (थाले) बना दें, फिर इसे उष्ण जल द्वारा पिघलाये हुये घी अथवा सौ बार ये धोये हुये घृत से अथवा दूध से निकाले हुये घी से भर दें। उक्त पदार्थ उतना ही भरना चाहिये, जितने से आँख के वाल डूब जायें। यह द्रव आँख को बन्द कर भरना चाहिये। तत्पश्चात् रोगी आँख को धीरे-धीरे खोलने का यत्न करें। वर्त्म (बरौनी) के रोगों में सौ मात्रा (3-4 मिनट), कफ के रोगों में अथवा सन्धि के रोगों में पाँच सौ मात्रा (15-20 मिनट), शुक्ल भाग के रोगों में छः सौ मात्रा कृष्णभाग के रोगों में सात सौ मात्रा, दृष्टि रोगों में आठ सौ तथा अधिमन्थ तथा वायु के रोगों में एक हजार मात्रा परिमित समय तक तर्पण को धारण करना चाहिये।

### तर्पण के पश्चात् कर्म

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्तेहवीर्येरितं ततः।
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत्।। 48।।

तर्पण के पश्चात् स्नेह की शक्ति से बढ़े हुये कफ को गर्म की हुई जौ की पीठी (जौ के आटे को जल से सानकर और गर्मकर बनायी हुई पीठी) के उबटन से अथवा धूमपान से शोधन कर दें।

### तर्पणकाल तथा सम्यक् तर्पण का लक्षण

एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं चेष्यते परम्।
तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रेष्वेतानि भावयेत्।। 49।।
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्।
निवृत्तिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च।। 50।।

तर्पण का प्रयोग एक दिन तीन दिन अथवा पाँच दिन तक करना चाहिये और तर्पण करने से ये 'तृप्ति लक्षण' उत्पन्न हो जाते हैं। यथा-सुख से नींद आना तथा अवबोध (जागना) होना, आँख में विशदता (चिपचिपाहट न रहना), व्रण स्थान का स्वाभाविक हो जाना, रोग की ओर से निश्चिन्त हो जाना, व्याधि का शान्त हो जाना और नेत्र की क्रिया में लघुता (देखने की शक्ति का प्राप्त होना)।

**वक्तव्य**-जब तक उक्त लक्षण उत्पन्न न हो जायें तब तक तर्पण का प्रयोग करते रहें।

### अतितर्पण-हीनतर्पण तथा उनका उपचार

अथ साश्रु गुरु स्तिग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम्।
रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम्।। 51।।
रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात् प्रतिक्रिया।

तर्पण के अतियोग से नेत्र अश्रुयुक्त, भारी तथा स्निग्ध हो जाते हैं और हीनयोग से रूक्ष, आँसुओं से व्याप्त तथा रुग्ण (रोगी) हो जाते हैं। इन दोनों का प्रतिकार क्रमशः रूक्ष तथा स्निग्ध चिकित्सा-विधियों द्वारा करना चाहिये।

### पुटपाक-विधि

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम्।। 52।।
द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिण्डौ स्निग्धौ सुपेषितौ।
द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः।। 53।।
तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम्।
पुटपाकेन तत् पक्त्वा गृह्णीयात् तद् रसं बुधः।। 54।।
तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत्।
दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः।। 55।।

इसके पश्चात् 'पुटपाक' का साधन कहा जाता है। दो पल मांस लेकर उसे पीसकर पिण्ड बना लें और उपयोगी द्रव्य एक-एक पल लेकर उनको भी पीस लें। फिर दोनों को एक साथ मिलाकर पत्तों से लपेट दें, तत्पश्चात् पुटपाक की विधि से पकाकर उसका रस निचोड़ लें, फिर इस रस को तर्पण की विधि से थाला बनाकर प्रयोग करें अथवा चित्त लिटाये हुये रोगी का आँख प्रतिदिन निषेचन (सेक) करें।

### पुटपाक के भेद

स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा।
हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि हि लेखनः।। 56।।
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत्।

पुटपाक तीन प्रकार का होता है-1. स्नेहन (स्निग्ध करने वाला), 2. लेखन (रूक्ष करने वाला) और 3. रोपण (आँख के व्रणों को भरने वाला)। अतिरूक्ष नेत्र में स्नेहन, अतिस्निग्ध में लेखन, दृष्टि का बलवर्द्धन करने तथा पित्त एवं रक्त के व्रणों को नष्ट करने के लिए रोपण पुटपाक का प्रयोग करें।

### पुटपाक के योग

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैः कृतः।। 57।।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्शते दृशोः।
जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः।। 58।।

कृष्णलोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः ।
समुद्रफेनकासीसस्त्रोतोजदधिमस्तुभिः ।।59।।
लेखनो वाक्शतं धार्यस्तस्यैतावद् विधारणम्।
स्तन्यजाङ्गलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ।।60।।
लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः।
वितरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने।।61।।

घी, मांस, वसा, मज्जा, मेदा तथा मधुर द्रव्यों (शतावरी तथा मुलेठी आदि) का पुटपाक 'स्नेहन' होता है और वह दो सौ वाक्मात्रा (7-8 मिनट) तक धारण करना चाहिये। जंगल (मरुस्थल के) प्राणियों के यकृत्, मांस तथा लेखन द्रव्यों का पुटपाक लेखन होता है। उसको सौ मात्रा (3-4 मिनट) तक धारण करें। लेखन द्रव्य ये हैं-लोहचूर्ण, ताम्रचूर्ण (अथवा भस्म), शंख, प्रवाल, सेंधा नमक, समुद्रफेन, कासासी, काला सुरमा तथा दही का पानी, स्त्री का दूध जंगली जीवों का मांस, मधु, घी तथा तिक्त द्रव्यों (निम्बपत्रादि) का पुटपाक रोपण होता है। इसकी तीन सौ मात्रा (10-12 मिनट) तक धारण करें। यदि इसके अतियोग अथवा हीन योग से कोई हानि दिखलायी दे तो तर्पणोक्त विधि से चिकित्सा करें।

**वक्तव्य**-उपर्युक्त उपयोगी द्रव्यों का पुटपाक विधि से पाक करके उनका रस निकाल लेते हैं और उस रस का प्रयोग नेत्रों में किया जाता है।

### अञ्जन-विधि

अथ सम्पक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत्।
हेमन्ते शिशिरे चौव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते।।62।।
पूर्वाह्ने चापराह्ने च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते।
वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसन्ते च सदैव हि।।63।।

दोषों का पाक हो जाने पर आवश्यकतानुसार 'अञ्जन' का प्रयोग करें। हेमन्त ऋतु (माघ तथा फाल्गुन) में दिन के मध्य भाग (दोपहर) में अञ्जन लगाना चाहिये और शरद् ऋतु (आश्विन तथा कार्तिक) तथा ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ तथा आषाढ़) में प्रातःकाल अथवा सायंकाल में अञ्जन लगाना चाहिये। वर्षा ऋतु (सावन तथा भादों) में जब बादल तथा अत्यन्त गर्मी न हो तब अञ्जन लगायें और वसन्त ऋतु (चैत्र तथा वैशाख) में किसी भी समय अञ्जन लगाया जा सकता है।

**वक्तव्य**-नेत्रों में होने वाले दोषपाक का लक्षण- 'मन्दवेदनता कण्डूः सरम्भाश्रुप्रशान्तता। प्रशस्तवर्णता चाक्ष्णोः सम्पक्वं दोषमादिशेत्'। जब तक ये लक्षण दिखलायी न दें तब तक अञ्जन लगाना उचित नहीं है।

### अञ्जन के भेद

लेखनं रोपणं चैव तथा स्यात् स्नेहनाञ्जनम्।
लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमिष्यते।।64।।
कषायतिक्तरसयुक् सस्नेहं रोपणं मतम्।
मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं च प्रसादनम्।।65।।

अञ्जन तीन प्रकार का होता है-1. लेखन, 2. रोपण तथा 3. स्नेहन। क्षार (जौखार आदि), तक्ष्णि (कटु द्रव्य) तथा अम्ल रस युक्त द्रव्यों का अञ्जन 'लेखन' माना जाता है, कषाय तथा तिक्त रस से युक्त द्रव्यों का स्नेहयुक्त अञ्जन 'रोपण' माना जाता है और मधुर द्रव्यों का स्नेह युक्त अञ्जन 'प्रसादन' अर्थात् स्नेहन होता है।

### अञ्जन के अन्य तीन भेद

गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि च।
कुर्याच्छलाकयाऽङ्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम्।।66।।

अञ्जन के तीन प्रकार और होते हैं। यथा-1. गुटिका (लम्बी-लम्बी गोलियाँ जैसे चन्द्रोदयावर्ति), 2. रस (द्रवस्वरूप) और 3. चूर्ण। ये यथासम्भव सलाई अथवा अंगुली से लगाये जाते हैं। गुटिका घिसकर लगायी जाती है। ये उत्तरोत्तर हीनगुण वाले होते हैं।

### अञ्जन का निषेध

श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे।
अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रशस्यते।।67।।

श्रान्त (थका हुआ), प्ररुदित (रोया हुआ) भीत (डरा हुआ) तथा पीतमद्य (मद्य पिया हुआ) मनुष्य और नवज्वर में, अजीर्ण से तथा वेगरोध से पीड़ित मनुष्य अञ्जन न लगायें।

### गुटिकाञ्जन की मात्रा

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक्।
प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत्।।68।।

चिकित्सक का कर्तव्य है, कि तीक्ष्ण द्रव्यों से निर्मित गुटिकाञ्जन की वर्ति (बत्ती), हरेणु (मटर) के समान बनाये और मध्यम (रोपण द्रव्य निर्मित गुटिकाञ्जन) में डेढ़ हरेणु के समान और मृदु (स्नेहन) में दो हरेणु के समान बत्ती बनायें।

### रसरूप अञ्जन की मात्रा

रसक्रिया तूत्तमा स्यात् त्रिविडङ्गमिता हिता।
मध्यमा द्विविडङ्गा स्याद्धीना त्वेकविडङ्गिका।।69।।

रसरूप अञ्जन की उत्तम मात्रा वायविडंग के तीन दानों के बराबर मध्यम दो वायविडंग और हीन मात्रा एक वायविडंग के बराबर होनी चाहिये।

### चूर्णरूप अञ्जन की मात्रा

**वैरेचनिकचूर्णं तु द्विशलाकं विधीयते।**
**मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने।। 70।।**

विरेचन (लेखन) चूर्णाञ्जन की मात्रा दो सलाई भर, मृदु (रोपण) की तीन सलाई तथा स्नेहन की चार सलाई भर मात्रा मानी जाता है।

**वक्तव्य**—सुरमे की शीशी में सलाई को डालने पर उसके एक अंगुल अग्रभाग पर जितना सुरमा लग जाता है, वह मात्रा एक शलाका कही जाता है।

### शलाका-निर्माण-विधि

**मुखयोः कुण्ठिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टाङ्गुलोन्मिता।**
**अश्मजा धातुजा वा स्यात् कलायपरिमण्डला।। 71।।**
**ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता।**
**सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने मता।। 72।।**
**अङ्गुलीव मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः।**

अञ्जन (सुरमा) लगाने की 'शलाका' (सलाई) आठ अंगुल लम्बी हो, दोनों ओर से कुण्ठित (गोलाईदार हो), श्लक्ष्ण (खुरदरी न हो), उसके दोनों मुख मटर के समान मोटे हों तथा वह पत्थर तथा स्वर्ण आदि धातु की बनानी चाहिये। लेखन-अञ्जन के लिए ताँबा, लोहा तथा पत्थर की, स्नेहन अञ्जन के लिए सोना तथा चाँदी को शलाका होनी चाहिये और रोपण अञ्जन में मृदु होने के कारण अंगुली को ही उत्तम माना जाता है।

**वक्तव्य**—यशद (जस्ता) का शलाका उत्तम होती है। आचार्य शार्ङ्गधर ने इसी प्रकरण में आगे शलाका बनाने की विधि भी कही है।

### अञ्जन प्रयोग विधि एवं काल

**सायं प्रातर्वाञ्जनं स्यात् तत्सदा नैव कारयेत्।। 73।।**
**नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां सम्प्रशस्यते।**
**कृष्णभागादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम्।। 74।।**

अञ्जन सायंकाल अथवा प्रातःकाल लगाना चाहिये। इसके अतिरिक्त समयों में अञ्जन लगाना उचित नहीं है। अत्यन्त शतिकाल में, अत्यन्त उष्णकाल में, प्रवात (जब अत्यन्त हवा चलती हो) में तथा अभ्रकाल (जब आकाश में बादल छाये हों) में अञ्जन नहीं लगाना चाहिये। कृष्ण-भाग के नीचे तथा अपाङ्ग (नेत्र के बाहरी कोण) तक अञ्जन लगाना चाहिये।

**वक्तव्य**—अञ्जन लगाने का समुचित विधि के लिए देखें—सु० उ० अ० 18 श्लो० 64-65। इन श्लोकों का तात्पर्य यह है, कि कोया से लेकर अपांग (आँख के कोने) तक अञ्जन लगी हुई। शलाका को आँख के भीतर डालकर घुमा लेना चाहिये।

### चन्द्रोदयावर्ति

**शङ्खनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला।**
**पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम्।। 75।।**
**छागीक्षीरेण सम्पिष्य वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम्।**
**हरेणुमात्रां सङ्घृष्य जलैः कुर्यादथाञ्जनाम्।। 76।।**
**तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम्।**
**रात्र्यन्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत्।। 77।।**

शंखनाभि, बहेड़ा की मींगी, बड़ी हरड़, मैनसिल, पीपल, मरिच, कूठ तथा वच इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण बनाये और फिर उसको बकरी के दूध में भली-भाँति पीसकर जौ जैसप लम्बी-लम्बी बत्तियाँ बना लें और हरेणु परिमित औषधि जल के साथ घिसकर अञ्जन करें। यह तिमिर (धुन्ध), मांसवृद्धि (अर्म आदि), काच (मोतिया), पटलगत दोष, अर्बुद (नेत्रार्बुद), रतौंधी तथा वर्ष भर के पुष्प (फूलों) को जीतता है।

**वक्तव्य**—उक्त योग में विचारणीय विषय यह है, कि जौ भर की तो बत्ती बनाने का विधान है और हरेणु भर औषध लगाने का ? हरेणु नाम मटर का है तदनुसार सुश्रुत के भाष्यकार डल्हणाचार्य तथा शार्ङ्गधर के टीकाकार श्रीआढमल्ल ने उसका अर्थ भी किया है। हमारा विचार है कि 'हरेणु' के पर्यायों में बड़ा चना, मटर, पित्तपापड़ा तथा हरेणुका भी देखे जाते हैं। अतः यथोचित निर्णय लेकर मात्रा का विधान करें।

### करञ्जवर्ति

**पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता।**
**करञ्जबीजवर्तिस्तु दृष्टेः पुष्पं विनाशयेत्।। 78।।**

करञ्ज के बीजों का कपड़छन चूर्ण बनाकर उसको पलाश के फूलों के स्वरस का अनेक (सात) भावनायें दें, फिर इसकी वर्ति बना लें। यह भी फूली को नष्ट करती है।

### समुद्रफेनादिवर्ति

**समुद्रफेनसिन्धूत्थशङ्खदक्षाण्डवल्कलैः।**
**शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत्।। 79।।**

समुद्रफेन, सेंधा नमक, शंख, मुरगी के अण्डों के छिलके

और सहजन के बीज–इन सभी द्रव्यों को पीसकर (सहजन के रस से) वर्ति बनायें। यह भी शुक्रादि नेत्ररोगों को शस्त्र के समान काट देती है।

दन्तवर्ति

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगोहयाजखुरोद्भवैः ।
शङ्खमुक्ताम्भोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णितैः ।। 80 ।।
दन्तवर्तिः कृता श्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनी परा।

हाथी, सूअर, ऊँट, गाय, घोड़ा, बकरी, तथा गधा इनके दाँत, शंख, मोती तथा समुद्री झाग इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर और अत्यन्त बारीक पीसकर (किसी भी उपयुक्त द्रव से) वर्ति बना लें। यह भी शुक्र नामक नेत्ररोगों को नष्ट करती है।

नीलोत्पलवर्ति

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा ।। 81 ।।
एतत्कल्कैः कृता वर्तिरतिनिद्रां निवारयेत्।

नीलकमल, सहजन के बीज तथा नागकेलर इन सबको पीसकर वर्ति बनायें। यह अतिनिद्रा को रोकती है।

कुसुमिकावर्ति

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः ।। 82 ।।
जातीकुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च षोडश।
सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले वर्त्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ।। 83 ।।
तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिहृत्।
(एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ।। 84 ।।)

तिल के फूल 80, पीपल के चावल (जो उसे कूटने पर मिलते हैं) 60, चमेली के फूल 50 और कालीमरिच 16 दाना इन सबको बारीक पीसकर जल से बत्ती बनाये। इसका नाम 'कुसुमिकावर्ति' है। यह तिगिर, अर्जुन तथा शुक्र नामक नेत्र रोगों का नाश करती है और मांसवृद्धि को हरती है। इसकी मात्रा अञ्जन करने में डेढ़ हरेणु भर का कही गयी है।

रसाञ्जनवर्ति

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालतीनिम्बपल्लवाः।
गोशकृद्रससंयुक्ता वर्त्तिर्नक्तान्ध्यनाशिनी ।। 85 ।।

रसवत, हल्दी, दारुहल्दी, चमेली और नीम के पत्ते–इन सबको अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर गाय के गोबर के रस से वर्ति बनाये। यह रतौंधी को नष्ट करती है।

धात्र्यादिवर्ति

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च।
पिष्ट्वा वर्तिं जलैः कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम् ।। 86 ।।
नेत्रस्त्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा।

आँवला के बीज एक भाग, बहेड़ा के बीज दो भाग और हरड़ के बीजों की गिरी तीन भाग लेकर और भली-भाँति पीसकर जल से वर्ति बना लें। इसका दो हरेणु भर अञ्जन करें। यह नेत्रस्राव (उलका) तथा वातरक्त की पीड़ा को शीघ्र ही हरती है।

**वक्तव्य**–उक्त सभी उदाहरण वर्ति स्वरूप गुटिकाञ्जन के हैं। अब इसके आगे रस रूप में प्रयुक्त होने वाले अञ्जनों के उदाहरण कहे जायेंगे।

तुत्थादि-रसक्रिया

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थं सिताशङ्खमनःशिला ।। 87 ।।
गैरिकोदधिफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत्।
संयोज्य मधुना कुर्यादञ्जनार्थं रसक्रियाम् ।। 88 ।।
वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरां पराम्।

शुद्ध तूतिया, सुवर्णमाक्षिक, सेंधा नमक, खाँड, शंख, मैनसिल, गेरू, समुद्रफेन तथा मरिच इन सबको अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर और मधु के साथ मिलाकर रस रूप अञ्जन बना लें। यह वर्त्मरोग (रोहा आदि), अर्म, तिमिर, काच (मोतिया) तथा शुक्र नामक नेत्ररोग का विनाश करने के लिए उत्तम योग है।

वटक्षीर-रसाञ्जन

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः ।। 89 ।।
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमासिकम्।

शुद्ध कपूर को बरगद के दूध में पीसकर अञ्जन करने से दो महीने का पुराना फूला भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।

अतिनिद्रानाशक योग

क्षौद्राश्वलालासङ्घृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत् ।। 90 ।।
अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव।

कालीमिरच को मधु तथा घोड़े की लार में घिसकर नेत्र में अञ्जन करें। इससे अतिनिद्रा उस प्रकार शान्त हो जाती है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अन्धकार।

तन्द्रानाशक योग

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ।। 91 ।।
सैन्धवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम्।

चमेली के फूल तथा पत्ते, मरिच, कुटकी, वच तथा

सेंधा नमक इन सबको समभाग लेकर और बकरे के मूत्र में पीसकर अञ्जन लगाने से तन्द्रा (उँघाई) नष्ट हो जाती है।

### प्रबोधाञ्जन

**शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।। 92 ।।**
**अञ्जनं स्यात् प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः।**

सिरस (सिरशि) के बीज, पीपल, मरिच, सेंधा नमक, लहसुन, मैनसिल तथा वच इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर अञ्जन लगाने से मूर्च्छित रोगी संज्ञावान् (चैतन्य) हो जाता है।

### दार्व्यादि रसक्रिया

**दार्वी पटोलं मधुकं सनिम्बपद्मकोत्पलम् ।। 93 ।।**
**प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत् तोये चतुर्गुणे।**
**विपाच्य पादशेषं तु श्रृतं नीत्वा पुनः पचेत् ।। 94 ।।**
**शीते तस्मिन्मधु सितां दद्यात् पादांशिकां नरः।**
**रसक्रियैषा दाहाश्रुरक्तरागरुजो हरेत् ।। 95 ।।**

दारुहल्दी, परवल की पत्ती, मुलेठी, नीम के पत्ते, पद्मकाठ, लाल कमल तथा सफेद कमल इन सब द्रव्यों को कूटकर चौगुने जल में पकायें, चतुर्थांश जल शेष रह जाने पर छान लें। इस क्वाथ को फिर पकायें जब गाढ़ा हो जाये तो उतार लें। शीतल हो जाने पर उसमें मधु तथा खाँड (क्वाथ्य द्रव्यों के) चतुर्थांश मिला दें। यह रसक्रिया दाह, आँसू तथा पीड़ा को हरती है।

### रसाञ्जनादि रसक्रिया

**रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला।**
**समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ।। 96 ।।**
**एतत् समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि।**
**अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ।। 97 ।।**

रसवत, राल, चमेली के फूल, मैनसिल, समुद्रफेन, सेंधा नमक, गेरू तथा मरिच इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म पीसकर तथा मधु मिलाकर अञ्जन करें। इससे प्रक्लिन्न-वर्त्म रोग, क्लेद तथा कण्डू (खुजली) का नाश हो जाता है। पक्ष्मों (आँख के बालों) का पुनः प्ररोहण (उत्पन्न) हो जाता है।

### गुडूची रसक्रिया

**गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम्।**
**सैन्धवं क्षौद्रतुल्यं स्यात् सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।। 98 ।।**
**अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत्।**
**काचं कण्डूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णगतान् गदान् ।। 99 ।।**

गिलोय का स्वरस एक कर्ष (1 तोला), मधु और सेंधा नमक एक-एक माशा सबको एक साथ पीसकर उसको नेत्रों में लगायें। यह पिल्ल, अर्म, तिमिर, काच, कण्डू, लिंगनाश तथा शुक्ल भाग तथा कृष्ण भाग के नेत्र रोगों को जीतता है।

### पुनर्नवा रसाञ्जन

**दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा।**
**पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम् ।। 100 ।।**
**पुनर्नवा जयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा।**

पुनर्नवा की जड़ दूध के साथ घिसकर आँख में लगाने से कण्डू (खुजली) को मधु के साथ नेत्रस्राव को, घी के साथ फूली को, तेल के साथ तिमिर को तथा काञ्जी के साथ रतौंधी को उस प्रकार नष्ट करती है, जैसे सूर्य अन्धकार को।

### बब्बूल रसक्रिया

**बब्बूलंदलनिःक्वाथो लेहीभूतस्तदञ्जनात् ।। 101 ।।**
**नेत्रस्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः।**

बब्बूल के पत्तों का क्वाथ करके उसे छानकर फिर पकायें, जब गाढ़ा हो जायें तो उसमें मधु मिलाकर अञ्जन करें। यह नेत्रस्राव को जीतता है। इसमें कुछ भी सन्देह नही है।

### हिज्जल-रसक्रिया

**हिज्जलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमञ्जनम् ।। 102 ।।**
**चक्षुःस्रावोपशान्त्यर्थं कार्यमेतन्महौषधम्।**

हिज्जल (समुद्रफल) के फल को जल में घिसकर प्रतिदिन अञ्जन करें। यह नेत्रस्राव की शान्ति के लिए महौषध है।

### कतक-रसक्रिया

**कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् ।। 103 ।।**
**ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम्।**

कतक (निर्मली) के फल को घिसकर मधु तथा कपूर मिलाकर अञ्जन करें। इससे नेत्र का प्रसादन (प्रसन्नता) होता है।

### शिरोत्पात में रसक्रिया

**सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जनं स्याच्छिरोत्पातस्य शान्तये ।। 104 ।।**

सिरोत्पात (आँख में जो लाल-लाल सिरायें दिखलायी पड़ती हैं) की शान्ति के लिये घी तथा मधु का अञ्जन लगाना चाहिये।

कृष्णसर्प वसाञ्जन

**कृष्णसर्पवसा शङ्खः कतकात्फलमञ्जनम्।**
**रसक्रियेयमचिरादन्धानां दर्शनप्रदा।। 105।।**

शंखनाभि, निर्मली के बीज तथा अञ्जन (कालासुरमा) को भली-भाँति पीसकर काल साँप की वसा में मिला दें। यह अञ्जन अन्धों को भी शीघ्र ही दर्शन-शक्ति प्रदान करता है।

**वक्तव्य**—शंखनाभि तथा अञ्जन को अलग अलग पीस लें और निर्मली के बीजों को कूटकर तथा जल डालकर पृथक् से पीसना चाहिये। इसे पीसने में अधिक परिश्रम लगता है। इन सबका साँप की चर्बी में मिला लें। सर्पवसा सपेरों से मिल जाती है।

लेखनाञ्जन

**दक्षाण्डत्वक्शिलाकाचशङ्खचन्दनसैन्धवैः ।**
**द्रव्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः।। 106।।**

मुरगी के अण्डों के छिलके, मैनसिल, काँच, शंख, लाल चन्दन तथा सेंधा नमक इन द्रव्यों का अञ्जनयोग (अञ्जन लगाने का निरन्तर अभ्यास), पुष्प (फूल) तथा अर्म आदि को काट देता है।

**वक्तव्य**—काँच को तपाकर निर्मल जल में तब तक बुझाना चाहिये जब तक उसकी चमक नष्ट न हो जाये। इसी काँच के बारीक चूर्ण का अञ्जन में प्रयोग किया जाता है।

कणा-अञ्जन

**कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा नेत्रयुगेऽञ्जिता।**
**अचिराद्धन्ति नक्ताध्यं तद्वत् सक्षौद्रभूषणम्।। 107।।**

पिप्पली को बकरे के यकृत् में रखकर पुटपाक विधि से पकायें और फिर घिसकर आँखों में लगायें। यह रतौंधी को शीघ्र ही नष्ट कर देती है। इसी प्रकार मरिच को भी तैयार कर और मधु के साथ मिलाकर लगाना चाहिये।

**वक्तव्य**—उक्त सभी अंजन रसरूप में मिलते हैं। इसके आगे चूर्णरूप अंजन कहे जायेंगे।

चूर्णाञ्जन (लेखन)

**शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः।**
**शाणार्धं सैन्धवं शाणा नव सौवीरकाञ्जनात्।। 108।।**
**पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम्।**
**कण्डूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम्।। 109।।**

मरिच चूर्ण दो माशा, पीपल तथा समुद्रफेन आठ-आठ माशा, सेंधा नमक, दो माशा तथा सफेद सुरमा छत्तीस माशा—इन द्रव्यों को चित्रा नक्षत्र में अत्यन्त सूक्ष्म पीसना चाहिये। यह उत्तम चूर्ण अञ्जन है। यह खुजली, काच तथा कफजनित विकारों तथा आँखों के मल (कीचड़) को शुद्ध करता है।

चूर्णाञ्जन (रोपण)

**शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगा प्लाव्य वारिणा।**
**गृह्णीयात् तज्जलं सर्वं यजेच्चूर्णमधोगतम्।। 110।।**
**शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत्।**
**विचूर्ण्य भावयेत् सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः।। 111।।**
**कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत्।**
**अञ्जयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत्।। 112।।**
**सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च।**

खपरिया को शिला (खरल)पर पीसकर और जल में घोलकर रख दें, जब जल नितर जाये तो सावधानी से उसको ले लें और नीचे बैठे हुये चूर्ण को फेंक दें, फिर उस जल को धूप में सुखा लें। जल के सूख जाने पर पपड़ी जैसा पदार्थ उपलब्ध होगा, इसको खरल में डालकर और पीसकर त्रिफला के स्वरस की तीन भावना दें, अन्त में उक्त द्रव्य का दसवाँ भाग कपूर मिलाकर रख लें। इसको आँख में लगाने से यह सभी प्रकार के नेत्र दोषों तथा रोगों को हरता है। यह आँखों के लिए सुखदायक है।

**वक्तव्य**—खपरिया को पीसकर पानी में डाल दें। उसका घुलनशील भाग पीना में घुल जाता है। पानी के सूखने पर वही पर्पटी जैसा प्राप्त होता है।

चूर्णाञ्जन (प्रसादन)

**अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत् त्रिफलारसैः।। 113।।**
**सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम्।**
**अञ्जयेत् तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्।। 114।।**
**सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः।**

सौवीराञ्जन (सफेद सुरमा) को अग्नि में तपाकर त्रिफला के स्वरस में तथा स्त्री के दूध में सात-सात बार बुझायें और फिर पीस लें। इसको प्रतिदिन नेत्रों में लगायें। यह आँख के सभी विकारों को नष्ट कर देता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

शलाका-निर्माण-विधि

**त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा।। 115।।**
**गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः।**
**तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान् गदान्।। 116।।**

सीसा धातु को पिघला कर त्रिफला, भाँगरा तथा सोंठ के स्वरस में बुझायें और इसी प्रकार घी, गोमूत्र, मधु तथा बकरी के दूध में बुझायें। सीसे की यह शलाका (सलाई) नेत्रों में होने वाल सभी रोगों को अवश्य हरती है।

**वक्तव्य**—सभी प्रकार के सुरमे तथा अंजन आदि उक्त शीशे की शलाका द्वारा लगाये जाते हैं और शुद्ध करके बनायी गयी सीसा की सलाई का प्रयोग भी चक्षुष्य होता है।

**प्रत्यञ्जन-विधि**

**गतदोषमपेताश्रु सम्पश्यन् सम्यगम्भसा।**
**प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यञ्जनं ततः।। 117।।**

**न वाऽनिर्गतदोषेऽक्षिण धावनं सम्प्रयोजयेत्।**
**प्रत्यञ्जनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णं प्रसादनम्।। 118।।**

जब दोष या उपद्रव शान्त हो जाये, आँसू बन्द हो जायें और भली-भाँति देखने लग जायें तब जल से नेत्रों को धोकर दोषों के अनुसार प्रत्यञ्जन का प्रयोग करें। जब तक दोष शान्त न हो जाये तब तक धावन (आँखें धोना) का प्रयोग न करें। तीक्ष्ण औषधियों से तपे हुये नेत्र में प्रसादन (नेत्र को स्वच्छ करने वाले) अञ्जन का प्रयोग करें।

**वक्तव्य**—जिसका प्रतिदिन नेत्रों में प्रयोग किया जाता है और जो प्रतिदिन आँखों को स्वस्थ रखने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, उसे प्रत्यञ्जन कहते हैं। विशेष देखें-सु०उ०अ० 18।

**नयनामृताञ्जन**

**शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत्।**
**कृष्णाञ्जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत्।। 119।।**

**दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे प्रदापयेत्।**
**एतत् प्रत्यञ्जनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम्।। 120।।**

शुद्ध सीसा धातु को पिघलायें और तत्काल उसमें समभाग शुद्ध पारद डाल दें तथा उसका हिलाकर या घोलकर खरल में डाल दें (उसे दो तीन घण्टे तक उसे भली-भाँति घोटें) उसके बाद दोनों के समान भाग में कालासुरमा डालकर देर तक पीसें। अत्यन्त सूक्ष्म हो जाने पर सबकी अपेक्षा दसवाँ भाग उसमें कपूर मिला दे। यह प्रत्यञ्जन नेत्र के सभी विकारों को जीतता है।

**सर्पविषनाशक अञ्जन**

**जयपालभवां मज्जां भावयेन्निम्बुकद्रवैः।**
**एकविंशतिवेलं तत् ततो वर्तिं प्रकल्पयेत्।। 121।।**
**मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयाञ्जयेत्।**
**सर्पदष्टविषं जित्वा सञ्जीवयति मानवम्।। 122।।**

जमालगोटा की मज्जा (मीगी) को नींबू के रस को इक्कीस भावना दें और निरन्तर पीसते रहें, फिर इसकी बत्ती बना लें। इस बत्ती को मनुष्य की लार या थूक में घिसकर आँख में लगायें। यह साँप के विष को जीतकर मनुष्य को पुनः जीवित कर देता है।

**वक्तव्य**—यह अञ्जन विशेष करके सर्प द्वारा डसे हुये व्यक्ति को सचेत कर प्रयुक्त किया जाता है। इससे आश्चर्यजनक लाभ होते देखा गया है।

**नेत्र-प्रसादन-विधि**

**भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्दीयते यदि।**
**जाता रोगा विनश्यति तिमिराणि तथैव च।। 123।।**

भोजन करने के पश्चात् दोनों हाथों को परस्पर घिसकर यदि प्रतिदिन आँखों को मला जायें तो उत्पन्न हुये नेत्र रोग तथा तिमिर रोग नष्ट हो जाते हैं।

**नेत्र-सिंचन-विधि**

**शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः**
**कालत्रयेण नयनद्वितयं जलेन।**
**आसिञ्चति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षि-**
**रोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः।। 124।।**

शीतल जल से मुख को भरकर जो मनुष्य प्रतिदिन तीन बार (प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल) दोनों आँखों को जल (शीतल जल) से सींचता है, वह अवश्यमेव कभी भी आँखों के रोगों की व्यथा (पीड़ा) से व्याकुलता को प्राप्त नहीं होता।

**नेत्र-रक्षा का महत्त्व**

**चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यै-**
**र्यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा।**
**व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिन्दिवानां**
**पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते।। 125।।**

जब तक जीवित रहने की इच्छा हो तब तक मनुष्यों को नेत्रों की रक्षा का सर्वदा यत्न करते रहना चाहिये, क्योंकि अन्धे मनुष्यों के लिये तो रात-दिन समान होता है। ऐसे लोगों लिये धन रहने पर भी सम्पूर्ण संसार आँखा के न रहने कारण व्यर्थ होता है।

**ग्रन्थकार की प्रार्थना**

**आयुर्वेदसमुद्रस्य गूढार्थमणिसञ्चयम्।**
**ज्ञात्वा कैश्चिद् बुधैस्तैस्तु कृता विविधसंहिताः।। 126।।**
**किञ्चिदर्थं ततो नीत्वा कृतेयं संहिता मया।**
**कृपया[illegible]दीपनेरया कुर्वन्तु साधवः।। 127।।**

आयुर्वेद सागर के गूढ़ अर्थ (विषयरूपी) मणियों के सञ्चय (खजाने) को कुछ विद्वानों ने जाना या समझा है। तदनुसार उन्होंने अनेक सहितायें भी रची हैं। उन संहिताओं (चरक, सुश्रुत आदि) में से कुछ अर्थ (विषय) को लेकर मैं (शार्ङ्गधराचार्य) ने यह संहिता बनायी है। सज्जन लोग इस पर सदैव कृपा-दृष्टि डालते रहें।

**शुभकामना**

**विविधगदार्तिदरिद्रनाशनं या**
**हरिरमणीव करोति योगरत्नै:।**
**विलसतु शार्ङ्गधरस्य संहिता सा**
**कविहृदयेषु सरोजनिर्मलेषु।।128।।**

जो (संहिता) योगरूपी रत्नों द्वारा हरिरमणी (लक्ष्मी) के समान अनेक प्रकार के रोगों की पीड़ारूपी दरिद्रता का नाश करती है शार्ङ्गधराचार्य द्वारा रचित वह संहिता कवियों तथा कविराजों के कमल के समान निर्मल हृदयों में सदैव विलास करती रहे।

**ग्रन्थ की उपयोगिता**

**अल्पायुषामल्पधियामिदानीं**
**कृतं समस्तश्रुतिपाठशक्त्या।**
**तदत्र युक्तं प्रतिबीजमात्र-**
**मभ्यस्यतामात्महितं प्रयत्नात्।। 129।।**

**इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण विरचितायां**
**शार्ङ्गधरसंहितायाम् उत्तरखण्डे नेत्रप्रसादनविधिर्नाम**
**त्रयोदशोऽध्याय:।। 13।।**

आजकल छोटी आयु तथा छोटी बुद्धि वाले मनुष्य सम्पूर्ण आयुर्वेद के ग्रन्थो को पढ़ने की शक्ति नहीं रखते। इसलिये मैं (शार्ङ्गधराचार्य) ने इस संहिता में आयुर्वेद के बीज (मौलिक भाव) लिख दिये हैं। अत: आप सब अपने लाभ के लिये परिश्रमपूर्वक इसका अभ्यास करें।

**वक्तव्य**–चिकित्सक को चिकित्सा काल में सब प्रकार से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं, इसीलिए कहा गया है–**'चिकित्सितात् पुण्यतमं न किञ्चिदपि शुश्रुम:'**। सु० क०अ० 8.142। इसमें सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि परहित के साथ साथ इससे अपना हित भी इससे हो जाता है, क्योंकि चिकित्सक सर्वदा यही चाहता है–**'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:'**।

**प्रतिसंस्कर्ता का निवेदन**

**षड्विंशति: पद्यशतानि पूर्वं**
**प्रतिश्रुतं शार्ङ्गधरेण यत् सा।**
**सङ्ख्या क्वचित् संस्करणेऽद्य पूर्णा**
**नाऽऽलोक्यते तत्प्रदुनोति चित्तम्।। 1।।**

आचार्य शार्ङ्गधर ने अपनी इस संहिता के प्रारम्भ में प्रतिज्ञा की थी, कि इस ग्रन्थ की श्लोक संख्या छब्बीस सौ है। परन्तु आज उपलब्ध किसी भी संस्करण में उक्त संख्या दृष्टिगोचर नहीं होती, जिससे मानसिक कष्ट हो रहा था।। 1।।

**उपेक्षया प्रस्तुतसंहिताया आसं**
**मुहुश्चिन्तितमानस: प्राक्।**
**पूर्ति: कथं स्यादिति तर्कयन्**
**द्राग्गुरो: कृपा प्रादुरभूत् ततो मे।। 2।।**

इस प्रकार विद्वानों द्वारा शार्ङ्गधरसंहिता की उपेक्षा को देखकर मैं पहले अत्यन्त चिन्तित था और सोचा करता था, कि इसकी पूर्ति कैसे हो; तभी मेरे ऊपर गुरुचरणों की कृपा हुई।। 2।।

**ग्रन्थं समालोक्य सुसूक्ष्मबुद्ध्या**
**संस्मृत्य पूर्वान् भिषगुत्तमांश्च।**
**ग्रन्थानुरोधाद् विषयानुरोधात्**
**पूर्तिर्मयाऽकारि च तत्त्वदृष्ट्या।। 3।।**

तदनन्तर मैंने सूक्ष्म बुद्धि से ग्रन्थ का अवलोकन किया और प्राचीन आयुर्वेदविद् महर्षियों का स्मरण कर उनके ग्रन्थों का अवलोकन किया। तदनन्तर ग्रन्थ तथा विषय को ध्यान में रखकर तात्त्विक दृष्टि से इसकी पूर्ति कर दी।। 3।।

**प्रतिसंस्कारमासाद्य पूर्णेयं कृतिरुत्तमा।**
**रोगिणां रोगनाशाय कल्पतां भिषजां मुदे।।4।।**

मेरे द्वारा प्रतिसंस्कृत यह उत्तम कृति रोगियों के रोगों का नाश करे और विद्वान् चिकित्सकों को आनन्द प्रदान करे।। 4।।

**पुरा विकृतिमापन्ना श्रीशार्ङ्गधरसंहिता।**
**अधुना संस्कृता श्रीमद् ब्रह्मानन्दत्रिपाठिना।।5।।**

इसके पहले यह शार्ङ्गधरसंहिता खण्डित (अपूर्ण) थी। अब श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ने इसका प्रतिसंस्कार कर इसे पूर्ण कर दिया है।। 5।।

इस प्रकार वैद्यरत्न **पण्डित तारादत्त त्रिपाठी** के पुत्र **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** विरचित दीपिका व्याख्या, विशेष वक्तव्य आदि से संवलित शार्ङ्गधरसंहिता उत्तरखण्ड का तेरहवाँ अध्याय समाप्त।। 13।।



**उत्तरखण्ड समाप्त–शार्ङ्गधरसंहिता समाप्त।**

।।श्रीः।।

महर्षि-अग्निवेशप्रणीतम्

# अञ्जननिदानम्

अबोधतिमिरच्छन्नचक्षुषां भिषजां कृते।
सूक्ष्मं करोत्यग्निवेशो ग्रन्थमञ्जनमाख्यया।।1।।

दोषरोषो रुजां हेतुस्तत्प्रकोपे तु कारणम्।
प्रत्येकं हीनमिथ्यातियोगः कालाणाम्।।2।।

कटुतिक्तकषायपयोदहतिश्रमरूक्षहिमान्नभयानशनैः।
स्मरजागरशुक्तरणास्त्रगमैरपि कुप्यति वेगवधैरनिलः।।3।।

शिरःशङ्खभ्रूहृत्त्रिकविटपसन्ध्यस्थिकटिरुग्
विबन्धः पारुष्यं शयनहतिराध्मानचलने।
कडारा शोणा वा छविरपि कषायोऽस्य च रसः
श्रमो रुग्वैषम्यं कुपितमरुतो लक्षणमिदम्।।4।।

तिलशुक्तसुरादधिमीनशरत्-
कटुतीक्ष्णपटूष्णरुडम्लतपैः।
रतिघस्त्रनिशाऽर्धविदाहकरैरपि
कुप्यति पित्तमुपोषणतः।।5।।

भ्रमो दाहो मूर्च्छा मलशिथिलता स्वेददरणं
प्रलापः पीतत्वं मुखनयनविण्मूत्रनखरे।
मदस्तृट् तिक्तोष्णः पटुकटुरसः पाण्डुरहिता
द्युतिः पाकश्चेत्याकृतिररुषि पित्तस्य सरुषः।।6।।

दधिदुग्धनवीनजलान्नहिमाध्यशनाम्लपटूपशमाज्यतिलैः।
गुरुमत्स्यवसन्तदिवाशयनैर्मधुरैरपि रोषमुपैति कफः।।7।।

गुरुत्वं स्तैमित्यं श्वयथुचिरकर्तृत्वशयने
मलाधिक्यं कण्डूररुचिरुपलेपः शिशिरता।
अपक्तिस्तृप्तिश्चास्मृतिरिति बलासस्य सरुषः
स्फुटं लिङ्गं स्वादुः पटुरपि रसो भा च धवला।।8।।

हेतुप्राग्रूपरूपोपशयाप्तिभिरिहामयः।
ज्ञेयो रूपेण चैकेन मुख्यमेतेषु तद्यतः।।9।।

दोषोऽजीर्णाज्ज्वरं कुर्यात् क्षिप्त्वाऽग्निं कोष्ठतस्त्वचि।
सोऽष्टधा तैः पृथग्द्वन्द्वसर्वैरागन्तुजोऽपि च।।10।।

जृम्भाऽङ्गमर्दावरतिदृग्दाहौ गौरवारुची।
पृथग् ज्वराणां प्राग्रूपं द्वित्रिजे द्वित्रिलक्षणम्।।11।।

कम्पः कण्ठोष्ठविट्शोषोऽक्षवो मूर्द्धोदराङ्गरुक्।
वैषम्योऽस्वप्नवैरस्यं जृम्भा वातज्वराकृतिः।।12।।

पीतता दाहतृट्स्वेदो मूर्च्छाऽल्पस्वप्नतिक्तता।
वमिभ्रमप्रलापाश्च रेकः पित्तज्वराकृतिः।।13।।

स्तैमित्योत्क्लेदमाधुर्यं प्रतिश्याऽरुचिगौरवम्।
कासालस्ये तृप्तिशौक्ल्यं शैत्यं श्लेष्मज्वराकृतिः।।14।।

कण्ठास्यशोषस्तृण्मूर्च्छा दाहोऽस्वप्नो वमिर्भ्रमः।
तमः पर्वशिरोरुक् च वातपित्तज्वराकृतिः।।15।।

स्तैमित्यं काससन्तापौ गौरवं पर्वमूर्धरुक्।
स्वापोऽस्वेदः प्रतिश्यायो वातश्लेष्मज्वराकृतिः।।16।।

शीतं दाहो मुहुस्तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिश्च तृट्।
लिप्ततिक्तास्यता पित्तबलासज्वरलक्षणम्।।17।।

खरा जिह्वाऽक्षिणी भुग्ने स्राविरक्ते तृडस्थिरुक्।
विकृतेहास्वेदनिद्रा शीतदाहाव्यवस्थितिः।।18।।

तन्द्रा प्रलापो मोहाङ्गस्रस्तता कण्ठशूकता।
रक्तष्ठीवनमित्यादिः सन्निपातज्वराकृतिः।।19।।

अभिन्यासः समस्तैस्तैर्ध्वस्तसर्वेन्द्रियक्रियः।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यो दोषवृद्ध्याऽग्निहानितः।।20।।

सप्तदशद्वादशाहाद्धानिर्वा वृद्धिरस्य तैः।
तत्तद् द्विगुणघस्त्रैस्तु तन्मर्यादा स्मृता क्रमात्।।21।।

सन्निपातज्वरस्यादिमध्यान्ते कर्णमूलयोः।
शोथोऽसाध्यः कष्टसाध्यः सुखसाध्यः क्रमेण च।।22।।

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ।
सन्दूष्यास्त्ररसावस्त्रं क्रव्यं मेदोऽस्थि मज्ज च।।23।।
तद्भेदा विषमाः स्युस्ते शीतदाहादयो ज्वराः।
सन्तत्या सन्ततस्तिष्ठेत् ते सप्तदशरव्यहान्।।24।।
द्वौ कालौ सततोऽन्येद्युरेकं कुर्यादहर्निशम्।
मुक्त्वैकाहं तृतीयोऽथ द्व्यहं त्यक्त्वा चतुर्थकः।।25।।
घटीः पञ्चाशदन्येद्युः स्वेऽह्न्यस्तु तृतीयकः।
द्व्यहं चतुर्थो व्याप्नोति त्रय एते विपर्ययाः।।26।।
हृद्रुगस्त्रवमिर्दाहो वैगन्ध्यं चाऽस्थिरुक् क्लमः।
शुक्रोत्सर्गश्चेति लिङ्गं क्रमाद्धातुगते ज्वरे।।27।।
साध्यावाद्यौ कष्टसाध्यास्तत्परोऽन्त्यो न सिद्ध्यति।
मन्दोऽतिगौरवं स्वेदो ज्वरो नित्यं प्रलेपकः।।28।।
चतुर्धाऽऽगन्तुजः शापाभिचारावेशघातजः।
पूर्वयोर्भूरिविस्फोटमोहावावेशजे तु रुट्।।29।।
तत्तद् भूतस्य कामोत्थे ह्रीधीस्वप्नहतिर्ज्वरे।
दाहातिसारौ क्ष्वेडोत्थे यथास्वं घातजं वदेत्।।30।।
बहुहेतूपद्रवोऽतिक्षीणधात्विन्द्रियो ज्वरः।
असाध्यः शीतलः स्वेदी गात्रान्तर्दाहकृच्च यः।।31।।
लघुर्गुरुर्निरामश्च सामः प्राकृतवैकृतौ।
बहिरन्तर्वेगिनौ च साध्यासाध्यौ क्रमाज्ज्वरौ।।32।।
लघुरल्पोपद्रवः स्यादनेकोपद्रवो गुरुः।
वर्षाशरद्वसन्तेषु प्राकृतोऽन्यस्तु वैकृतः।।33।।
हृल्लासापाकलालाक्षुत्तन्द्रारुच्यङ्गगौरवैः।
वैरस्यालस्यातिसूत्रैः सामोऽन्यस्मान्निरामकः।।34।।
अन्तर्दाहः प्रलापस्तृट् सन्धिरुग् विड्ग्रहो भ्रमः।
श्वासास्वेदौ चिह्नमन्तर्वेगिनोऽन्यस्य चान्यथा।।35।।
विरेको विड्ग्रहो वा तृट् कासः श्वासोऽङ्गरुग्वमिः।
हिक्का मूर्च्छाऽरुचिश्चापि ज्वरस्योपद्रवा दश।।36।।
अस्वप्नारुच्यरतितृट्स्तम्भवीर्याङ्गगौरवम्।
यन्त्रणान्नाभिहृन्मध्ये रुक् चाङ्को धातुपाकिनः।।37।।
भ्रमातिज्वरतृट्श्वासाः पच्यमानज्वराकृतिः।
दोषज्वराङ्गलघुता दोषपाकस्य लक्षणम्।।38।।
दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भिदसंज्ञता।
कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे।।39।।
देहो लघुर्मुखे पाकः स्वेदः करणसौष्ठवम्।
कण्डूः क्षवो बुभुक्षा च विगतज्वरलक्षणम्।।40।।
वृद्धः सविड्रसः क्षिप्तवह्निर्वातातिसारितः।
अतिसारः स षोढा तैः पृथक् सर्वैः शुचाऽऽमतः।।41।।

फेनरूक्षारुणं वातात् पित्तात् पीतारुणासितम्।
कफात् सान्द्रं श्वेतहिमं वर्चः सर्वैस्तु सर्वयुक्।।42।।
शोचतोऽविट् सविड् वाऽस्त्रं बाष्पक्षुद्रोष्मणेरितम्।
सृजत्यजीर्णात् तच्चित्रं मुहुर्मुहुः सशब्दरुक्।।43।।
अतीसारी सृजत्यस्त्रं पित्तलाहारसेवनात्।
अजस्त्रं विड्वातकफात् प्रवहेच्चेत्प्रवाहिका।।44।।
वमिः कृच्छ्रं ज्वरः कासः श्वासस्तृण्मोहशोथरुक्।
हिक्काऽरुचिश्चेति लिङ्गं मरणायातिसारिणः।।45।।
गतेऽतिसारेऽप्यामेन दुष्टा चेद् ग्रहणी मुहुः।
वर्चो मुञ्चत्याममेवोच्यतेऽसौ ग्रहणीगदः।।46।।
कुप्यति ग्रहणी नित्यं दिवा भूयो रुजाऽऽमरुक्।
साऽन्या सङ्ग्रहणी नाम्ना याऽऽमं सङ्गृह्य मुञ्चति।।47।।
शोथाग्निमान्द्यवैवर्ण्यज्वरापाकारुचिक्षयाः।
तृडवीर्यरुगाध्मानोद्गाराः स्युर्गहणीगदे।।48।।
पृथक् सर्वैश्चतुर्धाऽसौ तल्लिङ्गमतिसारवत्।
विडामं पूत्यप्सु मज्जेत् सद्रवस्निग्धशब्दरुक्।।49।।
त्वङ्मांसमेदः सन्दूष्य गुदेऽर्शांस्यङ्कुरान्मलाः।
कुर्युः षोढा पृथग् दोषाः सर्वैर्द्वे सहजास्त्रजे।।50।।
शोथाग्निमान्द्यविष्टम्भसक्थिपीडाऽल्पविट्कता।
पाण्डुताऽस्त्रक्षयाबल्याध्मानोद्गारा रुजोऽर्शसाम्।।51।।
प्रागुक्तदोषचिह्नैस्तु दोषानर्शस्सु लक्षयेत्।
त्रिदोषचिह्नं सहजमस्त्रस्त्रावि तदस्त्रजम्।।52।।
बाह्यमध्यान्त्यवलिजान्येकद्वित्रिमलानि च।
तानि साध्यानि कष्टानि न साध्यानि वदेत् क्रमात्।।53।।
अजीर्णं भुक्तिवैषम्याद्रेको वान्तोऽस्य विड्ग्रहः।
स्युर्विष्टब्धविदग्धामाख्यान्यजीर्णानि वै क्रमात्।।54।।
रसशेषश्चतुर्थं तद्विष्टब्धे शूलविड्ग्रहौ।
विदग्धेऽम्लः सधूमश्चोद्गारो ह्यामे स भुक्तवान्।।55।।
रसशेषेऽन्नविद्वेषः पूर्वत्रिभ्यो विसूचिका।
वम्यतीसारतृट्शूलभ्रमोद्वेष्टनतोदनी।।56।।
मूत्राघातास्वप्नकम्पारतिमोहैर्न सिध्यति।
वृद्धातिवृद्धक्षीणैस्तैर्भस्मकोऽत्यशनो गदः।।57।।
ज्वरो विवर्णता शूलो हृद्रोगः श्वसनं भ्रमः।
अन्नद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम्।।58।।
अतिव्यवायमद्याम्लदिवास्वप्नमृदादिभिः।
पाण्डवः पञ्च तैर्भिन्नैरभिन्नैः पञ्चमो मृदः।।59।।
पाण्ड्वत्वङ्नेत्रविण्मूत्रनखैः शोथवमिज्वरैः।
[illegible] युक्तः स्यात् पाण्डुरोगवान्।।60।।

अन्तःशोथी मध्यकृशो मध्यशोथ्यन्तदुर्बलः।
किं वा ज्वरातिसारी च पाण्डुरोगी न सिध्यति।।61।।

पीतत्वङ्मूत्रविण्नेत्रबहुपित्तात् तु कामला।
सैव वृद्धा कृष्णपीतत्वगादिः कुम्भकामला।।62।।

दुष्टं पित्तं विदूष्यास्रं सह तेन बहिर्बिलैः।
ऊर्ध्वं चाधो द्विधा वैति रक्तपित्तं तदुच्यते।।63।।

सश्लेष्मोर्ध्वमधः स्वैरं द्विमार्गं सकफानिलम्।
साध्यं याप्यमसाध्यं च रक्तपित्तं क्रमाद् वदेत्।।64।।

ज्वरापाकवमिश्वासतृट्कासाबल्यपाण्डुताः।
भुक्ते दाहः शिरस्तापो रेकोऽक्षुच्चास्रपित्ततः।।65।।

अतिव्यवायव्यायामव्रणशोकज्वराध्वभिः।
शोषान् कुर्वन्ति ते क्रुद्धा यक्ष्माणं तु कफोल्बणाः।।66।।

कराङ्घ्रिदाहः पार्श्वांसरुक्कफास्रवमिर्ज्वरः।
वैस्वर्यक्षुद्रकश्वासकासमस्तकगौरवम् ।।67।।

शुक्लेक्षणत्वं मांसेच्छा रिरंसा च क्षयाकृतिः।
उरःक्षते स्याद्रुक्पूतिकफपूयास्रवान्तियुक्।।68।।

कासातिसारपार्श्वार्त्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः।
षड्भिरेभिः क्षयोऽसाध्यः किं वाऽसृक्कसनज्वरैः।।69।।

प्राणः सघोषः सोदानो वक्त्रात् प्रैति यदा सतृट्।
स कासः पञ्चधा भिन्नैस्तैः क्षतेन क्षयेण च।।70।।

कासते शुष्कमनिलात् पित्तात् पीतं वमेत् कटु।
कफात् स्वादु कफं चान्त्यावसाध्यावुक्तलक्षणौ।।71।।

पूर्ववत् कुरुते प्राणो हिक्काः पञ्च गतिक्रमात्।
अन्नजाऽऽहारबाहुल्याद्यमिका द्वित्रिवेगिनी।।72।।

हिक्का क्षुद्रा जत्रुमन्दा गम्भीरा नाभिकम्पकृत्।
कम्पयत्यङ्गमखिलं महत्यन्ते न सिध्यति।।73।।

अधश्चोर्ध्वं कफो वातो यात्यायाति मुहुर्यदा।
कफरुद्धगतिर्विष्वक् तदा श्वासान् करोत्यसौ।।74।।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्राख्यान् स्वगतिक्रमात्।
महता निःश्वसित्युच्चैरूर्ध्वेनोर्ध्वमधो न तु।।75।।

विच्छिन्नवेगं छिन्नेन तमकेनातिमूर्धरुक्।
क्षुद्रेण श्वसनेनाल्पं पूर्वे साध्या न ते त्रयः।।76।।

अत्युच्चभाषाताद्यैः क्रुद्धैर्दोषैः स्वरामयः।
षोढा पृथक् सद्धस्ते स्यान्मेदसा च क्षयेण च।।77।।

स्वनिदानस्वरूपास्ते न तु साध्यास्त्रयोऽन्तिमाः।
स्वाद्वप्यन्नं मुखे चेन्न स्वदतेऽसावरोचकः।।78।।

स पञ्चधा पृथक् सर्वैस्तैः परो रुग्भयादिभिः।
अरोचके मुखं तत्तद्रसं प्राकृतमन्तिमे।।79।।

अत्यजीर्णपटुस्निग्धाहृद्यगर्भकृमिदुतैः।
दोषैः पृथक् समस्तैश्चाहृद्यैः पञ्चविधा वमिः।।80।।

श्यामं वातेन पित्तेन पीतं श्वेतं कफेन च।
सर्वैश्चित्रं वमेद् गर्भाद् बीभत्सादीक्षणादपि।।81।।

कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव च।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः।।82।।

सततं यः पिबेद् वारि न तृप्तिमुपगच्छति।
पुनः काङ्क्षति तोयं यस्तं तृष्णाऽर्दितमादिशेत्।।83।।

पित्तं तालुगतं क्रुद्धं सवातं कुरुते तृषाम्।
सा सप्तधा पृथक् तैश्च क्षतामक्षयभोजनैः।।84।।

शीताद् विवर्धते वातान्न पित्ताज्जाड्यकृत्कफात्।
तृट् त्रिलिङ्गाऽऽमजाघातास्रक्षयाभ्यां क्षतोद्भवा।।85।।

रसक्षयात् सहृत्पीडा पट्वाद्याधिक्यतोऽन्नजा।
मोहज्वरश्वासकासकर्त्री तृष्णा न सिध्यति।।86।।

संज्ञास्त्रोतांसि ते रुद्ध्वा विशन्ति करणानि चेत्।
क्रुद्धपित्तास्तदा मर्त्या मूर्च्छन्ति गतचेतनाः।।87।।

सप्त मूर्च्छाः पृथक् सर्वैस्तैश्च मद्यविषास्रतः।
दोषवर्णं वियत्पश्यन् दोषैर्मूर्च्छति चासवात्।।88।।

असौम्यः सप्रलापोऽथ दाहहृत्कम्पवान्विषात्।
पित्तवद्रक्तगन्धेन संन्यासोऽस्तेन्द्रियक्रियः।।89।।

मद्यं पीतमयुक्त्या तैः कुर्यात् पानात्ययांश्चतुः।
वमिर्मूर्च्छा ज्वरो दाहः प्रलापश्च भ्रमोऽरुचिः।।90।।

रेकास्वप्नारतिकफाः पानाजीर्णस्य लक्षणम्।
पानोष्मा त्वग्गतो दाहं सपित्तास्रः करोत्यति।।91।।

भीशोककामदुष्टान्नैः पूज्यादेश्चावधर्षणैः।
मादयन्ति मनोदोषाः स्यादुन्मादस्ततोद्धताः।।92।।

अस्थाने हास्यगीताद्यैर्ह्रीधीस्वप्नविपर्ययैः।
रहस्यकथनोद्वेगभ्रमैरुन्मादमादिशेत् ।।93।।

दौषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च विषशुग्भ्यां स षड्विधः।
दोषाङ्काः पूर्ववच्छोकभीकामाद्यैस्तु तत्कथः।।94।।

देवदैत्यपिशाचाहिरक्षोगन्धर्वयक्षतः।
पितृतश्च ग्रहेभ्यः स्युरुन्मादाः प्रोक्तलक्षणाः।।95।।

पावित्र्यं देवविद्वेषो नग्नत्वं सर्पवद्गतिः।
बहुभुक्त्वं गानदाने श्राद्धं चेति तदाकृतिः।।96।।

कम्पनिद्राफेनवमिद्रुमादिपतनादिभिः।
त्रयोदशेऽब्देऽतीते तु नोन्मादी जातु जीवति।।97।।

दोषोद्रेकात् प्रनष्टायां स्मृतौ सत्यामपस्मृतिः।
तदाकृतिस्तमःफेनकम्पनेत्रादिवैकृतम् ।।98।।

चतुर्धाऽसौ पृथक् सर्वैस्तैस्तत्कोपः क्रमादिह।
रविपञ्चदशत्रिंशद् दिनेषु सकलेष्वपि।। 99।।
अशीतिर्वातजा रोगा भवन्त्याक्षेपकादयः।
अतिप्रसिद्धान् कियतस्तेष्वहं तानिह ब्रुवे।। 100।।
आक्षेपको गतिक्षेपात् खल्ली जङ्घोरुपादरुक्।
सरुङ्नाभेरधो ग्रन्थिरष्ठीला रुद्धमूत्रविट्।। 101।।
प्रत्यष्ठीलोदरे चेत्सा सपीडा तिर्यगुत्थिता।
आध्मानं स्याद् यदाऽऽध्मातं साटोपमुदरं सरुक्।। 102।।
कफव्याकुलिते वाते प्रत्याध्मानं प्रजायते।
विण्मूत्राशयजा पीडाऽधोगता तूणिकोच्यते।। 103।।
गुदोपस्थोत्थिता रुक् चेद्यात्यूर्ध्वं प्रतितूणिका।
वक्रीकरोति वक्त्रार्धं वातश्चेत् सरुगर्दितम्।। 104।।
गृध्रसीस्फिक्प्यायुकटिजानुजङ्घापदव्यथा।
क्रोष्टुशीर्षं जानुशोथो विश्वाची भुजयोर्व्यथा।। 105।।
खञ्जः स्यान्निग्रहात् सक्थ्नः पङ्गुत्वमुभयोस्तयोः।
अत्युद्गारस्त्रर्ध्ववातो नष्टवाक्त्वं तु मूकता।। 106।।
कलायखञ्जः स भवेत् प्रकामं वेपते तु यः।
आमूलमेकबाहोश्चेद्व्यथा स्यादपबाहुकः।। 107।।
विवृतं संवृतं वाऽऽस्यं यः कुर्यात् स हनुंग्रहः।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगौ स्तः सर्वाङ्गैकाङ्गनिग्रहात्।। 108।।
मुहुर्धनुर्वन्नमयेन्मोहयेच्चापतन्त्रकः।
जिह्वास्तम्भः स येनान्नपानवाक्येष्वनीशता।। 109।।
बाह्यायामान्तरायामौ बहिरन्तश्च कर्षणात्।
स्नायूनामथ विज्ञेयो व्रणायामोऽरुषा तथा।। 110।।
स्थानानामानुरूपाश्च लिङ्गैः शेषान् विनिर्दिशेत्।
घ्नन्ति वातामया वृद्धाः क्षीणमांसबलानलम्।। 111।।
अत्यध्ववाहनविदाह्यन्नादेः सरुषाऽसृजा।
युज्यते चेन्मरुद् दुष्टस्तथा स्याद् वातशोणितम्।। 112।।
दाहगौरवरुक्तोदकण्डूवैवर्ण्यमण्डलम्।
त्वच्युदर्दाङ्गसङ्कोचशोथं वातास्त्रलक्षणम्।। 113।।
वाताधिकेऽतिरुक्पित्ते दाहो रक्तेऽतिशोणता।
कफेऽतिगौरवं चिह्नं द्वित्रिजे द्वित्रिलक्षणम्।। 114।।
मोहदाहज्वरास्वप्नपाङ्गुल्याङ्गुलिवैकृतम्।
मर्मग्रहभ्रमास्फोटा वातस्त्रोपद्रवा नव।। 115।।
युगपत्कुपितावामवातौ स्वीयप्रकोपनैः।
आमवातं जनयतः सशोथं सीन्धरुग्ग्रहम्।। 116।।
सर्वाङ्गैकाङ्गसन्धिस्थशोथार्त्तिग्रहगौरवम्।
ज्वरापाकाग्निमान्द्ये च तृष्णा चामानिलाकृतिः।। 117।।

आमवाताधिके वातेऽतिरुग्दाहस्तु पित्ततः।
कफात् स्तैमित्यगुरुते सर्वलक्ष्म त्रिदोषतः।। 118।।
जाड्यान्त्रकूजनानाहतृट्छर्दिबहुमूत्रताः।
शूलं शयननाशोऽष्टोपद्रवा आमवातजाः।। 119।।
एकदेशेऽतिरुक् शूलं शिम्बीधान्यादिसेवनात्।
क्रुद्धैः पृथग् द्वन्द्वसर्वैर्दोषैश्चामात्तदष्टधा।। 120।।
पित्ते नाभ्यां चलाद्वस्तौ पार्श्वहृत्कुक्षिजं कफात्।
द्वित्रिस्थानं द्वित्रिदोषं शूलं चामाशये रसात्।। 121।।
वेदनाऽऽनाहमूर्च्छायास्तृट्कृच्छ्रे गौरवारुची।
कासः श्वासश्च हिक्का च शूलस्योपद्रवा दश।। 122।।
बलासः प्रच्युतः स्थानात् पित्तेन सह मूर्च्छितः।
वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने।। 123।।
वातविण्मूत्रजृम्भाऽश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः।
क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणां वृत्त्योदावर्त्तसम्भवः।। 124।।
वातस्य रोधादाध्मानमूर्ध्वविट्कं विशोथरुक्।
बस्तौ मूत्रस्य जृम्भायाः शिरोरुग्दृग्गुजोऽश्रुणः।। 125।।
क्षवथोरिन्द्रियग्लानिरुद्गारस्यानिलार्त्तयः।
छर्देः कुष्ठानीन्द्रियत्याश्मरी दृङ्मन्दता क्षुधः।। 126।।
तृषोऽतितृष्णा श्वासत्य हृद्रुक् स्वापस्य जृम्भणम्।
विड्वान्तिशूलतृड्ग्लानिक्षैण्ययुक्तं त्यजेदमुम्।। 127।।
हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः।
वृत्तश्चयोपचयवान् स गुल्मः पञ्चधा मतः।। 128।।
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः।
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च स्त्रीणां रक्तेन पञ्चमः।। 129।।
जीर्णेऽन्ने वातजः कुप्येत् तस्मिञ्जीर्यति पित्तजः।
भुक्ते तु कफजो गुल्मः सर्वदा सर्वदोषजः।। 130।।
प्रसवार्त्तवपातानां काले याऽसात्म्यभोजना।
वायुस्तद्रक्तमादाय गुल्मं निर्माति पैत्तवत्।। 131।।
स्पन्दते पिण्डितो नाङ्गैः सशूलो गर्भचिह्नयुक्।
गुल्मोऽसृजश्चिकित्स्योऽसौ मासे तु दशमे गते।। 132।।
श्वासशूलपिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिगूढता।
जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै।। 133।।
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि पीडां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते।। 134।।
स पञ्चधा पृथग्दोषैः समस्तैश्च कृमेरपि।
क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।। 135।।
नालस्य मूले मध्ये वा रुद्धं वाऽग्रे सदाहरुक्।
कणशश्चेत् स्त्रवेन्मूत्रं मूत्रकृच्छ्रं तदुच्यते।। 136।।

मूत्रकृच्छ्राण्यष्टदोषाश्मरीविट्शल्यशुक्रतः ।
दोषैर्लिङ्गं पृथक्सर्वैः कृच्छ्रे रुग्दाहगौरवम्।। 137।।
द्विधारं मूत्रमश्मर्या विड्क्षोभाद्विड्विगन्धि तत्।
क्षते हते वा शल्येन कृच्छ्रं स्यान्मूत्रवर्त्मनि।। 138।।
तत्र रुद्धे मले शुक्रात् प्राप्तात् कृच्छ्रं परं सरुक्।
वस्तिमेहनरुग्दाहाटोपैः कृच्छ्रं न सिध्यति।। 139।।
मूत्रादिधृत्या दुष्टेन रुद्ध्वा रुद्ध्वा शनैः शनैः।
मरुतोत्सृज्यते मूत्रं मूत्राघातस्तदा भवेत्।। 140।।
वातो मूत्रगतं शुक्रं कफं वा शोषयेद् यदा।
तदाऽश्मरी स्यात् क्रमशो गोपित्तेष्विव रोचना।। 141।।
रुङ्नाभिसीवनीवस्तिमूर्ध्निगोमेदकोपमम् ।
मूत्रकृच्छ्रं शीर्णधारं ज्वरश्चाश्मरिलक्षणम्।। 142।।
बालानां सा पृथग् दोषैर्यूनां शुक्रभवाऽश्मरी।
नाभ्यण्डशोथरुग्बद्धमूत्रणात् त्वनया मृतिः।। 143।।
आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि
ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च
प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्।। 144।।
मूत्रमिश्रं केवलं वा शुक्रं मेहति चेन्मुहुः।
स प्रमेहोऽत्र भेदस्तु मूत्रवर्णविभेदतः।। 145।।
जलेक्षुसान्द्रासवशुक्रपिष्ट-
लालाशनैः सैकतशीततस्ते।
माञ्जिष्ठहारिद्रकनीलकाल-
क्षारास्त्रतो मज्जवसेभपौष्यात्।। 146।।
साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः
षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः।
समक्रियत्वाद् विषमक्रियत्वान्-
महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते।। 147।।
दोषप्रकोपचिह्नानि प्रमेहाणामुपद्रवाः।
शरावी कच्छपी पुत्रिण्यलजी च विदारिका।। 148।।
मसूरी विनता जालिन्यपि विद्रधिसार्षपी।
नामानुरूपाः पिडिका दशेमास्तदुपेक्षणात्।। 149।।
मेदस्तु वर्धते श्लेष्महेतुभिस्तेन ना भवेत्।
सर्वकर्मासमर्थोऽतिस्थूलस्फिगुदरस्तनः।। 150।।
स्वभावदुर्बलो ह्येकः परो रोगादिदुर्बलः।
स्वभावदुर्बले नास्ति चिकित्साऽस्त्यपरत्र सा।। 151।।
मन्दाग्नेरहितैरन्नैरुदराण्यष्ट तानि तु।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः।। 152।।

वातविट्सङ्गदौर्बल्योदरवृद्ध्यग्निमन्दताः ।
पच्छोथवस्तिरुग्दाहाध्मानं सर्वोदराकृतिः।। 153।।
कृष्णपीतारुणा दोषैः सिराः स्युरुदरे क्रमात्।
दुष्टाम्बुनखविड्लोमार्त्तवदूषीविषादिभिः ।। 154।।
दूष्योदरं त्रिलिङ्गं स्यान्नाभेरूर्ध्वं चितं सरुक्।
वामे जीर्णज्वरात् प्लीहा यकृद्दाल्यस्त्रतोऽन्यतः।। 155।।
हृन्नाभिमध्ये निचितं दुष्टं वर्चोऽन्त्रलेपकृत्।
वातेन न बहिर्याति तद्बद्धगुदमार्त्तिकृत्।। 156।।
अन्नाद्यागतशल्येन भिन्नमन्त्रे जलं गुदात्।
स्त्रवेन्नाभेरधोवृद्धं परिस्त्राव्युदरं हि तत्।। 157।।
स्नेहपानाद्वमेरेकादत्यम्बु पिबतो हिमम्।
अम्बुपूर्णादृतिप्रख्यमधोनाभेर्दकोदरम् ।। 158।।
पक्षाद् बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम्।। 159।।
अतिक्षाराम्लदुष्टाम्बुविरुद्धदधिमृद्गरैः ।
पञ्चकर्मापचाराद्यैर्जायते श्वयथुर्नृणाम्।। 160।।
सिरातनुत्वं वैवर्ण्यं रोमाञ्चोत्सेधगौरवम्।
ऊष्मानवस्थितत्वं च सर्वं श्वयथुलक्षणम्।। 161।।
नवधा तैः पृथग्द्वन्द्वैः सर्वैर्घाताद्विषाच्च सः।
प्रागुक्तलिङ्गैस्ते ज्ञेया यथाहेतुः स घातजः।। 162।।
विषजः सविषप्राणिदंशमूत्रमलादिभिः।
ऊर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधोगामी मुखात् स्त्रियम्।
उभयं वस्तिसम्पातः शोथो हन्ति न संशयः।। 163।।
छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णा ज्वरोऽतीसार एव च।
सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसङ्ग्रहः।। 164।।
वायुर्वङ्क्षणतः प्राप्य मुष्के मुष्कधराः सिराः।
प्रपीड्य वृद्धिं कुरुते मुष्कयोः स कुरण्डकः।। 165।।
दोषास्त्रमेदोमूत्रान्त्रैः स गदः सप्तधा स्मृतः।
रुग्दाहकण्डूदोषेभ्योऽस्त्रात् कृष्णस्फोटभागशः।। 166।।
मेदोजः कफवन्मौत्रो धृतं तद्यन्त्रणात् सृजेत्।
आघातादेर्मरुन्नीत्वा क्षुद्रान्त्रं वङ्क्षणादधः।। 167।।
अन्त्रवृद्धिं करोत्यत्र यन्त्रणात् स्यात् सरुग्ध्वनिः।
वङ्क्षणग्रन्थिमनिलः करोति ब्रध्ननामकम्।। 168।।
पादशोफः श्लीपदं तैः पृथक् सर्वैः कफोल्बणैः।
तत्कर्णकरनेत्रौष्ठशिश्ननासास्वपि क्वचित्।। 169।।
प्राग्रूपमरुषः शोथः क्वाप्यङ्गे स्फुटितस्तु सः।
रूपं षोढा पृथक् सर्वं दोषास्त्रागन्तुकं च तत्।। 170।।

विषमं पच्यते वातात् पित्ततस्त्वचिरं चिरम्।
कफजः पित्तवच्छोथौ रक्तागन्तुसमुद्भवौ।। 171।।
मन्दोष्णताऽल्पशोफत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता।
मन्दवेदनता चैतदामशोथस्य लक्षणम्।। 172।।
अतिदाहरुजातोदशोषभेदविवर्णताः ।
तृष्णा ज्वरश्च शोथस्य पच्यमानस्य लक्षणम्।। 173।।
कण्डूर्वल्युद्भवस्तोदो रुक्शान्त्यारुण्यनम्रता।
यन्त्रणात् पूयचलनं पक्वशोथस्य लक्षणम्।। 174।।
सावर्ण्यं रुक्त्वगाढत्वमस्त्रपाकाकृतिः पुनः।
रुक्पाकपूयास्तैस्तेनारुःपाके तु त्रिदोषरुक्।। 175।।
शारीरागन्तुभेदेनारुर्द्विधाऽऽद्यं तु दोषजम्।
परं शस्त्रादिकं त्वत्र दोषे रुग्दाहगौरवम्।। 176।।
रक्तस्त्रावो रक्तजेऽथागन्तुजं तच्च षड्विधम्।
छिन्नं भिन्नं क्षतं विद्धं पिच्चितं घृष्टमित्यपि।। 177।।
पातान्त्रभेदस्वल्पारुर्वेधचूर्णेन घर्षणात्।
सशल्यं यन्त्रणात् सास्त्रं बुद्बुदं चट्चटध्वनिः।। 178।।
तृड्ज्वरोन्मादरुङ्मोहरेकहिक्काऽपतानकाः ।
कम्पच्छर्दिश्वासकासपक्षाघातहनुग्रहाः ।। 179।।
सिरास्तम्भो विसर्पश्चोपद्रवाः षोडशारुषः।
सर्वैरेतैर्व्रणोऽसाध्यो याप्योऽर्धैश्च सुखस्तथा।। 180।।
भग्नं द्विधा सन्धिकाण्डभेदात् षोढाऽत्र सन्धिजम्।
विवर्तितं च उत्क्षिप्तं तिर्यक्क्षिप्तमधोऽपि च।। 181।।
विश्लिष्टमुत्पिष्टमिति काण्डे द्वादशधा तु तत्।
अस्थिच्छल्लीकर्कटाश्वकर्णचूर्णितपिच्चितम् ।। 182।।
काण्डभग्नं द्विधाच्छिन्नं वक्रं चाप्यतिपातितम्।
मज्जागतं च स्फुटितं यथास्वं लक्षयेदिदम्।। 183।।
उपेक्षणाद्याति दूरं गतो नाडीं च यो व्रणः।
नाडीव्रणः स विज्ञेयः सपूयक्लेददाहरुक्।। 184।।
गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडिकाऽऽर्त्तिकृत्।
भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः।। 185।।
सरुक्क्लेदोऽनेकमुखो वातात् स्याच्छतपोनकः।
उष्ट्रग्रीवस्तु पित्तेन परिस्त्रावी कफेन च।। 186।।
शम्बूकावर्त्तकोन्मार्गगौ तु स्यातां त्रिदोषजौ।
शुक्रमूत्रवहौ दुःखौ न साध्यौ दूरगौ भृशम्।। 187।।
गलैकदेशे श्वयथुरपाको गलगण्डकः।
मेदोवातकफैस्त्रेधा कण्डूरुग्गौरवं क्रमात्।। 188।।
ग्रन्थिः कुत्राप्यपाकोऽङ्गे दोषास्त्रागन्तुमेदसः।
स एव पाक्यर्बुदः स्यात् तद्वत्पीढो मुहुः स्त्रवन्।। 189।।

गण्डमाला गले नैकैर्गण्डैर्मेदःकफोत्थितैः।
चिरपाकिभिरेषैव चिरस्थाऽपचिका भवेत्।। 190।।
श्वयथुर्मुष्टिवद्दाहरुगाढ्यो विद्रधिर्द्विधा।
बहिरन्तश्च षोढा तैः पृथक्सर्वैरसृक्क्षतात्।। 191।।
बाह्यः स पक्वोऽरुर्वत्स्यादान्तरस्तु करोत्यसौ।
बस्तौ कृच्छ्रं क्लोम्न्युदन्यां पार्श्वबन्धं तु वृक्कयोः।। 192।।
पायावपानविड्रोधं कुक्षावनिलजा रुजः।
नाभ्यां हिक्कां हृदि श्वासं प्लीह्नि श्वासाप्रवर्त्तनम्।। 193।।
यकृत्यजस्त्रं कसनं वङ्क्षणे तु कटिग्रहम्।
स पक्वो वामयेदूर्ध्वं नाभेः सञ्चारयेदधः।। 194।।
नाद्यः साध्यश्च मर्मोत्थो विद्रधिर्भूर्युपद्रवः।
विद्रधिः स्त्रीस्तने रक्तः शोथरुग्दाहपाककृत्।। 195।।
विरुद्धाहारदुष्कर्मपञ्चकर्मापचारतः ।
दुष्टस्त्रीमद्यमांसाम्बुसेवाद्यैः कुष्ठसम्भवः।। 196।।
कपालाद्युद्भवो रक्तदुष्टिरिन्द्रियवैकृतम्।
पाङ्गुल्याबल्यकौण्यं च महाकुष्ठाकृतिश्चिरात्।। 197।।
कपालं वातवद्रूक्षं पित्तादौदुम्बरं च तत्।
कफात्सितं मण्डलं तैर्गुञ्जावत् काकणं सरुक्।। 198।।
वातपित्तादृक्षजिह्वं सकम्पमरुणासितम्।
कफपित्तात् पुण्डरीकं पुण्डरीकदलोपमम्।। 199।।
दद्रूः कण्डूत्थपिडिकायुक् सरन् मण्डलात् ततः।
सप्तैतानि महाकुष्ठानीभचर्मेभचर्मवत्।। 200।।
किणवत्किटिभं चर्मदलं तु दरणात् त्वचः।
पामा पाण्योः कण्ड्वरुची विचर्चिः सर्वजस्तु तैः।। 201।।
तैर्मेढ्रपार्श्वजैः कच्छूः पाददारैर्विपादिका।
सिध्मोर्ध्वदेहे कषणाद् दाल्यलाबूप्रसूनवत्।। 202।।
शतारुरल्पारुर्भिः स्यादलसं शोणमण्डलम्।
एककुष्ठं मत्स्यखण्डोपमं श्वित्रं ततः सितम्।। 203।।
हस्तदन्तनखाघातयोनिदोषादिभिर्मलाः ।
पृथक्सर्वैर्व्रणान् कुर्युर्लिङ्गे वर्त्तिं च पञ्चमीम्।। 204।।
अस्थिशोथरुजो दाहः सन्धिग्रहमरूंषि च।
केशलोमप्रपातश्च वैवर्ण्यं चोपदंशतः।। 205।।
वरटीदष्टवच्छोथाः कण्डूच्छर्दिज्वरप्रदाः।
शीतपित्तनिमित्ताः स्युरुदर्दा वपुषो बहिः।। 206।।
अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारिगौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिरम्लपित्तं वदेद् भिषक्।। 207।।
अतिदाहरुजारागस्त्रावारुच्यरतिप्रदाः ।
क्षुद्रव्रणविसर्पाः स्युः सर्वतः परिसर्पणात्।। 208।।

ज्वरच्छर्दिभ्रमाद्याः स्युर्बालानां तु मसूरिकाः।
पद्धस्ततलदृश्यास्ता न सिध्यन्त्यनलक्षयात्।। 209।।
अग्निदाहादिव स्फोटा विस्फोटाः स्युर्महारुजः।
पृथग्द्वन्द्वसमस्तैस्तैरस्त्राच्चैते विषोपमाः।। 210।।
ये गदा महतामुक्ताः स्युस्त एवार्भकेष्वपि।
किन्तु देहाग्निदोषादेर्लाघवाल्लघवः परम्।। 211।।
क्षीरालसः पृथग्दोषैर्लालास्त्रावोऽतिरोदनम्।
गुदपाकास्यपाकौ च दन्तोद्भेदादयः परे।। 212।।
ऊर्ध्वं पश्येद्दतः खादेत् क्षिपेद् गात्रं वमेत् पयः।
जागर्ति रोदिति श्यावो ग्रहग्रस्तोऽर्भकः कृशः।। 213।।
स्त्रावो गर्भस्थाचतुर्थान्मासात् पातस्ततः परम्।
स मूढगर्भो यः स्थानाच्च्युतो न बहिरापतेत्।। 214।।
गर्भास्पन्दो धीविनाशो मृते गर्भेऽपचारतः।
विरेकशैत्यतृट्कम्पज्वराद्यैः सा न सिध्यति।। 215।।
अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता।
दाहः शोथातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम्।। 216।।
अस्त्रस्त्रुतिः स्यात् प्रदरं योनिः स्त्रीणामनार्तवा।
रुगङ्गमर्ददौर्बल्यक्षुत्तृट्पाण्डुत्वदाहकृत् ।। 217।।
तच्चतुर्धा पृथक्सर्वैर्दोषैः स्यादार्त्तवं पुनः।
शशास्त्रतुल्यं यच्चोक्तं धौतं वासो न रञ्जयेत्।। 218।।
अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः।
ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम्।। 219।।
अल्पशीतोष्णतेजःक्षुत्पिपासाश्रमरुट्सहः ।
पिडिकासन्धिशिथिलो हीनबुद्धिबलेन्द्रियः।। 220।।
पाण्डुरोऽल्परतिस्तोयतुल्यरेताः श्लथध्वजः ।
मन्दवह्निश्च दीनश्च क्षीणशुक्रो नरो मतः।। 221।।
असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत्।
साध्यानामितरेषां च कार्यो वाजीक्रियाक्रमः।। 222।।

धूलिधूमार्कशाकाम्लतीक्ष्णस्त्रीजागरादिभिः ।
गण्डूषाञ्जननस्यादिहीनानां स्युर्दृगामयाः।। 223।।
तिमिरं पटलं काचमभिष्यन्दोऽधिमन्थकः।
पक्ष्मकोपो व्रणकोपश्चेत्याद्या नयनामयाः।। 224।।
नेत्रकोपः पृथक्सर्वैस्तैरस्त्राच्चान्यहेतुतः।
रुगश्रुरागशोथाद्यैरामः पक्वस्ततोऽन्यथा।। 225।।
अव्यक्तं तिमिरी चैकमनेकं पटलीक्षते।
काची सूक्ष्माम्बरच्छन्नदृगिवोर्ध्वमधो न तु।। 226।।
अकालपलितं पीडा सूर्यावर्त्तार्द्धभेदकाः।
इन्द्रलुप्तं केशपात इत्याद्याः स्युः शिरोगदाः।। 227।।
करोति विगुणो वायुर्मलं सङ्गृह्य कर्णयोः।
सकफः पाकबाधिर्यशूलस्त्रावादिकान् गदान्।। 228।।
अर्शोऽस्त्रस्त्रावपिडिकाः पूयस्त्रावश्च पीनसः।
प्रतिश्यायश्छल्लिका चेत्याद्या नासाऽऽमयाः स्मृताः।। 229।।
सरक्तः कुरुते श्लेष्मा दन्तार्शो दन्तचालनम्।
दौर्गन्ध्यपिडिकापाकमूकादींश्च गदान्मुखे।। 230।।
जिह्वामौढ्यशिरोदाहभ्रमोन्मादारुचिज्वरैः ।
श्वासहिक्कादन्तहर्षैर्जानीयात् स्थावरं विषम्।। 231।।
दंशवैवर्ण्यशोथाभ्यां सेकरेकतमोभ्रमैः।
निद्राऽक्षिरागरसनामौढ्यैश्चाहिविषं वदेत्।। 232।।
विद्धं तु वृश्चिकेनाङ्गं ज्वलदङ्गारभागिव।
सदाहरुङ्मोहमन्यद् यथास्वं विषमुन्नयेत्।। 233।।
अतिविस्तरपुस्तकपाठभया-
दतिह्रस्वतया धृतभूरिधियाम्।
नयनानलदृङ्मितपद्यकृतं भिषजामि-
दमञ्जनमस्तु मुदे।। 234।।
चकार चतुरोऽञ्जनं तदिदमग्निवेशोऽञ्जनं
परोपकृतये हितं परिमितं रुजां ज्ञापकम्।
ततः समुदितैस्सदा सुकृतराशिभिस्तुष्यतां
तुषारगिरिकन्यकापरिवृढः सयोषित्सुतः।। 235।।

।। इति श्रीमदग्निवेशमहर्षिविरचितमञ्जननिदानं समाप्तम्।।

# रोगपरक-सूची

### 33. कुष्ठरोग



#### ( दद्रु रोग )



#### ( पामा रोग )



#### ( पुण्डरीककुष्ठ रोग )



#### ( मण्डलकुष्ठ रोग )



#### ( रक्तव्यंग रोग )



#### ( श्वित्रकुष्ठ रोग )



#### ( श्वेतकुष्ठ रोग )



#### ( सिध्मकुष्ठ रोग )



### 34. कृमि रोग



### 35. क्षयरोग

**78. लूता रोग**



**79. वातरोग**



**( अपतन्त्रक रोग )**



**( अपबाहुक रोग )**



**( अंगपीड़ा रोग )**



**( अंगशोष रोग )**



**( अर्दित-मुख का लकवा रोग )**



**( अष्ठीलिका रोग )**



**( आध्मान रोग )**



**( ऊरुग्रह रोग )**



**( कटिग्रह रोग )**



**( कम्प रोग )**



**( कृशता रोग )**

# कतिपय रोगों के प्रमुख कार्य

# भेलसंहिता

'विनोदिनी' हिन्दीव्याख्या-विमर्श-परिशिष्टादि संवलित

## श्री अभय कात्यायन

भेलसंहिता का प्रस्तुत संस्करण वर्तमान में उपलब्ध विभिन्न संस्करणों के व्यावहारिक पाठ के आधार पर प्रथमतः 'विनोदिनी' हिन्दी व्याख्या एवं विमर्श सहित लिखा गया है। इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताएँ—मनुष्यों में 'ज्वर' कहे जाने वाले रोग के लिये मनुष्येतर प्राणियों में अन्य संज्ञाओं का प्रयोग है (सूत्रस्थान)। यह विषय चरक तथा सुश्रुत में नहीं है । भेल अपने गुरु पुनर्वसु आत्रेय का नामो-ल्लेख भी कई स्थानों पर करते हैं—'गुरुमेव ब्रवीरुम्यहम्' (सूत्र. 5.10), 'यथात्रेयस्य शासनम्' (सिद्धि. 4.28); परन्तु वहीं उन्हें यदि अपने अनुभव में नई जानकारी मिली है तो उन्होंने निःसङ्कोच स्फुट रूप से वह बात भी कह दी है—'सन्निपातोद्भवं ह्येतदहं वक्ष्यामि हेतुभिः' (चि.2.3) 'इति मे निश्चिता मतिः'। (सिद्धि.1.9)।

भेल ने औषधियों के मिश्रणों की मात्रादि के सम्बन्ध में कहा है—'अभुक्त्वामलकं खादेत् भुक्त्वा चापि हरीतकीम्'। परिणामे च भक्तस्य खादेच्चैव विभीतकम्।।' (चि. सू.)। यह बात चरक में नहीं है । भेल ने 'किस समय किस द्रव्य को खाया जाय' इसका कारण भी वहाँ दिया है।

इसी प्रकार से भेल ने शा. अ. 4 में आलोचक पित्त के बुद्धि-वैशेषिक तथा चक्षुर्वैशेषिक—ये दो अवान्तर भेद किये हैं; जिनका उल्लेख चरक, काश्यप तथा सुश्रुत में नहीं है।

जाठराग्नि के सम्बन्ध में भेल ने जो विवरण दिया है, उसमें नाभि में सूर्यमण्डल का सोममण्डल में होना योगशास्त्र तथा तन्त्र का एक अद्भुत विषय है, वह अन्य संहिताओं में नहीं मिलता है। वहाँ उन्होंने भगवान् पुनर्वसु आत्रेय की सोमसूर्यात्मक जगत् की आवधारणा को विस्तार दिया है।

भेल ने विसूची रोगी की चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया है और उसमें उष्ण लवणाम्बु पिलाकर वमन कराने का निर्देश किया है, यह विषय सर्वथा नया है। (चि. 10.63-64)

आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भेल ने (चि. 8.2) मन (मस्तिष्क) का स्थान शिर में तालु के अन्तर्गत लिखा है— 'शिरस्ताल्वन्तर्गतं सर्वेन्द्रियपरं मनः'।

इस प्रकार प्राचीन संहिता ग्रन्थों में भेल संहिता का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आशा है यह संस्करण अध्ययन-अध्यापन के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।